Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

MARYADA

1919

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

G. K. V.
LIB.
HARDWAR

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111163

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

111163

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्यादा

111163

मासिक पत्रिका ।

RT-0908
111163

सत्रहवां भाग ।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः
पुस्तक सं०..............
आगत सं०..............
तिथि०..................
गुरुकुल ग्रन्थालय काँगड़ी.

जनवरी—जून

१९१९

वार्षिक मूल्य साढ़े तीन रुपया ।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब में भारत सरकार जो कुछ कर रही है उससे असन्तुष्ट होने के कारण सर शङ्करन नायर साहब बड़े लाट की कार्य-कारिणी समिति से अलग हो गये। उन्होंने इस्तीफा दे दिया है किन्तु सरकारी तौर से अभी उसके स्वीकृति का कोई समाचार नहीं छपा है।

❋

भारत-सरकार की सुधारों के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रकाशित हो गई। वह बहुत अनुदार है और उसके द्वारा प्रयत्न यह किया गया है कि एक हाथ से जो दिया गया है वह दूसरे हाथ से ले लिया जाय। सर शङ्करन नायर ने बड़ा ज़बर्दस्त मतभेद पत्र लिखा है। रिपोर्ट की इसे हम अच्छी टिप्पणी और समालोचना कहें तो अत्युक्ति न होगी। सहयोगी भारतमित्र से उद्धृत कर कुछ अंश इस संख्या में हमने प्रकाशित किया है, अगली संख्या में उसकी पूर्ति हो जायगी। ध्यानपूर्वक उसे पढ़ियेगा।

❋

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया था किन्तु अब जुलाई मास से आन्दोलन फिर आरंभ किया जायगा। स्वामी श्रद्धानन्द जी तथा मि० जमुनादास द्वारकादास आदि सज्जन महात्मा जी से मतभेद होने के कारण सत्याग्रह आन्दोलन से अलग हो गये हैं।

❋

भारतीय नेता विलायत पहुंच गये हैं, कुछ सज्जन अभी और पहुंचने वाले हैं। पाठकों को यह सुन कर प्रसन्नता होगी कि हमारे प्रवासी भाई पंजाब के मामले को सब से अधिक महत्व प्रदान करेंगे। रिफार्म की अपेक्षा वे इस बात का प्रयत्न करेंगे कि पंजाब के मामले की पूरी पूरी स्वतंत्र जांच हो। वे इस बात का भी प्रयत्न करेंगे कि सुधार हो या नहीं किन्तु हम को पहिले हमारे मानवी स्वत्व प्राप्त हो जाय।

बेलजियम सन्धि परिषद् के फैसले से असन्तुष्ट है। प्रसिद्ध यह है कि हालैण्ड के कुछ प्रान्तों को वह अपनाना चाहता है। किन्तु कानों में मालूम नहीं कौन कह रहा है कि बात इतनी ही नहीं है। यह जर्मन पूर्वीय अफ्रिका के प्रदेशों को भी चाहता है। सन्धि परिषद् द्वारा इङ्गलैण्ड इन प्रदेशों का वली और पथ-प्रदर्शक नियत हुआ है किन्तु बेलजियम कह रहा है कि इस प्रदेश को विजय करने में बेलजियम सेना ने अपना खून बहाया है। साथ ही प्रायः तीन वर्ष से अधिकतर प्रान्तों में शासन का काम भी बेलजियन चला रहे हैं ऐसी अवस्था में हक़ बेलजियम का है और वली उसे होना चाहिये।

हिन्दी साहित्य सेवियों के लिए अनूठा अवसर।

आवश्यकता है ऐसे लेखकों और अनुवाद कर्ताओं की जो वेतन पर यहां (कलकत्ते में) आकर अथवा पुरस्कार के रूप में निज स्थान में निवास कर, साहित्य, विज्ञान, व्यापार, भूगोल, इतिहास, जीवन चरित्र, कृषि, कला, कानून, शिल्प अर्थ और बनस्पति शास्त्र, शिक्षा सम्बन्धी एवं उद्योग धंधे और प्राकृतिक दृश्य वर्णन आदिक अन्यान्य उपयोगी विषयों के ग्रंथ हिन्दी में लिख सकें अथवा अन्य भाषाओं (जैसे बंगला, गुजराती, मराठी और अंगरेज़ी आदि) से अनुवाद कर सकें।

पुरस्कार संतोष जनक और वेतन योग्यतानुसार। विशेष विवरण के लिए पत्र व्यवहार कीजिये—

मैनेजर,
बीकानेर ट्रेडिंग कम्पनी,
८१ क्लाइव स्ट्रीट, कलकत्ता।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

H. L

MARYADA

1919

G.K.V

Lib

HARDWAR.

विषय ... पृष्ठ तक

१-अप्रत्यक्ष आचर... रण जीवन-लाल ... एम० ए०, ... २७२

२-अन्योक्ति-राष्ट्रीय ... २-८४

३-आदर्श देशभक्त- ... देव मालवीय, ए ... -१८६

४-आशावाद-श्रीयु ... बी० ए०, ... २१

५-'आन्तर्जातिक वि ... जगमोहन विकरि ... ६४

६-आरम्भ (कविता)- ... सिंह 'मयंक' २३६-२४०

७-इतिहास का महत्व—श्रीयुत परशुराम मिरोत्रा २५०-२६२

८-उत्तरा-मिलन (कविता)- 'कृष्णाकर' १३७-१३८

९-उत्तेजना (कविता) १८१

१०-उद्गार (कविता) २१२

११-उपालम्भ-श्रीकान्त कुसुमाकर २८५

१२-कामना-श्रीयुत रामचन्द्र टंडन, बी० ए०, २८१

१३-किनको वोट देने का अधिकार मिलना चाहिये-श्रीयुत राजेन्द्र-प्रसाद जी, एम० ए० एम० एल०, १७-२१

१४-किसान २१८-२२३

१५-कोई सितमगर न कहे (कविता) २३३

... म्भर नाथ शर्मा, कौशिक २६३-२७२

२१-धिक्कार (कविता)-श्रीकान्त 'कुसुमाकर' ३३

२२-नोटों की वृद्धि और महँगी-श्रीयुत कृष्ण सीताराम पेंढरकर १००-१०२

२३-पथिक (कविता)-"नवीन" ५०

२४-पिछड़नेवाले यों पिछड़े (कविता)-'स्नेही' ६३

२५-प्रण (कविता)-श्रीयुत गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ३६

२६-प्रचलित शिक्षाप्रणाली और हमारी आवश्यकता-श्रीयुत पीताम्बरदत्त पांडेय, बी० ए०, १४४-१५१

२७-फौजी कानून पर एक प्रसिद्ध वकील की सम्मति २६४-२६६

२८-भारतीय महिला समाज- ६५-६६

२९-भारत-गीत (कविता)-श्री० श्रीधर पाठक ७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
१-अप्रत्यक्ष आचरण और साधारण जीवन-लाला हरदयाल, एम० ए०,	१२६-१३०
२-अन्योक्ति-राष्ट्रीय पथिक	२४८
३-आदर्श देशभक्त-श्रीयुत कपिलदेव मालवीय, एम० ए०,	५१-६४
४-आशावाद-श्रीयुत हरिहरप्रसाद, बी० ए०,	८६-९३
५-'आन्तर्जातिक विधान'-श्रीयुत जगमोहन विकसित	१५२-१५८
६-आरम्भ (कविता)-श्रीयुत लक्ष्मण सिंह 'मयंक'	२३९-२४०
७-इतिहास का महत्व—श्रीयुत परशुराम मिरोत्रा	२५०-२६२
८-उत्तरा-मिलन (कविता)-'कृष्णाकर'	१३७-१३८
९-उत्तेजना (कविता)	१८१
१०-उद्गार (कविता)	२१२
११-उपालम्भ-श्रीकान्त कुसुमाकर	२८५
१२-कामना-श्रीयुत रामचन्द्र टंडन, बी० ए०,	२८१
१३-किनको वोट देने का अधिकार मिलना चाहिये-श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद जी, एम० ए० एम० एल०,	१७-२१
१४-किसान	२१८-२२३
१५-कोई सितमगर न कहे (कविता)	२३३
१६-जयध्वनि (कविता)-श्रीयुत लक्ष्मण सिंह 'मयंक'	२७२
१७-जापान और भारतवर्ष-मिस्टर एस० कामसका	८२-८४
तंत्रवाद-पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, बी० ए०,	१८२-१८६
१८-देश-प्रेम (कविता)-	२१
१९-देश की भलाई में (कविता)-श्रीयुत गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	६४
२०-देशभक्ति का अनुष्ठान-पं० विश्वम्भर नाथ शर्मा, कौशिक	२६३-२७२
२१-धिक्कार (कविता)-श्रीकान्त 'कुसुमाकर'	३३
२२-नोटों की वृद्धि और महँगी-श्रीयुत कृष्ण सीताराम पेंढरकर	१००-१०२
२३-पथिक (कविता)-"नवीन"	५०
२४-पिछड़नेवाले यों पिछड़े (कविता)-'सनेही'	६३
२५-प्रण (कविता)-श्रीयुत गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी	३६
२६-प्रचलित शिक्षाप्रणाली और हमारी आवश्यकता-श्रीयुत पीताम्बरदत्त पांडेय, बी० ए०,	१४४-१५१
२७-फौजी कानून पर एक प्रसिद्ध वकील की सम्मति	२६४-२६६
२८-भारतीय महिला समाज-	६५-६६
२९-भारत-गीत (कविता)-श्री० श्रीधर पाठक	७७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
३०-भारत-सरकार का खरीता	३१६-३२१
३१-भारतवर्ष में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न-ला० लाजपतराय	१९०-२०२
३२-भारत की आर्थिक स्वाधीनता-अध्यापक, बी० जी० काले (एम० ए०)	१३१-१३६
३३-भारतीय उद्योग-धंधों में भारतीय कला का स्थान-श्रीयुत अमरनाथ सिंह	१३८-१४३
३४-भारत और अफ़गानिस्तान में युद्ध	२७३-२७४
३५-मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट	३१२-३१५
३६-महारानी लक्ष्मीबाई-श्रीयुत दीपचन्द गोयलीय	२०८-२१२
३७-मज़दूरों के आन्दोलन-'सत्येन्द्र'	२-४
३८-मिश्र में नया युग-श्रीयुत जगमोहन लाल 'विकसित'	८५-८८
३९-मिला तो क्या न मिला तो क्या (कविता)-श्रीकान्त 'कुसुमाकर'	१०८
४०-मुक्तद्वार-वाणिज्य का परिणाम-श्रीयुत श्यामसुन्दर पाण्डेय	६४-६६
४१-यात्री (कविता)	१८९
४२-राजनैतिक विज्ञान और प्रजा-	
४३-राजविद्रोह की महौषधि	२९९-३०१
४४-राजनैतिक उन्नति के प्रारम्भिक सिद्धान्त-लाला लाजपत राय	२८२-२८५
४५-राजनैतिक क़ैदी और भारत-सरकार-श्रीयुत सत्यभक्त जी	२४१-२४५
४६-रामायण-रहस्य-श्रीयुत मन्नन द्विवेदी गजपुरी, बी० ए०,	२१३-२१७
४७-राष्ट्र-संघ-पं० काशीप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०	४१-४६
४८-राष्ट्र-संघ-माइकाउण्ट ग्रे	१४-१६
४९-लन्दन की चिट्ठी	११५-११७
५०-वर्तमान शिक्षा का आदर्श-श्रीयुत हरिहरस्वरूप शर्मा	३०१-३११
५१-वर्तमान स्थिति और हमारा कर्तव्य-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव बी० ए०, एल० एल० बी०	१०९-११५
५२-वीर-प्रतिज्ञा (कविता)-'विदग्ध'	४०
५३-शान्तिपाठ (कविता)—पं० हरिभाऊ उपाध्याय	२४८
५४-शिक्षा कार्य में सहयोग की आवश्यकता-मिस्टर जार्ज, एस० अरंडेल	७८-७९
५५-सम्पादकीय टिप्पणियाँ	२७६-२७९
५६-सहयोग समितियाँ या क्षेत्रन्यास बंक-पं० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र (बी० ए०)	२४६-२४९
५७-सम्पादकीय टिप्पणियां	२२४-२३१
५८-संसार-संकट	२३४-२३९
५९-सत्याग्रह (कविता)-श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव, बी० ए०, एल० एल० बी०,	२०२
६०-सम्पादकीय टिप्पणियां	१६५-१७४
६१-सम्पादकीय टिप्पणियां	१२०-१२४
६२-सम्वत्सर का स्वागत-श्रीमती तोरन देवी (लली)	१२५
६३-संसार-संकट-पं० कृष्णकान्त मालवीय	१०३-१०८
६४-सम्पादकीय टिप्पणियां	६९-७५
६५-समुद्रों की स्वतंत्रता-मि० जिराई फिसर	२२-३२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय	पृष्ठ से पृष्ठ तक
६६–सुधार-व्यवस्था में आर्थिक उत्तरदायित्व–श्रीयुत एन० एम० मजूमदार बी० ए०, बी० एस० सी०, बैरिस्टर-ऐट-ला	३४–४०
६७–स्वतंत्रते ! (कविता)–'सनेही'	१–२
६८–स्वभाग्य-निर्णय (कविता)–कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल० एल० बी०,	४६
६९–स्वभाग्य-निर्णय (कविता)–श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए०,	६६
७०–स्त्रियों के अधिकार–श्रीमती उमादेवी नेहरू	४७–५०
७१–सेवा-सदन–पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	१५६–१६४
७२–स्वतंत्र-विचार–पं० शारदा-प्रसाद दुबे, 'विशारद'	२८६–२९२
७३–सुयोग-कुयोग–"नवीन"	२९३
७४–मराठी इतिहास की शोध–पं० व्रजनाथ दुबे	२६४–२६८
७५–साउथबरा कमेटी	३२२–३३३
७६–सम्पादकीय टिप्पणियां	३३४–३३५
७७–हमारी शिल्पकला का ह्रास–पं० श्यामसुन्दर पाण्डेय	२०३–२०७
७८–हमें क्या करना है–श्रीयुत ईश्वर-शरण बी० ए०, एल० एल० बी०,	७६–८१
७९–हमारा पुस्तकालय	११७–११८
८०–हमारे नवीन सहयोगी	११९
८१–हिन्दुस्तान ! (कविता)–राष्ट्रीय 'पथिक'	१५८–१५९
८२–हीरे का हृदय (कविता)–पं० रामचरित उपाध्याय	२४५
८३–हृदयोद्गार (कविता)–श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त	२९२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप एक ऐसी सुविधा खो रहे हैं जिसका प्राप्त करना तुम्हारे हाथ में है।

क्या आपने कभी ऐसे दुःख का अनुभव किया है जो घर में अचानक असमय में किसी बीमारी के उठ खड़े होने पर पास में अच्छी दवा के न होने से उठाना पड़ता है। अब सुख संचारक कम्पनी मथुरा का "सुधासिन्धु" आपके पड़ोसी तक मंगाकर लाभ उठा रहे हैं, और कफ, खांसी, हैज़ा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, कै, दस्त आदि रोगों के आक्रमण से बेफ़िक्री की नींद सोते हैं। असहाय स्त्रियों के भरोसे पर भी बाल बच्चों को छोड़ कर आप मजे में परदेश जा सकते हैं, एक राजमहल से लेकर किसान के झोंपड़े तक में इसके रहने की जरूरत है, सुधासिन्धु एक सच्ची स्वादिष्ट और २७ वर्ष की परीक्षित दवा है। तब कम से कम १ शीशी घर में मंगाकर रखने के लिये हमारे पास आज ही पत्र लिखिये या अपने पास के एजेंट से खरीद लीजिये क्योंकि सुधासिन्धु भारतवर्ष में सब दवा बेचने वालों के पास मिलता है नकली दवाओं से सावधान रहिये।

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र, जंत्री मुफ्त मंगा देखिये।

मंगाने का पता—

सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा।

२००) रुपये दूंगा

बिना औषध के जन्मभर को रोग दूर।

स्वप्नदोष और शीघ्रपतन बड़े भयङ्कर रोग हैं। स्वप्नदोष नौजवानों के शरीर और दिमाग़ को मिट्टी कर देता है, याद्दाश्त का तो यह दुश्मन है। शीघ्रपतन गृहस्थों का घातक है, समय पर लज्जित होने से लोग मर जाना अच्छा समझते हैं, सन्तान भी नहीं होती। मुझे एक ऐसी क्रिया-विधि प्राप्त हुई है जिससे ये दोनों रोग जन्मभर के लिए जाते रहते हैं। यह कोई दवाई नहीं केवल एक साधन है इस पर भी यदि प्रयोग करने पर रोग दूर न हो तो २००) रु० दंड दूंगा जोकि आप अदालत द्वारा मुझसे वसूल कर सकते हैं। इसके बताने की फ़ीस राजाओं से १००) धनवानों से ५) सर्वसाधारण व विद्यार्थियों से २) रु०। डाक मह० ।) आना।

नोट—उक्त क्रिया पत्रद्वारा लिखकर बताई जायगी, साथ ही एक बूटी भी भेजी जायगी जिसका सेवन एक सप्ताह तक आवश्यक है।

प्रकाशक—

चन्द्रशेखर शर्मा धर्मोपदेशक,

(नं० २) पो० जलाली ज़ि० अलीगढ़।

बाटलीवाले की स्वदेशी।

असली कुनैन की १ ग्रेनवाली १०० गोलियों की शीशी, असली कुनैन की २ ग्रेनवाली २०० गोलियों की शीशी बुख़ार, मैलेरिया और ज़ुक़ाम के लिए, एग मिक्सचर, कमज़ोर और थके हुए लोगों के लिए ताकत की गोलियाँ दांतों की जड़ को मज़बूत करनेवाला दन्तमंजन, दाद और खुजली का मलहम, ये दवाएँ सब दवाफरोशों से या डाक्टर एच० एल० बाटलीवाला सन्स एन्ड० को० लिमिटेड वारली, १८ बम्बई से मिल सकती हैं।

Dr. H. L. Batliwalla Sons & Co. Ltd., Warli, 18 Bombay.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १७ संख्या १

मर्यादा ।

मासिक पत्रिका ।

जनवरी १९१९

भाग १७] जनवरी, सन् १९१९ [संख्या १

स्वतंत्रते !

[लेखक–'सनेही' ।]

सूना है यह हृत्-सिंहासन
तव-चरणों की चाह इसे,
तेरे बिना सनाथ करेगा
और कौन अब आह इसे।
उच्चासन आसीन कभी था
अब इसकी वह आन कहाँ,
पराधीनता के पञ्जे में
पड़कर रहती जान कहाँ॥

पाती भोजन बिना परिश्रम
भव्य भवन में रहती है,
फिर भी मैना मौन न रहकर
मैना मैना कहती है।
पशु-पक्षी भी व्याकुल होते
पड़ते हैं जब बन्धन में,
बिना अन्न जल पाये भी वे
रहते मुदित महा वन में॥

और एक हम अधम जीव हैं
रूढ़ि रस्सियों में जकड़े,
दाने दाने को बिललाते
फिर भी फिरते हैं अकड़े।
तन के दास दास हैं मन के
और दास हैं धन के भी;
पड़े हुए दासत्व-दशा में
नहीं कभी हम सनके भी॥

था मानसिक गुलामी का फल
सब प्रकार पर-दास हुए,
गये ह्रास की ओर हमीं
जगती में विविध विकास हुए;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षीण शक्तियां हुईं हमारी
परम दुखी हम दीन हुए;
मानवीय सद्भाव हमारे
सब वे तेरह तीन हुए॥
आओ आओ स्वतन्त्रते
हम दीनों को भी अपनाओ ;
गिरे हुए हैं हृदय हमारे
करके कृपा उठा जाओ।
ठिठुरे हैं दासत्व-शिशिर से
तुम यह ज्वाला दहकाओ।
आये गरमी फिर नस नस में
रक्त की धार बहा जाओ॥
एक बार भारत में जय-ध्वनि
फिर तुम अपनी होने दो;
जगमग ज्योति जगत में अपनी
जगने कोने कोने दो।
बहुत सहे दुख बिना तुम्हारे
करुणा अब हे अम्ब करो,
आओ आओ हमें उठाओ
क्षणभर भी न विलम्ब करो॥

मज़दूरों के आन्दोलन।

[लेखक—'सत्येन्द्र' ।]

सभ्यता के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी सतत स्मरणीय रहेगी।

यों तो यह परिवर्तनशील संसार कभी स्थिर नहीं रहता और कोई शताब्दी अथवा कोई दशक महत्वपूर्ण घटनाओं से खाली नहीं रहता, पर किसी २ काल में बहुत दिन से एकत्र होनेवाली विचार-तरंगें ऐसे प्रबल वेग से बहने लगती हैं, और सारे समाज-क्षेत्र में ऐसी फैल जाती हैं, एवं ऐतिहासिक घटना-क्रम से धीरे २ उत्पन्न होनेवाले धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आन्दोलन प्रौढ़त्व को पहुंचकर ऐसी हलचल पैदा कर देते हैं और मनुष्य के जीवन के प्रत्येक विभाग पर ऐसा प्रभाव डालते हैं कि मानो एक नवीन युग का ही प्रारम्भ हो आता है। संसार के इतिहास में ईस्वी सन् का पांचवां शतक, जिसने रोमन साम्राज्य का पतन देखा, बर्बर जर्मन जातियों को सारे यूरोप में बसते हुए देखा, ईसाई धर्म को दृढ़ नीवों पर स्थापित होते हुए देखा और नूतन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था का प्रारम्भ देखा, एक ऐसा ही काल था। सोलहवां शतक भी, जिसमें प्राचीन विद्या-कलाकौशल का पुनरुज्जीवन पूर्णता को पहुंच गया, जिसमें परम्परागत रोमन कैथलिक ईसाई-सम्प्रदाय के सिद्धान्त और कर्मकांड का संशोधन हुआ, जिसमें गत शताब्दी के अन्त में ढूंढ़े हुए अमेरिका, दक्षिण एफ्रिका, पूर्व एफ्रिका, भारतवर्ष, जावा, सुमात्रा आदि टापू यूरोप के व्यापार-स्थान और सम्पत्ति-स्रोत हो गये, जिसमें अधिकांश वर्तमान यूरोपियन राष्ट्रों का विकास हुआ, एक ऐसा ही शतक था। इंगलैंड के इतिहास में यह शतक इसलिए भी स्मरणीय है कि इसने उस आर्थिक विप्लव की पूर्णता देखी जो गत दो शताब्दियों से बराबर जारी था। ज़मीन्दारी शासन प्रथा (Feudalism) का ह्रास होते २ लगभग अन्त हो गया था। इस प्रथा में अनेक दोष थे। यह जनता को बड़े २ ज़मीन्दारों की दासता में रखती थी। पर इसमें कुछ गुण भी थे। इससे किसानों को यह आश्वासन था कि कुछ शर्तें पूरी करने पर, हम वास्तव में ज़मीन के भोक्ता बने रह सकते हैं, ज़मीन की पैदावार से अपना और अपने कुटुम्ब का पेट भर सकते हैं। पर जब अनेक कारणों से,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिनके अनुसंधान की यहां कोई आवश्यकता नहीं, ज़मींदारी शासन प्रथा (Feudalism) इङ्गलैंड० से उठ गई तब किसानों का यह आश्वासन भी जाता रहा । ज़मींदारों ने देखा कि खेती के लिए ज़मीन देने की अपेक्षा तो ज़मीन पर सैकड़ों हज़ारों भेड़ पाल कर ऊन बेंचना अधिक लाभकर है । बस, उन्होंने बेचारे किसानों को निकाल बाहर किया और उनके स्थान पर भेड़ रखना प्रारम्भ किया । सर टामस मूर ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ यूटोपिया (The Utopia) में इस समय लिखा था "आपके भेड़ जो पहिले बड़े सीधे और नम्र होते थे और अल्पभक्षी होते थे अब तो, मैंने सुना है, ऐसे बहुभक्षी और ऐसे विकराल हो गये हैं कि वह मनुष्यों को ही खा जाते हैं, निगल जाते हैं । वह तमाम खेतों को, घरों को और शहरों को नष्ट करके खा जाते हैं और पचा जाते हैं । देखिये न, जहां २ देश में अच्छी और महंगी ऊन पैदा होती है वहां २ आपके ज़मीन्दारों और कुछ महन्तों ने.........सारी ज़मीन में चरागाह बना डाले हैं, खेती के लिए ज़रा सी भी ज़मीन उन्होंने नहीं छोड़ी, वह घरों को गिरा देते हैं; वह नगरों को नष्ट कर देते हैं, वह कुछ भी तो नहीं छोड़ते; हां गिरजों को नहीं गिराते, पर गिरजों में भी भेड़ भर देते हैं" । इस प्रकार जैसा सर टामस मूर ने आगे चलकर कहा है, कुछ लोगों के लोभ और स्वार्थ ने बहुतों का सर्वनाश कर दिया । पार्लामेंट ने इस आपत्ति को रोकने का कई वार प्रयत्न किया, कई क़ानून बनाये । इतिहासकार मि० जान एंटनी फ्रूड ने इन प्रयत्नों पर बड़ा ज़ोर दिया है,* पर सच पूछिये तो पार्लामेंट में आपत्तिकारियों का इतना ज़ोर था कि उसने जी जान से कोशिश नहीं की । जो हो, इस अनर्थकारी आर्थिक क्रान्ति ने इङ्गलैंड में एक बड़े भारी सम्पत्तिहीन—भूमिहीन और धनहीन—वर्ग की सृष्टि की । सोलहवीं शताब्दी के पूर्व भी निर्धनता और सम्पत्तिहीनता विद्यमान थी । १३८० में निर्धनता और अत्याचार से दुखी होकर किसान लोगों ने, जानबाल के इस आशय से कि जब लाखों आदमी कष्ट झेल रहे हैं तब कुछ इनेगिने लोगों को अत्यन्त धनवान होने का अधिकार ही क्या है ? प्राचीन समय में, आदम और हव्वा के ज़माने में सम्पत्तिशाली कौन था ? इस आशय के गीत गाते हुए इङ्गलैंड के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक ऐसा विप्लव मचाया कि तत्कालीन अधिकारीवर्ग और सम्पत्तिशाली जन सन्न हो गये । सुप्रसिद्ध इतिहासकार पादरी स्टब्ज़ ने इस विप्लव की, अंग्रेज़ी इतिहास की अत्यन्त भयावह घटनाओं में, गणना की है । हां तो, सोलहवीं शताब्दी के पूर्व भी निर्धनता थी, पर ऐसी घोर सम्पत्तिहीनता न थी कि लाखों मनुष्यों के पास ज़रा सी भी ज़मीन न हो, दूसरे सप्ताह तक निर्वाह करने के लिए पूंजी न हो । दूसरे, अब बड़े २ ज़मीन्दार ऊन बेंच २ कर इतने धनी हो गये, पहिले खाली और बंजर पड़ी रहनेवाली ज़मीन पर अधिकार करके इतने सम्पत्तिशाली हो गये कि सम्पत्तिहीनों की दीनता और भी कष्टकर हो गई । एक ओर तो कुछ लोग पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक अमीर हो गये, दूसरी ओर बहुत से लोग पहिले की अपेक्षा कहीं अधिक ग़रीब हो गये । इस प्रकार जैसा मि० रैमज़े मैक्डानेल्ड ने कहा है, निर्धनता के इतिहास में एक नया युग प्रारम्भ हुआ ।*

यदि सोलहवीं शताब्दी महत्वपूर्ण समय है तो उन्नीसवीं शताब्दी भी सभ्यता के इतिहास में सतत स्मरणीय रहेगी । इसमें विज्ञान के सब

* फ्रूडलिखित इङ्गलैंड के इतिहास के प्रथम भाग का प्रथम और द्वितीय अध्याय देखिये ।

* मि० रैमज़े मैक्डानेल्ड के साम्यवाद (Socialism) का दूसरा अध्याय, ८०वां पृष्ठ देखिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभागों में—भौतिक विज्ञान (Physics) पदार्थ-विज्ञान (Chemistry) प्राणिशास्त्र (Biology) भूगर्भशास्त्र (Geology) आदि में—ऐसे २ अनुसन्धान हुए कि जैसे पहिले किसी ने स्वप्न में भी न सोचे होंगे। इस शताब्दी में जीवन के लिए आवश्यक एवं अनावश्यक वस्तुओं को बनाने की और स्थानान्तर में भेजने की ऐसी २ रीतियों का आविष्कार हुआ कि जैसी देव-दानवों की कथा रचनेवालों की कल्पना में भी न आई थीं। भाप और बिजली, रेल और जहाज़, पुतलीघर और व्यापारघर, तार टेलीफून और बेतार का तार, बैंकनोट और हुंडी—इस प्रकार के सिरनामों को लेकर इस शताब्दी के चमत्कारों का गुणगानेवालों ने ऐसे आवेशपूर्ण अध्याय लिखे हैं कि पढ़कर शेक्सपियर की यही उक्ति स्मरण आती है कि मनुष्य की शक्ति (अथवा योग्यता) अपरम्पार है।

वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी में धनिकों ने अपना मूलधन (Capital) लगाकर जहाज़ और रेल बनाने और चलानेवाली कम्पनियाँ खोलीं, सूत और ऊन, लकड़ी और लोहा तथा शीशा आदि की चीज़ें बनाने के लिए विशाल कारखाने और बेंचने के लिए विशाल दूकानें खोलीं। उन्होंने हज़ारों नहीं, लाखों मज़दूर रक्खे। उन्होंने लाखों नहीं, करोड़ों अरबों रुपयों का लाभ उठाया। यदि उनको मज़दूर न मिलते तो वह हाथ पर हाथ रक्खे बैठे रहते, कुछ भी न कर सकते। अर्थशास्त्री रिकार्डो ने कहा है कि सम्पत्ति की उत्पत्ति का कारण मज़दूरी है। विलियम टौमसन, गौडविन, हौल, ग्रे कौलकहाल आदि अंग्रेज़ साम्यवादी (Socialist) लेखकों और यूरोप में दृढ़तापूर्वक साम्यवाद आन्दोलन की जड़ जमानेवाले फ़ोरियर, सेंट साइमन, लूई ब्लांक, मार्क्स, लैसेल आदि ने भी ऋषियों और कवियों के से आवेश और भावुकता के साथ घोषणा की है कि सम्पत्ति उत्पन्न करनेवाले मज़दूर ही हैं और इसलिए सम्पत्ति पर उन्हीं का अधिकार है। रिकार्डो के समालोचकों और साम्यवाद के विरोधियों ने—मि० मैलक, मि० फ़ार्स्टर आदि ने—उत्तर दिया है कि सम्पत्ति की उत्पत्ति में मज़दूरी के सिवाय मूलधन, संगठन-शक्ति (Organising power) और प्रबन्ध-शक्ति (Managing power) का भी भाग है। समष्टिवादी (Communists) और साम्यवादी (Socialists) इसका प्रत्युत्तर इस प्रकार देते हैं कि बहुत ज़्यादा मूलधन रखने का किसी को अधिकार नहीं है और यथोचित शिक्षा एवं अवसर प्राप्त होने पर मज़दूर स्वयं संगठन और प्रबन्ध कर सकते हैं। ख़ैर, कोई भी समझदार आदमी इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि सम्पत्ति की उत्पत्ति में—अथवा इपष्टार्थ यों कहिये कि कारख़ानों से जो आर्थिक लाभ होता है उसकी सम्पत्ति में—बहुत बड़ा भाग मज़दूरों का है।

हाँ, तो मैं कह रहा था कि कल कारख़ानों के स्वामियों ने हज़ारों लाखों मज़दूरों की सहायता से ही करोड़ों अरबों रुपये पैदा किये, पर इस लगभग सारे रुपये के स्वामी वह स्वयम् ही बन बैठे—मज़दूरों को वेतन रूप में वह जितना कम दी सके उतना कम देने लगे। धनिकों का प्रयोजन अर्थलाभ था, स्वार्थ ही स्वार्थ था। मज़दूरों के स्वास्थ्य से उनको केवल इतना ही प्रयोजन था कि वह जैसे तैसे उनकी मज़दूरी करने योग्य बने रहें, मज़दूरों के आनन्द और सुख से उनका कोई प्रयोजन न था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में और उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जब औद्योगिक क्रान्ति (The Industrial Rovolution) हुई, अर्थात् जब घर पर हाथ से चीज़ें तैयार करने की प्रथा के बदले बड़े २ पुतलीघरों में मशीन से चीज़ें बनाने की प्रथा का प्रचार हुआ तब मज़दूर बिचारे ग़रीब तो थे ही, पर अशिक्षित भी थे और संगठन-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति से लगभग पूर्णतः रिक्त थे। बस कारख़ानों के धनी स्वार्थी स्वामियों ने उनको अपना ऐसा शिकार बनाया कि तत्कालीन अवस्था को पढ़कर आज भी रोमाञ्च होता है। सूर्योदय के पहिले काम शुरू होता था और सूर्यास्त के बाद समाप्त होता था। बहुत से कारख़ानों में और पृथ्वी के नीचे खानों में १६, १७, १८ घंटे तक काम लिया जाता था। युवक पुरुषों की बात जाने दीजिये, स्त्रियों से भी इतना ही काम लिया जाता था। वृद्ध पुरुषों और स्त्रियों से भी इतना अधिक काम लिया जाता था कि उनका जीवन नर्कमय जीवन हो जाता था। और तो जहां तहां रहे ६, ६ वर्ष के बच्चों से पन्द्रह २ सोलह २ घंटे काम लिया जाता था। सूर्योदय से पहिले वह पुतलीघरों और खानों में लाये जाते थे, सूर्यास्त के बहुत देर पश्चात् घर भेजे जाते थे। बीच में उनको केवल दो घंटे की छुट्टी. भोजन करने के लिए अर्थात् बहुत ही रूखी सूखी निकम्मी रोटी खाने के लिए, दी जाती थी। बच्चों को यदि नींद आने लगती तो कोड़े मार कर वह सचेत किये जाते थे। यदि वह खड़े २ थक जाते तो बहुधा उनको बैठने की भी इजाज़त नहीं दी जाती थी—कोड़े के ज़ोर से वह खड़े ही रक्खे जाते थे। यदि वह कार्य में ज़रा भी आलस्य करते तो तमाचे और चाबुक उनको फ़ौरन होश में ले आते। कारख़ानों और खानों में स्वच्छता और स्वास्थ्य का ज़रा भी ख़याल न रक्खा जाता था। वह रोग के घर थे, जेलख़ानों से भी ख़राब थे। मशीनों के पेचों की आकस्मिक चोटों से मज़दूरों को बचाने का भी अच्छा प्रबन्ध नहीं था। स्वामियों की दृष्टि में ऐसे प्रबन्ध की आवश्यकता ही क्या थी? यदि कोई मज़दूर बेकाम हो जाता या मर जाता तो बात ही क्या थी, उसके स्थान पर दूसरा रक्खा जा सकता था। कारख़ाने के काम में यदि मज़दूर मर जाता या बेकाम हो जाता तो उसके कुटुम्ब के भरण-पोषण की तनिक भी चिन्ता स्वामियों को न थी। यदि वह बीमार हो जाता तो उसकी देखभाल या भरण-पोषण का कोई प्रबन्ध न था। जब वह वृद्ध हो जाता और किसी तरह भी काम न कर सकता तो उसकी दुर्दशा का कोई ठिकाना न था। जन्म भर दिन रात के परिश्रम से उसने जिस विपुल धन-संचय में सहायता दी थी उसकी एक पाई भी उसे आवश्यकता के समय न मिल सकती थी। कोई आश्चर्य नहीं कि इस अवस्था में यूरोप के प्रत्येक देश में सैकड़ों बच्चों का प्राणांत हो गया, हज़ारों बच्चे और स्त्री-पुरुष सदा के लिए स्वास्थ्य से हाथ धो बैठे, लाखों ही बहुत साधारण भोजन-वस्त्र और निवासस्थान को छोड़कर जीवन की शेष सब सुखकर सामग्री से वंचित रहे, लगभग सब ही मज़दूर दूसरों के लिए सुख-सामग्री संचित करते ही करते और स्वयं सब भोग-विलास से कोसों दूर ही रहते २ क़ब्रों में समा गये।

यदि कोई कहे कि ये लोग कारख़ानों में मज़दूरी करने के लिए गये ही क्यों? तो उत्तर यह है कि यदि न जाते तो और करते ही क्या? खेती करने के लिए उनके पास ज़मीन न थी, ज़मीन्दारों को बहुत से मज़दूरों की आवश्यकता न थी, स्वयं छोटे २ पुराने ढंग के कारख़ाने स्थापित करना बिलकुल व्यर्थ था, क्योंकि ये कारख़ाने अत्यन्त सस्ता माल तैयार करनेवाली मशीनों के सामने एक दिन भी नहीं ठहर सकते थे। जब मशीनों का युग प्रारम्भ हुआ था तब ही मज़दूर लोग और छोटे २ कारख़ानेवाले लोग इस बात को ताड़ गये थे। उन्होंने कई पुतलीघर नष्ट भ्रष्ट कर डाले थे, कई बार दंगे-फ़साद किये थे। पर वह पुतलीघरों की स्थापना को रोक न सके थे। इसके विपरीत पुतलीघरों ने ही सस्ता माल तैयार करके उनके छोटे २ कारख़ानों को धूल में मिला दिया था। व्यापार में भी बहुत थोड़े ही आदमियों के लिए स्थान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था। व्यापार तो केवल प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होनेवाली या मनुष्य के द्वारा बनाई जानेवाली वस्तुओं का विनिमय मात्र है। जब तक चीज़ें बनाई न जायँगी तब तक उनका विनिमय कैसे हो सकता है? दूसरे जब बहुत सा माल तैयार करनेवाले पुतलीघर खड़े हो गये तब लाखों करोड़ों रुपयों का व्यापार करनेवाले महाजन भी उत्पन्न हो गये। अब बेचारे ग़रीब आदमियों को स्वतन्त्र व्यापार से अधिक लाभ उठाने का अवसर भी बहुत कम हो गया।

यदि कोई कहे कि माना ये ग़रीब लोग यूरोप में कुछ न कर सकते थे, पर अमेरिकन संयुक्त-राज्य, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि उपनिवेशों में जा सकते थे तो उत्तर यह है कि एक तो प्रत्येक मनुष्य के लिए जननी जन्मभूमि को छोड़कर विदेश में बसना सम्भव नहीं है, दूसरे जो लाखों आदमी वहां गये भी उन्होंने शीघ्र ही देखा कि मशीनों की जिस वर्तमान प्रथा ने यूरोप के मज़दूरों के जीवन को महा अंधकारमय कर दिया वही नई दुनियां के मज़दूरों के जीवन को भी उतना तो नहीं, पर बहुत कुछ अन्धकारमय कर रही है। समान अवस्था में समान कारणों के समान परिणाम होते हैं। यदि मज़दूर नई दुनियां में गये तो धनिक उद्योगी भी वहां जा पहुंचे। उन्होंने वैसे ही पुतलीघर बनाये और वैसे ही मज़दूर रक्खे जैसे यूरोप में। हां, नई दुनियां में आबादी कम थी, खाली ज़मीन बहुत ज़्यादा थी, खेती का काम बहुत था, इसलिए मज़दूरों की दशा उतनी ख़राब न हो सकी जितनी यूरोप में हो गई थी। पर अन्तर भी बहुत ज़्यादा न था। निर्धनता—सम्पत्तिहीनता—का राज्य यहां भी था वहां भी था। वहां बहुत ज़्यादा था, यहां कुछ कम था। जैसा मि० हेनरी जार्ज ने कहा है—नई दुनियां में भी जैसे २ वर्तमान प्रणाली की औद्योगिक "उन्नति" होती जाती है वैसे ही निर्धनता अधिक भयंकर रूप धारण करती जाती है।*

एक ओर मज़दूरों की तो यह दशा थी, दूसरी ओर धनी स्वामियों की क्या दशा थी? जैसा कि पहिले कहा जा चुका है, वह करोड़ों रुपया पैदा कर रहे थे, वह भोग-विलास में चूर थे, रुपये को पानी की तरह बहाते थे। अस्तु औद्योगिक क्रान्ति का परिणाम यह हुआ कि ग़रीब आदमी तो और भी ग़रीब हो गये, उनके अन्धकारमय जीवन और भी दुःखपूर्ण और अन्धकारमय हो गये और धनी पुरुष और भी अधिक धनी हो गये, उनके विलासी जीवन और भी अधिक विलासी हो गये। इस आकाश-पाताल के अन्तर से निर्धन मज़दूरों को अपनी निर्धनता और भी अधिक असहनीय मालूम होती है।

उदाहरणार्थ देखिये, इङ्गलैंड का धन सौ वर्ष में कितना बढ़ गया है:—

ईस्वीसन्	इङ्गलैंड का धन
१८१२	२,७३६,०००,००० पौंड†
१८५५	३,६६०,०००,००० "
१८६५	६,११३,०००,००० "
१८७५	८,५४८,०००,००० "
१८८५	१०,०३७,०००,००० "
१९११	१३,५००,०००,००० "

धन की वृद्धि करने में मज़दूरों का बहुत बड़ा भाग रहा, पर उसका भोग करने में उनका भाग बहुत कम रहा।

स्वभावतः इस स्थिति के परिणाम स्वरूप दो आन्दोलन उत्पन्न हुए। एक तो सहृदय

* मि० हेनरी जार्ज का ग्रन्थ "उन्नति और निर्धनता" Progress and Poverty देखिये, "समस्या" शीर्षक अध्याय, पृष्ठ १०।

† एक पौंड १५) के बराबर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुशिक्षित विद्वानों ने इस दुरवस्था के कारणों और परिणामों पर विचार करके सुधार के उपाय बतलाये और सर्वसाधारण में अपने सिद्धान्त फैलाने का प्रयत्न किया। दूसरी ओर स्वयं मज़दूरों ने अपनी दशा के सुधार के लिए प्रयत्न शुरू किये।

सब से पहिले इङ्गलैंड में ही औद्योगिक क्रान्ति (The Industrial Rovolution घरों में हाथ से चीज़ें बनाने के बदले पुतलीघरों में मशीन से चीज़ें बनाने की प्रथा की स्थापना) हुई थी और उसके परिणाम दृष्टिगोचर हुए थे। इसलिए सब से पहिले इङ्गलैंड में ही इस समस्या पर विचार हुआ।

गौडविन ने १७९३ ई० में "राजनैतिक न्याय" (The Political Justice) नामक पुस्तक प्रकाशित की और सिद्ध किया कि सम्पत्ति-विभाग की वर्तमान प्रणाली ही समाज के सब दुःखों की जड़ है*। उन्होंने उपदेश दिया कि सारी सम्पत्ति का समान विभाग कर देना चाहिये, जिसको जितनी आवश्यकता हो उसको उतना मिलना चाहिये। पुस्तक बड़े आवेश में लिखी हुई है, पर तत्कालीन लोकमत पर इसका विशेष प्रभाव न पड़ा।

१८०५ ई० में डाक्टर चार्ल्स हौल ने "यूरोपियन राज्यों में जनता पर सभ्यता का प्रभाव" नामक पुस्तक प्रकाशित की। हौल डाक्टर थे और उनको ऐसे हज़ारों निर्धन रोगियों को देखने का अवसर मिला था जिनके स्वास्थ्य दरिद्रता के कारण ही नष्ट हो गये थे और जो दरिद्रता के कारण ही पुनः स्वस्थ होने में असमर्थ थे। दयार्द्रचित्त ने उनको इस दरिद्रता के कारणों पर और इसे दूर करने के उपायों पर विचार करने की प्रेरणा की। उन्होंने निर्धारित किया कि हमारी वर्तमान सभ्यता का परिणाम यह हुआ है कि जिसके पास धन है वह वास्तव में ग़रीबों की मज़दूरी का मालिक है और इसीसे असमानता और दुरवस्था उत्पन्न होती है। इसलिए ज़मीन को बहुत कुछ बराबर २ बाँट देना चाहिये। इस पुस्तक का बहुतों पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

१८२४ ई० में विलियम टामसन ने अपनी सुप्रसिद्ध 'समीक्षा' प्रकाशित की और कहा कि मज़दूरों को स्वतंत्रता मिलनी चाहिये, अपनी मज़दूरी से वह जो कुछ पैदा करें उस सब पर उनका अधिकार होना चाहिये और पैदावार का अपनी इच्छानुसार विनिमय करने का अधिकार होना चाहिये। सम्पत्ति का वर्तमान विभाग सर्वथा अनुचित है। मज़दूर मेहनत करते हैं, उस मेहनत से जो चीज़ें बनें उनपर मज़दूरों का ही अधिकार है; और किसी का नहीं।

१८२५ में ग्रे ने भी ओजस्वी भाषा में घोषणा की कि "सारी सम्पत्ति का आधार मज़दूरी है और यही एक न्यायसंगत आधार है।" वर्तमान प्रतिस्पर्द्धा मूलक पद्धति (The Competitive system) अत्यन्त निन्दनीय है। इसके स्थान पर समष्टि मूलक समाज (Communistic Society) की स्थापना करनी चाहिये, जिसमें सब लोग प्रेमपूर्वक रहें और अपनी २ आवश्यकता के अनुसार सम्पत्ति का भोग करें।

१८२५ में टामस हाज्सकिन ने अपनी ग्रंथमाला का पहिला ग्रन्थ प्रकाशित किया और वर्तमान आर्थिक व्यवस्था की तीक्ष्ण समालोचना प्रारम्भ की। "प्रकृति का नियम है कि परिश्रमी को धन मिले और आलसी को कुछ न मिले, पर हमारे देश का नियम है कि आलसी को धन मिले और परिश्रमी के पास कुछ न

---

* समष्टिवाद (Communism) और साम्यवाद (Secialism) के साहित्य के संक्षिप्त इतिहास के लिए डा० एल्टन मेजर की "मज़दूरी की सारी पैदावार पर हक़" नामक पुस्तक और उसके अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ प्रोफ़ेसर फ़ाक्सवेल-द्वारा लिखित उसकी अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण भूमिका देखिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने पावे। हमने सम्पत्ति के प्राकृतिक नियम की अवहेलना की है यही हमारी अधिकांश सामाजिक विपत्तियों का कारण है"।

१८३६ में जान फ्रान्सिस ब्रे ने "मज़दूरों की शिकायतें और मज़दूरों के उपाय" नामक पुस्तक में प्रतिपादित किया कि कारख़ानों के स्वामी जो ढेर के ढेर रुपये जमा कर लेते हैं वह एक प्रकार से लूट का माल है—मज़दूरों के हक़ को लूट कर ही तो यह रुपया जमा किया गया है।

इस प्रकार एक ओर तो सम्पत्ति के विभाग पर विचार हो रहा था, दूसरी ओर मज़दूर लोग अपनी तत्कालिक आपदाएँ दूर करने के उपाय कर रहे थे। उन्होंने अपनी समितियां बनाईं और इस प्रकार के मन्तव्य पास करना प्रारम्भ किया कि हम प्रति दिन इतने घंटे से अधिक काम न करेंगे, हमारे स्त्री बच्चे इतने घंटे से अधिक काम न करेंगे, हम इतने दिन की छुट्टी के अधिकारी हैं; हम इतने से कम वेतन न लेंगे; यदि स्वामी लोग हमारी बात न मानेंगे तो हम हड़ताल कर देंगे, हम निष्ठुर व्यवहार सहन न करेंगे; यदि स्वामी लोग हमको बर्ख़ास्त करके अन्य मज़दूरों को नौकर रखने की चेष्टा करेंगे तो हम उनको ऐसा न करने देंगे; जब तक हमारी शर्तें स्वीकार न की जावगी तब तक हम पुतलीघरों में काम न होने देंगे, इत्यादि २ एकता और संगठन की महिमा अपरम्पार है। मज़दूरों को अपने प्रयत्नों में कुछ सफलता होने लगी। तब धनी स्वामियों ने पार्लमेंट की शरण ली। पार्लमेंट में मज़दूरों के कोई प्रतिनिधि न थे, प्रतिनिधियों के निर्वाचन में मज़दूरों को सम्मति देने का भी अधिकार न था; वहां तो धनिकों के ही अधिकांश प्रतिनिधि बैठते थे। बस १७६६ में पार्लमेंट ने एक क़ानून (The Combination Act) पास कर दिया कि मज़दूरों की यह समितियां और सब प्रयत्न क़ानून के ख़िलाफ़ हैं; जो कोई इन समितियों में आवेगा उसको कठोर दंड दिया जायगा; जो कोई इन समितियों को आर्थिक सहायता देगा उसको भी कठोर दंड दिया जायगा। प्रकाश-रूप से समितियां तोड़ दी गईं, पर उनके स्थान पर बीसों गुप्त समितियां बन गईं। मज़दूरों के बहुत से नेताओं को कठोर दंड दिये गये, पर उनके स्थान पर अन्य बहुत से नेता प्रकट हो गये। जब अधिकारीवर्ग ने तीव्र दमननीति का अवलम्बन किया तब मज़दूरों ने और उनके सहायकों ने षड्यंत्र रचे, दंगे-फ़साद किये और अपने बहुतेरे विरोधियों की हत्याएँ कर डालीं। असन्तोष की अग्नि चारों ओर धधकने लगी। औद्योगिक क्रान्ति (The Industrial Revolulion) के पश्चात् ही स्वभावतः नगरों की जनसंख्या बहुत बढ़ गई थी, उद्योग के केन्द्रों पर नये नगर बन गये थे। नगरों में रहने से मज़दूरों की बुद्धि तीव्र हो रही थी, उनके मस्तिष्क में नये विचार प्रवेश कर रहे थे, उनके हृदय में नई तरंगें उठ रही थीं; उनमें शिक्षा फैल रही थी, टामसपेन, हौल, टामसन आदि के ग्रन्थ उनके दृष्टिगोचर हो रहे थे। कोरी निर्धनता से बड़ी २ हलचलें नहीं उठतीं; क्रांतियां (Revolutions) नहीं होतीं। पर जब निर्धनता का संयोग शिक्षा और नये विचारों से—नई उमंगों और नये आदर्शों से—हो जाता है तब बड़ी २ हलचलें, बड़े २ आन्दोलन अनिवार्य हो जाते हैं। यदि इनका संयोग दूसरी ओर से दमन-नीति से हो जावे तो क्रान्ति अनिवार्य है। यह सोचकर पार्लमेंट ने अपनी नीति बदल दी। १८२५ में मज़दूर-समितियों (Trade Unions) को क़ानून-विरुद्ध बतानेवाला क़ानून (The Combination Act) रद्द कर दिया गया। स्वयं पार्लमेंट ने बहुत आन्दोलन के पश्चात्, धनी स्वामियों के बहुत विरोध करने पर भी छोटे बच्चों को काम से रोक दिया, मज़दूरी के घंटे कम कर दिये, पुतलीघरों से स्वास्थ्य का कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्ध कर दिया । इन क़ानूनों के सम्बन्ध में लार्ड शेफ्ट्सबरी का नाम स्मरणीय है ।

पार्लामेंट ने कुछ शिकायतें दूर कर दीं, पर बहुतसी शिकायतें ज्यों की त्यों बनी रहीं । असन्तोष और आन्दोलन से जो कटुता, जो मनोमालिन्य उत्पन्न हुआ था वह पूर्ववत् ही स्थिर रहा। अब मज़दूरों के मन में नई आकांक्षाएँ--राजनैतिक अधिकार पाने की आकांक्षाएँ—जागृत हो चुकी थीं। वह अनुभव करते थे कि दूसरे लोगों को पार्लामेंट के निर्वाचन में मत देने का और पार्लामेंट में बैठने का जितना स्वत्व है उतना हमारा भी है, उन्होंने अनुभव किया कि जब तक हमें राजनैतिक स्वत्व न मिलेंगे तब तक हमारे दुख दूर न होंगे। राजनैतिक अधिकार मिलने पर तो हम स्वयं ही अपनी शिकायतें दूर कर लेंगे।

अब मज़दूरों के आन्दोलन में एक नया युग आरम्भ हुआ । पहिले उसका उद्देश्य केवल आर्थिक था, अब उसका उद्देश्य राजनैतिक भी हो गया ।

इङ्गलैंड में जिस प्रकार के विचारों और आन्दोलनों का उदय हुआ था वैसे ही विचारों और आन्दोलनों का उदय फ्रांस, जर्मनी, इटली, बेल्जियम आदि अन्य यूरोपियन देशों में हुआ। प्रत्येक देश की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थिति एक समान नहीं थी; इसलिए विचारों और आन्दोलन का रूप भी एक समान न था। फ़ोरियर और सेन्ट साइमन ने गौडविन हौल आदि के से ही सिद्धान्त प्रतिपादित किये और संसार का पुनरुद्धार करने की चेष्टा की। इन्होंने, और इङ्गलैंड के सुविख्यात राबर्ट-ओवेन ने कुछ आदर्श समाजें बनाईं जिनमें लोग समानता, आनन्द और प्रेम के साथ रहते थे। उनमें न तो कोई अमीर होने को था, न कोई ग़रीब। एमेरिका में भी इन सिद्धान्तों के आधार पर कई गाँव बसाये गये । ऐसी समाजों के संस्थापकों की धारणा थी कि हमारी आदर्श समाज पर सारा संसार मोहित हो जायगा और अपना सुधार कर डालेगा। पर कुछ वर्षों के बाद उनकी आँखें खुल गईं। उन्होंने देखा न तो संसार मोहित हुआ और न संसार का पुनरुद्धार ही हुआ। यद्यपि व्यवहार-क्षेत्र में उनके उपाय सर्वथा असम्भव और निष्फल प्रमाणित हुए और शीघ्र ही त्याग दिये गये, तथापि आदर्श समाज-संस्थापन-वादियों ने लोकमत को खूब शिक्षित किया और मज़दूरों के आन्दोलन को आर्थिक और राजनैतिक के साथ २ सामाजिक भी बना दिया।

अब इस बात की आवश्यकता थी कि ये नये विचार मज़दूरों के मन में ऐसी दृढ़तापूर्वक स्थापित कर दिये जायँ कि वह उनको कार्य में परिणत करने का दृढ़ संकल्प कर लें, एवं अन्य वर्गों के जितने हो सकें उतने लोगों को इन विचारों की सत्यता में विश्वास करा दिया जाय, एक सुनिश्चित कार्यक्रम स्थिर कर लिया जाय, जिसके अनुसार सब लोग मिल कर आन्दोलन करें, अधिकार प्राप्त करें और सुधार करें। यह महान् कार्य फ्रांस में लुई ब्लांक ने, जर्मनी में कार्ल मार्क्स लैसेल और एंजेल्स ने और इङ्गलैंड में चार्टिस्ट आन्दोलन के नेताओं तथा उनके उत्तराधिकारियों ने किया। इन लोगों ने सिद्ध किया कि ज़मीन पर किसी व्यक्ति विशेष का या किसी वर्ग विशेष का, जैसे ज़मीन्दार आदि का, कोई अधिकार नहीं है; सारी ज़मीन राज्य को—पूर्ण जनसत्तात्मक राज्य को (Completely democratic state) को—अपने हाथ में ले लेनी चाहिये और लोगों को बहुत कुछ सम भागों में जोतने बोने और भोगने को दे देनी चाहिये । साम्यवादी (Socialists) यह नहीं कहते कि व्यक्तिगत भूमि-सम्पत्ति (Private property in land) की प्रथा उठा दी जाय, वह तो कहते हैं कि इने गिने लोगों के हाथ से लेकर सब लोगों के हाथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में देने से व्यक्ति-सम्पत्ति का आधार अधिक दृढ़ और न्यायसंगत हो जायगा, वर्तमान प्रथा अधिकांश जनों को, मज़दूर इत्यादि को, भूमि-सम्पत्ति के भोग से वास्तव में वंचित रखती है और एक निकम्मे, आलसी, ज़मीन्दारवर्ग को उसके वास्तव भोग का एकमात्र स्वत्व देती है। यह अन्याय है, अत्याचार है। यदि कोई पूंछे कि क्या आप ज़मीन्दारों की जायदाद ज़ब्त कर लेंगे? तो कुछ साम्यवादी कहते हैं कि हां ज़ब्त कर लेंगे, क्योंकि यह ज़ब्ती समाज के लिए हितकर होगी, इसलिए न्यायसंगत होगी, और कुछ साम्यवादी कहते हैं कि हम ज़मीन्दारों से ज़मीन तो ले ही लेंगे, पर बदले में कुछ रुपया उनको दे देंगे। भूमि का राष्ट्रीकरण (Land nationalisation)—भूमि को राष्ट्र की सम्पत्ति बनाना—साम्यवादियों का आदर्श है। जब तक इस आदर्श के कार्य में परिणत होने में देर है तब तक साम्यवादी यही आन्दोलन करते हैं कि ज़मीन्दारों पर खूब कर लगाये जायँ। उनका यह आन्दोलन गत पचास वर्षों से अधिकाधिक सफल हो रहा है।

यह तो हुई ज़मीन की बात, जहाज़ों और रेलों के विषय में भी उनकी नीति राष्ट्रीकरण (Nationalisation) है। जब ये चीज़ें राष्ट्र की सम्पत्ति हो जायँगी तब उनके किराये भी बहुत कम हो जायँगे और इनसे जो कुछ आय होगी वह व्यक्तियों या वर्गों की जेब में न जावेगी किन्तु सारे राष्ट्र के ख़ज़ाने में जायगी। यह नीति अब कार्य में परिणत हो रही है। अनेक रेलें राष्ट्रीय हो रही हैं। भारतवर्ष की अनेक राष्ट्रीय रेलों की ओर एक बार, १९०६ में, भारत-सचिव लार्ड मार्ले ने साम्यवाद के उदाहरण की भांति संकेत किया था। यूरोप के अनेक नगरों में म्युनिसिपैलिटियां (नगर-समितियां) ट्राम और टेलीफून चला रही हैं। यहां यह कह देना आवश्यक है कि कार्ल मार्क्स के अनुयायी साम्यवादी पहिले राष्ट्रीकरण नीति में सर्वोच्च केन्द्रीय शासन (The Central Government) की ओर ही ध्यान देते थे, पर अब वह म्यूनीसिपिल (नगर) शासन के महत्व को भी स्वीकार करते हैं। अब वह ट्राम, टेलीफून आदि बहुत सी चीज़ें लोकमत-द्वारा निर्वाचित, पूर्ण जनसत्तात्मक म्यूनीसिपैलिटियों के हाथ में दे देना चाहते हैं। यही नहीं किन्तु तहसीली ग्रामों में भी वह स्वायत्त-शासन-समितियां बना कर उनको बहुत से अधिकार देना चाहते हैं।

पुतलीघरों और महाजनी कोठियों के विषय में भी उनकी नीति वही राष्ट्रीकरण है, अर्थात् उनको व्यक्तियों, कम्पनियों, वर्गों के हाथ से लेकर राष्ट्र की सम्पत्ति कर लेना चाहिये। जैसा कि ऊपर दिखला चुके हैं, इनसे होनेवाला लगभग पूरा ही लाभ कुछ इनेगिने लोगों की जेब में जाता है।

मि० बूथ, मि० राउन्ट्री, मि० हेनरी जार्ज आदि अनेक समाज-सेवकों ने मज़दूरों के निवास-स्थानों में घर २ जाकर उनकी आय, भोजन, वस्त्र, मकान, स्वच्छता, स्वास्थ्य, शिक्षा, सदाचार, पारस्परिक सम्बन्ध आदि के विषय में जो बातें मालूम की हैं और प्रकाशित की हैं उनको पढ़ने पर यही प्रश्न उठता है कि हम सभ्यता के युग में रहते हैं या असभ्यता के युग में? जिस आर्थिक व्यवस्था का यह परिणाम हुआ उसको न्यायसंगत कौन कहेगा? कभी २ मज़दूरों को काम नहीं मिलता। इस सम्बन्ध के जो अङ्क (Statistics) एकत्र किये गये हैं उनसे पता लगता है कि मज़दूरी से निर्वाह करनेवाले लोगों का $\frac{1}{8}$ भाग लगभग सदा काम से ख़ाली रहता है।

१९वीं शताब्दी की उस आर्थिक क्रान्ति के पश्चात्, जिसका वर्णन पहिले कर चुके हैं, इङ्गलैंड में और तत्पश्चात् यूरोप के अन्य देशों में दीन दुखियों के निर्वाह का प्रबन्ध करने के लिए अनेक क़ानून बने हैं। पर इस प्रकार के प्रबन्ध से एक तो मानहानि सी होती है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे उदर-पोषण के अलावा और कुछ नहीं होता। इस प्रकार के उपायों से स्थायी सुधार नहीं हो सकता।

राष्ट्रीकरण के पश्चात् पुतलीघरों और कोठियों का प्रबन्ध कैसे होगा ? इस प्रश्न के उत्तर में कुछ साम्यवादी तो यह कहते हैं कि मज़दूर लोग स्वयं अपने अफ़सरों का निर्वाचन कर लेंगे—कारख़ानों में जनसत्ता का दौरदौरा रहेगा, और कुछ साम्यवादी यह कहते हैं कि सरकार अफ़सर नियुक्त कर देगी और जनसत्तात्मक सरकार होने के कारण सरकारी नियुक्ति आक्षेपणीय न होगी।

इस वर्णन से स्पष्ट है कि साम्यवादी राज्य के—सरकार के—क़ायल हैं। वह सरकार को पूर्णतः जनसत्तात्मक बनाना चाहते हैं, पर सरकार को मिटाना नहीं चाहते; वरन् वह तो उसे नये २ अज्ञातपूर्व स्वत्व और अधिकार देना चाहते हैं। पर पाश्चात्य देशों में एक दल ऐसा भी है जो शासन-प्रथा को ही उड़ा देना चाहता है, जो मनुष्य-स्वभाव की शुद्धता और पवित्रता में इतना विश्वास करता है कि उसे राज्य के बन्धन से छुड़ाकर स्वतन्त्र छोड़ देना चाहता है। इस दल को अराजक (Anarchist) दल कहते हैं। जो अधिकार साम्यवादी लोग राज्य को देते हैं वह अधिकार अराजक लोग समस्त जनता पर छोड़ देते हैं। पहिले इस मत का मज़दूरों में काफ़ी ज़ोर था, अराजकों ने मज़दूर-समितियों पर अधिकार जमाने के लिए साम्यवादियों से बड़े झगड़े किये थे। पर अब इस दल के अनुयायी बहुत कम हैं। एक और आन्दोलन है, जिसमें कुछ तो साम्यवाद के (Socialism) के और कुछ अराजकता (Anarchism) के तत्व सम्मिलित हैं—जो केन्द्रीय शासन (Central government) नहीं चाहता, पर जो मनुष्यों को नितान्त शासन-रहित भी नहीं करना चाहता—जो बहुतसी छोटी बड़ी समितियां (Communes) स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों के आधार पर स्थापित करे उनको ही थोड़े बहुत शासन अधिकार देने के पक्ष में है। इस आन्दोलन के पक्षपातियों को समष्टिवादी (Communists) कहते हैं। पहिले बहुत से लोग इसके पक्षपाती थे, अब भी अराजकता कुछ हैं। पर प्रायः विचारशील पुरुष इसको भी अराजकता के समान व्यवहार-विपरीत और असम्भव मानते हैं। अस्तु, यूरोप के अधिकांश मज़दूर अब न तो अराजक (Anarchists) हैं और न समष्टिवादी (Communists) हैं, किन्तु साम्यवादी (Socialists) हैं। अपने इन विचारों को कार्य में किस प्रकार परिणत करें ? राबर्ट ओवेन, सेन्ट साइमन आदि की आदर्श समाज-संस्थापन-नीति निष्फल सिद्ध हो चुकी। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ और मध्य काल के साम्यवादी कहते थे कि हम बलवा करके राज्य पर अपना अधिकार जमा लेंगे और अपने सिद्धान्तों के अनुसार सारे समाज का पुनरुद्धार कर डालेंगे। इङ्गलेंड में और विशेषकर फ्रान्स और जर्मनी में १८४८ में इस प्रकार कुछ प्रयत्न किये गये, पर निष्फल हुए। क्रांति से शासन का रूप भले ही बदला जा सके, पर परम्परागत सामाजिक और औद्योगिक संस्थाओं में स्थायी परिवर्तन लोकमत के शनैः शनैः परिवर्तन और आदर्श की ओर शनैः शनैः पग बढ़ाने से ही हो सकते हैं। शनैः शनैः से यह अभिप्राय नहीं कि आप शताब्दियां लगा दीजिये, अभिप्राय यह है कि सारा परिवर्तन एक बार ही नहीं हो सकता, थोड़ा २ ही हो सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग में चार्ल्स डारविन ने "जन्तुओं की उत्पत्ति" (The Origin of Species) और "मनुष्य की उत्पत्ति" (The Descent of Man) में यह सिद्ध किया कि सारी बनस्पति, सारे जन्तु, यहां तक कि मनुष्य भी हज़ारों वर्ष के क्रमिक विकास से वर्तमान अवस्था तक पहुंचे हैं। सर च्यार्ल्स लायेल आदि ने सिद्ध किया कि पृथ्वी ने भी क्रमिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास (Evolution) के बाद ही वर्तमान रूप धारण किया है। सर हेनरीमेन, वाइज़मेन, सैविग्नी, वेस्टरमार्क मैक्समुलर, हर्बर्ट स्पेन्सर आदि ने शीघ्र ही सिद्ध कर दिया कि मनुष्य की वर्तमान सामाजिक संस्थाएँ, धर्म, भाषा, साहित्य, क़ानून सब ही धीरे २ विकसित हुए हैं। इस विचार-प्रणाली को ऐतिहासिक प्रणाली (The Historic Method) कहते हैं। देखते २ ही ऐतिहासिक प्रणाली ने—सब बातों को क्रमिक विकास का परिणाम सिद्ध करनेवाली प्रणाली ने—मनुष्य से सम्बन्ध रखनेवाले सब शास्त्रों और विचारों पर अधिकार जमा लिया। क्रांतिवादी साम्यवाद (Revolutionary Socialism) का प्रभाव कम हो गया और विकासवादी साम्यवाद (Evolutionary Socialism)—जो एक के बाद दूसरा परिवर्तन करते २ आदर्श तक पहुंचना चाहता है ऐसे साम्यवाद—का युग प्रारम्भ हुआ। मार्क्स ने घोषणा की—समाज का विकास इस ढंग से स्वयं ही हो रहा है कि अब साम्यवाद का युग आनेवाला है। मार्क्स की घोषणा सर्वथा सत्य न निकली तथापि साम्यवाद की ओर धीरे २ संसार अवश्य चलने लगा।

अस्तु, अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए मज़दूरों ने देश देश में, तत्पश्चात् नगर २ में, प्रत्येक व्यवसाय में, समितियां बनाईं। इङ्गलैंड में इनको मज़दूर-समितियां (Trade Unions) कहते हैं। इन्होंने राजनैतिक स्वत्वों के लिए घोर आन्दोलन प्रारम्भ किया। धीरे २ इनको सफलता हुई। १८६७, १८८४ और १९१७ के क़ानूनों से सब मज़दूरों को अन्त में निर्वाचन में सम्मति देने का स्वत्व मिल गया। सारे इङ्गलैंड की समितियां धीरे २ एक दूसरे से सम्बन्ध स्थिर कर चुकी थीं और सुसंगठित हो चुकी थीं। १८९३ में समितियों के उद्योग से मि० केरहार्डी पार्लामेंट के सदस्य निर्वाचित हुए। धीरे २ पार्लामेंट में मज़दूरों के प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ने लगी। गत पार्लामेंट में उनकी संख्या लगभग ४० थी। १९१८ के गत निर्वाचन में मज़दूरों के कोई ३०० प्रतिनिधि उम्मेदवार (Candidates) थे। निर्वाचितों की संख्या जितनी आशा थी उतनी न रही पर पहिले से अधिक ही रही। जब तक आदर्श तक न पहुंचें तब तक समितियां मज़दूरों की दशा सुधारने के हर प्रकार के प्रयत्न ही किया करती हैं। उन्होंने मज़दूरी के घंटे कम करा लिये हैं, वेतन बढ़वा लिये हैं, स्वास्थ्य के प्रबन्ध करा लिये हैं, बुढ़ापे और बेकारी के समय के लिए भी कुछ प्रबन्ध करा लिये हैं, शिक्षा के लिए भी प्रयत्न किये हैं। उन्होंने बीसों हड़तालें की हैं, सैकड़ों हड़तालों की धमकियां दी हैं और स्वामियों तथा पार्लामेंट से अपनी बहुतसी शर्तें मंज़ूर करा ली हैं।

यूरोप के अन्य देशों में भी मज़दूरों ने समितियां बनाकर ये उद्देश्य बहुत कुछ सिद्ध किये हैं और राजनीति में भाग लिया है। यूरोप ही में क्यों, संसार भर में यह आन्दोलन व्याप्त है। १९११ में यह अवस्था थी:—

यूरोप।

देश का नाम	समितियों की सदस्य-संख्या	पार्लामेंट में उनके मेम्बरों की संख्या
इङ्गलैंड	३,०१०,३४६	४०
जर्मनी	३,०४२,२०३	११०
फ्रांस	१,०२९,२३८	७६
आस्ट्रिया	५०६,९०५	८२
बेल्जियम	१३८,९२६	३४
बौस्निया	६,२६६	...
बल्गेरिया	१८,७५३	१
क्रोशिया	६,८०५	...
हंगरी	९५,१८०	...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेनमार्क	१२३,८०४	२४
फिनलैंड	१६.६४०	८९
ग्रीस	६,०००	...
हालैंड	१४३,८५०	७
इटली	८४३,८११	४५
नार्वे	५२,७३५	११
स्पेन	१२१,१८०	१
स्वीडन	१२१,१८०	६५
स्विट्ज़लैंड	९३,७६७	१६
टर्की	५०,०००	...
एमेरिका।		
संयुक्तराज्य	१,७१०,७३३	१
आर्जन्टाइन	२२,४५७	२
ब्रिटिश उपनिवेश।		
कनाडा	१३३,१३२	
आस्ट्रेलिया	२३४,२९३	
न्यूज़ीलैंड	५४,५१९	

फ्रांस, आदि अनेक देशों में हड़तालों की नीति बहुत लोकप्रिय है। बहुत से नेता तो उपदेश करते रहे हैं कि जब किसी पुतलीघर के स्वामी से भी झगड़ा हो तो तुरन्त ही समस्त देश के मज़दूरों—रेल, जहाज़, खान, दुकान, कारख़ाने के मज़दूरों—को हड़ताल करके स्वामियों को, समाज को और सरकार को होश में लाना चाहिये। ये लोग समवायवादी (Syndicalists) कहलाते हैं और इनके आदर्श-समाज में राष्ट्र की अपेक्षा समवायों (Syndics) का प्रभाव अधिक रखने की व्यवस्था है। सब मज़दूर एक दल के नहीं हैं, जीते जागते आन्दोलनों में भेद, प्रभेद अवश्य ही होते हैं, पर उन सब की आकांक्षाएँ एक दूसरे से बहुत मिलती जुलती हैं।

मज़दूरों की समितियों का मुक़ाबिला करने के लिए स्वामियों ने अपनी समितियां बनाई हैं। इससे दोनों का संग्राम और भी कटु और मनोमालिन्यपूर्ण हो गया है।

यों तो प्रत्येक देश की मज़दूर-संस्थाएं स्वतन्त्र हैं, पर स्वभावतः सब ही देशों के समान दुःखभागी और समान आकांक्षापूर्ण मज़दूरों में परस्पर घनिष्ठ सहानुभूति है। यदि सब देशों के मज़दूर मिलकर आन्दोलन करें तो उनको सफलता अधिक शीघ्रता और अधिक सुगमतापूर्वक होगी। इसीसे कोई १८६० से मज़दूर-आन्दोलन अन्तर्राष्ट्रीय रहा है। १८४७ में ही मार्क्स ने घोषणा की थी—"सब देशों के मज़दूरो, एक हो जाओ"। १८६२ में मज़दूरों की अन्तर्राष्ट्रीय समिति (The International Working Men's Association की स्थापना हुई। १८६४ में मार्क्स ने इसकी नियमावली बना दी। १८७३ तक बराबर भिन्न भिन्न देशों में समिति के अधिवेशन हुए। पर आन्तरिक फूट के कारण १८७३ से १८९१ तक कोई अधिवेशन न हो सका। १८९१ से १९१४ के युद्ध के समय तक बराबर अधिवेशन होते रहे।

१९१७ में रूस में मज़दूरों, सिपाहियों और किसानों ने राज्यक्रांति की। १९१८ में आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी के बहुत से स्थानों में मज़दूरों और किसानों ने अपनी सत्ता सी स्थापित की। ये लोग अनेक दलों के साम्यवादी हैं। रूस, जर्मनी और आस्ट्रिया हंगरी के ये साम्यवादी आन्दोलन के अन्त में क्या परिणाम उत्पन्न करेंगे यह कोई नहीं कह सकता। इस अत्यन्त रोचक विषय पर विचार करने के लिए इस लेख में स्थान नहीं है।

एक और अत्यन्त रोचक विषय है, जिसकी ओर यहां संकेत मात्र ही किया जा सकता है। इन यूरोपियन और एमेरिकन आन्दोलनों का भारतवर्ष पर क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या यहां भी मज़दूरों के अथवा किसानों के आन्दोलन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न होंगे ? यदि उत्पन्न होंगी तो वह क्या रूप धारण करेंगे ? उनका आदर्श क्या होगा ? ज़मींदार, पुतलीघरों के स्वामी, बड़े २ व्यापारी, सरकार, शिक्षित भारत और अन्य लोग उन आन्दोलनों को कैसे भावों से देखेंगे ? यह विषय अत्यन्त रोचक है। इस लेख में इन पर कुछ कहने के लिए स्थान नहीं है। पाठक स्वयं विचार कर लें।

राष्ट्र-संघ ।

[लेखक—वाइकाउण्ट ग्रे ।]

जब से प्रेसीडेंट विल्सन ने 'राष्ट्र-संघ' का स्थापन करने की बात छेड़ी है तब से सभी ओर इसके सम्बन्ध में वाद-विवाद हो रहे हैं और प्रायः सभी इस परिणाम पर पहुंच रहे हैं कि राष्ट्र-संघ की स्थापना अवश्य की जाय । युद्ध समाप्त हो जाने के कारण इस कार्य में कोई कठिन बाधा नहीं रही है और इसका विचार भिन्न भिन्न राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के द्वारा सन्धि-परिषद् में सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

कई लोग शंका करते हैं कि पहिले भी इस प्रकार के प्रस्ताव अनेक बार हो चुके हैं, किन्तु कुछ फल नहीं निकला। अब की ही ऐसी कौनसी नई बात हो गई है जिससे सफलता की आशा की जाय ? इसके उत्तर में हम कहते हैं कि नई बात अवश्य है। राष्ट्र-संघ एक प्रकार का यंत्र है। उसे चलाने के लिए शक्ति की आवश्यकता है। वाष्पशक्ति का आविष्कार होने के पहिले भी कल-कांटों से पूर्ण ख़ासा एंजिन बन सकता था, किन्तु उसे चलानेवाली शक्ति के अभाव के कारण वह बेकाम था । उसी प्रकार राष्ट्र-संघ के यंत्र भी पहले बने थे, किन्तु वे बेकाम ही रहे। अब संसार के लोकमत की शक्ति उसे चलाने के लिए उपस्थित है। अतएव राष्ट्र-संघ की सफलतापूर्वक स्थापना अवश्य हो सकती है। संसार में पहले भी युद्ध हुए हैं, किन्तु इस युद्ध के समान कभी सारा संसार युद्ध की चक्की में नहीं पिसा । हम नहीं सोच सकते कि मानवी स्वभाव इतना कड़ा है कि इन असह्य कष्टों का भयंकर अनुभव भी मनुष्यों के हृदय और भावों पर चिरस्थायी प्रभाव नहीं डाल सकेगा। इस युद्ध की घटनाओं से हम सहज में कल्पना कर सकते हैं कि विज्ञान के आविष्कारों की सहायता से भविष्य में होनेवाले युद्ध कितने नाशकारी होंगे । अवश्य ही अब युद्ध छेड़ना पाप है, इससे बचना ही उचित है।

आर्थिक प्रश्न ।

इस संघ के सम्बन्ध में कुछ मुख्य बातों पर विचार करना आवश्यक है। आर्थिक प्रश्न को ही लीजिये। प्रेसीडेंट विल्सन ने कहा है—"राष्ट्र-संघ के भीतर आर्थिक बहिष्कार नहीं होना चाहिये" इससे उनका शायद यह मतलब है कि राष्ट्र-संघ में सम्मिलित होनेवाला प्रत्येक साम्राज्य, राज्य या जन-समूह अपने आर्थिक प्रश्न को आप ही राष्ट्र-संघ के भीतर स्वाधीनतापूर्वक हल कर सकेगा। हमारे देश में आर्थिक नीति पर झगड़े होंगे, उनसे राष्ट्र-संघ का कुछ सम्बन्ध नहीं। किन्तु एक बार नीति निश्चित हो जाने पर राष्ट्र-संघ के प्रत्येक राष्ट्र के साथ उसी नीति का पालन करना आवश्यक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। यह सिद्धान्त बहुत उपयुक्त है और इसीसे राष्ट्र-संघ संसार में सच्ची शान्ति रखने में समर्थ हो सकेगा।

इस युद्ध में शत्रु देशों का आर्थिक बहिष्कार आरंभ हो गया है, अर्थात् उनके साथ व्यापार तथा धन-सम्बन्धी सभी कार्य करना बंद कर दिया है। इसका परिणाम भी लाभकारी हुआ है। हमारी राय यह है कि इस आर्थिक बहिष्कार का उपयोग राष्ट्र-संघ में भी किया जाय। जो राष्ट्र-संघ के नियमों को तोड़े उसे दंड देने के लिए आर्थिक बहिष्कार ही अन्य राष्ट्रों के हाथ का बड़ा प्रबल शस्त्र होगा। भावी राष्ट्र इससे डरेंगे और संसार की शान्ति भंग करने का साहस नहीं करेंगे। किन्तु इसका उपयोग आवश्यकता के ही समय होना चाहिये, अभी से उसे काम में लाना उचित नहीं।

हथियार छीने जायं।

दूसरा प्रश्न हथियारों के सम्बन्ध में है। इस पर बहुत गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये। कोई राष्ट्र धोखे से शस्त्रहीन और असहाय न कर दिया जाय। अतएव लड़ाई का सामान कम करने के सम्बन्ध में खूब सोच-विचारकर नपे तुले प्रस्ताव तैयार किये जाने चाहिये। इस युद्ध के पहले जर्मनी के कारण जल तथा स्थल-युद्ध-विभागों का खर्च अंधाधुंध बढ़ता आ रहा था। जर्मनी ने ही पहले ऊपर का मार्ग ग्रहण किया, अब उसे ही पहले नीचे उतरना चाहिये। जब तक जर्मनी की युद्ध-सामग्री कम न की जाय तब तक किसी दूसरे राष्ट्र से कुछ नहीं कहा जा सकता।

परन्तु हमें इससे भी आगे बढ़ना पड़ेगा। प्रत्येक देश में बननेवाली युद्ध-सामग्री का उत्तरदायित्व वहां की सरकार पर होगा। कोई यह नहीं कह सकेगा कि अजी यह तो कम्पनियों का निजी काम है; वे दूसरे देशों के लिए बना रही हैं। नहीं, युद्ध का सामान बनाने का काम सरकार के अधिकार में रहना चाहिये। देश में बननेवाले युद्ध के सामान का पूरा विवरण सदा प्रकाशित होना चाहिये। यदि कहीं का सामान आवश्यकता से अधिक बढ़ता पाया जाय तो राष्ट्र-संघ उसे रोके और न मानने पर राष्ट्र को आर्थिक बहिष्कार करके दंड दे।

इस विषय में अनेक कठिनाइयां हैं। केवल नियम बनाकर हम निश्चिन्त नहीं रह सकते। मानलो, अब बहुत समय तक युद्ध नहीं हो सकता यह सोचकर हम वर्तमान युद्ध-पोत लापरवाही से नष्ट हो जाने दें और इस युद्ध समाप्ति के बाद सरकार का आर्थिक भार इतना बढ़ जाय कि नये युद्ध-पोत न बनें और आजकल हम जिसे युद्ध की तैयारी कहते हैं वह न रहे तो भी यह न समझना कि युद्ध की संभावना भी मिट गई। तब व्यापारी जहाज़ और वायुयान युद्ध का काम देंगे। नवीन आविष्कारों से इनकी उन्नति होगी। प्राइवेट कम्पनियां इन्हें बनाती ही रहेंगी। उन्हें कैसे रोकोगे?

सब का तात्पर्य यही निकलता है कि सुरक्षा का विश्वास होने पर ही लड़ाई का सामान कम हो सकता है। राष्ट्र-संघ इस विश्वास को उत्पन्न कर सकता है। इसी लिए उसकी स्थापना की इच्छा और साथ ही चिरस्थायी शान्ति की आशा भी होती है।

राष्ट्र-संघ में जर्मनी।

हमें यह प्रकट कर देना चाहिये कि राष्ट्र-संघ स्थापित करने में हमारा उद्देश, जैसा कि प्रेसीडेंट विलसन ने कहा है, राष्ट्रों को इकट्ठा करना है। उसमें जर्मनी भी सम्मिलित हो सकता है। हमारा उद्देश जर्मनी को अलग कर देने का नहीं है। यह राष्ट्र-संघ सच्चा राष्ट्र-संघ होना चाहिये। इसलिए आवश्यक है कि इसमें जो राष्ट्र वास्तव में सम्मिलित होना न चाहते हों वे न लिये जायं। प्रेसीडेंट विलसन ने बार-बार कहा है कि उन सरकारों पर विश्वास नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा सकता जिन पर प्रजा का विश्वास नहीं है और जो केवल प्रजा के सामने उत्तर दायी नहीं हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस।

मान लो संघ स्थापित हो गया, संधिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये और संघ के राष्ट्रों ने स्वीकार कर लिया कि हम आपसी झगड़ों को युद्ध की अपेक्षा किसी दूसरे उपाय से तय करेंगे और यदि उस फ़ैसले को कोई राष्ट्र नहीं मानेगा तो सब की सम्मिलित शक्ति से उसे दंड दिया जायगा। हमारी समझ में राष्ट्र-संघ से इसके अलावा दूसरे काम भी लिये जा सकते हैं। प्रत्येक देश में पुलिस जो काम करती है सब देशों के सम्बन्ध में वह काम करने के लिए राष्ट्र-संघ एक सेना रख सकता है। उदाहरणार्थ किसी देश में कोई अन्याय हुआ और किसी कारणवश वहां की सरकार उसको दंड देने में असमर्थ है तो ऐसी दशा में अधिक बलवान राष्ट्र धमकाकर उस देश का एकाध बन्दरगाह छीन लेता है। उस समय अन्य राष्ट्रों को यह बात खटकती है और विरोध का भाव बढ़ता है। हमारी राय में ऐसे मामले राष्ट्र संघ अपनी सेना द्वारा बिना दिक़्क़त के तय कर सकता है।

दूसरा उदाहरण यह है कि ऐसे कई देश हैं जो पूर्ण स्वाधीन हैं, परन्तु उनका संगठन ठीक नहीं है या वहां की सरकार उचित प्रबन्ध नहीं कर सकती। ऐसी अवस्था में सुव्यवस्थित राष्ट्रों को उस देश से व्यापार करने में बाधा पड़ती है और वे पिछड़े हुए देश अपने प्रबन्ध में सहायता देने के लिए उन्नत राष्ट्रों से कुछ अफ़सर मांगते हैं जैसे कि चीन-सरकार ने मेरीटाइम्स कस्टम्स सर्विस (ज़कात) के लिए सर राबर्ट हार्ट को मांगा था। इस बात से बड़े राष्ट्रों में पारस्परिक ईर्षा उत्पन्न होती है, क्योंकि बहुधा इन अफ़सरों के द्वारा राजनैतिक विस्तार के प्रपंच रचे जाते हैं, इसी कारण से निर्बल राष्ट्र भी ऐसी सहायता मांगने में डरते हैं, क्योंकि वे दूसरों के चंगुल में फँसना नहीं चाहते। यदि राष्ट्र-संघ ऐसी सहायता देने का कार्य अपने ऊपर ले तो किसी को ईर्षा या भय का अवसर ही न आये।*

प्रण।

[लेखक—श्रीयुत गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी।]

मेरा देश देश का मैं, देश मेरा जीव प्रान,
मेरा सनमान मेरे देश की बड़ाई में।
जिऊँगा स्वदेश हित मरूंगा स्वदेश काज,
देश के लिए न कभी करूंगा बुराई मैं॥
भीषण भयंकर प्रसंग में भी भूल के भी,
भूलूंगा न देशहित राम की दुहाई मैं।
जब लों रहेगी सांस सर्वस भी लगा दूंगा,
ईश को भी झुका लूंगा देश की भलाई में।

* अनुवादित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किनको वोट देने का अधिकार मिलना चाहिये ?

[लेखक—श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद जी, एम० ए० एम० एल० ।]

मर्यादा के पाठक जानते हैं कि आजकल दो समितियां राजनैतिक सुधारों के सम्बन्ध में भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में भ्रमण कर रही हैं और सरकारी तथा गैर सरकारी गवाहों के इज़हार ले रही हैं। उनके सामने दो प्रश्न हैं—किस प्रकार के लोगों को सम्मति (वोट) देने का अधिकार दिया जाय और सरकारी विभागों में से कौन विभाग लोकमत से चुने हुए व्यवस्थापिका सभा के अधिकार में दिये जायँ। इस लेख में मैं केवल पहले प्रश्न का ही उत्तर देने की चेष्टा करूंगा।

आजकल बहुत लोग ऐसा कह बैठते हैं कि भारतवासी कभी सम्मति देने की प्रथा से परिचित न थे और उनको इस विषय का कोई ज्ञान कभी भी न था। यदि यह कहा जाय कि यही वर्तमान अवस्था है तो कुछ अंश में यह सत्य है, पर यदि यह कहा जाय कि ऐसी प्रथा कभी भारतवर्ष में थी ही नहीं तो वह केवल इसी अंश में सत्य है कि जिस प्रकार की राज्य-पद्धति आज इंगलैंड में है वह पद्धति भारतवर्ष में न थी। पर यह कहना कि वहां के रहनेवाले सम्मति देने की प्रथा से एकबारगी अनभिज्ञ थे सत्य नहीं है। अभी भी बड़े बड़े मठों और स्थलों के महंथ लोकमत से चुने जाते हैं—पंचायत की प्रथा प्रायः हिन्दुस्तान भर में प्रचलित है। पर इस समय विचारणीय विषय यह है कि अँग्रेज़ी प्रथा भारतवर्ष में किस प्रकार से चलाई जाय और इसमें सन्देह नहीं कि इसमें बहुत प्रकार की कठिनाइयां हैं।

अंग्रेजी प्रथा

के साथ हमारे देशवासी किसान जो अंग्रेज़ी नहीं जानते परिचित नहीं हैं—उस प्रथा को अंग्रेज़ी जाननेवाले कतिपय भारतवासी समझते हैं और उसके भीतरी तत्वों को जाननेवाले भारतवासियों की संख्या और भी कम है। साथ ही सब विचारशील भारतवासी उस प्रथा को भारतवर्ष में ज़ारी करना उचित समझते हैं और हमारे भारत मंत्री तथा बड़े लाट महोदय भी इससे सहमत हैं। इस प्रथा का अभीष्ट यह है कि लोकमत द्वारा निर्वाचित मंत्री लोकमत के अनुसार राज्य शासन करने की सलाह शासक को देवें और शासक उसी सम्मति के अनुसार कार्य करें।

विचार करने से दो बातें स्पष्ट जान पड़ती है—पहली यह कि लोकमत ऐसा हो कि जिससे देश का हित हो—अर्थात् सम्मति देनेवाले भारतवासी भारत के हित को समझ सकते हों और उसको समझकर केवल उसी को सामने रखकर सम्मति देवें। हम जानते हैं कि आज बहुतेरे हमारे देशवासी शिक्षा के अभाव से यह भी नहीं जानते कि भारतवर्ष कितना बड़ा देश है, इसमें कितनी जातियां बसती हैं, इसकी क्या आबादी है, इस देश में कौन कौनसी चीज़ें पैदा होती हैं, कौनसी चीज़ें बनाई जाती हैं, किस चीज़ की तिजारत बहुत है इत्यादि। अब प्रश्न यह होता है कि जब तक हम देश की आवश्यकताओं से परिचित न हों, हम अपने निर्वाचित मंत्री को कैसे कह सकते हैं कि इन इन चीज़ों की ज़रूरत है आप इनका प्रबन्ध कीजिये। तो पहला फल यह निकला कि सम्मति देने का अधिकार रखनेवाले सभी भारतवासियों को देशहित का ज्ञान होना चाहिए, फिर यदि हमें ज्ञान हो भी और हम दूसरे विचारों से प्रेरित होकर इस ज्ञान के अनुसार कार्य न करें तो यह ज्ञान बेकार है। इस ज्ञान के विरुद्ध कार्य करने के कई कारण हो सकते हैं। पहला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो यह कि हम छोटे स्वार्थवश महान् कार्य को भूल जाएँ अथवा यों कहिये छोटी छोटी जातियों के स्वार्थ के लिये, छोटे छोटे समाजों के स्वार्थ के लिए, अथवा छोटे छोटे प्रान्तों के स्वार्थ के लिए भारतवर्ष को हानि पहुंचाने के लिए तत्पर हो जायँ । दूसरा यह कि ज्ञान रहते भी उसके अनुसार कार्य करने की शक्ति हममें न हो जैसे किसी के दबाव में पड़कर किसी के मुलाहिज़ा में पड़कर—स्वार्थवश होकर—हम अपने ज्ञान के अनुसार कार्य न कर सकें। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश में इन त्रुटियों का होना सम्भव और स्वाभाविक भी है। इसलिए इस विषय पर विचार करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि इन त्रुटियों को किस प्रकार दूर किया जाय, क्योंकि जब कोई नई प्रथा चलाई जाती है तो उसकी नवीनता के कारण और पुरानी प्रथा की प्राचीनता के कारण बहुत अड़चनें पड़ती हैं । साथ ही जब तक नई प्रथा चलाई न जाय वह प्राचीन हो नहीं सकती, देशवासी उससे परिचित हो नहीं सकते । जो प्रथा अब भारत में चलाई जानेवाली है उसका एक लक्ष्य शिक्षा भी है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते कुछ विचार नीचे प्रकट किये जाते हैं।

प्रान्तों की भिन्नता ।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में इतनी विचित्रता है, उनमें इतना भेद है कि एक शृङ्खला सब के लिए उपयोगी नहीं हो सकती । जैसे बिहार और बंगाल प्रान्त में डंकिनी बंदोबस्त ज़ारी है, जिसका एक फल यह है कि इन प्रान्तों में बड़े बड़े ज़मीन्दार हैं और उनको यह अधिकार है कि चाहे वह अपनी ज़मीन्दारी की आमदनी जितनी बढ़ा लेवें पर उनको सरकारी कर एक निश्चित रकम देना पड़ेगा । रैयतों से उनको मालगुज़ारी बढ़ाने का अधिकार है, यद्यपि यह अधिकार ऐसा नहीं कि जब चाहे और जितना चाहे इज़ाफा कर सकें । सरकार को रैयतों से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह मालगुज़ारी मालिक को देते हैं, और मालिक सरकारी मालगुज़ारी अदा करता है। बम्बई प्रांत में प्रायः सभी रैयत मालगुज़ारी सरकार को ही देते हैं, वहां ज़मीन्दार प्रायः हैं ही नहीं । अन्य प्रांतों में मालिक हैं जिनको रैयत मालगुज़ारी देते हैं पर उनकी मालगुज़ारी बढ़ाई घटाई जा सकती है, उनके साथ डंकिनी बन्दोबस्त नहीं है । इस विभिन्नता का एक फल जो स्पष्ट देखा जाता है वह यह है कि बङ्गाल और बिहार में बड़ी बड़ी ज़मींदारियां बहुत हैं, रैयतों पर उन ज़मीन्दारों का ज़ोर दबाव और अधिकार भी बहुत है। बहुत स्थानों में रैयत मालिक के विरुद्ध किसी बात में नहीं आ सकते । जहां डंकिनी बन्दोबस्त नहीं है, वहां भी यदि ज़मीन्दार अथवा तालुकेदार हैं तो उनका ज़ोर दबाव रैयतों पर है । जहां ज़मीन्दार बिलकुल नहीं हैं वहां रैयत स्वच्छंद हैं।

यह भी स्पष्ट है कि

रैयत और मालिक

के स्वार्थ में भेद है, मालिक (ज़मीन्दार) की इच्छा होती है, यह स्वाभाविक है इसमें किसी का दोष नहीं, कि जहां तक हो सके रैयतों से वसूल करें । रैयतों का स्वार्थ इसी में है कि जहां तक कम देना पड़े उतना ही अच्छा है । इसमें बहुत ज़मीन्दार ऐसे भी हो सकते हैं कि वे रैयतों को लाभ पहुंचाकर अपना लाभ उठावें यथा आबपाशी इत्यादि का प्रबन्ध कर के रैयतों की सुविधा करें और इसके बदले उनसे अधिक कर लेवें । इसे समझदार रैयत बुरा नहीं मानते और अधिक मालगुज़ारी देना अपना कर्तव्य समझते हैं । पर बहुत स्थानों में स्वार्थवश ज़मीन्दार गरीब रैयतों पर अत्याचार भी कर सकते हैं । यदि रैयतों को सम्मति देने का अधिकार दिया जाय तो इसके साथ ऐसा प्रबन्ध अवश्य होना चाहिए कि वे अपनी सम्मति स्वतंत्र रूप से दे सकें । रैयतों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति का अधिकार मिलना आवश्यक है इसलिए अब यह देखना चाहिए कि वह अपनी स्वतंत्रता किस प्रकार से रख सकते हैं। यदि इसका कोई भी अच्छा उपाय नहीं दीखे तो किस प्रकार उनको सम्मति का मौक़ा देते हुए और शिक्षा ग्रहण करने का अवसर देते हुए भी उनकी बुराई न होने पावे ऐसा उपाय सोचना चाहिए।

जब तक मनुष्य किसी कार्य में पड़ता नहीं तब तक वह उसकी कठिनाइयों और भीतरी बातों को समझता नहीं है। और जब तक मनुष्य अपनी भूलों द्वारा नुकसान नहीं उठाता उन भूलों की ओर उसका ध्यान नहीं आता। मैं अपनी अल्प बुद्धि में जहां तक सोच सकता हूं मुझे मालूम पड़ता है कि हमारे देश विशेषकर विहारप्रान्त की रैयत ज़मीन्दारों के सामने सिर अभी नहीं उठा सकती और ऐसा जान पड़ता है कि यदि दो मनुष्य उनकी सम्मति (वोट) के लिये खड़े हों जिनमें एक ज़मींदार अथवा ज़मींदार का खड़ा किया हुआ आदमी हो और दूसरा देशहितैषी शिक्षित सज्जन हो तो इसमें सन्देह नहीं कि ज़मींदार के खड़ा किये हुए मनुष्य को ही रैयतों की सम्मति मिलेगी। उस सम्मति को पाकर वह व्यवस्थापक सभा में जाकर रैयतों के विरुद्ध कार्य भले ही करे और रैयत इस विषय को अभी यदि समझ सकें तो भी उनको इतना साहस नहीं होगा कि वह ज़मींदार की राय के विरुद्ध कार्य करें। एक उदाहरण लीजिये। कोई सज्जन म्यूनिसिपैलिटियों की सम्मति द्वारा आजकल की सभा में घुसा और वहां जाकर उन्हीं रैयतों में शिक्षाप्रचार संबंधी प्रस्ताव का विरोध करता है और इस पर भी वह फिर ज़मींदार के भरोसे म्यूनिसिपैलिटी का मेम्बर हो जाता है। आज केवल म्यूनिसिपैलिटियों में ही सम्मति देने का अधिकार सर्वसाधारण को मिला है। कल व्यवस्थापक सभा के चुनाव का अधिकार मिलेगा। क्या वहां भी ऐसा ही नहीं होगा? कुछ दिनों तक अवश्य ऐसा ही होगा। हां जब एक बार दो बार इस प्रकार होगा और सर्वसाधारण अपने स्वत्व को खूब समझने लग जायँगे और अपने हानि पहुंचानेवालों को पहचानने लगेंगे तो अवश्य अपनी रक्षा वे कर लेंगे। पर इस समय ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि वे शिक्षा पावें और साथ ही उनको हानि जहां तक संभव हो न होने पावे।

हमारे अंग्रेज़ भाई कहा करते हैं कि

शिक्षित समाज

सर्वसाधारण से अलग है। यह बात कुछ अंश में सत्य भी है। इस समय शिक्षित समाज ही उन ज़ोरदार ज़मींदारों और कमज़ोर रैयतों के बीच में खड़ा हो सकता है। यह इसी श्रेणी के लोगों का काम है कि यदि ज़मींदार रैयतों को दबाना चाहें तो उन्हें रोकें और यदि रैयत ज़मींदार को नुकसान पहुंचाना चाहें तो उन्हें भी रोकें। शिक्षित समाज किसी एक वर्ग का नहीं है। इसमें कुछ छोटे छोटे ज़मींदार हैं—और बड़े बड़े रैयत भी हैं—पर विशेषकर इसे न ज़मींदार ही कह सकते हैं और न रैयत ही। क्योंकि इस श्रेणी के लोग न ज़मींदारी करते हैं और न काश्तकारी, ये प्रायः वकालत, डाक्टरी, नौकरी इत्यादि से अपना निर्वाह करते हैं। इसलिए इनका स्वार्थ किसी विशेष श्रेणी के लोगों के साथ सना हुआ नहीं है, न यह कहा जा सकता है कि इनका कुछ अपना स्वार्थ ऐसा है जो इन दोनों श्रेणियों से अलग है। जब तक हमारे देश के आदमी मुक़दमेबाज़ी करते रहेंगे और इन्साफ़ अंग्रेज़ी प्रथा के अनुसार होता रहेगा वकील बने रहेंगे। इस देश में लोग बीमार पड़ते ही रहेंगे और डाक्टरों की ज़रूरत बनी रहेगी। यदि इन दोनों श्रेणियों के लोगों को अधिक अधिकार मिले भी तो वे क्या कर सकते हैं? लोगों को मुक़दमा लड़ने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए बुला नहीं सकते, जो लड़ता नहीं उसे लड़ा नहीं सकते। जो बीमार नहीं उसे कानून के जरिये बीमार नहीं डाल सकते। शिक्षित समाज के स्वार्थ की जितनी बातें हमारे देश के अहितचिन्तक करते हैं निरी पागलपन अथवा बेवकूफी की बातें हैं। फिर यह श्रेणी कोई ऐसी श्रेणी नहीं जिसमें सब लोग नहीं आसकते। रास्ता खुला है, जो शिक्षा ग्रहणकर सके शिक्षित समाज में सम्मिलित हो सकता है। इन्हीं सब बातों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि जो राजनैतिक सुधार हो उसमें शिक्षित समाज का अधिकार होना आवश्यक और देश के लिये हितकर होगा।

एक बात और है।

जो नई प्रथा चलाई जायगी और जो इसके अनुसार अधिकार हमें मिलेंगे उन्हें क्या कोई भी मनुष्य जो पूरी शिक्षा न पाये हुए हो सुचारु रूप से चला सकता है? मेरी समझ में हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ अर्थात् सब से अधिक बुद्धिमान लोगों की इसमें ज़रूरत है। यदि वे इसमें योग दान न देंगे तो सब सुधार ज्यों का त्यों रह जायगा और जब कुछ दिनों के बाद फिर जाँच होगी तो यह नतीज़ा निकलेगा कि जो अधिकार मिलेंगे वह छिन जायँगे। आज जो पद्धति चल रही है उसमें सिविल सर्विस के लोग काम चला रहे हैं। उनमें चाहे और जो दोष हो पर यह कोई भी नहीं कह सकता कि उनमें शिक्षा, ज्ञान, अथवा बुद्धिमत्ता का अभाव है। सिविल सर्विस की परीक्षा ही के लिए बहुत उच्चकोटि की शिक्षा की आवश्यकता है और उसमें उत्तीर्ण होना ही उच्च शिक्षा का चिह्न है। उन लोगों के हाथ से अधिकार लेकर क्या हमारे देश के ऐसे वैसे आदमी उस कार्य को चला सकते हैं? कदापि नहीं, और यदि ऐसे वैसे आदमियों ने इस अधिकार को अपने हाथ कर लिया तो सुधार का फल क्या होगा ईश्वर ही जानें। इसी लिए ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि हमारे देश के सब से अच्छे बुद्धिमान निःस्वार्थ देशभक्त इस कार्य में पड़ें और केवल इतना ही नहीं यह भी निश्चय रहना चाहिए कि यदि उन्हें कुछ ऐसे वैसे आदमी हटाना भी चाहें तो उन्हें न हटा सकें।

इन्हीं दो बातों पर ध्यान रख कर, पहली यह कि हमारे देश के किसान इस नई प्रथा की शिक्षा पा सकें और साथ ही हानि न उठावें और दूसरी यह कि हमारे देश के सब से अच्छे बुद्धिमान देशहितचिन्तक सज्जन इसमें पूरा अधिकार पाकर देश की सेवा कर सकें, एक स्कीम तैयार होनी चाहिए और इसीसे देश का हित है। यह स्कीम जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्रत्येक प्रदेश में भिन्न होगी और इस कारण यहां इस लेख में प्रत्येक प्रदेश की विभिन्नता पर विचार कर के अलग २ दी नहीं जा सकती, मैं और प्रदेशों से परिचित भी नहीं हूं कि उनके विषय में लिख सकूं, पर जो मूलतत्व मेरी दृष्टि में आये उनको मैंने उपस्थित किया है।

शिक्षित समाज पर बड़ा भार है, इसमें सन्देह नहीं कि सुधार की जो मांग आज भारतवर्ष के प्रत्येक कोने से आरही है वह उन्हीं की पैदा की हुई है। इस सुधार को देश के हित का साधन बनाना उन्हीं के हाथ में है। हमारे दुश्मन बहुत हैं, हँसनेवाले बहुत हैं और यह भी स्पष्ट ही है कि जो थोड़ा बहुत अधिकार मिलेगा उसके विरोधी भी बहुत हैं। सिविल सर्विस क्या करेगा मालूम नहीं, पर जैसा दिखाई देता है वे इसके विरोध के लिए कोई बात उठा न रक्खेंगे। वह यहां तक भी सोच रहे हैं कि यदि उनके मत के अनुसार कार्य न किया जाय तो उनमें बहुतेरे पेंशन लेकर इस्तीफा दे देवेंगे। चाहे यह उनकी धमकी मात्र हो अथवा युद्ध के बाद इङ्गलैंड में ही अब बहुत ऐसा काम मिल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता हो जिसे वे हिन्दुस्तान की नौकरी से अधिक लाभदायक समझते हों इस कारण वहां वापस जाने के लिए केवल एक बहाना मात्र ढूंढ़ रहे हों, इसमें सन्देह नहीं कि वे विरोधकर रहे हैं। उनसे सहायता मिलने की आशा नहीं है। जो कुछ उन्होंने हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुस्तान की नौकरी करके हिन्दुस्तान के द्रव्य की सहायता से सीखा है, वह सब सम्भव है हमारे देश के अहित के लिए नहीं तो देश के हित के विरोध में ही लगेगा। ऐसी अवस्था में शिक्षित समाज पर बड़ा भारी बोझ पड़ रहा है। उनका यह कर्तव्य है कि वह सब प्रकार के स्वार्थ को तिलाञ्जलि देकर केवल देश-हितसाधन का व्रत करें और इस व्रत में ईश्वर को साक्षी देकर निर्भीकता और विश्वास के साथ प्रवृत्त हो जायँ। तभी देश का कल्याण है, तभी इस गिरे हुए देश का पुनरुत्थान होगा। क्या वह ऐसा करेंगे? ईश्वर उन्हें शक्ति दे—यही सभी देश-हितैषियों की प्रार्थना है।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार 111163

देश-प्रेम ।

[लेखक—श्रीयुत गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ।]

चर्चा जहां देश की हो मेरो जीभ वहीं खुले
 और नहिं खुले कहीं खुदा की खुदाई में ।
मेरे कान गान सुने सांचे देश-भक्तन के
 और गान आवें कभी मेरे ना सुनाई में ॥
मेरे अङ्ग रङ्ग चढ़े एक देश-प्रेम कोही
 और रंग भंग होके बूड़ें जा तराई में ।
मेरो मन मेरो तन मेरो धन मेरो जीव
 मेरो सब लागे प्रभु देश की भलाई में ॥

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्रों की स्वतंत्रता।

[लेखक—मि० जिरार्ड फिन्स।]

आरम्भ में समुद्र में जहाज़ नहीं चलते थे, जहां तक हमें मनुष्य जाति का इतिहास मालूम है उससे यह विदित होता है कि आरम्भ में मनुष्य ज़मीन पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने चौपायों को चराते हुए फिरा करता था। उसे रहने के लिए काफ़ी जगह मिल जाती थी। वह शान्तिपूर्वक रहता था और यदि झगड़ा होता भी तो कुएँ से पानी लेने के अधिकार के ऊपर किसी दूसरे चरवाहे से झगड़ा हो जाता था। शायद उसे यह मालूम हो गया था कि सूखे पेड़ के कुंदे पर बैठकर नदी में वह डूबने से बच सकता है। वह नदी के किनारे ही रहा करता था और जब उसकी आवश्यकताएँ बढ़ीं तो उसे ज्ञात हुआ कि वह नदी के रास्ते सुगमतापूर्वक अपनी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए आ जा सकता है। नदी के मुहाने में उसे मछली मिल जातीं और उसे पास के टापू में जाने का साहस करने की इच्छा होती, किन्तु उस पार के देशों और मनुष्यों का ज्ञान उसे नहीं था।

आबादी की बढ़ती, ज्ञान की वृद्धि और आपस के व्यवहार की अधिकता के कारण कानून की आवश्यकता हुई। कानून की ज़रूरत इसलिए हुई कि उसके द्वारा मनुष्यों के असली अधिकारों को निर्द्धारित करके उन्हें सीमाबद्ध कर दिया जाय और समाज की भलाई के लिए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कम कर दी जाय। क़ानून को चलाने के लिए पुलीस मैन की ज़रूरत हुई और सब से बली या सब से चतुर व्यक्ति क़ानून का अधिकारी बन बैठा। कहीं लोग उसे राजा कहने लगे और कहीं उसे 'फ़राओ' कहने लगे। वह अपना क़ानून वहीं तक चला सकता थी जहां तक कि उसकी पहुंच थी। उसकी पहुंच समुद्र के किनारे आकर रुक जाती थी। इस सीमा के बाद

स्वतन्त्र और क़ानून-विहित समुद्र

था—और समुद्र में जाने का वही साहस करते थे जो या तो क़ानून-विहित होते या जो स्वतन्त्र होना चाहते थे।

बहुत कुछ हिम्मत करके वे समुद्र में निकल पड़े और समुद्र के उस पार की ज़मीन में पहुंचे। इन साहसी लोगों के बाद इन देशों से लाभ उठाने के लिए व्यापारी लोग समुद्र में निकले। ग्रीस और फ़ीनिशिया दोनों ही के निवासी समुद्रयात्रा करने लगे और दोनों ही का मिलन साइप्रस द्वीप में हुआ जहां वे एक दूसरे के साथ व्यापार करने लगे। इन्होंने आपस में तै करके क़ानून की तरह कुछ नियम बना लिये। परदेशी आदमी को समुद्र से ज़मीन पर उतरते ही अपनी रक्षा के लिए क़ानून की आवश्यकता पड़ जाती थी किन्तु स्वयं समुद्र में उनको पूरी पूरी स्वतन्त्रता थी और कोई क़ानून नहीं था। ग्रीक और फिलनिशियन दोनों ही ने उपनिवेश स्थापित किये। उदाहरण के लिए तारशिशे और गादीरा स्पेन में और मैसिला फ्रांस में जहां आजकल मार्सेल्स स्थित है। इन्हीं स्थानों में पहिले पहिल

समुद्र में व्यापार

करनेवालों में झगड़ा आरम्भ हुआ। अपने देश में तो वे शान्तिपूर्वक एक दूसरे के साथ व्यापार करते थे किन्तु समुद्र के रास्तों में अपने उपनिवेशों के लिए लड़ते थे। समुद्र बे रोक टोक था—किन्तु विशेष करके बलवान के लिए। इन झगड़ों में बहुधा फिनिशियावाले जीतते रहे और ये किराए के समुद्री लड़ाकू हो गये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहिले तो वे फ़ारस के शाह की नौकरी में रहे और फिर सिकन्दर की सेवा करने लगे।

इससे यह प्रत्यक्ष है कि समुद्र शान्ति के समय में स्वतन्त्र थे—किन्तु वह शान्ति नाम-मात्र की थी।

समुद्र की स्वतन्त्रता

ईमानदार सौदागर और क़ैदी दोनों ही के लिए समान थी। लड़ाई के समय में उनकी स्वतन्त्रता किसी और समय से अधिक न थी। पेलीपोनिशिया के युद्ध के आरम्भ में एथेन्स-वालों ने सोफोकलीज़ की राय से उन जहाज़ों को पकड़ लिया था जो स्पार्टावालों के लिए गेहूं ला रहे थे। दूसरे प्यूनिक युद्ध में रोमवालों ने हैनिबल का इटली के लिए सब से नज़दीक रास्ता (जो समुद्र होकर था) रोक लिया था। सीज़र ने समुद्र के द्वारा संसार के आधिपत्य के लिए अन्टनी से युद्ध किया था और वह युद्ध एक्टियम के पास समुद्र में हुआ था और सेलेमिस और लियान्टो में समुद्र शक्ति ही ने पूर्व और पश्चिम के भाग्य का फ़ैसला किया था। इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए—समुद्र की एकतन्त्रता से ही योद्धा राष्ट्रों की उच्चाकांक्षाओं का रास्ता सुगम हो सकता है—आजकल के जर्मन ही बच रहे थे। यदि यह मान लिया जाय तो समुद्र की स्वतन्त्रता का अर्थ ज़मीन का दासत्व हो जायगा अर्थात् नौ-सेना के द्वारा राष्ट्रों पर कब्ज़ा कर लेना सहज़ हो जायगा।

आरंभिक काल की सरसरी समालोचना कर के हम उस समय पहुंचते हैं जिस समय वाइकिङ लोगों का ज़माना था। वाइकिङ को समुद्री डाकू कहना ही ठीक है क्योंकि समुद्री डाकू और अपना भाग्य अज़माने के लिए समुद्र में घूमते हुए मनुष्य में कोई अन्तर नहीं है। हां आगे चलकर इन साहसी लोगों को भले आदमी का नाम मिल गया था। यद्यपि वाइकिङ भले आदमी थे किन्तु उनके ढंग ज़बर्दस्ती के थे। वे समुद्र की स्वतन्त्रता का उपभोग करते थे क्योंकि उत्तर के समुद्रों में (जिनमें वे घूमा करते थे) उनसे भिड़नेवाला कोई न था। उनमें आपस के तनाज़े भी थे और प्रायः ये (वाइकिङ=समुद्री डाकू) आपस में ही अकारण लड़ बैठते थे किन्तु यह लड़ाइयां वास्तव में ज़मीन के लिए होती थीं। एल्फ्रेड (इङ्गलैंड के राजा) ने उनके दूसरे देश के किनारों पर इस तरह बे रोक टोक आने के अधिकार को न माना और ऐसा करने में उसने उस सिद्धान्त की नींव डाली जिस पर तब से अब तक इन द्वीपों (इङ्गलैंड) की रक्षा निर्भर है।

इस समय तक कोई ऐसे क़ानून के सिद्धांत का पता नहीं चलता जो समुद्री रास्ते से सम्बन्ध रखता हो। समुद्र तब तक साहसी लोगों का साधारण रास्ता था। जो समुद्र में यात्रा करते उनके पास हथियार रहते थे—किन्तु मार्के की बात यह है कि उनके हथियार जहाज़ के हथियार न होकर जहाज़ पर यात्रा करनेवालों के हथियार होते थे। उन दिनों जहाज़ों के पकड़ने को समुद्री डाका नहीं कहते थे किन्तु जहाज़ द्वारा किनारे की लूट मार करना समुद्री डाका कहलाता था। केवल कुछ साहसी व्यक्ति ही समुद्र में जाते थे और जहाज़ के नियमों का पालन करना ही केवल एक क़ानून था। जहाज़ अपने देश का तैरता हुआ सूबा था—और अब तक जहाज़ ऐसा ही समझा जाता है। यह हालत उत्तरी समुद्रों की थी। भूमध्यसागर तो रोमवालों की झील हो रहा था और उसके आगे के समुद्र मनुष्य के लिए अज्ञात वस्तु थे।

किन्तु रोमन साम्राज्य के अधःपतन के बाद कुछ

दूसरी हालत हो गई।

समुद्र में जानेवाली जातियों की संख्या बढ़ने लगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुद्र में बेरोक टोक आने जाने के अधिकार पर झगड़ा होने लगा। तब तक कोई क़ानून नहीं था और अब समुद्र में शान्ति के बजाय युद्ध ही नियम होगया। समुद्र में व्यापार करनेवाले देशों में चाहे आपस में शान्ति ही हो किन्तु उनके जहाज़ समुद्र में मिलते ही लड़ने लगते। समुद्री डाकुओं को किसी राज्य के किनारे डाका डालने की अपेक्षा बहुमूल्य पदार्थों से लदे व्यापारी जहाज़ों को लूट लेने में अधिक लाभ मालूम होने लगा। किन्तु तब तक समुद्री डाकेज़नी अनुचित कार्रवाई नहीं समझी जाती थी और सिङ्कपोर्ट के जहाज़ तक—जो राजा के जहाज़ थे—कुछ ऐसे अनुचित काम करते सुने गए थे। दूसरे रिचर्ड के राज्य काल में लण्डन का लार्ड मेयर जान फ़िल्पट स्वयं एक जहाज़ी बेड़े का कप्तान होकर एक प्रसिद्ध स्काच समुद्री डाकू से—जिसका नाम जान मर्सर था—लड़ा और उसने डाकू को पकड़ लिया। जान फ़िल्पट ने कहा कि—हमें चाहिए कि जो बर्रे हमें डंक मारती हो उसे पकड़ लें और बची हुई भिड़ों को छत्ते से उड़ा देने की कोशिश करें। देश के सर्दार—जिनका काम हमारी रक्षा करना है—सुस्त और बहानेबाज़ हैं। उनको इस काँटे की पीड़ा इस तरह नहीं पहुंचती जिस तरह हम लोगों—यानी व्यापारियों को पहुंचती है, और इसी कारण वे उसके निकालने में ढील करते हैं। चाहे वे उसे निकालना चाहें या न चाहें—इस काँटे को निकालना ही पड़ेगा यदि वे यह काम करने को तयार न हों तो लाचार होकर हमें यह काम हाथ में लेना पड़ेगा।

मध्यकाल के आरम्भ में

समुद्री डाकेजनी का इतिहास

बड़ा ही रोचक है। जो शासक समुद्री आधिपत्य के इच्छुक होते वे समुद्री डाकुओं को अपने यहां कप्तान नियुक्त करते क्योंकि उन्हें ही समुद्री जीवन से पूर्ण परिचय होता था। रोमन लोगों ने इंगलैन्ड छोड़ने के पहिले कार्नेसियस नाम के एक व्यक्ति को सैक्सन तट का काउण्ट बनाकर वहां उसे इस लिए नियुक्त किया कि वह वाइकिंङ्ग के धावों से उस तट की रक्षा करे। कार्नेसियस ने ऐसा अच्छा मौक़ा हाथ आया देख अपने को राजा घोषित कर दिया—उसके प्रचलित किए हुए सोने के सिक्के अब भी वर्तमान हैं। उसे लोग इङ्गलैंड का प्रथम समुद्री राजा कहते हैं और उसे अंग्रेज़ी नौ-सेना का जन्मदाता बतलाते हैं। किन्तु यह सब कपोल कल्पना भर है क्योंकि वह बृटन नहीं था। वह शैल्ट नदी के मुहाने के आस पास का रहनेवाला था।

कहा जाता है कि महान अल्फ्रेड भी अपनी नवजात नौ-सेना के लिए समुद्री डाकुओं को नौकर रखता था। यूस्टेस जो फ्रांस की नौ-सेना का सेना नायक बनाया गया था—वह भी समुद्री डाकू था। आठवें हैनरी के समय में भी एक डाकू फ्रांसीसी नौ-सेना का नायक था। इसका नाम प्रेजाँट था और अंग्रेज़ लोग इसे प्रायर जान कहा करते थे। यह उस विचित्र घटना का नायक था जो ब्रेस्ट के बन्दरगाह में हुई थी और जिसमें अंग्रेज़ नौसेना के नायक सर एडवर्ड हावर्ड की जान गई थी। इस कथा को सर अर्मस्ट हावर्ड ने अपनी पुस्तक 'इङ्गलैंड का प्रथम बड़ा युद्ध सचिव' में लिखा है।

इन विचित्र ढँगों से समुद्र की स्वतन्त्रता रक्खी जाती थी। और यह ढँग थोड़े दिन हुए तब तक जारी रहा। समुद्री जीवन किनारे के जीवन से बिलकुल ही अलग था।

शान्ति के समय में केवल समुद्री डाकू ही समुद्र की स्वतन्त्रता में सन्देह करते थे। लड़ाई के समय में समुद्री युद्ध उन जहाज़ों में हुआ करता था जो एक जगह से दूसरी जगह सेना लेजाते थे। इसका एक उदाहरण स्लाईस का युद्ध है जो ह्यबर्टडे बर्फ और व्यस्टेस के बीच में हुआ था और दूसरा उदाहरण एस्पेगोल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर मेर. का युद्ध है जिसमें तीसरा एडवर्ड लड़ा था। कम से कम नार्थ सी और बृटिश चैनल के लिए यही बात ठीक थी। भूमध्य सागर की हालत कुछ और ही थी। वहां समुद्री डाकुओं के विरुद्ध क़ानून की कुछ धीमी झलक दिखलाई पड़ने लगी थी। इस्लाईस के युद्ध के बाद तीसरे एडवर्ड ने 'समुद्र के राजा' की उपाधि अपने नाम के आगे लगा ली और वह सब विदेशियों से समुद्र में सलामी लेने लगा—जिसका परिणाम पहिला डच युद्ध हुआ। उस समय हंसा रिपब्लिक के व्यापारी समुद्र में बहुत आया जाया करते थे। जब एडवर्ड ने समुद्र के राजा होने और समुद्र में सलामी लेने का दावा किया तब हंसा वाले व्यापारियों ने उसे स्वीकार करके उससे कहा कि यदि तुम समुद्र के राजा बनते हो तो समुद्री डाकुओं से व्यापारी जहाज़ों की रक्षा भी करो। समुद्र के आधिपत्य के साथ इस प्रकार सब आधिपत्यों का सर्व प्रथम कर्तव्य भी लगाया गया और वह कर्तव्य क़ानून और शान्ति का पालन करता था।

चौदहवीं शताब्दी

के आरम्भ में हंसा वाले उत्तरी और बाल्टिक समुद्र में बलवान हो गए। पुराने फिनीशियन तथा बाद के अंग्रेज़ और डचों की तरह उन्होंने उन देशों में अपनी सौदागरी कोठियां स्थापित कीं जिन देशों में वे व्यापार करते थे। इन स्थानों में माल इकट्ठा किया जाता था और फिर वह हंसा के जहाज़ों में लद कर भेजा जाता था। उनकी मुख्य वस्तु हेरिङ मछली थी जो उन दिनों "साउण्ड" में बहुतायत से होती थी, यह कहा जाता है कि पिछले पानी में ये मछलियां इतनी बहुतायत से थीं कि जहाज़ नावों भर के मछली निकालते थे, हंसा वाले इस बात का दावा करते थे कि इनके व्यापार का इजारा उन्हीं का है। किन्तु डेनमार्क वाले इसे स्वीकार नहीं करते थे, इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा जिसका अन्त सन् १३७० में स्ट्रालसण्ड की सन्धि से हुआ। यहां पर हम देखते हैं कि लोग समुद्र की स्वतन्त्रता मानने से साफ़ साफ़ इन्कार करने लगे और यह सिद्धान्त प्रचारित किया जाने लगा कि बाल्टिक समुद्र जर्मनों का 'बँधा हुआ समुद्र' है। यह बात महत्व की है कि हंसा वालों ने यह सिद्धांत स्थिर कर लिया था कि "शत्रु के जहाज़ शत्रु की चीज़ें हैं और शत्रु की चीज़ें शत्रु के जहाज़ हैं"। यह सिद्धान्त आधुनिक जर्मनों के सिद्धांतों के बिल्कुल विरुद्ध है।

स्ट्रालसण्ड की सन्धि के बाद हंसा के कुछ व्यापारियों ने खुल्लमखुल्ला समुद्री डाकेज़नी करनी आरम्भ कर दी, उन्होंने समितियां स्थापित की—जिन्हें 'बराबर हिस्सेवाली' या 'भोजन देनेवाले भाई' कहते थे। किन्तु उनका सिद्धान्त उन्हीं के विरुद्ध काम में लाया गया क्योंकि हंसावालों का एक बड़ा जहाज़ी बेड़ा जो बिस्के की खाड़ी से लौट रहा था अंग्रेज़ों ने पकड़ लिया। दूसरी बार इङ्गलैंड के पूर्वी किनारे के बन्दरों के जहाज़ों ने उनके १०८ से भी अधिक जहाज़ पकड़े थे। यह घटना १४५१ में हुई। अतएव जहाज़ों का पकड़ना तब से शत्रुता का काम निश्चय हो गया। और उस समय शत्रुता ही समुद्र पर साधारण अवस्था हो गई।

भूमध्य सागर में ग्यारहवीं और सोलहवीं सदी

के बीच या उसके उपरान्त समुद्र की स्वतन्त्रता बिलकुल ही उड़ गई थी। इसके तीन कारण थे—वेनिस जिनोआ और पीसा के प्रजातन्त्रों की लेवान्ट के व्यापार के लिए लाग डांट—क्रूसेड, जिसके कारण इन तीनों को जल मार्ग से सेना ले जाने के लिए प्रबन्ध करना पड़ता था और तुर्कों के 'राज्य की स्थापना'। तुर्कों के राज्य स्थापन के बाद ही ट्यूनिस,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्रिपली और एलजियर्स के समुद्री डाकुओं का उपद्रव आरम्भ हुआ। वेनिसवाले एड्रियाटिक समुद्र को अपना कहते और जिनोआवाले भूमध्यसागर पर अपना अधिकार प्रबल रखना चाहते थे, यहां पर हमें

'अधिकृत समुद्र'

के सिद्धान्त का प्रयोग मिलता है। लेकिन जैसे ही एक बार इटली का दक्षिणी भाग साफ़ हो गया वैसे ही भूमध्यसागर स्वतन्त्र समुद्र समझा जाने लगा। केवल लेवान्ट के व्यापार पर तब भी लोग अपना इजारा कहते जाते थे। यहां पर हम इससे अधिक इस विषय पर कुछ नहीं कह सकते। तत्कालीन इतिहास इस विषय में स्पष्ट नहीं है—किन्तु संक्षेप में हम इतना ही कह सकते हैं कि यदि किसी व्यापारी का जहाज़ी बेड़ा कुशल पूर्वक लौट आता तो वह व्यापारी बड़ा भाग्यशाली समझा जाता था। शेक्सपियर ने अपने नाटक मर्चेंट आव वेनिस में अन्टोनियो की जो कहानी लिखी है वह उस समय की अवस्था के विरुद्ध नहीं है। किन्तु तो भी आरम्भ में वेनिस का ऐश्वर्य बढ़ता ही गया, इसका कारण यह था कि वहां के ड्यूक अपने राज्य के व्यापारी जहाज़ों की रक्षा के लिए लड़ाकू जहाज़ रखते थे। अवश्य ही उस समय समुद्र बेरोक टोक थे—बिल्कुल स्वतन्त्र थे—वे उतने ही स्वतन्त्र थे जितने स्वतन्त्र डाकू हुआ करते हैं!

यहां पर हम एक उदाहरण देते हैं जिससे मालूम पड़ेगा कि जो समुद्री व्यापार करते थे वे स्थल पर किस तरह बाध्य कर दिए जाते थे। सन् १०९९ में जेरूसलम के राजा बाल्डविन ने वेनिसवालों से सहायता की प्रार्थना की। वहां के तत्कालीन ड्यूक विटाली मिचील ने एक सेना तयार करके समुद्र द्वारा रोड्स द्वीप में भेज दी जहां कि वह जाड़े भर रही। उसी समय वेनिस और पीसावालों में गहरी लड़ाई होगई जिसमें वीनिसवाले विजयी हुए, किन्तु वीनिसवालों ने पीसावालों के कुल जहाज़ और क़ैदी इस शर्त पर लौटा दिये कि वे आयन्दा लेवाण्टवालों से व्यापार न करें। इतना होने पर इन दोनों ईसाई प्रजातन्त्रों के जहाज़ शान्तिपूर्वक धर्म युद्ध के लिए (तुर्कों से लड़ने के लिए) बढ़े। वेनिस के व्यापारी शासक इस बात को नहीं भूलते थे कि व्यापार व्यापार ही है। वेनिसवालों का मुख्य धन्धा व्यापार ही था—वही उनकी जीविका थी और उस समय तथा उसके बाद भी यह माना जाता था कि व्यापार की सफलता के लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि समुद्र का रास्ता साफ़ रहे (जो अब भी ठीक है) किन्तु यह भी आवश्यक है कि बाज़ार का इजारा व्यापार करनेवालों के हाथ में रहे, और यह सिद्धान्त तब तक प्रचलित रहा जब तक कि बृटिश जाति का प्रभुत्व स्थापित न हो गया और उन्होंने अपनी नाति से एक अधिक उत्तम सिद्धान्त निश्चय न कर दिया।

पन्द्रहवीं शताब्दी

के मध्य तक अवस्था बिल्कुल ख़राब हो गई थी। क़ानून विहित स्वतन्त्रता के जो अवश्यम्भावी फल होते हैं वे दिखलाई पड़ने लगे थे। इसका परिणाम यह हुआ था कि जिसकी लाठी उसकी भैंस हो रही थी। इस गड़बड़ी को समुद्री क़ानून द्वारा नियम में परिवर्तन करने का प्रथम प्रयास पोप छठवें अलेग्ज़ंडर ने किया था। सन् १४८८ में बार्थलम्यू डायज़ ने अफ्रीका की रास गुड होप को पार किया और सन् १४९२ में स्पेन के सचिव कोलम्बस ने बहामा का पता लगाया था। पोप ने यह सोचा कि यदि समुद्र के विषय में कोई सिद्धान्त स्थिर न हुआ तो जो दशा क्रूसेड के समय हुई थी वही फिर भी होगी ईसाई लोग विधर्मियों को ईसाई बनाने के और उनका धन अपने राजा के ख़ज़ाने में ले जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मौक़ा पाने के लिए आपस ही में लड़ मरेंगे। अतएव इस भयंकर परिणाम को बचाने के लिए उसने अटलांटिक को दो भागों में विभक्त कर दिया, कुल पूर्व (और पश्चिम में ब्रेज़िल) पोर्चुगाल वालों का प्रभाव स्थान हो गया और ब्रेज़िल को छोड़कर समूचा पश्चिम स्पेन-वालों का क्षेत्र बन गया। पोप की आज्ञा में जितनी शक्ति थी उससे समुद्र को सर्व प्रथम किसी को स्वामी मानना पड़ा। ईसाई राज्यों ने अपने स्वार्थों के अनुसार इस आज्ञा के आगे सिर झुका लिए। इसके पांच साल बाद इङ्गलैंड के राजा सातवें हैनरी ने जान कैवट और उसके लड़कों को एक बड़े मार्के का आज्ञापत्र दिया। वह आज्ञा पत्र यह है:—

"हैनरी जो ईश्वर की कृपा से इङ्गलड, फ्रांस और आयर्लैंड का राजा है अपनी प्रिय प्रजा को सूचित करता है कि सब को यह विदित हो कि इस आज्ञा द्वारा हम वीनिस निवासी अपने प्रिय जान केवट को उसके लड़कों, उसके वारिसों और उसके गुमाश्तों को इस बात का अधिकार देते हैं कि वे हमारे झंडे को लगाकर पूर्व, पश्चिम और उत्तर के चाहे जिन बन्दरगाहों में जायँ, उन्हें अधिकार दिया जाता है कि वे अपने साथ चाहे जितने बड़े पांच जहाज़ रक्खें और अपने खर्च से चाहे जितने आदमी अपने साथ लेकर कहीं भी उन विधर्मियों के उन द्वीपों, देशों और अधिकृत प्रान्तों को खोजें और पता लगावें जिनका पता कुल ईसाइयों को नहीं लगा।"

देखिये इसमें पोप के आज्ञा पत्र का कितनी सावधानी से पालन किया गया है, केवट उत्तर, पूर्व, पश्चिम चाहे जहां जा सकता है किन्तु दक्षिण नहीं जा सकता। वह सिर्फ उन्हीं द्वीपों और देशों को खोज सकता है और पता लगा सकता है जो उस समय तक ईसाइयों को नहीं मालूम थे। केवट का मुख्य उद्देश्य यूरोप से भारतवर्ष के लिए उत्तर-पश्चिम होकर रास्ता दर्याफ़्त करना था। उसने यह निश्चय कर लिया था कि वे इस स्थान पर उद्योग न करेंगे जहां पर उन्हें स्पेन या पोर्चुगालवालों से मुठभेड़ होने का भय हो।

इसके बाद एक परिवर्तन हुआ। हेनरी आठवें ने अपने को रोम से अलग कर लिया—अर्थात् वह पोप की आज्ञा का उल्लङ्घन करने लगा। इससे इङ्गलैंड के साहसी मल्लाहों को 'स्पेन के राजा की दाढ़ी झुलसाने' का मौक़ा मिलने लगा—उन्हें स्पेनवालों के उस इजारे को धक्का पहुंचाने का समय मिला जो पोप ने उन्हें रिफ़र्मेशन (सुधार) के नाम पर दिया था। हमारे पास इतना स्थान नहीं है कि हम महारानी एलिज़बेथ के समय के ड्रेक या अन्यान्य समुद्री कप्तानों की कहानी वर्णन करें। किन्तु एक घटना का स्मरण दिलाना काफ़ी होगा। स्पेनिश एलची मैंडोज़ा ने महारानी से शिकायत की कि ड्रेक स्पेनिश समुद्र में ज़बर्दस्ती चला जाता है। एलिज़बेथ ने उत्तर दिया कि "तुम अपने स्वामी से कह देना कि

समुद्र का स्वत्व

किसी जाति या व्यक्ति को नहीं मिल सकता क्योंकि न तो प्रकृति ने ही कोई ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा है और न कभी साधारण प्रयोग या रीति ही ने यह सिद्धान्त स्थिर कर दिया है कि समुद्र किसी का भी अधिकृत है"। इस प्रकार समुद्र की स्वतन्त्रता स्थिर की गई। समुद्र किसी के भी अधिकार में नहीं रह सकता और न कोई किसी को उसका उपयोग करने के लिए इजारा ही दे सकता है। किन्तु इसके अर्थ यह नहीं थे कि समुद्र को सभी कोई मनमाने काम में ला सकते हैं। यह बात एलिज़बेथ के कप्तानों के कामों से स्पष्ट है क्योंकि उन्होंने टेम्स के बन्दर से हंसावालों के ६० जहाज़ इस बहाने पर पकड़ लिये कि वे इङ्गलैंड के शत्रुओं के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ व्यापार करते थे । समुद्र स्वतन्त्र थे—किन्तु उन्हीं के लिए जो क़ानूनी काम करने के लिए उसका उपयोग करते थे । यह बात संदेहजनक थी कि ड्रेक और हाकिन्स के काम क़ानून के अनुसार थे या क़ानून के विरुद्ध किन्तु मण्डोज़ा की यह शिकायत कि ड्रेक स्पेन के समुद्र में जाता था कमज़ोर थी। हां, यदि वह वहां ड्रेक के कामों के विरुद्ध शिकायत करता तो उनका बचाव करना कठिन हो जाता ।

एलिज़बेथ के शासन के बाद कितने ही अच्छे २ समुद्री मल्लाह नौकरी से छुड़ा दिये गये । वे समुद्री डाकेज़नी करने लगे । उनमें से कुछ बर्बर राज्यों (ट्रिपली, ट्यूनिस आदि) के यहां नौकर हो गये और "सैली रोवर्स" कहलाने लगे । शायद उनके काम उनके कप्तानों से भी गये बीते थे । जो कुछ भी हो यह कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ों ने स्पेनवालों की मनमानी को बन्द करके पोप के बनाये क़ानून को उलट दिया और कुछ समय तक (जब वे कुछ दिनों के लिए कमज़ोर हो गये थे) उन्हें इसका फल भी भोगना पड़ा । पहिले जेम्स ने यह घोषणा कर दी कि जो कोई डाकेज़नी को छोड़ देगा उसे क्षमा कर दिया जायगा । इसके उत्तर में एक बहुत ही बदनाम समुद्री डाकू जान एक्सटन ने कहा था कि "जब मैं एक तरह से स्वयं ही राजा हूं तब मुझे अपने राजा की आज्ञा मानने की पर्वाह नहीं है" । जेम्स यहां तक राज़ी था कि डच लोग आयर्लैंड के बन्दरों से डाकुओं के जहाज़ों को भगा दें । उस समय तक कोई ऐसी शक्ति नहीं थी कि जो मनुष्य जाति की भलाई के लिए समुद्र की रक्षा करे और स्वतन्त्रता उस समय तक ईर्ष्या का जामा पहिने हुए थी ।

पिछले ट्यूडरों और आरम्भ के स्टुअर्ट राजाओं के समय में समुद्री मामलों में जैसी गड़बड़ी थी उसका पता

डच लोगों की अवस्था

से लगता है । एम्स्टर्डम की स्थापना के अस्सी बरस बाद हालैंडवाले अपने मालिक स्पेनवालों से लड़ने लगे । किन्तु स्पेनी अंग्रेज़ों से भी लड़ रहे थे और इस कारण स्पेनवाले अपने एमेरिका के राज्यों से स्पेन में अपने जहाज़ों द्वारा माल लाना निरापद नहीं समझते थे। यद्यपि डच और अंग्रेज़ों में साथ देने की कोई सन्धि नहीं हुई थी तो भी अंग्रेज़ लोग डच जहाज़ों को नहीं पकड़ते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि एमेरिका से ख़ज़ाने का सोना डच जहाज़ों द्वारा आने लगा । इङ्गलैंड के निवासी धनी होने लगे । वे पूर्व में भी व्यापार करने लगे जहां कि पोर्चगालवाले व्यापार करते थे और इस प्रकार उन्होंने पोप की आज्ञा को एकदम ताक पर रख दिया, और पूर्व में वे स्पेन के सब से बलवान प्रतिद्वंद्वी हो गये। हमें यहां उन युद्धों के कारणों के बतलाने की आवश्यकता नहीं है जो दूसरे चार्ल्स और कामनवेल्थ के समय में हुए थे । जो असली कारण था वह मांक ने थोड़े ही स्पष्ट शब्दों में कह दिया है, उसने कहा है कि "हमें किसी कारण को बतलाने की क्या चिन्ता है । साफ़ बात यह है कि हम इस व्यापार का अधिक भाग लेना चाहते हैं जो इस समय डचवालों के हाथ में है" । उस समय व्यापारी युद्धों का समय स्पष्टतया आरम्भ हो गया । किन्तु इस शब्द

'व्यापारी युद्ध'

की कुछ व्याख्या कर देनी आवश्यक है । उस समय सभी इस बात को स्वीकार करते थे कि समुद्र द्वारा व्यापार करने का अधिकार सभी लोगों को है । केवल स्पेनी और एमेरिका के अधिकृत स्थानों के सम्बन्ध में दूसरों का यह अधिकार स्वीकार नहीं करते थे, किन्तु असल बात यह थी कि जि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातियों के पास समुद्र पार के उपनिवेश थे वे उन उपनिवेशों में दूसरे व्यापारियों को घुसने नहीं देना चाहते थे और वहां के व्यापार का इजारा अपने ही पास रखना चाहते थे। दूसरी बात जो वे चाहते थे यह थी कि समुद्र के माल को लेजाने का काम अपने ही अधिकार में रहे। क्रामवेल और द्वितीय चार्ल्स के नैवीगेशन ऐक्ट के पास करने का तात्पर्य प्रथम उद्देश्य की पूर्ति करना था और डच युद्ध का असली कारण यही था। नैवीगेशन ऐक्ट का आशय यह था कि बृटिश उपनिवेशों का माल केवल बृटिश जहाज़ों द्वारा ले जाया जाय और उन जहाज़ों के कम से कम दो तिहाई माझी अंग्रेज़ हों। इस ऐक्ट का प्रभाव डचवालों पर बहुत पड़ा, क्योंकि उस समय डचवालों के हाथ ही में व्यापारी माल की आमदरफ़्त थी। अपने भौगोलिक स्थान के कारण बृटेन ने अपना उद्देश्य पूरा कर लिया और डचवालों की सामुद्रिक शक्ति के नष्ट हो जाने से डच जहाज़ माल लेजाने के लिए अच्छे न समझे जाने लगे। एक तरफ़ समुद्र में बृटेन के इस कार्य से और दूसरी तरफ़ यूरोप के अन्य देशों के दबाव से हालैंड का समुद्र का आधिपत्य नष्ट हो गया तो भी उसका समुद्री स्थान बना रहा और आज भी उसका समुद्री स्थान आदरणीय समझा जाता है।

क़ानून विहित समुद्र की स्वतन्त्रता और स्वतन्त्रताहीन समुद्री क़ानून दोनों ही का प्रयोग किया गया किन्तु इनमें से किसी से भी समुद्र पर राष्ट्रों के अधिकारों की रक्षा न हो सकी। लोगों ने इजारा पाने का दावा किया और बराबर करते रहे किन्तु फिर भी यह दुहराना पड़ता है कि वे बन्दरगाहों का इजारा चाहते—वहां के रास्तों का इजारा नहीं चाहते—थे। किन्तु शीघ्र ही यह चाल चल गई कि इजारे में दख़ल देनेवाले पर रास्ते ही में—अर्थात् खुले समुद्र में—हमला कर दिया जाय और यही सब से सरल ढंग था भी।

प्रथम जार्ज के समय में वालपोल के शासन की शान्ति

"जैन्किन्स के कान"

के युद्ध से भंग हो गई। इस युद्ध का मूल कारण जानना बड़ा लाभदायक है। अंग्रेज़ों को यह अधिकार मिल गया था कि वे हर साल एक जहाज़ स्पेन के एमेरिकन उपनिवेशों में व्यापार करने के लिए भेज सकते थे। इस अधिकार का अर्थ बड़ी उदारता से लगाया गया था। अंग्रेज़ों के कई जहाज़ वहां जाते किन्तु केवल एक जहाज़ ही बन्दरगाह में जाता था। बचे हुए जहाज़ दूर खड़े रहते थे। दिन में जहाज़ से माल उतारा जाता था किन्तु रात में नावों द्वारा दूसरे जहाज़ों का माल भी इस जहाज़ पर चुपके से मँगा लिया जाता था। इसी तरह कुल जहाज़ों का माल इस एक जहाज़ द्वारा बन्दर में उतारा जाता था। अवश्य ही यह काम स्पेनी अफ़सरों से चुराकर किया जाता था। इस प्रकार की दूसरी भी क़ानून के ख़िलाफ़ बातें होती रहीं। ये सब काम स्पेन के उपनिवेश में रहनेवालों की सहायता से होते थे। स्पेनवालों ने यह नियम बना रक्खा था कि एमेरिका से जो माल स्पेन भेजा जाय वह स्पेन में केवल एक बन्दर में उतारा जाय। इस नियम से केवल कुछ पदार्थ ही बचे थे। इसका कुछ उपाय करना निष्फल था क्योंकि वहां के निवासी ही इस काम में सम्मिलित थे। इसलिए एमेरिका के किनारों की रक्षा करनेवाले स्पेनी जहाज़ खुले समुद्र में अन्य जहाज़ों को पकड़ लिया करते थे। उन जहाज़ों में उन्होंने जेन्किन्स नाम के एक अंग्रेज़ को भी पकड़ लिया और जैसा कि जेन्किन्स का कहना है उन्होंने उसके कान काट लिए और उससे कहा कि अपने राजा से कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देना कि यदि वह भी यहाँ आने का साहस करेगा तो उसकी भी ऐसी ही ख़ातिर की जायगी। जैन्किन्स ने इङ्गलैंड लौटकर कामन्स सभा की अदालत में अपना मुक़द्दमा दायर किया। उसकी कहानी से सारा इङ्गलैंड उत्तेजित हो गया। खासकर उसके उत्तर ने लोगों पर बड़ा ही असर किया। अदालत ने उससे पूछा कि उस समय तुमने क्या किया। तब जैन्किन्स ने उत्तर दिया कि मैंने अपनी आत्मा ईश्वर के सुपुर्द कर दी और अपना दुःख अपने देश के समर्पण कर दिया। अंग्रेज़ों ने स्पेन को लड़ाई की धमकी दी। यह युद्ध शीघ्र ही आस्ट्रियन सक्सेशन युद्ध में लीन हो गया। किंतु लोग यही समझते रहे कि वे समुद्र की स्वतंत्रता के लिए ही लड़ रहे हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय समुद्र की स्वतन्त्रता में बन्दरगाहों की स्वतन्त्रता सम्मिलित थी या नहीं।

इसके बाद अस्सी बरस बराबर युद्ध ही होता रहा। ज़मीन पर थोड़े दिन के लिए नाम की शान्ति हो भी जाती थी किन्तु समुद्र में बराबर लड़ाई ही होती रही। फ्रांस और इङ्गलैंड—और स्पेन बीच विचार करने के पचड़े में पड़कर—एमेरिका और भारतवर्ष के स्वामित्व के लिए लड़ते रहे। दूर देशों में और विशेषकर भारतवर्ष में उस समय भी लड़ाई होती रही जिस समय यूरोप में उनमें सुलह रही। व्यापार का यह हाल था कि यदि वह अपनी रक्षा स्वयं न कर सकता तो पकड़ लिया जाता। व्यापार का यह ढँग उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर था। प्रत्येक देश यही चाहता था कि उसके उपनिवेश से सिवाय उसके और कोई व्यापार न करे। इसके परिणाम-स्वरूप स्वयं उपनिवेशवालों की सहायता से उपनिवेशों में क़ानून के ख़िलाफ़ ढँगों से माल पहुंचाया जाता था। यह हालत ख़ासकर एमेरिका के पास वाले टापुओं में एमेरिका के स्वतन्त्र हो जाने के बाद भी बनी रही। ये स्वतन्त्रताप्राप्त उपनिवेशवाले उन अधिकारों से अपने को वंचित नहीं रखना चाहते थे जो उन्हें अंग्रेज़ी प्रजा की हैसियत से प्राप्त थे। अतएव आरम्भ में नेल्सन को इन अंग्रेज़ों द्वारा अधिकृत टापुओं में क़ानून के खिलाफ़ व्यापार को रोकने में बड़ा परिश्रम करना पड़ा।

ऐसी अवस्था में यह नहीं कहा जा सकता कि समुद्र की स्वतन्त्रता क़ायम थी। प्रत्येक देश यह कहता था कि हमारे जहाज़ (चाहे जहां भी क्यों न हों) हमारे राज्य के एक भाग हैं और इसलिए वे अपने जहाज़ पर अपने देश का क़ानून बर्तते थे। सन् १७७२ ई० में लार्ड मैन्सफ़ील्ड ने यह निश्चय किया था कि अंग्रेज़ी

अमलदारी में कोई भी दास

नहीं रह सकता। उस समय यूट्रेक्ट की सन्धि के अनुसार अंग्रेज़ों के पास अफ्रीका और एमेरिका के बीच का दासों के व्यापार का इजारा था किन्तु उस इजारे के होने पर भी नीग्रो दास समरसेट के विषय में यही निश्चय किया गया कि अंग्रेज़ जहाज़ पर पैर रखते ही आदमी का दासत्व से छुटकारा हो जाता है क्योंकि अंग्रेज़ी अमलदारी में ऐसा ही होता है और अंग्रेज़ी जहाज़ अंग्रेज़ी अमलदारी के एक हिस्से हैं।

इस तरह से शान्ति के समय में समुद्री स्वतन्त्रता का अर्थ बलवान की स्वतन्त्रता थी। भीतरी लड़ाई बराबर बनी रहती थी। क़ानून के ख़िलाफ़ माल लाने के लिए असंख्य क़ायदे थे और इस तरह के माल पकड़े जाने पर—पकड़नेवाला देश अपने यहां के क़ानून के अनुसार मुक़द्दमा करता था। इसके अलावा एफ्रिका की रियासतों के समुद्री डाकू तथा अन्य डाकू समुद्र में घूमा करते थे जिनको नष्ट करने का उपाय अन्य जातियां मिलकर नहीं करती थीं। एक देश का दूसरे देश के साथ अबाध्य व्यवसाय करने का क़ानून तो दूर किनार, उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान भी लोगों को नहीं था। प्रत्येक राष्ट्र अपने व्यवसाय-पथ के इजारे का दावा करता और अन्य राष्ट्र उसका प्रतिवाद करते थे।

युद्ध के समय एक प्रकार का क़ानून या रिवाज प्रचलित था। पहिले इस विषय में संदेह किया जाता है कि

उदासीन राष्ट्रों के जहाज़ों

में लदा शत्रु का माल पकड़ा जा सकता है या नहीं। किन्तु चूंकि अंग्रेज़ फ्रांसीसी युद्ध के समय फ्रांसीसी लोग अपने उपनिवेशों से उदासीन राष्ट्रों के जहाज़ों द्वारा माल मँगाने लगे तब अंग्रेज़ों ने यह निश्चय किया कि चूंकि वह माल यदि फ्रांसीसी जहाज़ों में होता तो ज़ब्त कर लिया जाता इसलिए उदासीन राष्ट्रों के जहाज़ों में होने के कारण वह बच नहीं सकता। अतएव "सन् १७५६ का प्रसिद्ध नियम" बना जो हमारे कुल कौंसिलों की आज्ञाओं और प्राइज़कोर्ट के नियमों की जड़ है। एमेरिकन स्वतंत्रता के समय जब हम यह नियम काम में लायें तब पहिले पहिल सशस्त्र उदासीनता का जन्म हुआ और डच लोग हमारे विरुद्ध उठ खड़े हुए। तब से यह प्रश्न नौइतिहास में बड़े महत्व का विषय हो गया है। नेपोलियन के युद्ध के समय यह नियम कुछ सुधार कर प्रचलित किया गया कि जिससे फ्रांसीसी अधिकृत बंदरों में जाने से पहिले प्रत्येक उदासीन जहाज़ को अंग्रेज़ों को कर देना पड़ता था। उस ओर नेपोलियन ने यूरोप से अंग्रेज़ी वस्तुओं का बहिष्कार करना चाहा—किन्तु उसे इसमें सफलता नहीं हुई। यह याद रखना चाहिये कि उस युद्ध में व्यापारिक ब्लाकेड का जो सिद्धान्त काम में लाया गया था वह इस युद्ध में प्रयुक्त किए सिद्धान्त के बिलकुल ही विरुद्ध था। यूरोप ने इङ्गलैंड का माल रोककर इङ्गलैंड का आर्थिक नाश करना चाहा। किन्तु इङ्गलैंड की यह इच्छा थी कि यूरोप में जो हम चाहें वह हमारा माल जाया करे और केवल उन उदासीन राष्ट्रों का माल जाया करे जो हमें कर दें। उसकी यह इच्छा पूरी हुई।

सन् १८१५ (नेपोलियन के अधःपतन) के बाद

इङ्गलैंड समुद्र का निश्चित स्वामी

हो गया, और उसने समुद्र के लिए क़ानून बनाने और उसकी रक्षा करने का काम आरम्भ किया। उसके पास सारे संसार में जगह बजगह समुद्र में उपयुक्त स्थान थे और यूरोप की शान्ति के समय उसने अपने यह अधिकार और भी बढ़ा लिये। भाप की कलों ने उसे सहायता दी क्योंकि भाप बनाने के कोयलों का उसके पास प्रायः इजारा सा था। दूसरी नाविक जातियां उसके आसरे हो गईं और उसने उनके लिए अपने बन्दर खोल दिये। वह उनके हाथ जहाज़ बेचने और उनकी प्रजा को अपने जहाज़ों पर माँझी बनाने लगा। इतना ही नहीं—उसने अपनी नौशक्ति और धन को समुद्री डाकेज़नी और दास-व्यापार को रोकने में पूरी तरह लगाया। उसने संसार के जलमार्गों की पैमाइश की, नक़्शे बनाये और रास्तों में लंगर डलवाये। आखिरकार क़ानून और स्वतंत्रता एक राष्ट्र के झंडे के नीचे मिली और उस राज्य ने अपनी अनुपम समुद्री शक्ति संसार की भलाई में लगाई। छोटे छोटे समुद्री व्यापार करनेवाले राष्ट्र—जैसे हालैंड, नार्वे, स्वीडन, डेन्मार्क और ग्रीस बृटेन के समुद्री आधिपत्य में समृद्धिशाली हुए। उन्हें अपने जल मार्ग के व्यापार की रक्षा के लिए नौ-सेना की आवश्यकता न रही। वह काम इङ्गलैंड अपने सिर ले लिया। इससे हमारा काम सिद्ध हुआ।

शान्ति का ज़िक्र छोड़कर युद्धों के समय आइए

उन्नीसवीं सदी

में यह हमारी नीति रही कि नाविक स्वार्थों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में हम अपने को युद्ध में न समझ कर अपने को ऐसा उदासीन राष्ट्र समझते थे जिसका सामुद्रिक स्वार्थ सब से अधिक है और जितने इक़रारनामों पर हमने हस्ताक्षर किये हैं उनमें हम अपने स्वार्थ उदासीन की तरह समझते थे। सन् १८५६ में पेरिस के डिक्लेरेशन में हमने इसी दृष्टि से हस्ताक्षर किये थे। स्वतन्त्र जहाज़ों का माल स्वतन्त्र था। उदासीन राष्ट्रों का माल यदि शत्रुओं के जहाज़ों में होता तो वह पकड़ा नहीं जा सकता था। वही ब्लाकेड उचित था जो प्रभावशाली होता। साधारण आदमियों के जहाज़ों के युद्ध में भाग लेने की प्रथा उठा दी गई--ऐसी और भी बातें हुईं। हम लोग छोटे मोटे झगड़ों की पर्वाह नहीं करते थे।

इसके बाद

युद्ध आरम्भ हुआ

और समुद्र की इस स्वतन्त्रता का--जिसको हमने स्थापित किया था और जिसकी हमने रक्षा की थी--एक छोटी समुद्री शक्ति ने एक नई तरह प्रतिवाद किया। हमारे शत्रु ने इन शब्दों को अपना तकिया क़लाम बना लिया और वह स्वयं प्रत्येक प्रकार से उसके विरुद्ध कार्य कर रहा था। यह नहीं कहा जा सकता कि जर्मन समुद्र की स्वतंत्रता का क्या अर्थ लगाते हैं। किंतु इसका यह तात्पर्य मालूम पड़ता है कि द्वीप निवासिनी जातियां एक स्थल शक्ति के पंजे में छोड़ दी जायँ, उसके अनुसार एक यूरोपियन लड़नेवाले देश को समुद्र पार से सहायता और सामान मँगाने का पूरा पूरा अधिकार ही न हो किन्तु उसे यह भी अधिकार हो कि वह बेरोक टोक स्वयं अपने जहाज़ बाहर भेज सके और जब तक कि वे शत्रु-देश के बिलकुल किनारे न पहुंच जायँ तब तक न पकड़े जा सकें। स्वतन्त्र और अत्याचारी मनुष्यों के बीच की रुकावट हटा दी जाय। समुद्र में रहनेवाली जातियां आनन्दपूर्वक न रह सकें। समुद्र में वे सेनाएँ बेरोक टोक जा सकें जिनका सामना स्थल पर न हो सके या इस समय जिनके लिए जलमार्ग द्वारा यात्रा करना भयानक है।

जर्मनी इस बात को नहीं छिपाता कि उसकी इच्छा युद्ध के समय स्वतन्त्रता पाने की है जिससे कि संसार-साम्राज्य के रास्ते में जो उसका सब से बड़ा कंटक है वह दूर हो जाय। इङ्गलैंड की कृपा से शान्तिपूर्वक व्यापार करने के लिए समुद्र अब भी स्वतन्त्र है। जर्मनी जिसके नैतिक सिद्धान्त समुद्री डाकुओं की तरह है यह चाहता है कि दुष्ट को फिर से और भी अधिक स्वतन्त्रता दे दी जाय।

यह भविष्य ही निश्चय कर सकता है कि भविष्य में कभी वह समय भी आवेगा जब एक ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय क़ानून बने जो जल और स्थल दोनों ही पर लागू हो। किन्तु अभी तक क़ानून राज्य की बड़ाई के ऊपर निर्भर रहा है और सच्ची स्वतन्त्रता—जो बलवान और कमज़ोर छोटे और बड़े सबके लिए समान है—अभी तक तभी मिली है जब एक देश इतना शक्तिशाली रहा कि उसने अपना आदर्श समुद्र पर लोगों से मनवाया। इस अर्थ के सिवाय दूसरे अर्थ में समुद्र की स्वतन्त्रता तभी मिल सकती है जब अन्तर्राष्ट्रीय तन्त्र स्थापित हो जाय। और तब युद्ध के युग का अन्त हो जायगा। शान्ति में उससे अधिक समुद्री स्वतंत्रता सम्भव नहीं जितनी वृटेन के शासन में सन् १८१५ और १९१४ के बीच में प्राप्य थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिक्कार ।

[लेखक—श्रीकान्त 'कुसुमाकर' ।]

जिस प्राणी के मन मंदिर में
नहीं विचरते भले विचार ।
नहीं जिसे परवाह मान की
उसके जीने को धिक्कार ॥
शक्ति शेष रहते हो जिसको
शत्रु दास होना स्वीकार ।
उसका मरना बुरा नहीं
दम रहे सहे जो अत्याचार ॥
आत्मशक्ति ही सत्य शक्ति है
देशभक्ति है भक्ति प्रमाण ।
जिसमें यह दो शक्ति नहीं है
वह प्राणी जीते अप्राण ॥
केवल स्वार्थ धर्म है जिसको
नहीं देश का जिसको ध्यान ।
नहीं सूझती जिसे उक्ति यह
कैसे हो स्वदेश कल्यान ॥
नर होकर भी नहीं हुआ
जिस नर को निज नरता का ज्ञान ।
पशुपक्षी से भी उतार है
जिसे न हित अनहित पहिचान ॥
बना रहे जो त्राण भिखारी
जिसमें नहीं आतम अभिमान ।
निस्सन्देह सत्य है कहना
उसका जीवन श्वान समान ॥
जिस प्राणी को कभी धर्म की
व्यथा नहीं करती बेचैन ।
अथवा जिसके हृदय सदन में,
जातीयता नाम को है न ॥
नहीं स्वप्न में आती जिसको
सुनिज पूर्वजों की कृति याद ।
अथवा जिसने मिला दिया हो
मिट्टी में अपनी मर्याद ॥
हुआ हीन जो निज कर्तव से
तथा जिसे दासत्व पसन्द ।
केवल निज प्राण हित जिसको
देता हो वैभव आनन्द ॥
हो सदैव उन्नत निज माथा
नहीं स्मरण जिसको यह पाठ ।
नर समान जीवन पाकर भी
बना रहा जो उकठा काठ ॥
बाहर गीदड़ के समान हो
बना रहे जो घर में वीर ।
स्वजनों पर प्राप्त प्रभुत्व हो
करता जो ऐसी तदबीर ॥
हाय हुये हम जिस कुबुद्धि के
कारण जग में बे बुनियाद ।
पड़कर जिसके फंद हुये हम
हाय ठोकरों से बरबाद ॥
जिनकी कुटिल चाल में फँस कर
निपट कलंकित हुआ स्वदेश ।
संगत बदली रंगत बदली
भाषा बदली बदला भेश ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुधार व्यवस्था में आर्थिक उत्तरदायित्व ।

[लेखक—श्रीयुत एन० एम० मजूमदार बी० ए०, बी० एस० सी०, एफ० आर० ई० एस०, बैरिस्टर-ऐट-ला।]

निम्न लिखित दो वाक्यों में सुधार-योजना का गुरुत्व-केन्द्र पाया जाता है :—

"जबतक कार्यकर्तागण नामज़द होंगे और उनके पृथक् करने का अधिकार प्रजा के प्रतिनिधियों को नहीं दिया जावेगा तबतक इस बात की आवश्यकता है कि अपने आवश्यकीय कार्यों के लिए पर्याप्त धन प्राप्त करने की शक्ति कार्यकर्ताओं को रहे। कांग्रेस-लीग योजना पार्लामेंट की प्रणाली के अनुरूप है, परन्तु वह ऐसी कार्य्य-कारिणी समिति के प्रधान रूप से विपरीत है जो सेक्रेटरी आफ़ स्टेट तथा पार्लामेंट के सन्मुख उत्तरदायी हो।" जिस मूल के आधार पर सुधार-योजना की रचना का प्रस्ताव है उसका संक्षेप रूप से उल्लेख इन पूर्वोक्त शब्दों में पाया जाता है। जहां तक भारतीय गवर्नमेंट का संबन्ध है कार्यकर्तागण नामज़द होंगे तथा उनके पृथक् करने का अधिकार प्रजावर्ग को न होगा और उनका पूरा २ नियंत्रण देश की आय पर होगा। प्रान्तीय गवर्नमेंटों के कार्यकर्तागण भी मिनिस्टर को छोड़ कर इसी प्रकार आय पर पूरा अधिकार रक्खेंगे, परन्तु मिनिस्टर को अपने विभागों के लिए धन प्राप्त करने की वैसी सुविधा न होगी जैसी कि उसके अधिक भाग्यशाली सहयोगियों को प्राप्त है।

यद्यपि प्रान्तीय गवर्नमेंट में आय पर कुछ अधिकार, जहां तक उसका 'परिवर्तित विषयों' से संबन्ध है, प्रजा के प्रतिनिधियों को दिया गया है, परन्तु भारतीय गवर्नमेंट में ऐसा कोई अधिकार प्रजा को नहीं प्राप्त है और ऐसे प्रबन्ध का यह कारण बताया जाता है कि भारतीय गवर्नमेंट को सेक्रेटरी आफ़ स्टेट तथा पार्लामेंट के प्रति अपना दायित्व स्थिर रखना चाहिये।

अच्छा होता यदि योजना के रचयिता सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के प्रति उत्तरदायित्व की बात ही न उठाते। जिस राजतंत्र में पार्लामेंट की प्रभुता पूर्ण रूप से है वहां साम्राज्य का कोई भाग भी crown के किसी सेवक के सन्मुख उत्तरदायी नहीं होता, परन्तु उसका दायित्व केवल तथा पूर्ण रूप से crown-in पार्लामेंट की ओर है। सेक्रेटरी आफ़ स्टेट क्राउन का एक कार्यकर्ता है और केबिनेट के सदस्य-रूप में केवल ब्रिटिश व्यवस्थापक सभा को भारतीय कार्यकारिणी समिति से संबद्ध करता है। ब्रिटिश राज्य-व्यवस्था में व्यक्तिगत गवर्नमेंट नहीं है और सेक्रेटरी आफ़ स्टेट तथा पार्लामेंट के प्रति भारतीय उत्तरदायित्व का प्रश्न उपस्थित करना मानो पार्लामेंट की समकक्षता की एक दूसरी शक्ति खड़ा करना है। कोई राजनैतिक अधिकार इससे अधिक नियम-विरुद्ध अथवा अधिक भय-संकुल नहीं हो सकता।

परन्तु इस नियम-दोष के अतिरिक्त भी पार्लामेंट के प्रति उत्तरदायित्व का सिद्धान्त, जैसा कि वह कार्य में परिणत होता है, अनुसन्धान की आवश्यकता रखता है। साम्राज्य के सब मामलों पर पार्लामेंट, वास्तव में यदि नहीं तो कम से कम सिद्धान्त में, अपना पूर्ण अधिकार कार्य-विभागों पर नियंत्रण-द्वारा प्रयोग करती है। जब से ईस्ट इंडिया कम्पनी का लोप हुआ तब से इंडिया आफ़िस उन विभागों में से एक है जिन पर पार्लामेंट का पूर्वोक्त नियंत्रण है। सिद्धान्त में, यह नियंत्रण एक राज-सचिव द्वारा प्रयुक्त होता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो पार्लामेंट के प्रति उत्तरदायी है और जिसके वेतन के सम्बन्ध में अब यह प्रस्ताव है कि वह ब्रिटिश स्टीमेट्स पर रक्खा जावे । वास्तव में स्टेट के बहुत से विभागों पर पार्लामेंट का नियंत्रण उस विशेष रूप से नहीं रहता है और न रह सकता है, जैसा कि कुछ अन्य विभागों पर रहता है । होम आफ़िस, एडमिराल्टी, वार आफिस, लोकल गवर्नमेंट, बोर्ड, बोर्ड आफ़ ट्रेड और कुछ अन्य विभाग ऐसे हैं जिनपर स्वाभाविक रीति से पार्लामेंट का नियंत्रण विशेष रूप से रहता है और जिन पर कम से कम इंडिया आफ़िस की अपेक्षा पार्लामेंट कहीं अधिक दृष्टि रखती है । वास्तव में कुछ दिनों से पार्लामेंट के कार्य का भार इतना बढ़ गया है कि यह समुचित प्रतीत हुआ कि जहां तक संभव हो कार्य का अधिक से अधिक भाग उन प्रधान शक्तियों के हाथ सौंप दिया जावे जो पार्लामेंट के प्रति उत्तरदायी रहें ।

आयर्लैंड ही को ले लीजिये । आयर्लैंड को स्वराज्य देने के समर्थन में सब से बड़ी दलील यही पेश की जाती है कि पार्लामेंट में कार्य का आधिक्य है । आयर्लैंड ने देखा कि ब्रिटिश पार्लामेंट को इतना समय नहीं है कि वह उसकी आवश्यकतानुसार नियम-विधान करे । एक धनवान पड़ोसी के साथ रहने से एक निर्धन मनुष्य की जो अवस्था होती है वही आयर्लैंड की हुई और प्रत्येक कार्य में उसको अपनी इच्छा के विरुद्ध अधिक धन व्यय करना पड़ा । बुढ़ापे की पेंशन, मज़दूरी या विनिमय, नेशनल इन्श्योरेन्स इत्यादि पर उसको अधिक रुपया व्यय करना पड़ा और इसका फल यह हुआ कि आयर्लैंड की गवर्नमेंट का ख़र्च एक दम बहुत बढ़ गया । ऐसा प्रस्ताव हुआ है कि न केवल आयर्लैंड को वरन् स्काटलैंड और वेल्स को भी स्वराज्य के अधिकार प्रदान किये जायँ, जिससे वेस्ट मिनिस्टरका भार कम हो । अब तक कदाचित् ही पार्लामेंट भारतीय मामलों की देख-रेख कर सकी हो । साधारणतः पार्लामेंट की बैठक के अन्तिम भाग में, एक दिन जब कि सदस्य शिथिल हो जाते हैं, भारतीय बजट पर विचार होता है । सम्मति भी नहीं ली जाती । कभी २ कोई माननीय सदस्य सेक्रेटरी आफ़ स्टेट्स से भारत के सम्बन्ध में प्रश्न पूछ लेता है । कभी किसी ने हाउस आफ़ कामन्स में भारतीय मामलों पर एक आध प्रस्ताव पेश कर दिया तो कर दिया । परन्तु इस प्रकार से जो नियंत्रण प्रयुक्त होती है उसकी सीमा बहुत ही परिमित है । कई वर्ष हुए हाउस आफ़ कामन्स ने इन्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा भारतवर्ष में भी होने के पक्ष में प्रस्ताव स्वीकृत किया था, परन्तु न तो सेक्रेटरी आफ़ स्टेट्स ने और न भारत-गवर्नमेंट ने ही इस विषय में हाउस आफ़ कामन्स की अभिलाषा की अपेक्षा की ।

यह एक ही उदाहरण है, परन्तु इससे स्पष्ट रीति से प्रगट हो जाता है कि हाउस आफ़ कामन्स का भारतीय मामलों पर अधिकार कहां तक वास्तविक है ।

यह कदाचित् कहा जावे कि सेक्रेटरी आफ़ स्टेट्स का वेतन इम्पीरियल स्टीमेट्स के अनुसार नियत करने से विशेष रूप से नियंत्रण हो सकेगा. इसका यह फल अवश्य होगा कि यह 'स्टीमेट्स' सम्बन्धी वाद-विवाद होते समय सेक्रेटरी आफ़ स्टेट्स को पार्लामेंट के कुछ अधिक अनुयोगाधीन बना देगा, परन्तु इसमें सन्देह है कि जब एक बार उनके वेतन का निश्चय हो गया तब वास्तव में उन पर अधिकांश में अधिकार का प्रयोग किया जावेगा या नहीं । सन्धि होने के पश्चात् पार्लामेंट पहिले से कहीं अधिक सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाओं के अवश्यम्भाव पुनर्निर्माण के कार्य में व्यग्र रहेगी और यदि इच्छा भी हो तो भी उसको इतना समय न मिलेगा कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मामलों का सूक्ष्मरूप से अन्वेषण करे। इसके अतिरिक्त केवल उन्हीं सदस्यों के प्रस्ताव पर नियंत्रण का प्रयोग हो सकता है जो भारतीय मामलों से परिचित हैं, ऐसे सदस्यों की संख्या बहुत थोड़ी है। यथार्थ में भारतवर्ष का अनुभव है कि अन्ततोगत्वा हाउस आफ़ कामन्स में केवल थोड़े ही से मित्रों का आप आश्रय ले सकते हैं। जब तक भारतवर्ष अपने प्रतिनिधि हाउस आफ़ कामन्स में स्वयं नहीं भेजता तब तक भारतीय मामलों पर ऐसे नियंत्रण का प्रयोग नहीं हो सकता जिसे हम नियंत्रण कह सकते हैं। इसका युक्तिसंगत फल यह होगा कि भारतीय गवर्नमेंट प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा, विशेषकर आय-सम्बन्धी विषयों में, अनियंत्रित रह कर वस्तुतः पार्लामेंट के भी अनुयोगाधीन न रहेगी। आय ही वह कीली है जिस पर राष्ट्र परिभ्रमित होता है और जब प्रजा के प्रतिनिधियों का कोष पर कुछ अधिकार न रहेगा तब उनका साधारण कार्यों पर भी वास्तविक नियंत्रण न रहेगा।

यह सम्भव है कि इन्डस्ट्रियल कमीशन की रिपोर्ट पर व्यावसायिक पुनर्निर्माण की नीति का अवलम्बन किया जावे। परन्तु ऐसी नीति की सफलता द्रव्य-विधान पर निर्भर है और चूंकि भारतीय व्यवस्थापक सभा का आय पर अधिकार न रहेगा इस कारण वस्तुतः इसका कोई नियंत्रण व्यवसाय-सम्बन्धी नीति पर भी न होगा। इसका तात्पर्य यह है कि प्रजावर्ग के प्रतिनिधि अपने देश के आर्थिक लाभ की रक्षा न कर सकेंगे।

इसके अन्तर्गत आय-सम्बन्धी स्वतंत्रता का अत्यावश्यक प्रश्न है। इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है। सुयोग्य पुरुषों ने इस विषय पर भिन्न २ अवसरों पर वादविवाद किया है और प्रायः सब का मत यह है कि अब समय आगया है कि ऐसी स्वतंत्रता के प्रदान करने में विलम्ब न हो। शुल्क का प्रश्न आर्थिक दशा से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है और यदि देश के निवासियों के लाभार्थ आर्थिक उन्नति करना है तो इस अभिप्राय को फलीभूत करने के लिए यह सर्वथा आवश्यक है कि प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में देश की आय पर पूरा २ अधिकार हो। राजनैतिक संगठन की कोई योजना जो इस आवश्यक प्रश्न का सन्तोषप्रद उत्तर नहीं देती उपयुक्त नहीं है और कोई राजनैतिक संस्था जिसकी रचना आर्थिक स्वतंत्रता की भित्ति पर नहीं हुई है वह अन्त में अपना अभिप्राय प्राप्त करने में विफल रहेगी।

मांटेगू-चेम्सफोर्ड योजना का अभिप्राय आनुक्रमिक पाठों-द्वारा जनता को राजनैतिक शिक्षा प्राप्त कराना बताया जाता है। यदि प्रजा के प्रतिनिधियों को आर्थिक स्वतंत्रता न दी गई तो यह अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता।

प्रान्तीय गवर्नमेंटों में भी जो कुछ आय पर नियंत्रण प्रजा के प्रतिनिधियों को प्रदान किया गया है उसकी सीमा इस प्रकार नियमित करने का प्रस्ताव किया गया है कि उस नियंत्रण का मूल्य वर्तमान नियंत्रण से अधिक नहीं ठहराया जा सकता। कार्यकारिणी समिति के सदस्य तथा भारतीय सचिवों में भेदभाव रक्खा जायगा और शासन को दो भागों में विभाजित करने का प्रस्ताव किया जाता है। अवशिष्ट विषयों का प्रान्तीय आय पर प्रधान अधिकार रहेगा। वस्तुतः व्यवस्थापक सभा को इस बात का अधिकार न होगा कि वह रक्षित विभागों पर जो धन व्यय करना निश्चित हो उसमें कुछ हस्तक्षेप करे, क्योंकि गवर्नर यदि चाहे तो इस बात का निर्णय-पत्र दे सकता है कि इस प्रकार धन व्यय करना आवश्यक है। भारतीय मंत्री को या तो अपनी अवस्था से संतुष्ट रहना पड़ेगा अथवा अधिक धन प्राप्त करने के लिए टैक्स लगाना पड़ेगा। टैक्स लगाने का कठिन कार्य भारतीय मंत्री पर ही छोड़ा गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यद्यपि मंत्री के कहने का कुछ भी प्रभाव नहीं है तथापि जो धन रक्षित विभागों पर व्यय किया जावेगा उसका उत्तरदायित्व मंत्री पर भी रहेगा। मंत्री तथा कार्यकारिणी समिति के बीच जो मतभेद होगा उसका निर्णय गवर्नर के हाथ होगा, भारतीय मंत्री को निरन्तर कार्यकारिणी समिति से विवाद करना पड़ेगा। ऐसी अवस्था में यह नहीं समझ में आता कि किस प्रकार भारतीय मंत्री अपने कर्तव्यपालन में सफल हो सकेगा, और जब १० वर्ष के अनन्तर कमीशन-द्वारा शासन-विषयक योग्यता की परीक्षा होगी तब उसका निर्णय यह होगा कि हम लोग इस योग्य नहीं हैं कि उत्तरदायी शासन के मार्ग पर आगे बढ़ें और तब हम से कुछ वर्ष तक प्रतीक्षा करने को कहा जावेगा। इस प्रकार कदाचित् पहिला राजनैतिक पाठ फिर से पढ़ाया जावेगा।

चूंकि भारतीय गवर्नमेंट सेक्रेटरी आफ़ स्टेट्स तथा पार्लामेंट के प्रति उत्तरदायी है, इसलिए यदि हम मान लें कि कांग्रे-सलीग की आय-सम्बन्धी स्वतंत्रता की मांग कल्पनामात्र है और यह भी मान लें कि पार्लामेंट को भारतीय मामलों का पर्याप्त रूप से ज्ञान प्राप्त है तो प्रान्तीय आय-प्रबन्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव कम अनौचित्य के साथ भारतीय गवर्नमेंट को लागू हो सकता है। परन्तु यदि प्रान्तीय गवर्नमेंट को राजनैतिक शिक्षा का साधन बनाना है तो प्रान्तीय शासन में स्वतंत्रता देना उपयुक्त ही है। और जब तक प्रान्तीय आय-सम्बन्धी पूरी स्वतंत्रता न होगी तब तक प्रान्तीय शासन में स्वतंत्रता का होना असम्भव है। कोई प्रान्त उस समय तक राजनीति की शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकता जब तक आय-सम्बन्धी प्रबन्ध की समुचित शिक्षा उसको न मिल जावे। भारतीय गवर्नमेंट में परिवर्तन किये बिना प्रान्तीय शासन को अंशतः भी सार्वलौकिक बनाने का प्रयत्न निश्चय ही योजना को विफल कर देगा।

योजना के रचयिताओं का कहना है कि राजकर गवर्नमेंट का वाहन है, और जब तक कि कार्यकारिणी समिति को इस बात की शक्ति न प्रदान की जावे कि वह अपनी आवश्यकताओं के अनुसार धन एकत्र करे और उसको अपनी इच्छानुसार व्यय करे तब तक वह शासन के लिए उत्तरदायी नहीं रह सकती।

इसमें सन्देह नहीं कि राजकर गवर्नमेंट का वाहन है। परन्तु यह भी सत्य है कि जनता के प्रतिनिधियों को शासन के लिए केवल धन एकत्र करने की ही शक्ति प्रदान की जावेगी, परन्तु जब तक वह उसे परिवर्तित विषयों के महत्व के अनुसार व्यय न कर सकेगी तब तक वह स्वायत्त-शासन का कुछ भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकती। आप बिना जल में गये हुए तैरना नहीं सीख सकते।

यदि यह थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जावे कि कार्यकारिणी समिति को अपनी आवश्यकतानुसार धन एकत्र करने तथा उसको अपनी इच्छानुसार व्यय करने की क्षमता होनी चाहिये, यदि आप उसको शासन के लिए उत्तरदायी बनाना चाहते हैं, तो सम्भवतः यह प्रश्न उठता है कि किसके प्रति कार्यकारिणी समिति का उत्तरदायित्व होगा? सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के प्रति उत्तरदायित्व का विधान करना व्यवस्था के सर्वथा विपरीत होगा, अतः पार्लामेंट ही केवल एक ऐसी संस्था है जिसके प्रति कार्यकारिणी समिति उत्तरदायी हो सकती है। परन्तु पार्लामेंट यद्यपि प्रधानाधिकार रखती है तथापि जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं उसका संगठन ही ऐसा है कि वह भारतीय मामलों पर साधारण से अधिक नियंत्रण प्रयोग करने में असमर्थ है और वह इस बात के लिए बाध्य है कि वह अपने अधिकार केवल एक सेक्रेटरी आफ़ स्टेट को नहीं वरन् किसी एक ऐसे स्थानीय समुदाय को सौंपे जो भारत की दशा से अधिक परिचित हो। सेक्रेटरी आफ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टेट आते जाते रहते हैं, परन्तु देश के निवासी सदा रहते हैं। अधिकार का बृहत् अंश प्रजा के प्रतिनिधियों के हाथ में ही रहना चाहिये। परन्तु यदि यह कहा जावे, जैसा कि योजना में कहा गया है, कि भारतवर्ष में जो सज्जन प्रतिनिधि चुने जाते हैं वह सच्चे प्रतिनिधि नहीं होते तो इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि नामज़द करने की प्रथा सच्चे प्रतिनिधि प्राप्त करने को किसी प्रकार उत्तम युक्ति नहीं हो सकती। व्यवस्थापक सभा के सब प्रतिनिधि यदि जनता द्वारा चुने जावें तो वह कठिनता जिसको इस समय दायित्वपूर्ण शासन के प्रदान करने के विरुद्ध बतौर एक युक्ति के लोग उपस्थित करते हैं, सर्वथा दूर हो जावेगी।

योजना के रचयिता एक पद और आगे हैं, और उनका कहना है कि यदि प्रतिनिधियों को इस बात की शक्ति दे दी जावे कि वह शासन के लिए आवश्यक धन देना अङ्गीकार करें या न करें तो गवर्नमेंट की शक्ति जड़ीभूत हो जावेगी। परन्तु उनकी ऐसी धारणा क्यों है कि प्रजा के प्रतिनिधि शासन के लिए आवश्यक वोट न देंगे। यदि वे ऐसा विश्वास रख सकते हैं कि गवर्नर बहुतायत से निर्णय-पत्र न देंगे और वह अपने मंत्री अथवा व्यवस्थापक सभा का विरोध तथा निराकरण उपयुक्त स्थान ही पर करेंगे तो निस्संदेह वे जनता के प्रतिनिधियों पर विश्वास रख सकते हैं कि वह देश को हानि पहुंचाने के लिए शासन को जड़ीभूत न कर देंगे।

१५० वर्ष के शासन के अनन्तर यदि सिविल-सर्विस ही एक ऐसी संस्था है जो इस बात की योग्यता रखती है कि वह बतावे कि देश के शासन के लिए क्या हितकर है और क्या अनर्थकारी है तो वह पद्धति जो अपने कर्मचारियों को इतना अधिकार देती है सर्वथा निन्द्य है। उसके दोष स्वतः सिद्ध हैं, इनके लिए किसी युक्ति का सहारा नहीं लेना पड़ेगा। भारतीय शासन को पूर्ण रूप से ऐसे कर्मचारियों के अधीन रखना, जो बिना किसी भारत-सम्बन्धी अनुभव के लन्दन में परीक्षा द्वारा अथवा सेक्रटरी आफ़ स्टेट्स द्वारा नियुक्त होते हैं, मानो उन उद्देश्यों पर कुठाराघात करना है जिनकी पूर्ति करना योजना का मुख्य अभिप्राय कहा जाता है।

सच तो यह है कि प्रतिनिधिभूत संस्था तथा स्वेच्छाचारी शासन परस्पर विरोधी हैं। विशेषकर जहां तक आय का सम्बन्ध है अधिकार एक से अधिक समुदाय में विभाजित नहीं हो सकता। निर्वाचित व्यवस्थापक सभा तथा आय-सम्बन्धी अननुयोगाधीनता एक दूसरे के विरोधी हैं। और पार्लमेंट के प्रति उत्तरदायित्व का विधान करना उपयुक्त न होगा, क्योंकि यदि मान भी लिया जावे कि पार्लमेंट को सन्धि के पश्चात् समय रहेगा तब भी वह केवल साधारण देखरेख रख सकती है। किसी गवर्नमेंट की उत्तरोत्तर वृद्धि नहीं हो सकती जब तक कि उसको अग्रसर करने के लिए कोई नियंत्रण करनेवाली शक्ति उसके पीछे न रहे।

ब्रिटेन में भी कर्मचारीगण परिवर्तन के विरोधी रहे हैं। यह हो सकता है कि भारत में एक आध शासक बड़े अच्छे हों, परन्तु इस बात की आवश्यकता है कि वह उन लोगों के अनुवर्ती हों जो विस्तीर्ण दृष्टि के हैं और जो प्रजा की अवस्था, इच्छा तथा आवश्यकताओं को ठीक २ बता सकते हैं। किसी प्रकार का प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन किसी अन्य अवस्था में सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता।

लगभग ७५ वर्ष हुए, कैनेडा में एक उत्तम राजनैतिक शिक्षा संसार को मिली थी। सन् १७९१ ईस्वी में ब्रिटिश साउथ एमेरिका के उपनिवेशों को निर्वाचित सभाएँ दी गई थीं और कैनेडा दो भागों में विभाजित हुआ था। पहिला पूर्ण रूप से ब्रिटिश था और दूसरे में मुख्य फ्रेंच थे। परन्तु राजनैतिक शक्ति में वृद्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से जातीय तथा आर्थिक विरोध इतना बढ़ा कि शीघ्र ही कैनेडा का सार्वजनिक जीवन एक भूलभुलैयां सा हो गया जहां कि सब लोग अपना मार्ग ही भूल गये। सन् १८३७ ई० में राजविद्रोह हुआ जो शीघ्र ही दबा दिया गया। लार्ड डरहम शान्ति स्थापित करने को भेजे गये थे। उन्होंने वहां के दो प्रसिद्ध सज्जनों को बिना किसी अधिकार के देश निष्कासनी का दंड दिया, जिसका फल यह हुआ कि अंग्रेज़ नीतिज्ञों ने उनके इस कार्य की निन्दा की और उनको अपना पदत्याग करना पड़ा। परन्तु जो रिपोर्ट लार्ड डरहम ने नार्थ एमेरिका के सम्बन्ध में प्रकाशित की थी वह आज भी ब्रिटिश उपनिवेश-शासन के इतिहास में एक उज्ज्वल लेख है। उनका प्रस्ताव अपर और लोअर कैनेडा को मिलाने का था और सन् १८४० ई० में उन्हींके प्रस्ताव के अनुसार कार्य किया गया। उस समय की शासनपद्धति में लार्ड डरहम के अनुसार यह बड़ा दोष था कि कार्यकर्ताओं तथा प्रजा के प्रतिनिधियों में परस्पर विरोध था। लार्ड डरहम ने उस समय लिखा था कि यह समझना अत्यन्त कठिन है कि किस प्रकार कोई अंग्रेज़ नीतिज्ञ यह कल्पना कर सकता है कि प्रतिनिधिसत्तात्मक तथा स्वेच्छाचारी शासन का समवाय सफलतापूर्वक कार्य कर सकेगा। आपने अपनी रिपोर्ट में यह भी कहा था कि प्रतिनिधि-सभा तथा गवर्नमेंट का परस्पर विरोध उस पद्धति का अपरिहार्य परिणाम है जो प्रजा के प्रतिनिधियों को उनके न्यायसंगत अधिकारों से वंचित रखती है। अपने नैसर्गिक स्वत्वों को प्राप्त करने के लिए प्रतिनिधि-सभा का शासक-मंडल से निरन्तर विरोध था और इसका कारण लार्ड डरहम की यह सम्मति थी कि Crown यदि शासन का कार्य प्रतिनिधियों की इच्छा के अनुसार संपादित करना चाहती है तो उसका कर्तव्य है कि राज्य का शासन उन लोगों द्वारा हो जिन पर प्रतिनिधियों का विश्वास हो। लार्ड डरहम ने इस दुरवस्था का एक बड़ा सुगम उपचार बताया। आपने प्रस्ताव किया कि अंग्रेज़ी ढंग के मंत्रि-मंडल की प्रथा प्रचारित की जावे और गवर्नर प्रतिनिधि-सभा के उन सदस्यों के हाथ शासन का भार सौंपे जो प्रतिनिधि-सभा के विश्वासपात्र हों। मंत्री प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी रहें और गवर्नर केवल व्यवस्थानुरूप शासक रहे।

यही प्रश्न यहां भी उपस्थित है और जो उपचार लार्ड डरहम ने कैनेडा के लिए बतलाया था वही एक ऐसा प्रतिकार-विधान हो सकता है जो सब कठिनाइयों को दूर कर सकता है। भारतीय शासन-प्रबन्ध-सम्बन्धी सुधारों की योजना अपनी वर्तमान अवस्था में उन्हीं दोषों को उत्पन्न करेगी जिनके दूर करने के लिए कैनेडा को सम तथा स्थिर शासन-प्रणाली देनी पड़ी थी। पूर्व के अनुभव से हमको बोध होना चाहिये कि हम ऐसे विधान करें जिनसे आपत्तियों की सम्भावना बहुत कम हो जावे। उन्हीं ग़लतियों को दुहराना, जिनके दूर करने में साम्राज्य के दूसरे भाग में बहुत काल लगा है, व्यर्थ होगा। ऐसे यंत्र के स्थापित करने से कोई लाभ नहीं जो केवल रगड़ से चल सकता है। ऐसी प्रणाली का सूत्रपात करने से क्या लाभ जो प्रजा के प्रतिनिधियों को अपने नैसर्गिक स्वत्वों से वंचित रक्खेगी और जिसका अपरिहार्य परिणाम यह होगा कि शासक-मंडल के साथ विरोध पैदा होगा। यदि सुधार-योजना का उद्देश्य, जैसा कि कहा जाता है, यह है कि प्रजा को दायित्वपूर्ण शासन के योग्य बनावें और जनता को स्वायत्त-शासन की शिक्षा मिले तो यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि योजना के विधान उन उद्देश्यों की पूर्ति करने की तनिक भी क्षमता नहीं रखते। क्योंकि आप किसी मनुष्य को प्रचंड वात से क्षुब्ध जल में फेंकने से तैरना नहीं सिखला सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कौनसा मौलिक तत्व है जिसके आधार पर ब्रिटिश डोमिनियन में स्वायत्त-शासन का विकास हुआ है? वह तत्व यह है कि उन उपनिवेशों का प्रबन्ध लंदन से नहीं हो सकता जो लंदन से दूर हैं, ब्रिटिश राजनैतिक संस्थाओं की मूल भित्ति प्रतिनिधि सत्तात्मक शासन है; ऐसी गवर्नमेंट का समवाय ऐसे गवर्नर-अधीन शासन से नहीं हो सकता जो प्रतिनिधि सभा के अधीन नहीं है और इन कठिनाइयों के दूर करने का एकमात्र उपाय यही है कि डोमिनियन के निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति कौंसिल अथवा मंत्रिगण उत्तरदायी रहें। पार्लामेंट का प्रधान तथा अंतिम नियंत्रण सुरक्षित रहता है। क्योंकि जो देता है वह ले भी सकता है। इसी आधार पर ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीन राज्यों का विकास हुआ है और इसी आधार पर उन ग्रंथियों का विकास हुआ है जो उनको इङ्गलैंड से सम्बद्ध करती हैं और जिसके सम्बन्ध में पहिले यह विचार किया जाता था कि वह इतनी क्षीण शक्ति है कि अभितप्त होने पर टूट जावेंगी, परन्तु इस महाभारत में प्रमाणित हो चुका है कि ऐसी शंका करना सर्वथा अनुचित है। सम्बन्ध-विच्छेद होने के स्थान में अब वह उसके और भी सन्निकट हैं, क्योंकि जब तक कि हृदय निरोग है और शरीर के अवयवों की असंबाध गति है तब तक समस्त शरीर स्वस्थ रहता है और उसके बल की वृद्धि होती है, तथा समस्त शरीर एकतान होकर सामान्य रक्षा, लाभ तथा वृद्धि की चेष्टा करता है।

वीर-प्रतिज्ञा।

सत्य को न त्यागै अरु भाखै ना असत्य कहूं,
चिन्ता नहिं छोड़ै जौ लौं कारज न सर जाय।
धीरज को न छोड़ै अरु धावै नहीं धाम धाम,
दीनता न भाखै चहै सिर हू उतर जाय॥
हाथ हू पसारै नहीं सूमन के आगे कहूं,
भाखत 'विदग्ध' कमला हू नाहिं फिर जाय।
इन्द्र बज्र छूटै अरु टूटै गिरिराज शीश,
वीर ठान ठानै तो न कबहूं मुकर जाय॥

अन्योक्ति।

खेता निज नैया सदा, जो नाविक निज हाथ।
पार पहुंचता है वही, भँवर बीच, प्रण साथ॥
भँवर बीच प्रण साथ, नित्य निर्भय रहता है।
आँधी, पानी गिरे, किन्तु सब कुछ सहता है॥
कहत 'विदग्ध' पुकार, वही है पूर्ण विजेता।
जीर्ण प्राय हो नाव, स्वयं कर से पर खेता॥१॥

देता किसको कौन सुख, कह दो हम से मित्र।
मतलब का संसार है, अद्भुत है यह चित्र।
अद्भुत है यह चित्र, स्वार्थ से जगत सना है।
अपना अपना दाँव, सभी को सदा बना है।
कहत 'विदग्ध' पुकार, रहो मन में न अचेता।
अपने कर से करो, यही जीवन सुख देता॥२॥

"विदग्ध"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र-संघ।

[लेखक-पं० काशीप्रसाद पाण्डेय एम० ए० ।]

इस लेख में राष्ट्र-संघ पर विचार करना चाहते हैं। विषय बहुत गहन है, क्योंकि पहिले तो इस देश में इस विषय पर बहुत थोड़ा साहित्य मिलता है, दूसरे जो साहित्य मिलता है उससे स्पष्ट तथा हस्तामलक ज्ञान नहीं होता। इस विषय की परिभाषा यूरोप में ही अब तक ठीक नहीं हुई है। जिस समय राष्ट्रपति विलसन ने अपनी १४ बातों को प्रकट किया था उस समय इस राष्ट्र-संघ के प्रतिकूल ही सब देशों के भाव थे। जर्मनी इम्पीरियल चैंसेलर ने तो भले ही कहा कि "क़ैसर को तो ऐसे आन्दोलन के नेता होने में ही कुछ अड़चन नहीं है", परन्तु अन्य शक्तियों ने इस प्रश्न पर सन्तोष नहीं प्रकट किया। संभव है कि जर्मनी की स्वीकृति के कारण उन्हें इसके हित में शंका हो गई हो। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जर्मनी के विधाता बिसमार्क ने राजनीतिज्ञों के शंकित स्वभाव को इस वार प्रकट किया था। मुझे जो कुछ करना होता है मैं उसे स्पष्टरूप से कह देता हूं, परन्तु लोग उसमें शंका करने लगते हैं और धोखा खाते हैं—परन्तु मेरा काम निकला जाता है—ठीक ऐसी ही दशा एमेरिका के राष्ट्र-संघ के प्रस्ताव पर भी हुई है। लोगों को शंका होने लगी। यद्यपि राष्ट्रपति विलसन ने अपने विचारों को खुले तौर से प्रकट कर दिया था, परन्तु राजनीतिज्ञों के हृदय से शंकाएँ नहीं गईं। सभ्य जातियों की एक ऐसी संस्था की आवश्यकता है, (१) जो सदा के लिए मनुष्य जाति के स्वत्वों पर के हर एक आक्रमण को रोके, (२) जो संधि और न्याय की जड़ को और भी सुरक्षित रखने के लिए ऐसे राष्ट्रों की पंचायत का संगठन करे जो उनके सब झगड़ों को, जो आपस में तय नहीं हो सकते, मेट सकें।* वाशिङ्गटन की समाधि की वक्तृता में इस सिद्धान्त की व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है। अठारह महीने के पश्चात् फिर राष्ट्रपति ने सब राज्यों के मतभेद को देखकर पुनः कहा कि—"हम जिस बात की खोज कर रहे हैं वह वह संस्था है जिसके आधार शासित हैं और जो मानव-जाति के संगठित विचारों से अनुमोदित है। अर्थात् एक ऐसी संस्था हो जो जनता के विचारों को प्रकट कर सके।

इन बातों पर कुछ स्पष्टरूप से विचार नहीं हुआ, परन्तु दिन प्रति दिन यह विचार ज़ोर पकड़ता ही गया। यहां तक कि १० जनवरी १९१७ को लायड जार्ज को कहना ही पड़ा कि "मित्र-मंडल भी इस सम्बन्ध में प्रेसीडेंट विलसन के साथ ही है।"

भूतपूर्व प्रधान मंत्री एस्क्विथ तथा लार्ड ग्रे ने भी इस सिद्धान्त का अनुमोदन किया, परंतु अंग्रेज़ों को यह सिद्धान्त रुचता नहीं दिखाई दिया। जब तक युद्ध रहा तब तक तो लायड जार्ज तथा अन्य मंत्रीगण योंही टालते रहे कि "विजय सब से पहिले प्राप्त करना चाहिये उसके पहिले इस प्रश्न पर विचार करना अनावश्यक

*The establishment of an organisation of peace which shall make it certain that the combined powers of free nations will check every invasion of rights and serve to make peace and justice the more secure by affording a definite tribunal of opinion to which all must submit and by which every international readjustment that cannot be amicably agreed upon by the peoples directly concerned shall be sanctioned."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है"। जब विजय के कुछ चिह्न दिखलाई पड़ने लगे तो इस प्रश्न पर लार्ड पारमूर, वाईकाउन्ट ग्रे इत्यादि नेताओं ने विचार प्रारंभ किया।

यहां पाठकों को हम यह बतला देना चाहते हैं कि उदारदल तथा मज़दूरदल के कुछ नेताओं को इस बात का भय था और है कि यदि सन्धि के पहिले ही बात नहीं तय की जाती सो सर्वदा के लिए रह जाती है। लार्ड ग्रे ने इस बात को बहुत ही खुले शब्दों में यों कहा है—"राष्ट्र-संघ का संगठन सन्धि के साथ अवश्य हो जाना चाहिये। यदि इसके स्थापन में देरी हुई तो इसके स्थापन की संभावना बहुत ही कम हो जायगी"। इस भय के कारण आजकल यूरोप का उदारदल तथा साम्यवादी इस प्रश्न पर बहुत ही ध्यान दे रहे हैं। इस प्रकार की समिति की स्थापना बड़ी कठिन बात है। इसका संगठन कैसा होगा, क्या इसमें शत्रु राष्ट्रों को भी योग देने का अधिकार होगा, यह किस प्रकार से अपनी निर्धारित बातों को कार्य में परिणत करेगी, कौन कार्य इसके अधिकार में होंगे, राष्ट्रों की आर्थिक नीति कैसी होगी, कौन २ राष्ट्र इसमें लिए जायँगे? इन सब प्रश्नों पर विचार आजकल हो रहा है। मार्ग में कठिनाइयां अनेक हैं, जिनका दमन-कार्य साधारण बात नहीं है। अनुदार-दल के प्रसिद्ध नेता बैल्फूर के कथन से इसकी कठिनाई समझी जा सकी—"ऐसे राष्ट्र-संघ के संगठन में यूरोप के बड़े २ राजनीतिज्ञों की परीक्षा है। उन्हें अपनी सारी योग्यता तथा दूर-दर्शिता इसके स्थापन में खर्च कर देनी होगी।"

राष्ट्र संघ की स्थापना का प्रधान कारण यह है कि भविष्य में युद्ध न हो सके, बड़े राज्य छोटे राज्यों पर अन्याय न कर सकें, कोई भी राष्ट्र किसी भी राष्ट्र के स्वत्वों को पददलित न कर सके, एक दूसरे के झगड़े सरलता में सुलझा दिये जायँ, जिससे उन्हें शस्त्रों की सहायता न लेना पड़े। संसार में युद्ध की सम्भावना कम हो और युद्ध की तैयारी न करना पड़े। इन्हीं विचारों से राष्ट्र-संघ की स्थापना की जा रही है। अब तक यूरोप की यह दशा थी कि हर एक राष्ट्र अपनी तलवार को निरन्तर चमकते तथा बन्दूक को भरे हुए रखता था और इस बात की प्रतीक्षा किया करता था कि कब उसकी शक्ति इतनी बढ़ जाय कि उसकी विजय युद्ध में निश्चय हो जाय। थोड़े से राजा महाराजा जो चाहते सो कर बैठते और लाखों मनुष्यों का बलिदान करा देते। इस दशा का निवारण करने के लिए राष्ट्र-संघ की स्थापना अतीव आवश्यक समझी गई है।

इस राष्ट्र-संघ के संगठन के लिए यह बात अतीव आवश्यक है कि इसमें विजय-प्राप्त तथा पराजित राष्ट्र सब सम्मिलित हों। नहीं तो यूरोप जैसा पहिले था वैसा ही बना रहेगा। ईर्ष्या का भाव पराजय के कारण और भी धधकता रहेगा और थोड़े ही से समय में फिर दूसरा युद्ध होगा जो विज्ञान के आविष्कारों के कारण इससे कहीं भीषण होगा। इस कारण राष्ट्र-संघ के सब राष्ट्रों में समता हो, अर्थात् हर एक राष्ट्र का अधिकार बराबर हो, तनिक सी भी न्यूनाधिकता न हो। छोटे बड़े सब का अधिकार एकसा ही हो। कुछ नेताओं की यह राय है कि यह राष्ट्र केवल यूरोपीय जातियों का ही हो, इसमें सब सफेद चमड़ेवाले ही हों काले तथा पीले चमड़ेवालों की इसमें पूछ ही न हो। हमें खेद के साथ लिखना पड़ता है कि उदार से भी उदार भावों के स्तम्भ 'नेशन' पत्र की यह सम्मति है। उस पत्र की सहानुभूति यूरोप की जातियों के साथ ही नहीं समाप्त हो जाती है। वह संसार में हर एक देश के तथा हर एक प्रकार के अन्याय पर प्रतिवाद किया करता है। ऐसे नीति के पत्र की जब यह सम्मति है तो हमें इस बात का बड़ा भय है कि कहीं एशिया इस संघ से दूर ही न रक्खा जाय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि ऐसा हुआ तो यह वैसा ही निश्चय है जैसा कल सूर्य भगवान का उदय होना कि यह राष्ट्र-संघ एशिया तथा एफ्रिका को हड़प कर जाने के लिए एक नवीन मित्र-मंडल का स्थापना करेगा। यूरोप और एशिया में युद्ध प्रलयकाल का प्रारम्भ होगा। सम्भव है कि जापान के कारण एशिया को भी राष्ट्र-संघ में लेना पड़े। यदि एशिया ले लिया गया तो अच्छी बात है, नहीं तो भावी प्रलय का बीज बोया गया है। युद्ध के बाद किसी भी विजय-प्राप्त राष्ट्र को इस बात का अधिकार न होगा कि वह किसी देश के व्यापार का वहिष्कार करे, ऐसे टैक्स लगाने का अधिकार न रहेगा जो पक्षपातमय हो, आर्थिक वहिष्कार किसी भी रूप में न हो सकेगा।* संभव है कि आजकल के इम्पीरियल प्रिफरेंस जिसकी इतनी धून है अँग्रेज़ जाति को छोड़ देना पड़े और यदि छूट जाय तो हम लोगों को बहुत लाभ होगा, क्योंकि इम्पीरियल प्रिफेरेन्स के कारण हमें अपना कच्चा माल ब्रिटिश साम्राज्य को ही देना पड़ता है जो हमें अपना मनमाना भाव देता है।

हां, हर एक राष्ट्र को अपने व्यापार को विदेशीय व्यापार से बचाने का अधिकार होगा। यदि कोई राष्ट्र कोई टैक्स लगावे तो वह टैक्स सब पर होगा। सार यह है कि व्यापारिक समता भी होगी।

हथियारबन्दी हर एक राष्ट्र को रोकनी पड़ेगी, जितनी कि देश की रक्षा के लिए सेना की आवश्यकता है उससे एक भी सैनिक अधिक रखने का अधिकार न दिया जायगा। गोली बारूद इत्यादि जितनी कि देश को चाहिये उससे अधिक बनाने का अधिकार न रहेगा। परन्तु इसमें कुछ कठिनाइयां हैं जो तभी शान्त हो सकती हैं जब कि राष्ट्र-संघ पुलीस के भांति सदा चौकन्ना रहे और उसे अधिकार हो कि जब वह चाहे किसी जाति की तलाशी ले। बेईमानी युद्ध की सामग्री तैयार करने में इस प्रकार से होगी—मान लीजिये कि कोई राष्ट्र यह कहता है कि वायुयान हम व्यापार के लिए बना रहे हैं। बारूद तथा बंदूक हम अमुक राष्ट्र के लिए तैयार कर रहे हैं। यदि कोई राष्ट्र इस प्रकार की बेईमानी करे तो राष्ट्र-संघ को इसके शान्त करने में बड़ी कठिनता पड़ेगी।

परन्तु राष्ट्र-संघ निरन्तर काम करने के लिए तैयार रहेगा, नहीं तो इसके सब आदर्श नष्ट हो जायँगे। लन्दन के राष्ट्र-संघ की सभा के प्रधान अंग मि० रेमन्ड अनविन ने अपने 'राष्ट्र-संघ के कर्तव्य' नाम की पुस्तिका में इस बात पर बहुत ही ज़ोर दिया है कि "यदि राष्ट्र-संघ को सफलीभूत होना है तो इसे कार्य करने के लिए हर घड़ी उद्यत रहना चाहिये।"

देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता का भाव भी इस राष्ट्र-संघ के प्रतिकूल है। इसके विरोधियों का कहना है कि हम अपने राष्ट्र के किसी भी अधिकार को किसी दूसरी शक्ति तथा समाज को नहीं देना चाहते। हम अपनी स्वेच्छाचारिता तथा स्वतंत्रता पर तनिक भी व्याघात नहीं पसन्द करते। इसमें सन्देह नहीं कि हर एक राष्ट्र के प्रभुत्व में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य आ जायगा। २६ जून को जब लार्डस की सभा में इस प्रस्ताव को लार्ड पारमूर ने उपस्थित किया था तो लार्ड पार्कर तथा लार्ड पारमूर ने इस बात को खुले शब्दों में प्रकट किया था।

लार्ड कर्ज़न ने इस प्रस्ताव को गवर्नमेंट की ओर से स्वीकार करते हुए भी इस बात को मान लिया था कि प्रभुत्व में इससे अन्तर

* "The league and the boycott are mutually destructive."

Norman Croom—Johnson Review of Review's, September 1918.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवश्य पड़ता है। लार्ड कर्ज़न के इस बात के मान लेने के कारण बहुत कुछ कठिनाई इसकी स्थापना में निकल गई है। परन्तु बहुत से नृपति इस बात को ज़रा कठिनता से मानेंगे, क्योंकि अब तक उनकी प्रभुता पर किसी प्रकार का अधिकार किसी का नहीं है। परन्तु इसमें कोई विशेष हानि नहीं है। क्योंकि यह विचार कि युद्ध राजाओं के कारण होते हैं ठीक नहीं है। एच० वेल्स ऐसे प्रजासत्तावादी का यह कहना है कि "ऐसे विषय के विचार ने हमें नृपति आस्तिकता या नास्तिकता पर विचार ही नहीं करना चाहिये, क्योंकि इतिहास इस बात के प्रतिकूल है कि प्रजासत्तावाद में युद्ध हो ही नहीं सकता या होकर भीषण रूप नहीं धारण कर सकता।" इस कारण नृपति रूप बाधा राष्ट्र-संघ के स्थापन में हमें भी छोड़ देनी चाहिये।

पुनः यह कहा जाता है कि राष्ट्र-संघ में ऐसे लोगों का मिलना असम्भव है जो कि देश-भक्ति तथा पक्षपात से परे हों। हर एक देश का प्रतिनिधि अपने देश का तथा अपने मित्र देश का पक्षपात करेगा और जब ठीक न्याय न हो सकेगा तो युद्ध अवश्य ही आरम्भ होगा। इसका उत्तर यह है कि यूरोप में अभी ऐसे मनुष्य हैं जो कि अन्तर्जातीय प्रश्नों पर बिना किसी पक्षपात के विचार कर सकते हैं और इस बात की सम्भावना दिन पर दिन बढ़ती जायगी कि सब देशों के राजनीतिज्ञ बिना किसी प्रकार के पक्षपात के संसार के भले की बातों पर विचार करें। इस युद्ध की घरिया में से एक नवीन यूरोप का जन्म होगा जो कि अन्तर्जातीय ईर्ष्या इत्यादि की छूत से दूर रहेगा।

यह राष्ट्र-संघ किस रूप से अपने फ़ैसलों को राष्ट्रों से कार्य में परिणत करायेगा—दूसरे शब्दों में यदि कोई राष्ट्र उसके फ़ैसले को नहीं मानता तो यह राष्ट्र-संघ किस प्रकार से उस राष्ट्र को बाध्य करेगा। इस प्रश्न पर राष्ट्र-संघवादी कहते हैं कि इस युद्ध के बाद—जिसमें असंख्य घरों का दिया बुत गया है, जिसने संसार को इतना कष्ट दिखाया है जितना कि इसके पूर्व कभी न देखा और न सुना गया था—क्या संसार-संकट से लोग इतना भी न सीखेंगे कि वे भविष्य में युद्ध को जहां तक हो सके वहां तक बचाने का प्रयत्न करें। संसार में करोड़ों स्त्री-पुरुष हैं जिन्होंने युद्ध का फल देख लिया है और उनके विचार अब युद्ध के प्रतिकूल हो गये हैं।

दूसरा उत्तर यह है कि यदि कोई शक्ति इस राष्ट्र-संघ की आज्ञा को भङ्ग करेगी तो शेष सब राष्ट्र मिल कर आर्थिक वहिष्कार तथा युद्ध प्रारंभ करेंगे। राष्ट्र-संघ की सेना सब मेंबरों की सेना का समूह होगा, क्योंकि हर एक राष्ट्र में इतनी सेना अवश्य होगी जो कि शत्रु से अपने देश पर के आक्रमण को बचा सके। इस प्रकार की सेनाओं से तथा आर्थिक वहिष्कार से वे किसी भी राज्य के सिर को नीचा कर सकते हैं। तीसरा उत्तर यह है कि राष्ट्र-संघ किसी भी राज्य को इतना बलवान न होने देगा कि वह अन्य राष्ट्रों को हड़प कर सके। इन सब बातों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि बहुत सम्भावना इस बात की है कि कोई भी राष्ट्र राष्ट्र-संघ की आज्ञा मानने में आनाकानी न करेगा, क्योंकि उस दशा में सब शक्तियां इसकी शत्रु हो जायँगी।* उपर्युक्त बातों और प्रभावों से युद्ध की संभावना बहुत ही कम हो जायगी। सब से बड़ी

*"If any nation will not observe the limitation (arbitration) upon its national action; if it breaks the agreement which is the basis of the league, rejects all peaceful methods of settlement and resorts to force the other nations must one and all use their combined force against it" Lord Grey.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनता जो राष्ट्र-संघ की स्थापना में है वह यह है कि हर एक राष्ट्र यही चाहता है कि उसकी ही ध्वजा सब से ऊँची रहे और बिना किसी रुकावट के धूमधाम से उड़ती रहे। कोई राज्य उसकी टक्कर का होने न पावे। इस भाव को निर्मूल करना कोई खेल नहीं है। बाल्यावस्था से लेकर बूढ़ेपन तक इसी विचार को मनुष्यों के हृदय पर अंकित किया जाता है। सब इतिहास तथा समाचार-पत्र इससे भीगे रहते हैं और इस विचार की जड़ मनुष्य जाति के स्वभाव में ही है। सब मनुष्य यही चाहते हैं कि उनकी वस्तु सब लोगों से सुन्दर हो, उनका राज्य सब राज्यों से बढ़कर समृद्धिशाली तथा प्रभावशाली हो। इस विचार के कारण वे अन्य राष्ट्रों के महत्व तथा व्यापार को ईर्ष्या की दृष्टि से देखते हैं और उसके नाश करने का विचार करते हैं। विदेशीय व्यापार में यदि किसी राष्ट्र के व्यापार के कारण कमी पड़ती है तो उसका सर्वनाश करने का विचार अन्य जातियों में होने लगता है और शीघ्र ही उसके सत्यानाश करने का षड़यन्त्र रचा जाने लगता है। सार यह है कि हर एक राष्ट्र यही चाहता है कि उसका राज्य तथा व्यापार सबसे बढ़ा हो, दूसरी जातियों का बल तोड़ दिया जाय और उन्हें लँगड़ा लूला बनाकर बैठा दिया जाय। वे रोगी की भांति उनके मुखापेक्षी हो जायँ।

सारे संसार का कच्चा माल उन्हें मिले, वे सस्ता माल तैयार कर सकें और संसार भर के व्यापार पर अपना अधिकार कर सकें। जिसके पास जितना राज्य है उतना ही उसे कच्चा माल मिलने में सुभीता है। इसीलिए आजकल इतना ज़ोर मारा जा रहा है कि जर्मन उपनिवेश जर्मनी को न लौटाये जायँ, क्योंकि ऐसा करने से जर्मनी फिर भी पहिले के समान व्यापार कर सकता है। दूसरा लाभ उपनिवेशों से यह है कि एक देश की बढ़ती हुई प्रजा अपने दूसरे देश में जाकर बस सके। अभी जर्मनी के पास इतना स्थान नहीं है कि उसके यहां की बढ़ती हुई प्रजा जर्मन देश में ही रह सके, इस कारण जर्मन लोग अमेरिका में जाकर बसते हैं और तीस चालीस वर्षों में वहां ही की प्रजा हो जाते हैं, जिससे जर्मन साम्राज्य को भारी हानि पहुंचती है। कुछ सप्ताह पहले यहां यह तार पत्रों में छपा था कि उपनिवेशों के बारे में राष्ट्रपति विलसन ने हमारी सरकार की बात मान ली है कि वे जर्मनी को न लौटाये जायँ। यदि यह तार सत्य है तो जर्मनी राष्ट्र-संघ में हृदय में पड़े हुए फफोलों के साथ सम्मिलित होगा।

फ्रांस के एक तार से ज्ञात होता है कि फ्रांस की सरकार जर्मनी को राष्ट्र-संघ में पूर्ण अधिकार न देगी। जब जर्मनी सब ऋण तथा क्षतिपूर्ति दे चुके तभी उसे सब के बराबर होने का सन्मान दिया जायगा। परन्तु फ्रांस की गवर्नमेंट की हमें कोई निश्चित राय नहीं ज्ञात होती। दूसरे ही दिन अभी फ्रांस के प्रधानमंत्री मि० क्लिमेन्सो ने यह कहा है कि हमको बलसाम्य का पुराना नियम ही पसन्द है कि कोई शक्ति ऐसी बलवान न होने दी जाय कि वह यूरोप के शक्तियों को दबा सके, दूसरे शब्दों में— दो शक्तियां मिलकर बलवान से बलवान शत्रु का सामना करने के लिए तैयार रहें। यदि मि० क्लिमेन्सो ने इस पर हठ किया और विजय की उमंग में राष्ट्र-संघ को संघार करनेवाले प्रस्ताव पर ज़ोर दिया तो यह राष्ट्र-संघ कदापि न स्थापित हो सकेगा। क्योंकि अंग्रेज़ों को तो यह प्रस्ताव रुचता ही नहीं दिखाई देता, डेढ़ वर्ष के पश्चात् तो प्रधान मंत्री लायड जार्ज ने आन्दोलन उठने के कारण इस पर अपने विचार प्रकट किये। राष्ट्रपति विलसन के पास जो डेपुटेशन गया था उसमें केवल उदारदल के ही लोग थे, उन डेपुटेशनों के उत्तर में जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ राष्ट्रपति विलसन ने कहा है उससे यह ज्ञात होता है कि इस प्रस्ताव पर वे कुछ उठा न रक्खेंगे। जितना उनसे प्रयत्न करते बन पड़ेगा उतना करेंगे।

फ्रांस के प्रधान मन्त्री मान्स्योर क्लिमेन्सो ने अपना स्वर पृथक् ही अलापा है। उनका कहना है कि जैसा पहिले सेना का क्रम था वैसा ही रहे। युद्ध के पहिले राष्ट्रों की यह नीति थी कि कोई भी राष्ट्र इतना बलवान न हो सके कि वह दो राष्ट्रों को अकेले ही पराजित कर सके। इसी सिद्धान्त पर मित्र-मंडल तथा शत्रु-मंडल का संगठन था। निरन्तर दोनों दल इसी बात का प्रयत्न किया करते थे कि उनकी सेना किसी प्रकार से कम न हो।

यदि कहीं मान्स्योर क्लिमेन्सो ने अपने इस सिद्धान्त पर ज़ोर दिया तो ऐसे संघ की स्थापना में बहुत कठिनता पड़ेगी। राष्ट्रपति विलसन ने इसका खंडन दूसरे ही दिन इटली में किया है। उन्होंने राष्ट्र-संघ की स्थापना को ही भविष्य में युद्ध रोकने का एक उपाय बतलाया है। इस बात में उनके साथ इटली की भी सहानुभूति है।

"स्वभाग्य-निर्णय"।*

[लेखक—श्रीयुत कृष्णविहारी मिश्र।]

सुधारस चाखन की चित चाह।

चौदह रतन उदधि मथ निकरे जयति अपूरब लाह
देव दनुज मन्थन करनी फल विमल प्रभाव उछाह
अमिय हेतु चंचल चहुंधा सब विषपै नहीं निगाह
पान करत सादर शिव संकर धनि धनि बेपरवाह
जुग नवीन मन्थन नवीन है नूतन न्याय उमाह
देवब्रिटिश, दानव जरमनजन, सिंधु समर बिनथाह
चौदह रतन, वचन चौदह, इत संधि अरम्भु निवाह
अमिय आतमनिरनय जातिन को स्वत्व समान पनाह
विष सागर स्वाधीनपने को हर विलसन अवगाह
सुर भारत म्रियमान जरजरित लालायित बिन डाह
कियो यथारथ पुरुषारथ है स्वारथ हित उतसाह
पच्छपात सों पंक्तिभेद को प्रगट न होय गुनाह
मन भरि भरि निरभयता पावैं चलैं न्याय की राह
सादर सुखद सन्धि शुभ सिरजै सांची सुलभ सलाह

सुधारस चाखन की चित चाह।

---

* सागर-मन्थन रूपक।

सागर-मन्थन देव-दानवों ने किया। १४ रत्न निकले। अमृत और विष मुख्य थे। पहले को सब देवता चाहते थे पर विषपान केवल शङ्कर ने किया। अमृत बँटने में पक्षपात हो गया था।

Great war—British and Germans 14 points of Dr. Wilson. Self determination nector and freedom of the seas poison. Wi'son tolerates poison—India wants self determination nector.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रियों के अधिकार ।

[लेखिका—श्रीमती उमा नेहरू ।]

मर्यादा के विशेष अङ्क में प्रकाशित होनेवाले विषयों के कई सूची-पत्र हमने देखे, परन्तु इनमें से किसी में भी ऐसे विषय नहीं दिखाई पड़े जिनका स्त्री-जाति से विशेष सम्बन्ध हो। रोम-निवासी केटो (Cato) अपनी हर वक्तृता को, वह किसी ही सम्बन्ध में क्यों न होती, सदा कार्थेज मस्ट फाल (Carthage must fall) कह कर समाप्त किया करता था। हमने भी सोचा है कि हम हर पत्र और पत्रिका को, उसमें कुछ ही विशेषता क्यों न हो, स्त्री-सम्बन्धी लेखों से बिना सुसज्जित किये न रहेंगी।

इस अङ्क की विशेषता यह जान पड़ती है कि इसमें वर्तमान विशाल विप्लव के भिन्न भिन्न पहलुओं पर लेख होंगे। आगामी भारतीय शासन-सुधार भी इसी घोर विप्लव का एक परिणाम है। इन सुधारों में दो परिवर्तनों के होने की बहुत आशा है। एक तो यह कि नवीन कौंसिलों के मेम्बरों की संख्या बढ़ाई जायगी और दूसरे यह कि इन मेम्बरों के चुननेवालों की संख्या भी वर्तमान काल की अपेक्षा बहुत अधिक हो जायगी।

हम जिस प्रश्न पर इस लेख में विचार करना चाहती हैं वह यह है कि स्त्रियों को इन-कौंसिलों के मेम्बरों को चुनने का और इन कौंसिलों के मेम्बर बनने का अधिकार देना उचित है या नहीं।

पश्चिम इस प्रश्न का उत्तर दे चुका। वर्तमान महायुद्ध ने पश्चिमीय संसार को तो सदा के लिए दो प्रश्नों का उत्तर दे दिया है। उसने यह सिद्ध कर दिया कि एक तो हर देश के निवासी अपने देश के वास्तविक राजा हैं और उन्हें अपने देश-प्रबन्ध का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। दूसरे यह कि स्त्री-पुरुष की जीवन-प्रणाली अथवा अधिकारों में किसी प्रकार का भेद करना समाज और जाति को हानि पहुंचाता है। पश्चिम इन प्रश्नों का उत्तर दे चुका और ख़ूब दे चुका, अब भारत को इनका उत्तर देना बाक़ी है। इसके इस उत्तर पर स्त्रियों ही की नहीं वरन् समस्त भारतीय समाज की उन्नति निर्भर है।

कुछ समय हुआ कि स्त्री-जाति के सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों का विरोध धार्मिक और नैतिक नियमों के आधार पर किया जाता था। परन्तु हमारे समाज में भी एक श्रेणी ऐसे सज्जनों की उत्पन्न हो गई है जो इन नियमों को निरर्थक और हानिकर समझती है। इनको छोड़ कर जो पुराने विचारों के लोग हैं वह भी अब सभाओं में और साधारण अवसरों पर स्त्री को पुरुष से हीन और नीच कहते शर्माते हैं। किन्तु अभी स्त्रियों के अधिकारों का विरोध बन्द नहीं हुआ है। धार्मिक और नैतिक नियमों पर नहीं, अब यह विरोध सामाजिक और राजनैतिक कारणों पर निर्भर है। इस लेख में हम उन एतराज़ों का उत्तर देना चाहती हैं जो भारतीय स्त्रियों के कौंसिलों के मेम्बरों को चुनने और कौंसिलों के मेम्बर बनने में किये जाते हैं।

सब से पहली वजह यह बताई जाती है कि हमारा समाज इस परिवर्तन के लिए तैयार नहीं है। देश के न तैयार होने की निरर्थक कहानी एक वह अटकाव है जो सुधार के विरोधी हर सुधार के मार्ग में डालने की चेष्टा किया करते हैं। हमारी सम्मति में हर देश, हर समाज, उन सुधारों के लिए सदा तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं जो इनकी उन्नति और विकाश के लिए अति आवश्यक हों, और किसी देश के लिए यह कहना कि वह ऐसे सुधारों के लिए तैयार नहीं, उस देश का अपमान करना है। दूसरे हमारी समझ में नहीं आता कि स्त्री-जाति को अधिकार दिये जाने या न दिये जाने के सम्बन्ध में देश के तैयार होने या न होने का प्रश्न ही कैसे उठता है। जब नैतिक और धार्मिक नियमों का आश्रय आपने छोड़ दिया और यह स्वीकार कर लिया कि स्त्री को अपने अधिकारों से विमुख रखना अन्याय के सिवा और कुछ नहीं तो फिर अन्याय को दूर करने के लिए किसी विशेष मुहूर्त्त या घड़ी की प्रतीक्षा करना कहां तक उचित और न्याय-संगत है। हमारी सम्मति में किसी अन्याय को निर्मूल करने के लिए हर समाज हर समय तैयार होता है, और जो लोग किसी अन्याय को यह कह कर कि समाज तैयार नहीं है जीवित रखना चाहते हैं वे समाज को, केवल अपने संकुचित विचार छिपाने के लिए, एक ओट बना लेते हैं।

दूसरा एतराज़ जो इन अधिकारों के संबंध में किया जाता है वह यह है कि भारतीय महिलाएँ अशिक्षित हैं, उनमें पर्दा है और उन्हें राजनैतिक अधिकारों के बरतने का ज्ञान नहीं है। कौंसिलों के सभासदों के वास्तविक चुनाव का अनुभव तो भारतीय पुरुषों को भी नहीं है, यदि यह ज्ञान उन्हें म्यूनिसिपैलिटी के चुनावों के द्वारा प्राप्त हुआ हो तो म्यूनिसिपैलिटी के चुनावों में भाग लेने का अधिकार कम से कम हमारे प्रान्त में तो स्त्रियों को भी है। ऐसी दशा में यदि पुरुष इन अधिकारों को बरतने के योग्य हैं तो स्त्रियां भी अवश्य उन्हें सफलता-पूर्वक बरत सकती हैं। रहा अशिक्षित होने का प्रश्न, सो संसार के किसी देश में कौंसिलों के सभासद बनने या चुनने का अधिकार लोगों के शिक्षित अथवा अशिक्षित होने पर कभी निर्भर नहीं किया जाता। हम पूछती हैं कि क्या आगामी सुधारों में भारत के केवल उन्हीं सपूतों को यह अधिकार दिया जावेगा जो शिक्षित होंगे। यदि नहीं तो भारतीय स्त्रियों के लिए ही यह प्रश्न क्यों उठाया जाता है। ऐसा ही निरर्थक एतराज़ पर्दे का है। क्योंकि एक तो पर्दा हमारे देश में बहुत कम है दूसरे यह कि यदि होता भी तो यह कोई काफ़ी वजह हमें अपने अधिकारों से विमुख रखने की नहीं हो सकती थी। मद्रास, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रान्त, पंजाब में पर्दे का चलन केवल नाम मात्र है। जहां कहीं यह चलन प्रचलित भी है वहां केवल नगर-निवासियों ही तक परिमित है। यदि यह हिसाब लगाया जाय कि भारत में कितनी स्त्रियां पर्दे के कारण कहीं-आ जा नहीं सकतीं तो उनकी संख्या ५ या ७ फ़ी सैकड़े से अधिक कदापि नहीं हो सकती। दूसरे यदि मान लिया जावे कि भारत की कुछ स्त्रियां पर्दे के कारण वोट देने नहीं जायँगी, तो इसका एक साधारण इलाज यह हो सकता है कि उन स्त्रियों के वोट देने के लिए कोई विशेष प्रबन्ध कर दिया जाय। तीसरे यदि भारत-महिलाओं की एक अधिक संख्या वोट देने न भी जाय तो उनके न जाने का उनके वोट देने के अधिकार से कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वयं इङ्गलिस्तान और एमेरिका में, जहां वोट देने का अधिकार प्राणों से भी प्रिय समझा जाता है, आधे से ज़्यादा वोटर्स वोट देने नहीं जाते। हमारी भारतीय म्यूनिसिपैलिटियों में तो तिहाई, चौथाई संख्या का पहुंच जाना भी बहुत कठिन होता है। फिर स्त्रियों का वोट देने न जाना कौनसा पाप होगा। जब वोट देने को न जाने के अपराध में पुरुषों के वोट देने के अधिकार ले नहीं लिये जाते, तो स्त्रियां ही क्यों इस कृपा की विशेष भागिनी ठहराई जाती हैं।

तीसरा एतराज़, जो उपर्युक्त दोनों एतराज़ों से भी विचित्र है, यह है कि यदि भार-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीय स्त्रियों को वोट देने और सभासद बनने का अधिकार दे दिया गया तो वे पश्चिमीय स्त्रियों के समान मर्दानी हो जावंगी। इसका साधारण उत्तर यह है कि किसी देश की स्त्रियां केवल राजनैतिक अधिकार दिये जाने के कारण स्त्रीत्व-हीन नहीं हो जातीं। पश्चिमीय फ़ेमिनिस्ट (Faminist) आन्दोलन का इतिहास यह बताता है कि पश्चिमीय स्त्रियों में वे विशेष लक्षण, जिन्हें पुरुष मर्दाना कहते हैं, केवल इस कारण उत्पन्न हो गये हैं कि इन स्त्रियों को अपने सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों के निमित्त पुरुषों से लड़ना पड़ा। उनके मर्दाना बनने का वास्तविक कारण यह अधिकार न थे वरन् इन अधिकारों का न दिया जाना था।

भारत में अभी वह दुखदायी समय नहीं आया है कि जब स्त्रियों को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए मर्दों का मर्दों ही की नाईं सामना करना पड़े। यदि पश्चिमीय देशों की शिक्षा को ध्यान में न लाकर भारतीय पुरुष भी उन्हीं पश्चिमीय पुरुषों का अनुगमन करके स्त्री-जाति को उसके अधिकारों से विमुख रक्खेंगे तो उन सारी आपत्तियों का, जो ऐसी दशा में अवश्य भारत में आवेंगी, उत्तरदायित्व इन्हीं पर होगा। स्त्री को स्त्रीत्व-हीन बनने से सुरक्षित रखने का केवल एकमात्र उपाय उसको उसके अधिकार दे देना है।

चौथा एतराज़ इस सम्बन्ध में यह किया जाता है कि जब भारतीय स्त्रियां स्वयं कुछ नहीं कहतीं और अधिकार लेना नहीं चाहतीं तो यह अधिकार देकर उनका हृदय पीड़ित करने से क्या प्रयोजन है। इसका एक उत्तर तो यह है कि जब भारत की राष्ट्रीय सभा (Indian National Congress) और इसकी प्रान्तीय कमेटियों ने स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार दिये जाने के प्रस्ताव पास कर दिये तो किसी विशेष स्त्री जातीय आन्दोलन की आवश्यकता ही क्या रही। यह सत्य है कि भारतीय स्त्रियां पश्चिमीय स्त्रियों के आधारों पर अभी अपने अधिकारों को प्राप्त करने का उद्योग नहीं कर रही हैं; परन्तु इसका कारण केवल यह है कि अभी उन्हें आशा है कि भारतीय पुरुष स्वयं उनके साथ न्याय करेंगे। हमारी समझ में नहीं आता कि यदि स्त्रियां अपने अधिकार लेने के लिए कोई आन्दोलन करें, तो उन्हें मर्दाना कहने लगना और यदि वे चुप रहें तो यह कहना कि वे अपने अधिकार नहीं मांगतीं, कहां का न्याय है।

यदि यह मान भी लिया जाय कि कुछ भारतीय स्त्रियां स्वयं स्त्रियों के अधिकार दिये जाने की विरोधिनी हैं तो इससे क्या सिद्ध होता है। इङ्गलिस्तान में जब पार्लामेंट में जाने और उसके लिए मेम्बर चुनने का अधिकार वहां के पुरुषों को पहिले पहिल दिया जा रहा था तो उस समय सैकड़ों पुरुषों ने ये अर्ज़ियां दी थीं कि हम यह अधिकार नहीं चाहते। जब एमेरिका में यह क़ानून पास हुआ कि उस देश के सारे गुलाम मुक्त कर दिये जायँ तो इन्हीं गुलामों ने स्वयं सभाएँ करके यह प्रस्ताव पास किये थे कि हमें स्वतंत्रता नहीं चाहिये, हम गुलाम ही बने रहना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त हम पर एतराज़ करनेवालों को क्या उन सैकड़ों भारतीय पुरुषों की ख़बर नहीं है जो इन दिनों सरकार की हां में हां मिलाकर यह कह रहे हैं कि भारत अभी स्वराज्य के लिए तैयार नहीं है। बात यह है कि हर देश में, हर समाज में ऐसे लोग होते हैं जो दूसरों के भय से या अपने अज्ञान के कारण अपने हित के विरुद्ध स्वयं ही बातें करने पर विवश हो जाते हैं। परन्तु इनकी बातों पर ध्यान देना स्वयं उन्हें और समाज को हानि पहुंचाना है।

अब हम सब मुख्य मुख्य एतराज़ों का उत्तर दे चुके। सारांश यह है कि स्त्रियों को अधिकार दिये जाने के विरोधियों के पास कोई विवेकपूर्ण दलील नहीं है, जिससे वे उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार दिये जाने को अनुचित सिद्ध कर सकें। जो कारण बताये जाते हैं वह केवल न्यायहीन बहाने हैं।

अन्त में भारतीय स्त्री-पुरुषों से हमारी यह प्रार्थना है कि यह समय भूतकाल के आनन्दमय स्वप्नों में मग्न रहने का नहीं है। यह समय वह है जब हमें आगामी सुपरिवर्तनों का हर्षपूर्वक स्वागत करना चाहिये। मि० लायड जार्ज ने अपनी एक वक्तृता में कहा था कि कभी तो यह संसार उन्नति के मार्ग में ऐसे धीरे धीरे चलता है कि घंटों की राह सैकड़ों वर्षों में तय कर पाता है और कभी सैकड़ों वर्षों की राह घंटों में तय करके रख देता है। इन दिनों यह संसार-चक्र इस तेज़ी से घूम रहा है कि मानव-इतिहास ने अपने आरम्भ से कभी इसे इस तेज़ी से घूमते नहीं देखा। ऐसे ही समय उन्नति और उत्कृष्टता के होते हैं और इन्हीं में समाजों और राष्ट्रों को अपने भविष्य-भाग्य के निर्माण का पूर्ण अवसर प्राप्त होता है। अपने संकुचित विचारों के अंधकार में फँसकर इस अवसर को हाथ से खो बैठना शताब्दियों के लिए निराश हो जाना है।

पथिक।

(१)

अगम बाधाओं की घन घोर--
छटा छाई थी चारों ओर;
किन्तु उत्साह दामिनी सतत
रही थी चमकाती निज कोर।
नहीं था कोई भी आधार;
किन्तु इससे क्या बने निराश?
कभी क्या कुछ करते वे भीरु--
जिन्हें है नहीं आत्म-विश्वास?
पथिक हो निज प्रताप में लीन--
बन गया स्वावलम्ब की मूर्त्ति।
लिया झट श्रीगणेश का नाम--
हृदय में रख मर्यादा-स्फूर्त्ति॥

(२)

वीर चल पड़ा--अँधेरी रात,
छिदे काँटों से नङ्गे पैर।
रक्त की धारा भी बह चली,
किन्तु बढ़ता जाता था शेर!
ओस कण समजल बूंदे बहीं--
बहा क्या यह नयनों से नीर?
नहीं! थे थे वे श्रमकण बिन्दु--
जिन्हें लखि बनें भीरु भी वीर!
आन्तरिक तन्त्री से ध्वनि उठी--
"अजी है ज़रा कठिन यह सैर"
"किन्तु हां कढ़े न मुख से आह!
पड़े पीछे न तनिक भी पैर!"

(३)

मानसिक दुर्बलता कह उठी,
भीति से होकर यों बेहाल--
"यही क्या दुर्गमपथ है प्रचुर
कण्टकाकीर्ण महा विकराल?"
हृदय का किन्तु बली आवेश
उभर कर बोला हो गम्भीर,--
"कार्यपथ से न हटूंगा कभी
छिन्न हो जावे क्यों न शरीर!
"करूंगा निज उद्देश की सिद्धि--
हरूंगा माता! तेरी पीर।
"जिगर का सींचूंगा जब खून
फूल हो जावेंगे तब तीर"!!

"नवीन"।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श देशभक्त।

[लेखक—श्रीयुत कपिलदेव मालवीय एम० ए० ।]

"को प्रीति की रीति बता दे नई; मैं तो करके जतन अब हार गई"। ओल्ड ऐलफ्रेड थियेट्रिकल कम्पनी के जगमगाते हुए स्टेज के एक विंग से एक बांकी तिरछी अदावाली, सुन्दर मस्त छटा वाली तथा रूप यौवन और काली जटा वाली ऐक्ट्रेस सुरीली तान से इस गीत को अलापती हुई बड़े हाव, भाव से सामने आती है। दर्शक गण "वाह वाह" और ऐन्कोर ऐन्कोर का पुल बांध देते हैं। एक ऐक्ट ख़तम होता है। ड्राप गिरता है लोग उठकर बाहर जाते हैं और भीतर आते हैं। फिर तीन बार घंटी बजती है और पर्दा उठता है। तमाशा शुरू होता है और गाने का समा फिर जमता है। रिज़र्व क्लास की अगली लाइन में बीच वाले ख़ाली सोफ़ा के तरफ़ बढ़ते हुए एक पारसी युवक और दो परम सुन्दरी युवतियां दिखाई देती हैं। दर्शकों की निगाह तमाशे की ओर से हटकर क्षणमात्र के लिए नवागन्तुकों की ओर फिरती है। कुछ उनके सुन्दरता की मन ही मन प्रशंसा करते हैं, कुछ अपने ही रूप को उनसे मिलाने लगते हैं। नवागन्तुक शाहानः चाल से जाकर अपने सोफ़ा पर बैठ जाते हैं और तमाशे की ओर निगाह लगाते हैं। पारसी युवक की अवस्था कोई ३० वर्ष की होगी और रूप और वेष अंग्रेज़ी था। हाँ, रंग में वो अंग्रेज़ों के मुख पर जो बन्दर के मुख की ललाई की ज़्यादती रहती है वह नहीं थी। वेष में भी सर पर हैट के स्थान में पारसी आधे सर वाली टोपी थी। कलाई में सोने की रिस्टवाच बंधी थी और पैर में रेशमी मोज़ा और काला जूता था। ड्रेससूट भी बिलकुल अप-टू-डेट था। साथ की स्त्रियों में एक इनकी स्त्री और दूसरी इनकी भगिनी थी। स्त्री की अवस्था २४ वर्ष की और भगिनी की १८ की थी। दोनों का वेष पारसी था पर मुख इतना सुन्दर था कि उसे जाति-विशेष का न कहकर अन्तर्राष्ट्रीय कह सकते हैं। तमाशा बड़े मज़े में हो रहा है। दर्शकों का चित्त प्रफुल्लित और आकृति चिन्तारहित हो गई है। चारो ओर ख़ूब जागृति दिखाई पड़ती है।

शान्तिनारायण आठ आनेवाले दर्जे में बैठे हैं। इनकी अवस्था २५ वर्ष की है और इन्होंने अबकी बी० ए० एल० एल० बी० पास किया है। जब ये १० वर्ष के थे तभी से इनका एकमात्र अभीष्ट देश की सेवा करना था। राजनैतिक बातों में इनकी सूक्ष्म बाल्यावस्था ही से बड़ी तीव्र थी। १६०७-०८ में जब इक्सट्रीमिस्ट और माडरेट्स का झगड़ा बड़ा प्रबल था उस समय इन्होंने एक छोटासा लेख इस विषय पर लिखा था। उस १४ वर्ष की अवस्था में इन्होंने माडरेट्स का सनातनधर्मियों और एक्सट्रामिस्ट्स का आर्यसमाजियों से उदाहरण दिया था। उस समय से आज तक राजनैतिक बातों में इनका बहुत मन लगता था और राजनैतिक विषयों पर ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा भी ये सर्वदा करते रहते थे। यहां तक कि राजनीति इनके जीवन का अंश था और जो मनुष्य राजनीति से पराङ्मुख रहता था उसके प्रति इन्हें श्रद्धा या भक्ति बहुत कम रहती थी। शान्तिनारायण के पास उनके मित्र रामकुमार भी बैठे थे।

शान्ति०—रामकुमार! यदि मैं ऐसे ही एक हफ़्ते तक इस प्रकार नाटक देखने आऊँ तो कदाचित मेरे बहुत से विचारों में परिवर्तन हो जाय और मेरे कुछ नियम उलथ पुलथ हो जायँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार—क्यों ?

शान्ति०—क्योंकि प्रथम तो यहां के गाने बजाने और दृश्य में ऐसा आकर्षण है कि उसी के गुलाम बन जाने का डर है; दूसरे यहां इस पारसी युवक के ऐसे रईसों की शान देखकर लालच लगती है कि हम भी वैसे ही शानदार होने की कोशिश करें। मेरी शक्ति केवल इतनी ही है कि मैं अपने देश से इतना प्रेम करता हूं कि मैं उसकी सेवा छोड़कर इन देशद्रोहियों की चाल नहीं चल सकता।

राम०—यह तुमने कैसे कहा कि यह पारसी युवक या उसके ढंग के रहनेवाले और लोग देशभक्त नहीं हैं?

शान्ति०—इसमें कहने सुनने की क्या बात है? आप फर्स्ट क्लास में बैठकर रेल में चलिये, अंग्रेज़ी होटलों में टिकिये, मोटरों पर चढ़िये, ड्रेससूट पहनकर भोजन करिये, समाज सुधारक बनकर लेडियों से दोस्ती करिये, कभी २ पब्लिक काम में चन्दा दे दीजिये और समय समय पर मीटिङ्ग में सूटेड बूटेड खड़े होकर अँग्रेज़ी में स्पीच दे दीजिये क्या यह देशभक्ति है? या तो इस पारसी युवक को देश की राजनीति से कोई सम्बन्ध ही नहीं है और यदि है तो इसके चेहरे से और वेष से सिद्ध होता है कि उसी तरह का है जैसा कि मैंने कहा है।

राम०—तो तुम्हारे समझ में आदर्श देशभक्त कौन हैं?

शान्ति०—मोहनदास गान्धी, मदनमोहन मालवीय, बालगंगाधर तिलक, एनी बेसंट।

राम०—क्यों जनाब बम्बई के जिना बंगाल के सिनहा और संयुक्तप्रान्त के मोतीलाल क्या ये लोग देशभक्त नहीं हैं? क्या सर फीरोज़शाह मेहता देशभक्त नहीं थे केवल इस लिए कि वे अंग्रेज़ी चाल से रहते थे। गोखले भी तो·····हः हः हः हः अजी ये बड़ा मसख़रा देखटर है ज़रा इसकी बातें सुन लो फिर अपनी बातें करना···हः हः हः हः·······।

शान्ति०—हः हः हः सच है ये इसने अच्छा फ़िक़रा ढूढ़ निकाला है हः हः हः···।

महाभारत का तमाशा हो रहा था। धृतराष्ट्र के दर्बार में दुर्योधन, युधिष्ठिर इत्यादि सब इकट्ठे हैं। धृतराष्ट्र दुर्योधन के पक्ष की बात पर भी कहते हैं "यही तो मैं भी कहता हूं" और युधिष्ठिर के पक्ष की उसके विपरीत बात पर भी कहते हैं "यही तो मैं भी कहता हूं"। धृतराष्ट्र का स्वर खुनखलाकर इस प्रकार की ऊलूल जलूल बातें कहना सब को हँसा रहा है। शान्तिनारायण की सब शान्ति प्रस्थान कर गई है, और यह भी खिलखिलाकर हँस रहे हैं। हास्यरस में वह विचित्र शक्ति है कि यह अपना प्रभाव बड़े बड़े वैरागियों तक पर दिखा देता है। जिस पर और कोई रस कारगर न हो उस पर भी हास्यरस किञ्चितमात्र कारगर होता ही है। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि यह मनुष्य के घमंड का पोषण करता है, उसके अहम की पुष्टि करता है। हँसी की बात वही है जिसमें किसी वस्तु या कर्म या मनुष्य की मूर्खता झलकती हो। जब कोई हँसी की बात कही जाती है तो सुननेवालों को हँसी इसलिए आती है कि उन्हें दूसरे की मूर्खता दिखाई पड़ती है और यह भी प्रतीत होने लगता है कि वे वैसे मूर्ख नहीं हैं। हँसी से इस प्रकार उनके अहम की पुष्टि होती है। जिसके विरुद्ध हँसी की जाती है अर्थात् जिस पर लोग हँसते हैं उसे बड़ा नीचा देखना पड़ता है और इसी कारण प्रायः हँसी में लड़ाई हो जाया करती है। मनुष्य स्वभाव से घमंडी होता है और जो उसके अहम की पुष्टि करता है उससे वह अत्यन्त प्रसन्न रहता है और यही कारण है कि बड़े २ योगी और त्यागी भी हँसी पसन्द करते हैं। शान्तिनारायण तो एक साधा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण व्यक्ति थे फिर ये इस प्रकार की मनोगत चापलूसी के जादू से कैसे बच सकते थे।

रामकुमार और शान्तिनारायण नाटक देखने में दत्तचित्त हुए। कहीं कहीं पर चुभते हुए हँसी के फिक़रों ने, कहीं कहीं पर हावभाव पूर्ण नायिकाओं के कटाक्ष ने कहीं कहीं पर नृत्यवाद्य के तान ने इनके हृदय को वेध दिया और शान्तिनारायण ने व्याकुल होकर कहा "रामकुमार! बस यह मेरा अन्तिम तमाशा है! नारायण! नारायण! इस तरह की सोहबत तो हमारे विचारों की धज्जियां उड़ा देगी। भाई ये नाटक शुद्ध विचारों के लिए बम का गोला है"।

* * * * *

नाटक घर से आध मील की दूरी पर सन्नाटी सड़क के एक लैम्प पोस्ट के नीचे रामकुमार शान्तिनारायण का सर अपने जांघ पर रक्खे उनके मुख पर रुमाल से पंखा झुला रहे हैं। दिसम्बर के रात की सर्दी और ये पंखा! बात यह है कि श्यामनारायण ने नाटक से निकल कर तम्बोली के यहां से जो पान खाया उसमें उसने तम्बाकू छोड़ दिया। चूंकि ये तम्बाकू कभी नहीं खाते थे इसलिए इनके सर में चक्कर और गश आ गया था। सड़क पर से थोड़ी थोड़ी देर पर नाटक घर से लौटती हुई मोटर और विकटोरिया आती हैं और उनकी सवारियां इनकी यह दशा देखती हैं पर कोई इनकी सहायता के लिए अपनी सवारी रोकता नहीं। वहां कहीं जल भी पास में न था जो रामकुमार लाकर शान्तिनारायण को पिलाते। रामकुमार का चित्त भी घबड़ाता चलता था और कुछ किंकर्तव्य विमूढ़ की गति हो गई थी। इतने में मोटर का हार्न सुनाई पड़ा और बिजली की रोशनी से आंखें चकाचौंध होने लगीं। मोटर ज्योंहीं लैम्प पोस्ट के पास पहुंची त्योंहीं एकाएक रुक गई और उस पर से वही हमारे पूर्व परिचित नाटकवाले पार्सी युवा उतर कर रामकुमार और शान्तिनारायण के पास पहुंचे और सहानुभूति और सौहार्द के साथ इस आपत्ति का कारण पूछने लगे। रामकुमार ने दो मिनट में सब बातें समझा दीं। अन्त में पार्सी युवा ने और रामकुमार ने मिलकर शांतिनारायण को मोटर में बैठाया और मोटर पार्सी युवा, उसकी पत्नी, भगिनी, रामकुमार और शान्तिनारायण को लेकर ५ मिनट में मलावार हिल पर एक अत्यन्त सुसज्जित बँगले में पहुंच गई। यही हमारे पार्सी युवा रुस्तम जी का मकान था। पहुंचते ही इन लोगों ने शान्तिनारायण को एक पलँग पर लेटा दिया और मिसेज़ रुस्तम जी ने एक रुमाल को पानी में और यूडीकोलोन में भिगोकर अपने हाथों से इनके चेहरे पर फेरना शुरू किया। दो तीन मिनट के बीच में शान्तिनारायण को होश आ गया और ये उठ कर पलँग पर बैठ गये। तत्काल ही मिस कामा रुस्तम जी ने इन्हें बरफ़ मिला हुआ एक ग्लास लेमनेड पीने को दिया और पीते ही शान्तिनारायण का चित्त बिलकुल शान्त हो गया। शान्तिनारायण ने अब आंखें फाड़कर चारो ओर देखा और रामकुमार ने एक ही वाक्य में इन्हें सब समझा दिया। रुस्तम जी ने रामकुमार से बातें करके यह पता ले लिया था कि ये दोनों सज्जन बम्बई के रहनेवाले नहीं थे यहां केवल घूमने के नीयत से गये थे और वहां किसी विश्रान्त गृह में टिके थे। शान्तिनारायण ने रुस्तमजी, इनकी स्त्री तथा उनकी भगिनी को धन्यवाद दिया और जाने के लिए आज्ञा माँगी पर रुस्तम जी ने आदरपूर्वक उस दिन उनसे वहीं रहने के लिए आग्रह किया और इतना आग्रह किया कि इन्हें लाचार वहां रहना स्वीकार करना पड़ा। रामकुमार ने तो निमंत्रण पहिले ही स्वीकार कर लिया था इससे शांतिनारायण को भी स्वीकार करना ही पड़ा। मिसेज़ रुस्तमजी ने घंटी बजाई और आदमी ने लाकर सब को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाय पीने को दी। चाय पीते पीते इन लोगों में ये बातें होने लगीं—

मिसेज़ रुस्तमजी—कहिये आप भी तो नाटक ही से आरहे हैं—आपको तमाशा कैसा पसन्द आया?

रामकुमार—(हँसते हुए और शान्तिनारायण के तरफ़ कटाक्ष से देखते हुए) हमारे मित्र ने तो उसे बम का गोला क़रार दिया है।

मिसेज़ रुस्तमजी—हँसती हुई—बम का गोला क्यों? नाटक के तमाशे से और बम के गोले से क्या सम्बन्ध?

शान्ति०—नहीं नहीं रामकुमार हँसी कर रहे हैं। वो बम के गोले की कोई बात नहीं है। मेरा ध्यान यह है कि तमाशा अच्छा है पर चूंकि मैंने बहुत से नाटक नहीं देखे हैं इसलिए मैं समुचित समालोचना नहीं कर सकता। केवल इतना दोष अवश्य बतला सकता हूं कि नाटक की भाषा ने हिन्दी उर्दू दोनों को दिया झांसा क्योंकि न तो उसमें हिन्दी खुलासा न उर्दू खुलासा।

रुस्तम०—मेरी बहन को साहित्य से बड़ा प्रेम है और इन्होंने बहुत से नाटक पढ़े और देखें भी हैं अब इनका मत सुनिये।

मिस कामा—मेरी सम्मति तो यह है कि यह तमाशा बड़े low plane का है। इसमें पढ़े लिखे मनुष्यों के मस्तिष्क को अच्छा लगने वाला कोई भी मसाला नहीं है। साधारण तरह से इन्द्रियों के विनोदार्थ जो कुछ है सो है।

रामकुमार—मिस कामा—क्या जो इंद्रियों को अच्छा लगेगा वह मस्तिष्क को अच्छा नहीं लगेगा?

मिस कामा—जी नहीं, नहीं लगेगा। ये मस्तिष्क ऐसी बला है कि आनन्द और विनोद के ढंग यदि उसके इच्छानुसार न हों तो इन्द्रियों की अपेक्षा न करता हुआ यह उस आनन्द और विनोद को रसहीन कर देता है।

राम०—जैसे?

मिस कामा—जैसे संगीत ही को लेलीजिये। कर्ण की इन्द्रिय तो सब की एकसी है पर कोई तो लड़कों की ग़ज़ल और क़व्वाली से ही तृप्त हो जाते हैं और कोई बड़े बड़े सुर और ताल के शुद्ध संगीत सुनने के बिना तृप्त नहीं होते। ये भेद मस्तिष्क का है। किसी को आनन्द एक वस्तु में आता है और दूसरे को उसीमें नहीं आता यद्यपि दोनों में इन्द्रियों का साम्य है।

राम०—तो इस नाटक में पढ़े लिखों को विशेष आनन्द न आने का क्या कारण है?

मिस कामा—इसमें कोई बात ऐसी नहीं है जिससे उन्हें आनन्द आ सके। सच पूछिये तो ये नाटकवाले उनके लिए तमाशा ही नहीं करते। रहा ये छोटा मोटा नाचना गाना बस बस जो कुछ है सो वही है सो वह भी उत्तम नहीं है।

राम०—मिस कामा यदि यह नाटक आपने लिखा होता तो मुख्यतः कौनसी बातें आपने रक्खी होतीं?

मि० कामा—इस प्रश्न का उत्तर तो यों बिना अच्छी तरह सोचे विचारे मैं दे नहीं सकती पर इतना मैं अवश्य कहूंगी कि न तो मैंने ये टूटी फूटी कविता रक्खी होती और न यह न। समझो की पेंकिटङ्ग होने देती और स्थान स्थान पर कुछ न कुछ दिलचस्प फिलासफी भी मैंने अवश्य छांटी होती।

रुस्तम—कामा! हम लोग कदाचित अपने अतिथियों का निद्रा हनन कर रहे हैं। अब चलो कल प्रातःकाल फिर वार्तालाप करेंगे।

गुडनाइट! गुडनाइट! गुडनाइट!

....

रामकुमार और शान्तिनारायण कमरे में अकेले रह गये। बिजली की रोशनी से सुन्दर फरनीचर जगमग हो रहा था। कमरे के बीचों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच एक टेबुल पर शीशे का बड़ा गुलदस्ता रक्खा हुआ था जिसमें तीन ग्लास थे । दो ग्लास में तो फूल थे और बीचवाले से चांदी का एक डंडा फौहारे की शकल का ऊपर निकला हुआ था और इस डंडे के अन्त में किसी धातु का बना हुआ एक होमरूल झंडा फहरा रहा था । दीवालों पर दादाभाई नौरोजी, फीरोज़शाह मेहता और एनी बेसेंट की तस्वीरें लटक रही थीं ।

रामकुमार ने शान्तिनारायण के तरफ देखा और शान्तिनारायण ने भी कमरे की सजावट का निरीक्षण समाप्त किया ।

राम०—क्यों शान्ती ! अब तो तुमने देखा कि जिनको तुमने कहा था ये देशद्रोही हैं वेही देशभक्त और सुजन निकले ।

शान्ती०—जी नहीं ! मैं आपकी भांति इतना शीघ्र अपना मत नहीं बदला करता । सुजन और सज्जन तो ये अवश्य हैं पर देशभक्त हैं इसका क्या प्रमाण है ?

राम०—वाह ये होमरूल झंडा देखो, ये तस्वीर देखो ! अब आप और क्या चाहते हैं ? बल्कि कल प्रातःकाल साफ २ पूछ लेना देख लेना कि रुस्तम जी कहेंगे कि वे कट्टर होमरूलर हैं ।

शान्ती०—अजी कह देने से क्या कोई होमरूलर हो जाता है ?

राम०—खैर बतलाओ कि तुम उदार प्रकृति रुस्तमजी को देशभक्त क्यों नहीं समझते ?

शान्ती०—मैं देशभक्त उसे समझता हूं जो तन मन धन से देश सेवा में लगा हो । जो मनुष्य रुस्तमजी की भांति मोटर पर चढ़ता हो और बढ़िया सजे हुए घर में रहता हो वह देशभक्त नहीं हो सकता ।

राम०—तो तुम्हारे समझ में रुस्तमजी को क्या अपना घर, द्वार, मोटर, गाड़ी सब बेंच देना चाहिये ? फिर आप के देशभक्त तो केवल दिवालिये हो सकते हैं ।

शान्ती०—निस्सन्देह । रुस्तमजी को इन सब खुराफात चीज़ों को बेंच कर सब रुपये देश सेवा के काम में लगाना चाहिये और जब तक वे ऐसा न करें तब तक वे देशभक्त नहीं कहे जा सकते । और मैं गान्धी, मालवीय, तिलक, बेसेन्ट को देशभक्त क्यों कहता हूं ? गान्धी ने हज़ारों की वकालत छोड़ कर देश सेवा में मन लगाया । मालवीय हज़ारों रुपये महीने की आमदनी छोड़ कर देश-सेवा में दत्त-चित्त हुए । तिलक यदि चाहते तो हज़ारों रुपये महीने वकालत से पैदा करते पर उन्होंने देश-सेवा के लिए उसे त्याग दिया और एनी बेसेन्ट ने न्यू-इन्डिया और और कामों में कितनी आर्थिक हानि सही उसका कोई हिसाब ही नहीं है ।

राम०—तो यदि धन से देशभक्ति नापी जाय तो सर राशबिहारी घोष ने १० लाख कलकत्ता विश्वविद्यालय को दिया, महाराज दरभंगा ने ५ लाख हिन्दू विश्वविद्यालय को दिया या हाल में वामन जाने १ लाख होमरूल लीग को दिया इसलिए ये बड़े दिग्गज देशभक्त हुए ।

शान्ती०—तुम जानते हो कि मेरा आशय यह नहीं है ।

राम०—तुम्हारा आशय मैं खूब समझता हूं । तुम्हारा आशय यह है कि जिसने सांसारिक सुख और विभव को देश-सेवा के लिए न्योछावर कर दिया हो वही सच्चा और पूज-नीय देशभक्त है । इतना तो मैं समझा पर यह मेरे समझ में नहीं आता कि और लोग भी तो इनके अतिरिक्त हैं जो देश से प्रेम करते हैं और देश सेवा भी करते हैं पर उन्हें आप देशभक्त क्यों नहीं कहते ?

शान्ति०—और लोग कौन हैं ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम०—अरे भाई इतने कांग्रेस वाले हैं इतने होमरूलर हैं और ये जो आपके इतने नवयुवक हैं सभी तो देशभक्त हैं।

शान्ती०—देशभक्ति दो तरह की है, एक तो यह इच्छा होना कि हमारा देश भी स्वतंत्र हो और हमारी इज़्ज़त भी उसी तरह की हो जैसी अंग्रेज़ों की होती है यह तो एक ऐसी अभिलाषा है जो प्रत्येक स्वाभिमानी प्राणी को होती है और इसे देशभक्ति कहिये तो भारत में देशभक्त बहुत हैं। इस प्रकार की देशभक्ति में अहम की मात्रा विशेष है। इसमें स्वार्थ है, इसमें पक्षपात है, इसमें संकुचता है।

राम०—हां मेरा मतलब तो इसीसे था। ख़ैर तुम किसे देशभक्ति समझते हो।

शान्ती०—मैं देशभक्ति उस प्रेरणा को कहता हूं जो प्राणियों के कल्याण के लिए, संसार के दुख दरिद्र को दूर करने के लिए किसी मनुष्य में उत्पन्न हो। इस प्रकार की अभिलाषा देश विशेष में परिमित नहीं रहती और यदि कहीं पर होती है तो केवल इसलिए कि समय विशेष-पर उसे परमित करने ही से प्राणियों का कल्याण होता है।

राम०—प्राणियों के कल्याण से तुम्हारा क्या तात्पर्य है?

शान्ती०—आंखें खोलकर देखो चारो तरफ क्या दृश्य दिखाई देता है? सौ में दस आदमी तो ऐसे हैं जिन्हें भोजन, वस्त्र सब कुछ मोअस्सर है पर शेष ९० की ओर भी आंख उठाइये। भोजन का कष्ट, वस्त्र का कष्ट, निवास-स्थान का कष्ट ये तीनों यमराज की भांति सदा इनके ऊपर सवार रहते हैं फिर इनके अतिरिक्त यदि अभाग्यवश कभी रोगी हो गये, तब तो न कोई हाल पूछनेवाला है, न दवा देनेवाला है; न दवा के लिए पैसा है और न काम से छुट्टी है। यदि काम पर न जाँय तो खाँय क्या और यदि काम पर जाँय और पैसा लाएँ तो किस मुंह से खाएँ क्योंकि शरीर तो रोग ग्रसित है? प्रातःकाल से लेकर १० बजे रात्रि तक कठिन परिश्रम करें, हल जोतें या नौकरी करें फिर भी इतनी बचत न हो कि वर्ष में ८ दिन बिना काम किये निर्वाह कर सकें। हम सुन्दर मिठाई और पकवान भोजन करते हैं, मुलायम तोशक और गद्दे पर सोते हैं, चिकनी रेशमी चादर ओढ़ते हैं पर हमारे १०० में ९० भाई जानते ही नहीं कि यह सब सुख क्या है? आजकल न्याय और सत्य की बड़ी पुकार ली जाती है। पर यह कौनसा न्याय है? कहा जाता है अब वंश-विशेष या जाति-विशेष में जन्म लेने से कुछ भेद नहीं होता? पर सोचो कि इन १०० में ९० मनुष्यों से और शेष १० में इसके अतिरिक्त और कौनसा भेद है कि ये १० अच्छे या धनवान कुल में उत्पन्न हो गये? क्या यही न्याय है? कल मैं एक तरफ से सड़क पर घूमकर आरहा था देखता क्या हूं कि एक किनारे एक स्त्री बड़े चीथड़े गूदड़ पहिने पड़ी सिसक रही है। मैं कुतूहल-वश उधर चला गया। स्त्री दो घंटे के जन्मे बालक को लिए पड़ी सिसुक रही थी। बालक वहीं सड़क पर एक किनारे एकान्त में उसके गर्भ से उत्पन्न हुआ था। अबला निराश्रय थी, निरस्थान थी, पति की मृत्यु छः मास पूर्व हो चुकी थी, वृत्ति भिक्षुक थी, पास में पैसा न था। रामकुमार सोचो उस स्त्री की दशा का मिलान मोटर पर चढ़नेवाली, बहुमूल्य आभूषण और साड़ियों में अठलानेवाली ललनाओं से करो। परमेश्वर की सृष्टि में दोनों के शरीर में सुख दुख का ज्ञान है। मारने से चोट दोनों को लगेगी और सुख देने से आनन्द दोनों को लगेगा। गर्भदान की यातना को सोचो। कहां से चलती हुई गर्भदान के घंटे भर पूर्व तक भिक्षा मांगती हुई ठोकर खाती हुई उस स्त्री की दशा का ध्यान करो और शारीरिक कष्ट से विह्वल होकर छटपटा कर सड़क ही पर उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवश होकर गिर पड़ना जब कि उसे सदा भय और लज्जा डसती रही होगी उसको भी ध्यान करो ! नारायण ! जगदीश्वर ! त्राहि ।

राम०—मेरा हृदय विदीर्ण होता जाता है इस दृश्य को समाप्त करो ।

शान्ती०—नहीं मैं इस दृश्य को समाप्त नहीं करूंगा । इन्हीं बातों को न समझने के कारण तुम इन मोटरवालों का सदा पक्ष किया करते हो । आज सुन लो, समझ लो नहीं तो हमारे साथ रहने ही से तुम्हें क्या लाभ होगा ।

राम०—कहो मैंने अपना हृदय पोढ़ा कर लिया ।

शान्ती०—इसके कुछ दिन पूर्व मैं ज़िला बस्ती में गया था। वहां क्या सुना कि एक राय साहेब ज़मींदार के एक मित्र का लड़का बीमार हो गया । लड़के के पिता को शक हुआ कि एक स्त्री जो इनके पड़ोस में रहती थी उसने टोना किया है । यह स्त्री अत्यन्त दरिद्र थी और खेतों में मज़दूरी कर अपना उदर पालन करती थी । लड़के के पिता ने राय साहब से सब हाल कहा ? राय साहब ने कहा ये कौन बड़ी बात है "कोई है, पकड़ लाओ ससुरी को" । दुख दरिद्र की मारी अबला पकड़ बुलाई गई । चारो तरफ कसाई लोग बैठ गये । उससे पूछा गया तूने टोना किया है । भयत्रस्ता ने उत्तर दिया नहीं । उसका सौगन्ध खाना और गिड़-गिड़ाना व्यर्थ हुआ । राय साहेब ने आज्ञा दी कि इसके मुख में गलीज़ भर दो । नर-पिशाच यमदूत भृत्यों ने वैसा ही किया । अबला का रोना कलखना सब किसी काम न आया ।

राम०—(बड़े ताव से) फिर क्या उसने पुलीस में मामला नहीं दिया, मुक़दमा नहीं चलाया ?

शान्ती०—नहीं उसकी क्या इतनी बड़ी मजाल ? फिर धन कहां था जो यह सब करती ? पहिले रपट लिखाने के लिए ही दो चार रुपये चाहिये थे ।

राम०—वहां कोई ऐसा मिला भी नहीं जिसने उसकी सहायता की हो ?

शान्ती०—सबहि सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय ।

राम०—वास्तव में ग़रीबों के ऊपर बड़ा अत्याचार होता है इसका निर्वाह कैसे हो ?

शान्ती०—अभी और सुनिये । लगभग बीस दिन के हुए मैं एक तहसील में गया था । जैसे ही स्टेशन पर से चला देखता क्या हूं कि दो ७० वर्ष के वृद्ध पुरुष एक १५ वर्ष का लड़का और एक युवती स्त्री जिसके साथ दो तीन बच्चे थे बिलख बिलख कर रो रहे हैं । पास जाने पर मैंने देखा कि ये पुरुष अपने दुख में इतने व्यग्र थे कि इन्हें यह भी ध्यान न था कि इनके साथ की युवती स्त्री बेहोश हो गई है । पूछने पर मालूम हुआ कि इस स्त्री के पति और उसमें से एक वृद्ध के पुत्र को उस गाँव के ज़मींदार ने भय देकर ज़बरदस्ती केवल सरकार में अपना वाहवाही लूटने के लिए लड़ाई पर उसी गाड़ी से भेजा था ।

राम०—ख़ैर यह तो सारे संसार में होता है । फिर आप यह भी तो नहीं चाहते कि लोग युद्ध में न जायं ।

शान्ती०—ठीक है, पर दरिद्रों पर जो सामाजिक अत्याचार है वह तो इस तर्क से घट नहीं गया । वह दूसरा वृद्ध पुरुष जो उसके साथ था वह पहिले का पड़ोसी था । कुछ ही दिन पूर्व उसकी एकमात्र कन्या को डीपूवाले बहका कर ले गये थे । इस समय उसको सब पुरानी यातना का स्मरण आरहा था और वह भी बिलख बिलख कर रो रहा था ।

राम०—सब से बड़ा आश्चर्य यह है कि लोग इन डीपूवालों को पहिचानते थे फिर भी उन्होंने इनकी मरम्मत नहीं किया ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ती०—और सुनिये—गत वर्ष की महँगी के समय में हमारे मज़दूरिन की एक संबंधिनी गांव से शहर उदर पालन करने के लिए आई। नवागन्तुक अपरिचिता को लोग शीघ्र नहीं नौकर बनाते इससे १०, १२ दिन उसे कोई कार्य न मिला। उसके पास केवल ८ दिन के भोजन का ठिकाना था । ४ फाँके उसके हो चुके थे। ऐसी हीन दशा में एक बड़े जेन्टेलमैन बननेवाले बाबू ने उसे लोभ देकर उसका धर्म हरण किया। या पापात्मा घृणित उदर! यदि तू न होता तो क्या इस सती ने अपना नारी-रत्न यों बहा दिया होता! परिणाम यह हुआ कि इस स्त्री को वह पैशाचिक बीमारी हो गई। मैंने सुना है कि वह छः दिन के भीतर तड़प कर मर गई और उसके पास एक पैसा भी न था जो उसने अन्तिम छः दिन में कुछ आहार तो कर लिया होता। मैंने यह भी सुना है कि उसे एक पड़ोसी सज्जन ने दया कर ज़नाने अस्पताल में पहुंचा दिया था पर वहां की मिस्ट्रेस को चूंकि उससे कुछ मिलने की आशा न थी इससे उसने उसे वहां से निकलवा दिया।

राम०—और उस चांडाल हत्यारे का क्या हुआ जिसने उस क्षुधार्त पिपासार्त अबला को प्रलोभन दिया था?

शान्ती०—वह अपने घर में मौज कर रहा है।

राम०—तो श्रेष्ठ देशभक्ति वह है जो इन अत्याचारों को रोके और इस प्रकार प्राणियों के कल्याण के लिए उद्योग करे।

शान्ती०—यथार्थ। देशभक्त देखता है कि विचारा किसान और मज़दूर दिन भर कठिन परिश्रम करता है फिर भी उसे ४ आने रोज़ की प्राप्ति होती है और बाबू लोग बहुत थोड़ा कार्य करते हैं और वह भी कुर्सी, मेज़ और बिजली के पंखे की सहायता से फिर भी वे सैकड़ों रुपये प्रतिदिन पैदा कर लेते हैं। देशभक्त को ध्यान देने पर यह विदित हो जाता है कि इस प्रकार जो रुपया किसी को इतना अधिक और दूसरों को इतना कम मिलता है इसीसे धीरे धीरे ये सब दुख दारिद्र उत्पन्न होते हैं। इसलिए देशभक्त स्वयम् विशेष धन नहीं लिया चाहता। वो मिलते हुए धन का भी तिरस्कार करता है। अब तुम समझे कि मैंने क्यों चार देशभक्त चुने हैं।

राम०—ठीक है पर भाई तुम तो Socialism (सामाजिक समता) और Patriotism (देशभक्ति) को Confound कर रहे हो।

शान्ती०—मैंने पहले ही कहा कि मेरी देशभक्ति संकुचित नहीं है उसमें ये सब बातें आ जाती हैं, नहीं तो क्या आप समझते हैं कि पूजनीय देशभक्त केवल form of Government (सरकारी ढाँचा) के लिए सारा उद्योग करते हैं? वाह। "For forms of Government let fools contest"

राम०—अच्छा! देशभक्ति तो फिर सम्पूर्ण धर्म हो गया मज़हब हो गया, फ़िलासफ़ी हो गया।

शान्ती०—बेशक! और मैंने चार ही सज्जनों को देशभक्त क्यों कहा था? गांधी ऋषि हैं, मालवीय आस्तिक धर्मात्मा हैं, तिलक टेढ़े ब्राह्मण हैं, एनी बेसेन्ट ने जन्म भर धर्म की सेवा की है। देशभक्त वही हो सकता है जो जगदीश्वर परमात्मा का भक्त हो, जिसे प्राणिमात्र में उस सच्चिदानन्द की मूर्ति दिखाई देती हो, जिसे संसार और समाज का कल्याण ईश्वर की सेवा समझ पड़ती हो और जो form of Government को केवल means समझता हो न कि end.

राम०—और जो मटनचाप में, मोटर और ट्रम में, सूट बूट में लेडी और टीपार्टी में जीवन व्यतीत करता हो पर जिसे अपने देश की इज्ज़त बढ़ाना मंजूर हो क्या वह देशभक्त नहीं है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ती०—यह केवल निकृष्ट देशभक्त हैं, पूजनीय नहीं हैं। इस तरह की देशभक्ति तो स्वार्थ है और प्राणी मात्र में होती है।

राम०—मगर हमारे देश में तो कुछ ऐसे हैं जिनमें ऐसी देशभक्ति भी नहीं है।

शान्ती०—उन्हें समझा दो वे भी ऐसे देशभक्त बन जायंगे। मनुष्य तो स्वाभाविक स्वार्थी है उसे विशेष स्वार्थी बनाने में विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ेगा।

कमरे के दीवाल पर लगी हुई घड़ी ने एक दो तीन करके छः का घंटा बजाया। भगवान मरीचमालिन की ज्योतिमय किरणों ने कमरे में प्रवेश किया। पक्षियों का कलकल भी सुनाई देने लगा। पूर्व दिशा के आकाश की लालिमा की परछाईं शीशे के द्वार पर पड़ने लगी। रामकुमार ने आश्चर्य कर कहा "लो सबेरा भी हो गया, रात बात ही में बीत गई"।

शान्ती०—हां सबेरा हो गया। अच्छा तो मैं अब जाता हूं। तुम अपने होस्टों से जो चाहना कह सुन लेना।

राम०—क्या पागलपना बक रहे हो? उन्होंने तुम्हारे साथ इतना उपकार किया और तुम उन्हें बिना धन्यवाद दिये उनका घर छोड़कर चल दोगे?

शान्ती०—तुम धन्यवाद इत्यादि देते रहना मैं ऐसे स्थान में विशेष नहीं ठहर सकता। मेरे लिए यह प्रलोभन का स्थान है। मैं अमीरों की सोहबत बहुत नहीं किया चाहता। मुझसे ग़लती हुई जो मैं कल यहां आया। मैं जाता हूं। (उठ खड़े हुए)।

राम०—भाई शान्ती तुम तो अतीव झक्की हो। सोचो तो वे लोग क्या कहेंगे? मिस कामा, मिस्टर रुस्तम इन्होंने कैसा सौहार्द दिखलाया और तुम कैसी असभ्यता दिखला रहे हो।

शान्ती—(जाते हुए) "मुझे मिस बुद्धि और मिस्टर कर्तव्य की विशेष फ़िक्र है"।

रामकुमार चित्रलिखित से स्तब्ध होकर बैठ गये। ठंडी ठंडी पवन कमरे में आने लगी। शान्ति नारायण के आचरण, उसकी देशभक्ति, और उनके मत से इन्हें बड़ी भक्ति थी पर इस समय उनके अक्खड़ता से ये घामड़ हो गये। इतने में दर्वाज़ा खुला और नौकर ने आकर चाय लाने के लिए आज्ञा माँगी। रामकुमार ने बाथरूम की रास्ता पूछी और उसने बताकर वहां से कूच किया।

* * * * *

(२)

किसी समय में मिस रोशन आरा के अंग्रेज़ी डैन्स की बड़ी धूम थी। कोई कहता था मिस रोशन अमेरिकन हैं, कोई कहता था ऐंग्लो इन्डियन हैं और कोई कहता था पारसी हैं। इनका सर्पनृत्य (snake dance) और सूपनृत्य (Harvest dance) विशेष रोचक था। १७, १८ वर्ष की अवस्था, गौरवर्ण, सुन्दर रूप, और तिस पर स्टेज की सब कलाओं की भिज्ञता। रसिक शिरमौर! यदि तुम इससे भी अधिक कुछ चाहते हो तो निर्दयी हो, मक्खीचूस हो, ज़ालिम हो! जो प्रश्न मिस रोशन आरा के सम्बन्ध में बारम्बार किया जाता था अर्थात् कि ये ऐंगो इन्डियन हैं या पारसी वही अब बहुत से पारसियों के सम्बन्ध में किया जाने लगा है। पारसियों का रंग रूप और रहन-सहन तो ऐंग्लो-इन्डियनों की तरह थी ही और प्रायः पारसी इन्हीं लोगों से ज़्यादा मिले जुले भी रहते थे पर अब कुछ दिनों से दोनों जाति में कहीं कहीं बेखटके विवाह होने से एक नई समस्या उत्पन्न हो गई है। हमारी मिस कामा से विवाह करने के लिए भी कुछ दिन पूर्व एक ऐंग्लो-इन्डियन सिमसन प्रयत्न करते थे पर मिस कामा से फटाक सा उत्तर पाने पर हताश हो वे कोई दूसरा घर झांकने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामकुमार प्रातःकाल "छोटा हाज़िरी" खाने के लिए रुस्तमजी, मिसेज़ रुस्तमजी और मिस कामा के साथ बैठे। रामकुमार ने शान्ति-नारायण के चले जाने के लिए किसी प्रकार क्षमा मांग लिया पर साथ ही शान्तिनारायण के चरित्र का एक ख़ाका भी सूक्ष्म रूप से इन लोगों के सम्मुख खींच दिखाया। मिस कामा के मुख पर उत्सुकता के लक्षण और रुस्तमजी के मुख पर हँसी दिखाई पड़ने लगी।

मि० कामा—शान्तिनारायण किस क्लास में बैठकर रेलवे में सफ़र करते हैं?

राम०—तीसरे में। वो तो समझिये गांधी के अनुयायी हैं।

मि० कामा—ज़रा भाई रुस्तमजी से तो पूछिये। इनका मत भोग विलास का है।

रुस्तम—जी नहीं। मेरे मत को भोगविलास का मत कहना तो उसकी हँसी उड़ाना है, यदि आप विचार कर देखें तो आपको मेरे मत की प्रबलता प्रतीत होने लगेगी।

रुस्तमजी ने विलायत में शिक्षा पाई थी। ये आक्सफोर्ड के ग्रेजुएट थे। इतिहास इनका मुख्य विषय था पर इन्होंने अन्य विषयों पर भी ध्यान दिया था। अभी साल ही भर पूर्व ये पत्नी और भगिनी को लेकर विलायत की सैर एक दफा और कर आये थे। ये बड़े भारी व्यापारी थे और इनका व्यापार विलायत में भी बहुत कुछ था रामकुमार को ये बातें पहिले ही विदित हो चुकीं थी इससे उन्हें रुस्तमजी की बात पर अविश्वास सा हुआ क्योंकि जो पुरुष विलायत हो आया है और धनधान्य से इस प्रकार सम्पन्न है उसका भोगविलास के मत में लिप्त होना ही विशेष संभव जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त मिस कामा के सुन्दर मुख से निकले हुए सुन्दर शब्द रामकुमार को वेदवाक्य से पुनीत बोध होते थे। रामकुमार ने निश्चय कर लिया था कि संसार की अशेष अबलाओं में मिस कामा अद्वितीय सुन्दरी है। शृङ्गार की सम्पूर्ण कलाओं ने उसके कोमल शरीर को अपना निवास-स्थान बनाया है। उसके शरीर के समीप बैठना उसके शब्दों को सुनना एक विचित्र आनन्द का अनुभव करना है। पर रामकुमार की यह भावना प्रेम का तरंग नहीं है। न यह लिप्सा है, न यह मादकता या उन्मत्तता है। यह केवल गुणग्राह्यता है सौंदर्य की प्रियता है। इस विषय में रामकुमार ने प्लेटो को भी मात कर दिया था। प्लेटोनिक लव (Platonic love) की विशुद्धता रामकुमार में ही देख पड़ती थी। रुस्तमजी ने रामकुमार को सोचने का समय न दिया। वे कहने लगे।

रुस्तम—मैं उन लोगों से सहमत नहीं हूं जो कहते हैं कि प्रत्येक देशभक्त को ग़रीब होने का व्रत लेना चाहिये। मेरे समझ में बजाय अमीरों को ग़रीब बनाने के हम लोगों का प्रयत्न यह होना चाहिये कि जो ग़रीब हैं वे भी अमीर हो जावें। इसलिए मेरा मत है कि प्रत्येक देश-भक्त को अमीरी का व्रत धारण करना चाहिये। हमारे ग़रीब भाइयों को कष्ट है, इसलिए हम भी भोग और सुख की सामग्री को तिलांजुलि देकर दुख उठाना प्रारम्भ कर दें इससे हमारे भाइयों का दुख घट नहीं जायगा। यह तो केवल बदला लेना हुआ। निस्संदेह यह केवल प्रतीकार है न कि परोपकार। यदि आप परो-पकार पर कमर बांधते हैं तो यह कोशिश कीजिये कि सब का कष्ट निवारण हो न कि उन लोगों को भी औरों के साथ कष्ट मिले जो अब तक कष्ट से मुक्त थे। यदि मैं मोटरों पर चढ़ता हू, मलाबार हिल में सुसज्जित मकान में रहता हूं तो क्या मैं देशद्रोही हूं?

रुस्तमजी के नौकर ने रामकुमार के हाथ में लाकर एक पत्र दिया। पत्र पढ़ते ही रामकुमार का हांथ कांपने लगा और उनका मुख दुख से विह्वल हो उठा। शान्तिनारायण ने अपने टिकट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्थान पर पहुंचते ही अपने घर से एक तार पाया कि उनकी स्त्री का देहान्त गत रात्रि में इनफ्लुएन्ज़ा से हो गया और उन्होंने इस पत्र द्वारा रामकुमार को उसी की सूचना दी थी। रुस्तमजी की मोटर लेकर रामकुमार तुरन्त शान्तिनारायण के पास पहुंचे पर वहां उन्होंने शान्तिनारायण के मुखाकृति पर एक विचित्र शान्ति का आभास पाया। उनका ध्यान था कि वे अपने प्रिय मित्र को दुख से कातर पावेंगे और उसी सोच से वे स्वयम् आतुर होते जा रहे थे पर शान्ति के सम्मुख पहुंचने पर जो शान्त दृश्य उन्होंने देखा उससे उन्हें आश्चर्य तो हुआ पर कुछ ढाढ़स भी हुई।

रामकुमार—तो अब तुम घर जाओगे ?

शान्ति०—हां पहिले तो घर जाकर उसकी क्रिया करूंगा फिर--

राम०--फिर कहां ?

शान्ति०--फिर···संसार से नाता तोड़ लूंगा।

राम०--(चौंक कर) इसका क्या अर्थ ?

शान्ति--याने ईश्वर की शरण में चला जाऊँगा।

राम०--तो स्पष्ट कहो कि आत्महत्या करोगे।

शान्ति०--नहीं ऐसा तो विचार नहीं है। केवल किसी निर्जन स्थान में जाकर भगवद्भजन करूंगा।

राम०--क्या घर रह कर भगवान का स्मरण नहीं कर सकते ?

शान्ति०--नहीं मैं सन्यास लूंगा--हरिद्वार से आगे किसी पहाड़ी गुफ़ा में रहूंगा।

राम०--(कुछ सोचकर) और देश को भूल जाओगे ?

शान्ति०--नहीं उसके कल्याण के लिए जगदीश्वर से प्रार्थना करूंगा।

शान्ती को रेल पर पहुंचाने रुस्तम जी भी आये थे पर शान्ती ने उनसे कोई बात नहीं की।

डांक से शान्तिनारायण रवाने हो गये। उनसे विदा लेते समय रामकुमार को अपार दुख हुआ।

* * * * *

(३)

मि० मांटेगू ने जो टूटे, फूटे, सड़े, गले, सुधार देने का विचार भी किया तो वह सिद्ध न हुआ। कर्ज़न और सिडनहम के विरोध ने और माडरेटों के "बहुत है बहुत है" के अनुरोध ने जो कुछ मिलनेवाला था उसे भी चंपत करा दिया। सारे देश में क्रोध और अशान्ति छागई। यूरोपीय युद्ध समाप्त हो गया। पीस कान्फरेंस में स्वतंत्रताप्रिय लोगों ने विलायत वालों को भारत को सत्व से वंचित रखने के लिए खूब झाड़ा पर विलायती राजनीतिज्ञों ने "मार खाव तो वदन झाड़ कर फिर भी अकड़ दिखाओ" की नीति का अवलम्बन कर लिया। रुस्तमजी अब तक तो साधारण रीति से कभी २ सूटेड बूटेड मोटर पर आकर होम-रूल की मीटिंगों में स्पीचें झाड़ जाया करते थे और कभी हज़ार पांच सौ चन्दे भी दे दिया करते थे पर अब सुधारों के विषय में देश के ठगे जाने पर उनकी सोती हुई देशभक्ति जाग पड़ी और उनका क्रोध उमड़ पड़ा। इन्होंने अपना जन्म अब देश सेवा में लगाने का संकल्प कर लिया पर इस संकल्प में इन्होंने मोटर और फ़र्स्ट क्लास त्यागने का विचार न किया। इनकी वार्षिक आय व्यापार से कोई ४० लाख के लगभग थी और इन्होंने सब धन देश सेवा में लगाने का मसौदा तयार कर लिया। अपने धन से इन्होंने दो बोर्ड कायम किया एक तो सम्पादकों का बोर्ड और एक व्याख्यान देने वालों का बोर्ड। अपने पुरातन सिद्धान्त के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुसार कि ग़रीबी का व्रत न लेकर देशभक्त को अमीरी का व्रत लेना चाहिये इन बोर्डों में इन्होंने तनख्वाह खूब अच्छी रक्खी अर्थात् २५०) और १५००) के बीच बीच सब को प्रदान करते थे। प्रायः सौ योग्य पुरुषों को चुन चुन कर इन्होंने इसमें सम्मिलित किया और प्रत्येक प्रान्त में दो दो या तीन तीन दैनिक इन्होंने निकालने प्रारम्भ किये। बिहार और मध्यप्रदेश में तो कोई अंग्रेज़ी दैनिक न होने से यह नई बात हुई पर कहीं २ जहां दैनिक थे भी पर जो आन्दोलन से दूर भागते और सरकार की वाह-वाही में लगे हुए थे वहां उनके अनुचित लेखों के कुप्रभावों को नष्ट करने में इनके समाचार-पत्र बड़े कारगर हुए। संयुक्तप्रान्त, देहली, लाहौर, पटना, नागपुर इत्यादि स्थानों से इन्होंने हिन्दी के भी कई दैनिक निकाले। इसके अतिरिक्त "किसान" नाम का अत्यन्त सरल भाषा में लिखा हुआ साप्ताहिक पत्र इन्होंने प्रायः प्रत्येक प्रान्त की बोली में निकाला और उसे बहुत कुछ मुफ़्त और कुछ दाम लेकर गांव गांव में भेजना प्रारम्भ किया। इनके व्याख्याताओं के बोर्ड ने गांव गांव, महल्ले महल्ले, शहर शहर में हलचल मचा दी और दो वर्ष के अनवरत आन्दोलन और कठिन परिश्रम ने यह दशा कर दी कि प्रत्येक वर्ग कक्षा और जाति के मनुष्य देशसेवा के लिए तत्पर हो गये और स्वतंत्रता स्थापित करने पर कटिबद्ध हो गये।

* * * * *

१६२० के दिसंबर की कांग्रेस में यही समस्या उपस्थित है कि वृटिश सरकार को किस रूप में Ultimatum भेजा जाय कि फ़रवरी के अन्त तक या तो हमें स्वराज्य दो या हम तुम्हारे देश से व्यापार बन्द कर देंगे, तुम्हारी नौकरी में जितने हिन्दुस्तानी हैं सब को नौकरी से अलग हो बैठने का आदेश करेंगे, तुम्हारी कौंसिल और म्युनीसिपैलिटी छोड़ देंगे और तुम्हें एक पैसा टैक्स न देंगे।

कांग्रेस के लिए बम्बई नगर में रुस्तम जी ने एक पक्का हाल बनवा रक्खा है। इस हाल में तीस हज़ार आदमी बैठ सकते हैं। हाल का नाम रुस्तमजी ने भगिनी के नाम पर "कामाहाल" रक्खा है। विशेष कर बड़े लोग रुस्तम जी के सुन्दर महल में ठहरे हैं। रुस्तम जी ने बड़ी खातिरदारी मचा रक्खी है। सब के लिए अलग २ मोटर का प्रबन्ध है। कांग्रेस की बैठक कल ११॥ बजे प्रारम्भ होगी। चारों तरफ खूब जागृति और उत्साह फैल रहा है। एकाएक इस इन्द्र की सभा में मुर्दानगी छा जाती है। हर्ष का पुलकित कलकल बन्द होता है। रुस्तम जी के घर में सब व्यग्र चिन्तित और व्यथित हो जाते हैं। आपत्ति विपत्ति का पर्वत जैसे एकाएक आटूटता हो। परसों ही सुकुमारी स्वरूपवती मिसकामा इनफ्लुएन्ज़ा से ग्रसित होती हैं और आज डाक्टर लोग दांतों के नीचे अंगुली दबाते हैं और हताश हो गये हैं। रुस्तम जी विक्षिप्त की भांति इधर उधर दौड़ते हैं। रामकुमार भी कांग्रेस के लिए बम्बई गये हुए हैं और रुस्तम जी के यहां ठहरे हैं। इनका चेहरा बिलकुल पीला पड़ गया है, दुःख का सागर इन्हें चारों ओर से प्लावित किये हुए है। इनको आदर्श रमणी, आदर्श सती, आदर्श सुन्दरी आज मृत्यु शय्या पर है इससे इनका साहस पयान कर गया है। रात्रि का समय है। मलाबारहिल के सन्नाटे को केवल समुद्र के कल्लोल का शब्द भेदता है। चारों ओर सन्नाटा है इतने में कण्ठ से नहीं हृदय से निकले हुए शब्दों में "देवि पूजि पद कमल तुम्हारे, सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे" की आवाज़ सुनाई पड़ती है। कम्पाउन्ड में खिन्न मन से घूमते हुए रामकुमार शब्द सुन कर चौंक कर इधर उधर ताकते हैं और सम्मुख चिर-परिचित जटाधारी, देदीप्यमान ललाटवाले सन्यासी शान्तिनारायण को देखकर उत्साह और आशा से उन्हें प्रणाम करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राम०—शान्ति तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं तुम कामा को किसी प्रकार अच्छा कर दो। या भगवान! यदि कामा न अच्छी हुई तो इष्ट मित्रों की दशा जो होगी सो होगी पर उसके वियोग से विह्वल रुस्तम फिर देश सेवा के योग्य न रह जावेगा, फिर इस अभागे देश की न जाने क्या दशा होगी।

शान्ती०—तुम्हारा रुस्तम देशभक्त है या भगिनी भक्त है?

राम०—कैसी कठोर बातें करते हो? क्या देशभक्त अस्थि मांस और रुधिर का शरीर नहीं रखता? क्या देशभक्त मनुष्य नहीं होता? क्या वह पत्थर की मूर्ति है? या पाषाण हृदय या वज्रनिर्मित है? विचारो विचारो! तुमतो सदा दया दया, प्राणियों पर दया, निर्धनों पर दया, दरिद्रों पर दया, की दोहाई दिया करते थे अब वह दया का भाव क्या हृदय से सर्वथा विलीन हो गया? शान्ती! कामा को बचालो।

शान्ती०—रामकुमार! मैंने संसार त्याग दिया था और आज जो यहां पुनः लौटा हूं सो केवल प्रायश्चित्त के लिए। मैं अमीरों को स्वार्थी और इसलिए पापी और देशद्रोही समझता था। रुस्तम जी को भी मैंने एक दिन यही समझा था आज उसकी क्षमा मांगने आया था क्योंकि दो तीन वर्ष के भगवद्भजन से मुझे प्रतीत हो गया कि मेरा ध्यान ठीक न था। बड़े बड़े प्रतापी पुण्यात्मा महात्मा और महर्षि जो तपस्या करते हैं उसका क्या तात्पर्य होता है? तपस्या का मंत्र क्या होता है?—"हे पतित-पावन भगवान तुम मेरा कल्याण करो। मुझे

मुक्ति दो

यही सब का अभीष्ट है और यह यदि स्वार्थ की प्रेरणा नहीं है तो क्या है? इसमें यदि अहम का ध्यान नहीं है तो क्या है? हमने तुमसे कहा था कि अमीरों की देशभक्ति केवल स्वार्थ की प्रेरणा है, अहम की पुष्टि है, पर अब मैंने देख लिया कि हमारी तपस्या भी वही है, भगवद्भजन भी वही है। इस संसार का यही महामंत्र है, यही परमेश्वर की माया है। हमारे गुरू ने हमें यह शिक्षा दी है कि तुम जाकर उन्हीं मनुष्यों को फिर आदर की दृष्टि से देख आवो जिन्हें तुम एक दिन घृणा की दृष्टि से देख गये थे और मैं वही करने आया हूं।

राम०—पर कामा, कामा, कामा को आरोग्य नहीं करोगे?

शान्ती०—मेरे पास एक जड़ी है, जिसने उसे खाया है उसे लाभ हुआ है तुम, कामा को उसे दो, ईश्वर चाहेंगे तो लाभ होगा।

(४)

मनोहर रूपवती कामा कुमारी फिर अठलाती हुई चारो दिशाओं को अपने अनुपम सौंदर्य के प्रकाश से जगमगाने लगी। उसके प्राणरक्षक सन्यासी का फिर पता न चला। रामकुमार ने बाद को सब बातें रुस्तमजी से कह सुनाईं। रुस्तमजी को यह बात चन्द्रकान्ता सन्तति की लग्गो कहानी मालूम देती थी। पर इसमें इनका दोष ही क्या था? रामकुमार कामा के विषय में त्रिलोक की जांच खोज कर एक आद बात नित्य सुनाया करते थे—कौनसी मानी जाय और कौन न मानी जाय? इनका कहना था कि कामा मृत्यु के निकट जाकर जो फिर लौट आई इसका कारण यह था कि स्वर्ग में मेनका और उर्वशी को यह देखकर बड़ा भय हुआ कि भूलोक से यदि यह चन्द्रवदनी इन्द्रलोक में चली जायगी तो वहां उनकी पटरानी बन जावेगी और उन्होंने इसी भय के कारण इन्द्र से प्रार्थना कर उसे भूलोक ही में रहने दिया। इधर कांग्रेस के २७ दिन बाद सम्राट् ने घोषणा की "कि बृटिश भारत को हम स्वराज्य प्रदान करते हैं। कोई विभाग रिज़र्वड् नहीं रहेगा—सम्पूर्ण विभागों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी भारत की जनता होगी। सेना-विभाग भी जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में रहेगा। जो लोग इस समय विभागों में काम करते हैं वे काम करते चलेंगे पर जनता के प्रतिनिधियों के आधीन होकर।"

सम्पूर्ण देश में शान्ति छा गई। सम्राट् की वाह वाह होने लगी। रुस्तम जी अब सामाजिक सुधार की ओर विशेष ध्यान देते हैं। रामकुमार को भी विश्वास हो गया कि केवल त्यागी देशभक्तों से किसी देश का सम्पूर्ण कल्याण नहीं होता वरन्

समर्थ

देशभक्तों से और अब वह समर्थ, धनवान और बुद्धिमान लोगों की भी प्रतिष्ठा करते हैं। इस मानसिक परिवर्तन के कई कारण थे। पर सब से विशेष कारण यह था कि मिस कामा ने बातों ही बात एक दिन इन्हें क़ायल कर दिया कि केवल हृदय में देशभक्ति होने से या देश-सेवा के लिए त्याग करने से देश का उपकार नहीं हो सकता। जो देशभक्त त्याग करता है वह अपने आत्मा को इस कर्म से शुद्ध बनाता है अतएव अपना उपकार करता है। त्याग वास्तव में स्वार्थ-साधन है। देश का कल्याण सेवक को कल्याण करने की सामर्थ्य पर निर्भर है और ऐसी सामर्थ्य विशेषतः धन और योग्यता में निवास करती है।

'देश की भलाई में'।

[लेखक—श्रीयुत गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी।]

दुख दे मनायो सुख जाने वह पायो दुख
सुख दे उठायो दुख छायो सरसाई में।
लेत रह्यो जौन सोही खोत रह्यो सांची कहों
देत रह्यो सोही पात रह्यो सुघराई में॥
जानो ना विचित्र कुछ मानो बात मोर मीत
विश्व के विलोको रंग राचि निपुनाई में।
अपने ही हेत जियो मर गयो मानव वो
जीगयो वही जो मर्यो देश की भलाई में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय महिला समाज।

[लेखिका—श्रीमती एनी बेसेन्ट।]

सन् १९१८ के आन्दोलनपूर्ण वर्ष में जो सब से शीघ्र परिवर्तन हुए उनमें भारत की पुत्रियों के स्वत्वों की स्वीकृति भी एक है। सन् १९१७ की कांग्रेस में स्त्रियों के वोट देने के अधिकार के विषय में एक प्रस्ताव उपस्थित किया गया था किन्तु अन्त में यह स्थिर हुआ कि उस साल कांग्रेस में वह न रक्खा जाय और अगले साल उसके बारे में कार्रवाई की जाय। उस समय यह सोचा गया था कि यदि देश के नेताओं की सम्मति जाने बिना ही ऐसा कोई प्रस्ताव पास कर लिया जायगा तो उससे उन्नति के बदले कहीं कोई बाधा न उपस्थित हो जाय। किन्तु जब लोगों से इस विषय में सम्मति ली गई तब मालूम हुआ कि स्त्रियों के प्रस्तावित सुधार में सम्मिलित कर लेने के पक्ष में वे लोग पूर्ण सहमत हैं। देश के कुछ भागों में स्त्रियों को बहुत दिनों से म्यूनिसिपैलिटी में वोट देने के अधिकार प्राप्त थे। लोग इस बात को देखते थे कि स्त्रियां विधवा हो जाने पर बड़ी योग्यता और चतुरता से अपने नाबालिग़ लड़कों की जायदाद का प्रबन्ध कर लेती हैं। भारतवर्ष के इतिहास में रानियों ने लड़ाइयों और राजकाज दोनों ही चीज़ों में बड़ी सफलता पाई है, तथा विद्या और साहित्य-सम्बन्धी योग्यता के लिए भी यहां की स्त्रियाँ प्रसिद्ध रही हैं। प्राचीन काल में स्त्रियां केवल स्त्री होने के कारण ही सार्वजनिक सेवाओं से अलग नहीं रक्खी जाती थीं किन्तु उनको योग्यतानुसार सब काम दिये जाते थे और गांव की पंचायत में भी उनका चुनाव हो सकता था।

अतएव यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जब सुधार-योजना में स्त्रियों के सम्मिलित करने का प्रश्न उपस्थित हुआ तब लोगों ने स्वाभाविक और उचित समझकर उसके पक्ष में अपनी सम्मति दी। उन्होंने केवल तर्क करने के लिए उसका समर्थन नहीं किया और बम्बई की विशेष कांग्रेस के अधिवेशन में (जो अगस्त १९१८ के अन्त में हुआ था) यह प्रस्ताव बड़े उत्साह के साथ पास किया गया कि जो स्त्रियां योग्य हैं वे 'अपनी जाति के कारण ही' अर्थात् स्त्री होने के सबब से सुधार-योजना से अलग न की जायँ। यह प्रस्ताव देहली की दिसम्बर १९१८ की कांग्रेस में दुहराया गया और अब स्त्रियों को उनके स्वत्व देना या दिलवाना जातीय कांग्रेस का एक मुख्य कर्तव्य समझना चाहिये।

किन्तु स्त्रियों की जागृति राजनैतिक मामलों में ही समाप्त नहीं हो गई। अब वे उच्चशिक्षा प्राप्त करने की सुविधाओं से अधिकाधिक लाभ उठा रही हैं और स्त्री ग्रेजुएटों की संख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है, इनमें से अधिकांश कन्या पाठशालाओं की अध्यापिका हो जाती हैं जहां इन ग्रेजुएटों की आवश्यकता दिनों दिन बल पकड़ती जाती है, कुछ मेडिकल विभाग में जाती हैं जहां उनकी सहायता के लिए स्वयं उनकी जातिवाली पुकार मचा रही हैं, युवती विधवा के साथ जो सब से बड़ा सलूक किया जा सकता है वह यह है कि उसे उच्चशिक्षा पाने का अवसर दे दिया जाय जिससे वह घर के बाहर अधिक सुखी और लाभदायक जीवन व्यतीत कर सके।

अभी हाल ही में देहली में एक महिला-परिषद् हुई थी उसमें स्त्रियां पर्दा की प्रथा हटाने, बाल विवाह बन्द करने, शिक्षा की आवश्यकता और राजनैतिक जीवन पर बहुत अच्छी तरह बोली थीं, स्वयं कांग्रेस में स्त्रियां स्त्रियों के वोट के अधिकार women franchise के प्रस्ताव के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष में बोली थीं, क्या दो तीन साल पहिले यह सम्भव समझा जा सकता था कि पांच छः स्त्रियां एक महान सभा में आकर अपनी जाति के लिए अधिकार मांगेंगी?

इस बात के लिए अधिक तर्क करने की आवश्यकता नहीं है कि स्त्रियों को सम्मिलित करने से जातीय आन्दोलन में कितना बल आ जायगा। स्त्रियों का यह स्वभाव है कि वे जो कुछ सीखती हैं उसे वे वर्तती भी हैं और पुरुषों की अपेक्षा उनमें स्वार्थत्याग की मात्रा अधिक होती है, उनकी दृष्टि में फुरसत के समय आदर्श तारीफ़ करने की चीज़ नहीं है किन्तु उनके लिए वह जीवन में वर्तने का नियम है। सार्वजनिक जीवन में स्त्रियों के प्रवेश से उसकी शक्ति, उसके बल और उसकी संचालन शक्ति की वृद्धि होगी। इससे हमें बच्चों की दशा में सुधार की विशेष आशा है। इससे बच्चों की सेवा, उसके लिए अच्छे दूध, रोगी की अधिक सुश्रूषा और बच्चों की शिक्षा के विचारपूर्णता ये सभी बातें बढ़ेंगी।

कदाचित् १९२० में भारत की स्त्री अपने पति और अपने पुत्रों के साथ जातीय जीवन में अपना उचित स्थान ग्रहण कर उसमें अपने कर्तव्य के धार्मिक ज्ञान, उत्तरदायित्व और सुशीलता का सन्निवेश करेगी। इस प्रकार घर की माता जाति की माता हो जायगी और जब पुरुष और स्त्री दोनों ही साथ साथ महान् और अधिक आनन्दपूर्ण भविष्य की ओर यात्रा करेंगे तब सारा जीवन अधिक सुन्दर, कोमल और मधुर हो जायगा।

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

वर्तमान यूरोप की स्थिति को समझने और यूरोप के भविष्य का अन्दाज़ा लगाने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि पिछले ३० वर्षों के इतिहास पर दृष्टि डाली जाय। कारण यह है कि इन वर्षों में उन सब राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक शक्तियों का विकास हुआ है जिनकी प्रेरणा से यूरोपीय महायुद्ध का आरम्भ हुआ और जिनका प्रभाव बहुत दिनों तक यूरोप तथा संसार पर रहने की सम्भावना है।

यूरोप के इस युग का आरम्भ सन् १८८५ से होता है। इस सन् में यूरोपीय राष्ट्रों में साम्राज्य स्थापन की उत्कट आकांक्षा उत्पन्न हुई। उत्तरी तथा दक्षिणी एमेरिका लुटेरों के हाथों के बाहर था क्योंकि यूनाईटेड स्टेट्स के प्रेसीडेन्ट मनरो ने इनकी रक्षा का विज्ञापन बहुत समय हुए, दे दिया था। यूरोप में किसी राष्ट्र का दूसरे के प्रान्तों पर कब्ज़ा करना अत्यंत कठिन था, क्योंकि राष्ट्रों की आपस की ईर्ष्या किसी एक को बढ़ता और फैलता देख नहीं सकती थी और राष्ट्रों के बल-साम्य (Balance of power) के घट बढ़ जाने का भय सब को अपनी सरहद में रहने पर मजबूर करता था। आस्ट्रेलिया इङ्गलैण्ड के आधीन हो ही चुका था इस कारण पृथ्वी पर केवल एशिया और एफ्रिका के दो महाद्वीप और प्रशांत महासागर के कुछ द्वीप ही बटवारे के लिए बाकी थे। इन्हीं के बांट लेने के लिए खेंचातानी आरम्भ हुई। सब से पहिले एफ्रिका का विभाजन हुआ क्योंकि यहां हब्शी जातियां आबाद हैं और वे यूरोपीय सभ्य जातियों के मुक़ाबिले में अपनी रक्षा में असमर्थ हैं। अंग्रेज़ों ने मिश्र पर, फ्रांस ने मराको, ट्यूनिस, पश्चिमोत्तरी एफ्रिका और मेडागास्कर पर, जर्मनी ने पूर्वीय तथा पश्चिमी भाग और कैमरून पर, इटली ने पूर्वोत्तरी भाग पर और बेलजियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने कांगो पर अधिकार जमाया और समस्त महाद्वीप यूरोपीय राष्ट्रों में बँट गया। जो भाग बचे उन पर इटली और रूस की आंख लगी रही। रूस को कुछ सफलता न प्राप्त हुई किन्तु इटली ने ट्रिपली को तुर्कों से छीन लिया।

एशिया में अंग्रेज

हिन्दुस्तान के मालिक थे। इस घबराहट में कि कहीं रूस अथवा फ्रांस निकट के देशों पर अधिकारी न हो जायँ उन्होंने अफ़ग़ानिस्तान, बलोचिस्तान, अरब के तट और फ़ारिस की खाड़ी को पश्चिम दिशा में और बर्मा को पूर्व में अपने अधीन किया। रूस मध्य एशिया में बढ़ते बढ़ते अफ़ग़ानिस्तान की सरहद पर और पूर्व की ओर चीन और कोरिया तक आ पहुंचा। फ्रांस ने अनाम और टोनकीन पर कब्ज़ा कर लिया। एशिया में केवल ३ स्वाधीन देश बच रहे—चीन, ईरान और टर्की। इन तीनों को बाँटने के लिए यूरोपीय राष्ट्रों में पिछले तीस वर्षों से बड़े प्रयत्न हो रहे हैं और महायुद्ध के अन्य कारणों में इन देशों के विभाग का झगड़ा भी एक महत्वशाली कारण है।

संसार की दुर्बल जातियों को अपने अधीन करने और एफ्रिका तथा एशिया के देशों को अपने अधिकार में लाकर साम्राज्य स्थापित करने की लालसा में यूरोप ने बड़ा परिश्रम किया है। इसी कारण इस युग को साम्राज्य संगठन (Imperialism) का युग कहते हैं। किन्तु साम्राज्य को संगठित रखने के लिए बड़े साधनों की आवश्यकता होती है। दूसरी जातियों को पराजित करके उन पर स्वायत्त शासन जमाये रखने के लिए जेताओं को बड़ी जल और स्थल सेना और बड़े सामान की आवश्यकता होती है। जेता राष्ट्र को अपने ऊपर अत्यन्त कष्ट सहने पड़ते हैं, समस्त राष्ट्र को संगठित रूप से रुपया पैदा करने और लड़ाई का सामान तैयार करने में व्यस्त होना पड़ता है और राष्ट्र के व्यक्तियों को कड़े सैन्य कर्तव्यों (military duties) का पालन करना होता है। राष्ट्रीय गौरव और साम्राज्य वैभव पाने के लिए कठिन त्याग और सेवा आवश्यक हैं। दो बातें इन कठिनाइयों के झेलने के लिए राष्ट्रों को उद्यत करती हैं। एक राष्ट्रीय प्रेम और दूसरे

आर्थिक आवश्यकता।

यूरोपीय जातियों के देश-प्रेम के बारे में कुछ अधिक कहना व्यर्थ है। इस प्रेम की प्रबलता सब को विदित है। आर्थिक दशा की बात सब भली भांति नहीं जानते हैं। इस पर विचार करने की ज़रूरत है। जब से यूरोप के विज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ (अर्थात् उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से) तब से यूरोप की आर्थिक तथा सामाजिक दशा में इतना भारी अन्तर हुआ है कि उसका ठीक ठीक अनुमान करना अभी सम्भव नहीं है। इस विज्ञान की उन्नति ने आर्थिक दशा को बिलकुल ही बदल डाला है। उन्नीसवीं शताब्दी से पहिले यूरोप और एशिया में बहुत थोड़ा अन्तर था अब ज़मीन आसमान का फ़र्क है। १८५० से पहिले यूरोप में शिल्प आरम्भिक अवस्था में था, कारख़ानों से थोड़ा माल निकलता था जो राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त होता था। किन्तु १८५० से १८८५ तक इस शिल्प (Industry) में युगान्तर हुआ। पहिले इङ्गलैंड में और फिर यूरोप के अन्य देशों में पूंजीवालों (Capitalists) ने शिल्प को अपने अधीन कर राष्ट्रीय आवश्यकताओं से कितने गुना अधिक माल तैयार करना आरम्भ किया। माल की उत्पत्ति बड़े परिमाण (large scale production) पर होने लगी और इस माल को दूसरे देशों में बेंच कर लाभ उठाने की फिक्र उत्पन्न हुई। माल की निकासी के लिए खरीदने वालों की ढूंढ़ हुई। यूरोप के बराबर वाले देशों में सारे माल की खपत असम्भव देख इसको अन्य जातियों के सिर मढ़ने की तदबीरों पर विचार होने लगा। माल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ की अधिकता

के विचित्र परिणाम हुए। पहिले तो पूंजी वालों ने अपना पेट खूब भरा फिर थोड़ा भाग श्रमजीवियों को देना स्वीकार किया। श्रमजीवियों के श्रम के समय में कमी हुई, उनकी आर्थिक दशा सुधरी और उन्हें राजनैतिक अधिकारों के प्राप्त करने की सूझी। एक ओर शासन को श्रमजीवियों की इच्छा पर आश्रित करने का आन्दोलन चला और प्रजातंत्र के स्थापित होने का समय आया, दूसरी ओर माल को दुर्बल और अपनी रक्षा में असमर्थ जातियों के हाथ ज़बरदस्ती बेंचने और लाभ उठाने की नीच अभिलाषा ने इन प्रभावशाली धनी राष्ट्रों को एशिया तथा एफ्रिका के देशों पर कब्ज़ा करने को उसकाया। धन की वृद्धि के साथ साथ आबादी भी बढ़ी और यूरोपीय राष्ट्रों के सामने इस आबादी को ठिकाना देने का कठिन प्रश्न उपस्थित हुआ। लाभ की लालच के ऊपर उपनिवेश की खोज ने सोने पर सुहागे का काम दिया। साम्राज्य-संगठन की लालसा ने राष्ट्रों को अत्यन्त उत्कंठित किया। एशिया, एफ्रिका और छोटे बड़े द्वीप यूरोपीय राष्ट्रों की आर्थिक क्षुधा के शिकार हुए। यूरोप में

प्रजातन्त्र और साम्राज्य

(Democracy and Empire) का अनोखा मेल हुआ। घर पर समता (Equality) और स्वतंत्रता (liberty) साम्यवाद (Socialism) और सामाजिक सुधार (Social amelioration) की आवाज़ें उठीं, स्त्रियों के अधिकार बढ़ाने की कोशिश शुरू हुई, बच्चों की रक्षा और बूढ़ों के पोषण के प्रबन्ध के लिए नियम बने, अनिवार्य शिक्षा के प्रचार और विज्ञान के विस्तार से अज्ञान और अंध-विश्वास में कमी हुई, सम्प्रदायों और मतमतान्तरों के कट्टरपन ढीले हुए। व्यक्ति सुख और सभ्यता का जीवन व्यतीत करने लगे और राष्ट्र बलशाली, धनाढ्य और गौरवान्वित हुए। बाहर सभ्य यूरोपियनों की सभ्यता अन्य जातियों के संयोग से

विकट निष्ठुरता

में बदल गई। यहूदी (Jew) जाति पर पहिले कुठार चला। यूरोपीय राष्ट्रों के आर्थिक तथा शिल्पसंबन्धी वृद्धि के यहूदी एकमात्र कारण थे, उनकी मितव्ययिता ने यूरोप को वह पूंजी दिलाई थी जिससे उनके कारखाने बढ़े थे किन्तु साहूकार सदा घृणित होते हैं यहूदी भी घृणा के पात्र बने और जर्मनी, रूस, फ्राँस इत्यादि में उनको अत्यंत कष्ट दिये गये। एफ्रिका में यद्यपि गुलामी का अंत हो चुका था किन्तु गुलामी नया भेष धारण करके फिर उपस्थित हो गई। सूर्य की कड़ी किरणों से पीड़ित एफ्रिका में ठण्डे मुल्क वाले यूरोपीय श्रमजीवी रह नहीं सकते इसलिए उन्होंने ठीके के कुलियों की प्रथा चलाई। कांगो में बेलजियम के निवासियों ने रबर के लिए दीन निर्बल हब्शियों के हाथ पैर काटे और सैकड़ों को वृक्षों पर टांग फाँसी दे दी। अंगोला में सहस्रों को जीते चिता पर चढ़ा दिया। पूर्वी एफ्रिका में जर्मनों ने बच्चों और स्त्रियों को तलवार के घाट उतारा और दक्षिणी एफ्रिका में अंग्रेज़ी साम्राज्य की छत्रछाया में हिन्दुस्तानियों पर अपमानों और कष्टों की बौछार हुई।

एशिया में चीन

पर यूरोपीय राष्ट्र चीन के टुकड़े टुकड़े कर डालने को चढ़ दौड़े। जर्मनी ने कियाचाऊ पर, इङ्गलैंड ने हांगकांग पर, रूस ने मन्चूरिया पर, फ्रांस ने टौनकीन पर कब्ज़ा कर लिया और सब ने मिल कर पेकिङ्ग में खून की नदियां बहाईं। ईरान को रूस और इङ्गलैंड ने बांट लिया। रूसियों ने ईरानियों पर तरह तरह के उपद्रव किये, औरतों को बेइज़्ज़त किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चों को कटवाया और निःशस्त्र मज़हबी नेताओं और मौलवियों को फांसी पर टंगवा दिया। इङ्गलैंड जो टर्की से आर्मीनियनों के संहार के बारे में अति क्रोधित रहता है अपने मित्र की क्रूर घृणित कार्रवाइयों को चुपचाप देखता रहा और एक शब्द न बोला।

अमेरिका में

डाकूर विल्सन के देशवासियों ने एशियाइयों को अपने तटों पर उतरने से रोका और अमेरिका निवासियों ने नीग्रो जाति पर लिंच ला (Lynch Law) का प्रयोग किया। (बिना मुकद्दमा चलाये गोरों ने कालों को पकड़ आग में जलाया अथवा फांसी पर चढ़ाया या उनकी खलड़ी उधेर डाली)। सभ्य यूरोप ने सिद्ध कर दिया कि निर्बलता से बढ़कर संसार में और कोई पाप नहीं है। बलवान को ईश्वरदत्त अधिकार है कि निर्बल को अपने पैरों तले कुचले और उसे अपमानित करे। बल सत्य है, बल श्रेय है, बल कल्याण है, बल की पूजा व्यक्ति तथा राष्ट्र का धर्म है इसी सिद्धान्त पर यूरोपीय समाज का संगठन स्थापित है। दूसरे राष्ट्रों के बल को घटाना और स्वराष्ट्र के बल को बढ़ाना यही यूरोपीय राजनीतिज्ञों की समस्त नीति का उद्देश्य है।

यूरोप के बल साम्य

(Balance of Power) को कायम रखने के लिए पिछले ३० वर्षों में अद्भुत उपरा चढ़ी रही है। १८७० में फ्रांस को हराने के बाद जर्मनी के महानीतिज्ञ विस्मार्क की नीति फ्रांस को मित्रहीन तथा पृथक रखने की थी। विस्मार्क का मन्तव्य यह था कि फ्रांस दूसरे राष्ट्रों से मिल कर कहीं जर्मनी पर धावा न करे और इसी कारण उसने फ्रांस को अकेला रखने की अत्यंत कोशिश की। इस नीति में विस्मार्क को बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई। पहिले पहिल उसने रूस से मित्रता करनी चाही। रूस का सम्राट् अलेक्ज़ेण्डर (Alexander II) जर्मन सम्राट् विलियम का भतीजा था इससे संधि में सुगमता हुई। रूस ब्लैक समुद्र में अपने जंगी बेड़े को रखना चाहता था और कुस्तुन्तुनियां (Constantinople) पर उसका दांत था। विस्मार्क ने इस अभिलाषा की पूर्ति में बाधा न डाली और दोनों सम्राटों में मित्रता हो गई। किन्तु १८७८ में जब रूस और टर्की में युद्ध हुआ और युद्ध के निपटारे के लिए बर्लिन में सभा बैठी तो विस्मार्क ने रूस के अर्थों के विपरीत फैसला दिया। रूस जर्मनी से चिढ़ गया और रूस जर्मनी में फसाद होने का भय उत्पन्न हुआ। विस्मार्क ने आस्ट्रिया से रूस के खिलाफ संधि की और उस समय से जर्मनी और आस्ट्रिया का गुट बन गया। आस्ट्रिया की मित्रता के कारण यह थे कि आस्ट्रिया बल्कान में अपना शासन जमाना चाहता था और इस मामले में रूस का प्रतिद्वन्द्वी था। स्वभावतः आस्ट्रिया ने रूस और जर्मनी की अनबन को ग़नीमत जाना और रूस के विरुद्ध जर्मनी से मित्रता की।

तीन वर्ष बाद विस्मार्क को

इटली से मित्रता

का मौक़ा मिला। इटली और फ्रांस में कोई वैर की वजह न थी किन्तु दोनों एफ्रिका के उत्तरी भागों पर अधिकार जमाना चाहते थे। विस्मार्क ने फ्रांस को १८७० की हार की याद भुलाने के लिए ट्यूनिस पर क़ब्ज़ा करने को भड़काया। इङ्गलैंड ने विस्मार्क का साथ दिया, क्योंकि इङ्गलैंड साईप्रस को हथियाना चाहता था। दो तर्फ़ से सहायता पा कर फ्रांस ने ट्यूनिस को अपने अधीन किया। इटली को अत्यंत क्रोध आया और उस ने विस्मार्क से संधि की प्रार्थना की। तीन राष्ट्रों का त्रिगुट बना। इङ्गलैंड अलग रहना पसन्द करता था। रूस के ज़ार ने तटस्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(neutral) रहना चाहा और फ्रांस अकेला रह गया। बिस्मार्क की नीति पूर्ण रूप से सफल हुई। १८९० में

जर्मनी के नये सम्राट

विलियम तृतीय ने बिस्मार्क को चान्सेलर के पद से हटाया और साम्राज्य को नये पथ पर चलाया। विलियम ने रूस की परवाह न कर त्रिगुट के भरोसे पर एफ्रिका और एशिया में प्रदेशों को हस्तगत करना आरम्भ किया। रूस ने जर्मनी की उपेक्षा देख फ्रांस की ओर हाथ बढ़ाया। १८९४ में दोनों राष्ट्रों में मित्रता की संधि हुई। प्रजातंत्रिक फ्रांस (democratic France) और एकाधिवर्तक (Autocratic) रूस गले मिले। फ्रांस के धन की सहायता से रूस ने अपनी सेना तथा शिल्प को उन्नत किया और साम्राज्य के विस्तार की अभिलाषा को कृतकार्य करना आरम्भ किया।

रूस

चारों ओर से ऐसे देशों से घिरा है कि कहीं उसे समुद्र का ऐसा किनारा नहीं मिलता है जहां अच्छा बन्दरगाह बन सके जो समुद्र तट उसके अधीन है उनके बन्दरगाह वर्ष में छः सात महीने बर्फ़ से ढके रहते हैं। इस कारण सदा से रूस की प्रबल आकांक्षा रही है कि किसी ओर उसे ऐसा समुद्र तट मिले जहां जहाज़ वर्ष भर आजा सकें। कुस्तुन्तुनिया पर इसीसे इसका बहुत दिनों से दांत है। किन्तु बलकान की ओर बढ़ने और कुस्तुन्तुनिया पर क़ब्ज़ा करने के लिए आस्ट्रिया और उसके मित्र जर्मनी और इटली से लड़ना पड़ता इस कारण कुस्तुन्तुनिया की अभिलाषा को कुछ समय के लिए त्याग उसने ईरान तथा फ़ारस की खाड़ी और प्रशान्त महासागर के तट कोरिया का ध्यान बांधा। यहां भी दुर्भाग्यवश उसे फल प्राप्ति न हुई। फ़ारस की खाड़ी में इङ्गलैंड ने पैर जमने न दिया तब उसने कोरिया में पोर्ट आर्थर पर अधिकार किया और मास्को से पोर्टआर्थर तक कई हज़ार मील लम्बी रेलवे लाइन डाली। कोरिया के मामले में उसे

जापान से मुक़ाबला

करना पड़ा। १९०४ के युद्ध में वह जापान से पराजित हुआ और पोर्टआर्थर जापान के हाथ आया। प्रशांत महासागर (Pacific ocean) तथा हिन्द महासागर (Indian ocean) से धुत्कारे जाने पर रूस फिर कुस्तुन्तुनिया की ओर झुका। बलकान की छोटी जातियों पर अपना प्रभाव डालने और उन्हें आस्ट्रिया से विमुख करने के लिए उसने समस्त स्लाव (Slavic) जातियों के एकीकरण का आन्दोलन चलाया। बल्गेरिया, सर्विया, मांटीनिग्रो, ग्रीस आदि की स्लाव आबादी को आस्ट्रिया और टर्की के विरुद्ध भड़काया। इसका परिणाम यह हुआ कि टर्की ने पैन इस्लामिक (Pan Islamic) अर्थात् समस्त मुसलमानों के एकीकरण और जर्मनी ने पैन ट्यूटानिक (Pan Teutonic) अर्थात् समस्त जर्मनों के एकीकरण का आन्दोलन आरम्भ किया और इनकी होड़ में पैन लैटिन (Pan Latin) अर्थात् समस्त लैटिन जातियों के एकीकरण और पैन ऐङ्गलिक (Pan Anglic) अर्थात् आंगल जातियों के एकीकरण के आन्दोलन चलने लगे। यूरोप जातीय भेदों (racial differences) और जातीय आन्दोलनों का रणक्षेत्र बन गया।

बीसवीं शताब्दी

के आरम्भ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दशा यह थी कि एक ओर जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली का त्रिगुट था दूसरी ओर इसके मुक़ाबिले पर फ्रांस और रूस का द्विगुट था किन्तु त्रिगुट का एक सभासद अर्थात् इटली फ्रांस की ओर झुका हुआ था। आस्ट्रिया इटली में बलकान के सम्बन्ध में झगड़ा था,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इटली और फ्रांस में सहानुभूति थी इसलिए त्रिगुट वास्तव में द्विगुट रह गया था। किन्तु शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी ही यूरोप में प्रधान था।

इस समय तक इङ्गलैंड की नीति यूरोपीय राष्ट्रों में किसी से मित्रता न करने की थी। वह अलग अपने साम्राज्य की वृद्धि में संलग्न था क्योंकि उसे किसी यूरोपीय राष्ट्र से भय नहीं था। १८८५ से १९०३ तक इङ्गलैंड फ्रांस से पुरानी अदावत के कारण रुष्ट था। फ्रांस के उपनिवेशों की खोज ने पुराने वैर की आग को और भड़काया। इङ्गलैंड ने मिश्र पर कब्ज़ा किया, फ्रांस ने एफ्रिका तथा एशिया के प्रदेशों पर। इस प्रकार आपस की खींचतान और कड़ी होती गई। किन्तु १९०३ में इङ्गलैंड, फ्रांस की ओर झुकने और जर्मनी से खिंचने लगा।

इङ्गलैंड की नीति

के बदलने के कारण कई थे। जर्मनी के शिल्प और व्यापार के बढ़ने से ईर्षा उत्पन्न हुई। जर्मनी ने संसार में इङ्गलैंड को नीचा दिखाना शुरू किया। चीन में बाक्सर उपद्रव के बाद जर्मनी, रूस इत्यादि ने बिना इङ्गलैंड के पूछे, संधि की और इङ्गलैंड के प्रभाव को प्रशांत महासागर के तट पर कम कर दिया। बूअरों के युद्ध के समय जर्मन सम्राट् ने बूअरों से सहानुभूति प्रकट की। इङ्गलैंड ने इसका बदला यह लिया कि जब जर्मन सम्राट् ने टर्की के सुलतान से बग़दाद रेलवे खोलने के लिए बात छेड़ी इङ्गलैंड ने इसका विरोध किया किन्तु टर्की ने जर्मन सम्राट् का कहना माना क्योंकि टर्की को इङ्गलैंड की ओर से संदेह उत्पन्न होने लगा था। जर्मनी ने जब जहाज़ों का बेड़ा बनाने की प्रतिज्ञा की तब तो इङ्गलैंड बिलकुल ही जर्मनी के विरुद्ध हो गया और एडवर्ड सप्तम ने

फ्रांस से सन्धि

करने का डौल डाला। १९०४ में संधि हो गई। इङ्गलैंड ने फ्रांस को मराको पर अधिकार जमाने की इजाज़त दी और आपस के अन्य झगड़ों को फ़ैसल कर लिया। इङ्गलैंड को जर्मनी के मुक़ाबिले के लिए मित्र मिल गया और फ्रांस की पुष्टि हुई। इसके अनन्तर

इङ्गलैंड और रूस

जो मुद्दतों से वैरी थे आख़िरकार दोस्त बन गये। रूस, फ्रांस का मित्र था ही फ्रांस की सिफ़ारिश से फ्रांस के नये मित्र इङ्गलैंड और रूस में सन्धि हुई। इङ्गलैंड ने रूस के कुस्तुन्तुनिया की ओर बढ़ने की आकांक्षा को स्वीकार किया। इतना ही नहीं इङ्गलैंड और रूस ने १९०७ में एशियाई झगड़ों को तै कर दिया और इस तरह जापान जो इङ्गलैंड का मित्र था, रूस का मित्र हुआ। इस प्रकार फ्रांस, इङ्गलैंड, रूस और जापान मित्र हो गये। त्रिगुट में से इटली की सहानुभूति फ्रांस की ओर थी ही जर्मनी को संदेह होने लगा कि यूरोपीय राष्ट्र उसे अकेला और मित्र हीन बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। १९०६ में अलजेसीरस की सभा, १९०८ में बलकान के झगड़ों और १९१२ में बलकान युद्ध ने इस सन्देह की पुष्टि की। जर्मनी को पूरा विश्वास हो गया कि इङ्गलैंड इसको परास्त करने और इसकी आर्थिक तथा साम्राज्यकीय वृद्धि के रोकने का प्रबन्ध कर रहा है और दूसरी ओर इङ्गलैंड तथा उसके मित्रों ने समझ लिया कि यूरोपीय बल साम्य का प्रतिपादन जर्मन बल के तोड़े बिना नहीं हो सकता। १९१४ में आर्थिक औपनिवेशक तथा राष्ट्रीय विरोधों की तीव्रता उस सीमा को पहुंच गई जहां बिना युद्ध के फ़ैसला असम्भव था। जर्मनी ने अपने को अकेला पा पाकर इङ्गलैण्ड को आयर्लैंड के होमरूल के झगड़े में व्यस्त, रूस को विप्लव में मग्न और फ्रांस को अयोग्य जान मौक़ा पाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और लड़ाई का डंका बजा दिया। जर्मनी के अनुमान में भूल हुई। एमेरिका के साथ भी व्यवहार करने में उसने बार बार ग़लती की और इन भूलों का परिणाम यह हुआ कि प्रजा ने शासनाधिकारियों को अयोग्य समझ राज-क्रांति कर डाली। जर्मन सेना विप्लवी विचारों के प्रभाव से लड़ने में ढीली पड़ गई और मित्र-दल की विजय हुई।

विजयी दल

अब इस प्रयत्न में लीन है कि शत्रु इस तरह से त्रस्त किया जाय कि वह फिर जल्दी सर उठाने योग्य न रहे। मित्र-राष्ट्रों को इन्हीं उपायों के सोचने में नींद हराम हो रही है। फ्रांस यह समजता है कि जर्मनी सदा मुर्दा न रहेगा, वह उठेगा किन्तु न्याय की बातों को ताख़ पर रख कर वह यह सोच रहा है और मित्र-राष्ट्रों से कह रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय सेना और नौ-सेना का केन्द्र फ्रांस में रहे जिससे जर्मनी से फ्रांस की रक्षा हो सके। अपने मित्र रूस को हीन देखकर और यह समझ कर भी कि सम्भव है वह जर्मनी का साथ दे वह अपने पड़ोस में पोलस आदि जातियों के स्वतन्त्र राष्ट्रों का जन्म देखना चाहता है। पाठकों को यह सदा ध्यान में रखना चाहिये कि यूरोपीय

राजनीति में उदारता

का शब्द बहिष्कृत है और वे यह कभी स्वप्न में भी न सोचें कि कोई पश्चिमीय राष्ट्र कभी उदारतावश कुछ किया करता है।

सन्धि परिषद

इन्ही स्वार्थमय प्रश्नों को हल करने में मग्न हैं। राष्ट्र-संघ की चर्चा का भी बाज़ार गर्म है किन्तु सन्धि परिषद और राष्ट्र-संघ दोनों ही व्यर्थ होंगे क्योंकि इनमें न्याय को पूज्य स्थान नहीं दिया गया है। सन्धि परिषद और राष्ट्र संघ की रचना छोटी जातियों और राष्ट्रों को स्वराज्य, स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार देने के लिए हुई थी किन्तु वही मसल चरितार्थ हुई "अंधा बाटे रेवड़ी फिर फिर अपने को दे" हेर फेर कर राष्ट्र अपनी अपनी शक्ति की वृद्धि कर रहे हैं। कोई वली के नाम से, कोई मित्र और सलाही की हैसियत से साम्राज्य विस्तार कर रहा है। राष्ट्र-संघ का संगठन हो रहा है किन्तु संसार की वे ही जातियां सम्मिलित होंगी जो रक्त में स्नान कर पवित्र हो स्वतन्त्रता प्राप्त कर चुकी हैं, इस तरह वली और बलवान होंगे, जो हीन हैं, जो अन्याय के बोझ से दबी जा रही हैं उनके साथ न्याय न किया जायगा। इस तरह राष्ट्र-संघ न्याय की वेदी पर स्थित न होकर स्थायी न होगा। इन बातों से राष्ट्र सन्तुष्ट कितने हैं इसका पता इसीसे चलता है कि एडमिरल जेलिको ब्रिटिश नौ-सेना की वृद्धि के लिए चीत्कार मचा रहे हैं। दूसरी ओर एमेरिका प्रायः तीन अरब रुपया तीन वर्ष में अपनी नौ-सेना की वृद्धि में ख़र्च करेगा, संसार में वह सर्वश्रेष्ठ नौ-सेना रखना चाहता है। जापान भी गुपचुप अपना काम कर रहा है। रूस को कमज़ोर देख वह मंचूरिया पर कब्ज़ा चाहता है, जर्मन द्वीपों पर उसने पहिले ही से कब्ज़ा कर रक्खा है, अब वह

चीन में अधिकार

चाहता है। यह भी सुनते हैं कि इङ्गलैंड तिब्बत के झगड़े को भी तय कर देना चाहता है। उसकी राय में तिब्बत का स्वतंत्र राष्ट्र होना चाहिये उसकी इच्छा हो तो वह इङ्गलैंड का मित्र रहे उसकी देख-रेख में रहे, उसकी सलाह से चले किन्तु चीन का उससे कोई सम्बन्ध न हो।

चीन की दशा

सुधर रही है, वह अपने पैरों आप खड़ा हो रहा है किन्तु उसका पथ कंटकाकीर्ण है। वह निर्बल है और इस संसार में निर्बल का सा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यक कोई नहीं है यद्यपि उससे प्रेम करनेवाले, उसे कर्ज़ देने वाले, उसको सलाह देने वाले, उसके देश में अपना माल भेज कर उसे नंगा न रहने देने वाले, खेलने को उसे खिलौना देने वाले, उसके पोषक बननेवाले, उसके बली बननेवाले, पड़ोसी की हैसियत से यह देखनेवाले कि वह कोई ऐसा काम तो नहीं करता जिससे दूसरों के स्वार्थों को हानि पहुंचे बहुत हैं। किन्तु यह सब होते हुए भी चीन जागेगा और वह अपने पैरों खड़ा होगा।

भारत की दशा

भी बदल गई है और बदल रही है। रूस जापान युद्ध से भारत की निद्रा का भंग हुआ था, किन्तु यूरोपीय महाभारत के चपेटों से अब वह सजग है। स्वराज्य और स्वभाग्य-निर्णय के युग में वह इन्हीं अधिकारों को प्राप्त करना चाहता है। स्वराज्य की यात्रा के लिए उसकी नौका उपयुक्त नहीं। वह जर्जरित है और छिद्र उसमें अनेक हैं। नाविकों में मतभेद हैं, इससे नौका-वेग से बढ़ नहीं सकती, उसे बार बार झटका खाकर पीछे खसकना पड़ता है। सामान भी ठीक नहीं है। युद्ध-काल के समय में संसार ने औद्योगिक उन्नति का नया सबक पढ़ा। अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्त बदल गये, इङ्गलैंड का फ्री ट्रेड (निःशुल्क व्यापार) की नीति से विश्वास कम हो गया। उद्योग-धंधों और कला-कौशल का युग राष्ट्रों में नई वेदी पर स्थापित हो रहा है, राष्ट्र कितनी ही नई वस्तुओं को बनाने लगे जिनको वे पहिले कभी न बनाते थे किन्तु भारत ने व्यवहारिक काम न कर

औद्योगिक कमीशन

बैठाला, युद्ध के अंत तक प्रायः वह यही विचार करता रहा कि क्या करना चाहिये। समय आया और गया, धारा निकल गई, भीषण प्रतियोगिता का युग आरम्भ हो गया अब देखें विदेशी उद्योग-धंधों के सामने यह क्या करता है? यूरोप के राष्ट्रों को कच्चे माल की आवश्यकता है कदाचित भारत इसी व्यापार को अपना कर समृद्धिशाली होगा। जापान धीरे २ भारतीय बाज़ारों पर कब्ज़ा जमा रहा है किन्तु

"इज़्ज़त गई हुर्मत गई, दौलत भी है राही।
हम चैन से लुटता हुआ घर देख रहे हैं" ॥

हमको इसकी फिक्र नहीं, हम कर भी क्या सकते हैं। यह सच है कि रुई, रेशम हम तैयार करते हैं और कर सकते हैं, कपड़ा भी तैयार करते हैं और अधिक कर सकते हैं किन्तु हमारे पास कल-पुर्ज़े कहाँ, कलों के लाने के लिए जहाज़ कहां, जो संसार में जहाज़ हैं वे हमारे नहीं कि पहिले उनको हमारा ही काम करने की फिक्र हो और फिर यह भी सब हो किन्तु रुपया कहां से आवे? हमारे धनियों के धन का गरेन्टी कौन करे कि तुम्हारा धन डूबने नहीं पावेगा, पूंजी का ब्याज हम देंगे। संसार में उद्योग-धंधों की वृद्धि इसी प्रकार हुई है। फ्रांस, जर्मनी, जापान सब ने यही किया है। उद्योग-धंधों की वृद्धि सरकार का प्रथम कर्तव्य है क्योंकि इससे देश को रोटी मिलती है, उसकी गरीबी दूर होती है। भारत पर प्रकृति देवी की दया है, सब तरह का सामान यहां मौजूद है, कारखानों में काम करनेवालों की भी कमी नहीं, मज़दूरी भी अधिक नहीं देनी पड़ेगी किन्तु भारत कुछ कर नहीं सका है, आगे के लिए भी कोई सामान नहीं है। दिन दिन देश से कच्चा माल बाहर जा रहा है जो कोई भी सजीव राष्ट्र कभी पसन्द न करेगा। एक ओर उद्योग-धंधों की यह दशा है दूसरी ओर कृषि रोज़ ही अपना टाट उलटे रहती है। रोज़ ही अकाल मुंह बाये खड़ा रहता है

महँगी की मार

ने अलग नाकोंदम कर रक्खा है। इन सब बातों का फल यह हुआ है कि जनता हीन हो गई है, उसमें सहन शक्ति या मुकाबले (Resistence)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्ति रही नहीं, नित नई बीमारियों का वह शिकार बनी रहती है। आज प्लेग है, तो कल कालरा, यह भी नहीं तो इनफ्लुएन्ज़ा। साधारण मलेरिया आदि ज्वरों की चर्चा ही क्या। कोई न कोई मेहमान बना ही रहता है। इन सब से बचने का उपाय यही है कि जनता को अच्छा भोजन, अच्छा बसन, अच्छा निवास-स्थान प्राप्त हो किन्तु यह सब तभी हो सकता है जब देश का धन देश में रहे, लोगों की गरीबी दूर की जाय, उद्योग-धंधों की वृद्धि हो, सेना और रेलों का व्यय कम कर रुपया नहरों और कला-कौशल की वृद्धि में लगाया जाय, देश के कोष पर हमारा अधिकार हो, टैक्स बढ़ाना, घटाना या लगाना हमारे हाथों में हो और शासन हमारी इच्छानुकूल हो। किन्तु

राजनैतिक कुंज

हमारा लहलहाता हुआ भी तुषार त्रस्त है। मालियों में मतभेद है, वैमनस्य है। उनको कुंज की नहीं, कानन की नहीं वरन् अपने अपने पुष्पों की चिन्ता है। अपने अपने पुष्पों के कीर्ति-गान में वे मग्न हैं, अपने गुलदस्तों की प्रशंसा का प्रचार करने में वे मस्त हैं, यह हमारी राय है; यह हमारा प्रस्ताव है, हमारे दलवालों का मत यह है, इसीसे उनको फुर्सत नहीं। राष्ट्रीय नौका प्रजातंत्र रूपी समुद्र की लहरों के चपेटे से चिन्तित हो प्रत्येक लहर के साथ उठती और गिरती है, नाविक आपस में मुक्कामुक्की कर रहे हैं और डाँड़ नहीं उठाते।

भविष्य-वाटिका

में से प्रजातंत्रवाद की वायु कूड़ा करकट उड़ाये लिए जा रही है, साम्यवाद और स्वभाग्य-निर्णय का मेघ बाटिका की भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ा रहा है किन्तु माली अपने अपने स्थानों पर नहीं, एक सूत्र में वे बँधे नहीं, उनकी एक स्कीम नहीं, उनमें कोई ऐसा मुखिया नहीं जिसकी राय सर्वोपरि मानी जाय, जिसके आदेश पर सब काम करें। नतीजा यह है कि ताने अलग अलग आ रही हैं, बोना सब चाहते हैं बीज वपन भी होता है किन्तु रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों में Harmony नहीं, समता नहीं, कहीं कुछ है कहीं कुछ। गड़बड़ का साम्राज्य है किन्तु भारत का भाग्योदय हुआ है, भारत का भविष्य साँचे में ढल चुका है और निश्चित है। ईश्वर ने भारत को स्वराज्य का पट्टा लिख दिया है और भारत बढ़ेगा। इसी लिए

अनैक्य में ऐक्य

का युग प्रतिपादन करने को रौलट बिलों का जन्म हुआ है। यदि अवसर से नेताओं ने लाभ उठाया तो हमारा और ईश्वर का मनोरथ सिद्ध होगा। भारतवासियों को कमर कस कर आन्दोलन के लिए खड़ा हो जाना चाहिये, शहर शहर में, ग्राम ग्राम में सभाएँ होनी चाहिये, मानवी स्वत्वों की पुकार झोपड़ों से उठनी चाहिये। किसान सभाओं, तहसील सभाओं, होमरूल लीगों, कांग्रेस कमेटियों का यह काम है, और उन्होंने यदि अपना काम किया तो नेता लड़ते भी रहें तो हमारी जय होगी, विजय होगी और हमारे सामने संसार शिर झुकायेगा।

लोक० तिलक का पत्र।

२३ जनवरी, १९१९ को लोकमान्य तिलक ने एक पत्र भेजा है। उसमें आप लिखते हैं:—"हम और हमारे साथी अच्छे हैं। २० दिसंबर को पहिले पहिल मुझे 'बाम्बे क्रानिकल' और 'अमृत बाज़ार पत्रिका' मिली।" अपने कार्य के सम्बन्ध में आपने लिखा है:—"मैं यह चेष्टा कर रहा हूं कि भारत के संबन्ध में स्वभाग्य-निर्णय का सिद्धान्त स्वीकार किया जाय, प्रश्न सन्धि-परिषद् के सामने रक्खा जायगा और हमें आशा है कि इस कार्य में सफलता प्राप्त होगी। मान० पंडित मदनमोहन मालवीय को इस विषय को हाथ में लेने के लिए सन्धि-परिषद् के सभापति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास तार भेजना चाहिये। मैं एम० क्रेमेन्सो के पास इसके सम्बन्ध में डेपुटेशन भेजने के विचार को पसन्द नहीं करता। मेरी इच्छा है कि मुस्लिम लीग के प्रेसीडेंट और होमरूल लीग की ओर से मान० मि० जिना और मि० बेसेन्ट सन्धि-परिषद् के सभापति के पास इस विषय को हाथ में लेने के लिए तार भेजें। मेरी धारणा है कि सन्धि परिषद् भारत को स्वभाग्य-निर्णय का सिद्धान्त लागू करेगी और यदि ऐसा हुआ तो भारत का उद्देश्य सफल होगा। मुझे विश्वास है कि सन्धि-परिषद् की दृष्टि से भारत का प्रश्न बाहर न रहेगा। सम्भवतः सन्धि-परिषद् के पास अपील करना सरकार को पसन्द न होगा, परन्तु हमें ऐसा करना ही चाहिये। हमें सरकार को भी अपने कार्य की सूचना देनी चाहिये और इसका अच्छा उपाय यह है कि हम उसी से भारत के स्वभाग्य-निर्णय के प्रश्न को सन्धि-परिषद् में रखने को कहें।"

मि० बेसेन्ट द्वारा उठाये गये कांग्रेस के वाद-विवाद के सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि इस समय यह आवश्यक है कि हममें कोई मतभेद न हो।

"मैंने सन्धि-परिषद् के सामने भारत के स्वभाग्य-निर्णय के प्रश्न को रखने के लिए पेरिस जाने के लिए पासपोर्ट मिलने की प्रार्थना की थी, परन्तु इस समय तक आज्ञा नहीं मिली है। सम्भवतः अधिकारियों को यह पसन्द नहीं है। सन्धि-परिषद् का कार्य समाप्त होने के पहिले कांग्रेस का डेपुटेशन इङ्गलैंड पहुंच जाना चाहिये क्योंकि सन्धि-परिषद् पर प्रभाव डालने और भारत को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार देने की पार्लामेंट से प्रार्थना करने की अपेक्षा इस समय कोई बड़ा और महत्वपूर्ण कार्य नहीं है"।

"हाल में भारतीय होमरूल द्वारा जो ७५,०००) मिला था, उसको हमने लेबर-फण्ड में दे दिया है। लेबर-पार्टी हमारी मांगों का समर्थन करने में अत्यन्त सहायक होगी"।

लार्ड सिडेनहम और उनके दल का उद्योग व्यर्थ हुआ है और इसलिए सरकार की ओर से भारतीय सुधारों के सम्बन्ध में जो बिल पेश होगा, वह रद्द न होगा। योजना का घोर विरोध होने की जो बात भारत में प्रचारित हुई है, उसमें सत्यता बहुत कम है। इसलिए हमें दृढ़ता से अपनी मांगों को सामने रखना चाहिये और यदि हम ऐसा करें तो हमारी आकांक्षा पूर्ण करने के लिए बिल में परिवर्तन होगा। वर्तमान पार्लामेंट, मि० लायड जार्ज और उनके मंत्रि-मंडल द्वारा समर्थित सभी सरकारी प्रस्तावों को पास करेगी।

"होमरूल लीग की एमेरिकन शाखा ने अच्छा काम किया है और वह लाला लाजपत राय की देख-भाल में और भी काम कर रही है। उसका पता है:—१४०० ब्राडवे, न्यूयार्क, एन० वाई० यू० एस० एमेरिका। यह 'यंग इंडिया' नामक एक मासिक पत्र भी निकाल रही है।

करामात तैल कान बहने, कम सुनने, निपट बहरेपन शब्द होने, परदों की कमज़ोरी व कान के सर्व रोगों की अनुभवी रामबाण दवा है। मूल्य फ़ी शीशी १)।

बल्लभ ऐण्ड को०, पीलीभीत यू० पी०।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिनिधि-शासन।

भारतवर्ष और भारतवासियों के परम सौभाग्य से स्वतंत्रताप्रिय अंग्रेज़ों की अधीनता में डेढ़ सौ साल से अधिक रहने पर अब सारे हिन्दुस्तान में 'स्वराज्य' यानी 'प्रतिनिधि शासन' की धूम मच गई है और भारतवर्ष की सारी जनता 'प्रतिनिधि-शासन' को अपनाने के लिए लालायित हो रही है। परन्तु वह 'प्रतिनिधि-शासन' क्या है जिसके बल से आज अमेरिका, फ्रांस प्रभृति विलायती देश इस उन्नति के शिखर पर चढ़े हुए हैं—वह अजेय 'प्रतिनिधि-शासन' को सफल बनाने के लिए किन किन बातों की आवश्यकता होती है। इत्यादि इत्यादि विषयों की जानकारी के लिए विलायत के प्रसिद्ध विद्वान् फिलासफर और राजनीतिविद् पंडित जान स्टुअर्ट मिल की प्रसिद्ध पुस्तक (Representative Government) का हिन्दी अनुवाद यह 'प्रतिनिधि-शासन' प्रकाशित किया गया है। देश के प्रेमियों भारतवर्ष को उन्नति के शिखर पर चढ़ानेवाले उद्योगियों और मातृभूमि भारतवर्ष की सारी जनता को एक बार इस पुस्तक को पढ़ 'प्रतिनिधि-शासन' की भलाई बुराई को अवश्य जान लेना चाहिये। पुस्तक छपकर तैयार है। मूल्य सादी जिल्द २॥) और बढ़िया रेशमी जिल्द ३)।

अन्यान्य पुस्तकों के लिए बड़ा सूचीपत्र मँगाकर देखिये।

मिलने का पता:—

मैनेजर—साहित्य-सरोज-माला

उपन्यास-बहार-आफिस काशी, बनारस।

२००) रुपये दूंगा

बिना औषध के जन्मभर को रोग दूर।

स्वप्नदोष और शीघ्रपतन बड़े भयङ्कर रोग हैं। स्वप्नदोष नौजवानों के शरीर और दिमाग़ को मिट्टी कर देता है, याददाश्त का तो यह दुश्मन है। शीघ्रपतन गृहस्थों का घातक है, समय पर लज्जित होने से लोग मर जाना अच्छा समझते हैं, सन्तान भी नहीं होती। मुझे एक ऐसी क्रिया-विधि प्राप्त हुई है जिससे ये दोनों रोग जन्मभर के लिए जाते रहते हैं। यह कोई दवाई नहीं केवल एक साधन है इस पर भी यदि प्रयोग करने पर रोग दूर न हो तो २००) रु० दंड दूंगा जोकि आप अदालत द्वारा मुझसे वसूल कर सकते हैं। इसके बताने की फ़ीस राजाओं से १००) धनवानों से ५) सर्वसाधारण व विद्यार्थियों से २) रु०। डाकमह० ।) आना।

नोट—उक्त क्रिया पत्रद्वारा लिखकर बताई जायगी, साथ ही एक बूटी भी भेजी जायगी जिसका सेवन एक सप्ताह तक आवश्यक है।

प्रकाशक—

चन्द्रशेखर शर्मा धर्मोपदेशक,

(नं० २) पो० जलाली ज़ि० अलीगढ़।

उदरामृत।

अगर आपको भूख कम लगती हो अथवा मन्दाग्नि, अजीर्ण, पेट दर्द, जी मचलाना खट्टी या जली हुई डकारों का आना, बवासीर, तिल्ली, हैजा, आदि पेट का कोई भी रोग हो तो हमारा जगत् प्रसिद्ध स्वादिष्ट उदरामृत चूर्ण व्यवहार कीजिये; तत्काल गुण दिखाता है मूल्य फी शीशी ॥=) दर्जन ५॥।) डा० मं० ३ तक ।-) १२ पर ॥-)

पता—ब्राह्मी औषधालय

(ठी ब्रांच) पो० जलाली, जिला अलीगढ़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १७ संख्या २

मर्यादा ।

मासिक पत्रिका ।

फरवरी १९१९

भारत-गीत ।

जय भारत जय, जय भारत जय
जय महिमामय, जय गुणधारी ।

(२)

दिव्य दिगम्बर, सित रज धूसर ।
गंगाधर शुचि, अंग मनोहर ।
कनक रजत गिरि, शीश छटा छवि ।
तप मंडित द्युति-पुञ्ज-प्रसारी ।
जय भारत०

(३)

जय जग पावन, जय जग भावन ।
जय सुख मन्दिर, शान्त सुहावन ।
सुगंध प्रभाकर, सुमति सुधाकर ।
जय वसुधावर, विश्व-विहारी ।
जय भारत०

(४)

जय जय सुर धुनि, जय जय दिनमणि ।
जय उपवन वन, सघन गगन-ध्वनि ।
जय जल, जय थल, जय जन कल कल ।
जयति सकल जल थल नभचारी ।
जय भारत०

(५)

जय हिन्दू जन, जय मुसलिम-गन ।
जैन पारसी, बौद्ध क्रिश्चियन ।
विविध धर्म पथ, सुकृति कर्म रत ।
जस बरनत श्रीधर बलिहारी ।

जय भारत०

—श्रीधर पाठक ।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा-कार्य में सहयोग की आवश्यकता।

[लेखक—मिस्टर जार्ज, एस० अरंडेल]

मैं आशा करता हूं कि वर्तमान राजनैनिक मतभेद की उत्तेजना में शिक्षा-सुधार पर यथोचित ध्यान देने की, जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है, उपेक्षा न की जावेगी। मैं यहां पर उन राजनैतिक मतभेदों के मामलों पर कुछ विचार करना नहीं चाहता, जो अभी हाल ही में उठ खड़े हुए हैं। मेरा अभिप्राय केवल यही है कि सभी दलों के राजनीतिज्ञ लोग कम से कम शिक्षा के कार्य में इस विवाद से बचने का यथाशक्ति प्रयत्न करें। मुझे यह बात भली भांति मालूम है कि इस बात पर भी मतभेद है परन्तु इस भेद से हमारे वे प्रयत्न निर्बल न पड़ जाने चाहिए जो कि हम लोग परीक्षा रूप से एक नवीन ढङ्ग पर कर रहे हैं, जिसमें उस समय तक जब कि नवीन भारतीय शिक्षाप्रणाली शासक लोगों के विचारान्तर्गत होगी, हम लोग अपने परिणाम दिखा सकें। समस्त संसार में केवल भारतवर्ष ही ऐसा देश है जिसमें इस बात का प्रयत्न नहीं किया जा रहा है कि शिक्षाप्रणाली नवीन संसार की आवश्यकता के अनुकूल बनाई जाय। सरकार की ओर से यह विश्वास कर लेना आशा हीन बात है कि वह या तो अपने अहङ्कार की भेरी बजाना छोड़ दे, (जैसा प्रति वर्ष रिपोर्टों में मिलता है) या वह भारतीय जनता को सस्ते रूप से विद्यादान देने का प्रयत्न करने की दृढ़ता करे। भारतवर्ष में शिक्षा पर बहुत ही कम धन व्यय किया जाता है, परन्तु जब हम वास्तविक परिणामों की ओर दृष्टि पात करते हैं तब यह धन भी अधिक प्रतीत होता है। कुछ भी हो, परन्तु यह स्पष्ट है कि यहां शासक लोगों को सावधान और सचेत करने के लिए कोई सङ्गठित लोकमत नहीं है। अस्तु; यह आवश्यक है कि हम उन्हीं थोड़े से इनेगिने सज्जनों पर निर्भर रहें और चूंकि ऐसे सज्जन थोड़े ही नहीं किन्तु बहुत ही थोड़े हैं जो राष्ट्रीय जागृति की विभिन्न धाराओं में काम करते हैं। मेरा उन्हीं लोगों से यह निवेदन है कि राग द्वेष उत्पन्न करनेवाली प्रायः सभी बातों से शिक्षापद्धति को बचाये रक्खें। भारतीय राजनीतिज्ञ के लिए यह जानना उत्तम होगा कि उसे यह बात सीखना है कि राजनैतिक झगड़ों को व्यक्तिगत जीवन या अस्वाध्य अन्तर उत्पन्न कर देनेवाले क्षेत्र में न लाया जाय। मैं जहां तक समझता हूं, वहां तक दिल्ली वाली कांग्रेस विवाद के होने पर भी गहरे मतभेद के भाव को राजनैतिक क्षेत्र में लाने की आवश्यकता न थी। मेरी सम्मति है कि दिल्ली में कुछ वयोवृद्ध और तरुण राजनीतिज्ञों को कुछ अधिक समझदारी से काम करना था। उन्हें उचित था कि सब से उत्तम उदाहरण सामने रखते और संसार को यह बात दिखा देते कि भारतवर्ष इस महत्वपूर्ण अवसर पर व्यक्तिगत विवादों से दूर है। खैर जो कुछ हो, क्या यह आशा करना अधिक होगा कि यद्यपि इस अवसर पर एक राजनैतिक मंच का होना असम्भवसा है, तथापि अन्य क्षेत्रों में तो—जैसे शिक्षा-सम्बन्धी—सभी दलों के लोग मिल सकते हैं। पाश्चात्य देशों में राजनैतिक अंतर केवल व्यक्तिगत जीवन से या सर्वसम्बन्धी अत्यन्त आवश्यक एवम् महत्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्यों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता है, मैं समझता हूं कि हम लोगों को अभी यह पाठ सीखना बाकी है। अतः हमको चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी हम उसे सीख लें और इस बात को कम से कम इस वर्ष के राष्ट्रीय सप्ताह (६वीं अप्रैल से १३वीं अप्रैल तक) के प्रारम्भ होने के पूर्व ही किसी प्रकार से कंठाग्र कर लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं सभी श्रेणी के देशभक्तों से चाहे वे नरम से नरम या गरम से गरम दल के हों, विनम्र प्रार्थना करता हूं कि वे सार्वजनिक कर्त्तव्य में व्यक्तिगत मार्गों के कारण कोई भी विघ्न-बाधा न आने दें। कम से कम हमको अपने राग द्वेष के परिणामों से युवक-समाज को तो बिलकुल ही पृथक रखना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि इन झगड़ों के कारण उसे कुछ विपत्तियों का सामना करना पड़े, चाहे फिर इन विवादों से वर्तमान समय में कुछ लाभ ही होता हो। निःसंदेह, यह बड़ी ही शुभ सूचक बात होगी कि इस अवसर पर—चाहे फिर नरमदल के नेता लोग राष्ट्रीय महासभा में न जायँ और चाहे गरमदल के अनुयायी उन लोगों की घोर निन्दा करें जो राष्ट्रीय मार्ग में उन्हें कंटकप्रतीत होते हैं—सब लोगों से सम्बन्ध रखनेवाला शिक्षाविभाग का मञ्च दोनों प्रकार के सज्जनों से संयुक्त हो और इस प्रकार से वे देश-सेवा का एक सामान्य मार्ग तैयार कर लें। मैं समझता हूं कि राजनैतिक मतभेद उस समय में अब की अपेक्षा बहुत ही कम जटिल रह जायगा जब कि (आजकल) लोग एक दूसरे की ओर दूर ही से घूरा करते हैं।

मैं दलबन्दी के विचार को छोड़कर सभी नेताओं से यह निवेदन कर सकता हूं कि उस संस्था में जिसमें यह समिति राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति के लिए विगत वर्ष से काम कर रही है—अपनी व्यक्तिगत यथाशक्ति सहायता एवम् सुधार करनेवाली आलोचना करें और कभी २ थोड़ा सा समय अपने देश-बन्धुओं में भारतीय शिक्षा की कुछ अंश तक ही मांग पूरी करने के लिए दे दिया करें। क्या मैं आशा कर सकता हूं कि इस वर्ष राष्ट्रीय सप्ताह में कम से कम इस ओर एकता दृष्टिगोचर होगी? मुझे यह देख कर अत्यन्त आनन्द होगा कि अधिक नहीं तो कम से कम एक सप्ताह के लिए दोनों दलों के नेतागण देशभक्ति के नाम पर प्रेमपूर्वक मिल कर साथ ही साथ काम कर रहे हैं।

हमें क्या करना है ?

[लेखक—श्रीयुत ईश्वरशरण बी० ए०, एल० एल० बी० ।]

सुधार और पुनर्रचना की वायु हर तरफ बह रही है। इंगलैंड, फ्रांस और अमेरिका जैसे स्वतंत्र देशों में भी विचारशील पुरुषों और स्त्रियों की चित्तवृत्ति, उन महत्वपूर्ण विषयों की तरफ आकर्षित है जो सन्धि-सभा के इस बात के निर्णय कर देने पर कि किस दशा में संसार को रहना और बढ़ना होगा? उत्पन्न होंगी। यह सर्वथा प्रत्यक्ष है कि मनुष्य जाति को नई संस्थाओं से मुठभेड़ करना है, और उस जाति की दशा अकथनीय होगी जो इसके लिए उद्यत नहीं। अनुद्यता का फल पीछे रह जाता है और पीछे रह जाने का फल मृत्यु और सर्वस्व नाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। प्रश्न यह होता है कि भारतवर्ष के भाग्य में क्या लिखा है? क्या भारत जो पुरातन काल से सभ्यता का केन्द्र रहा है इस बात के लिए उद्यत किया जा रहा है कि संसार के भविष्य नाटक में अपना खेल उत्तमता और आदर से खेल सके? क्या हम भारतमाता के संतान अपने भरसक इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि भारतमाता ही के ऋण से न उद्धार हो कर सर्वसंसार से उऋण हों। हमारी ही सेवा पर उसका भविष्य निर्भर है। हमारे प्रेम-स्वार्थ-त्याग और देशभक्ति की नींव पर ही हमारी भारतमाता महत्वपूर्ण भविष्य खड़ा करेगी जो उसके प्राचीन उच्च अवस्था से भी कहीं तेजस्वी होगा। हमें यह स्पष्टता से समझ लेना चाहिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि बाहरी सहायता से काम नहीं बन सकता। हमको अपने ही पौरुष, बल, धीरता और एकाग्रता पर अपने आगे आनेवाले काम को सम्पादन करने के लिए आवश्यकता है। यह सत्य है कि स्पष्ट कारणों के हेतु राजनैतिक कार्य इस समय अधिक मनमुग्धकर और चित्ताकर्षित हो रहे हैं। यह ज्ञात होता है कि राजनैतिक स्वतंत्रता आधुनिक समय से अपनी वृद्धि करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अपना जीवन अपने पथ पर निर्वाह करने और अपने भाग्य को आप बनाने के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता आवश्यक भी है। और यही कारण है कि हमारे नेता भारतवर्ष के लिए स्वराज्य पर इतना आग्रह कर रहे हैं। भारतवर्ष उन्नति के ऊंचे शिखर पर तब तक नहीं पहुंच सकता और न संसार का वैसा उपकार कर सकता है जो केवल वही करने के योग्य है जबतक उसको पूर्ण रूप से राजनैतिक स्वाधीनता न प्राप्त हो। राजनैतिक कार्य केवल एक ही भाग है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे जातीय जीवन और वृद्धि का यह बहुत बड़ा भाग है। परन्तु तो भी यदि हम अपने नेत्र अपने जीवन के उन महान् भागों की दिशा से जो गंभीरता में तुल्य है, बंद करलें तो बड़े अन्धेर की बात होगी।

जैसे भारतीय स्त्रियों का विषय लीजिये। हमको इस बात पर अत्यन्त सन्तोष है कि स्त्रियों की दशा प्राचीन भारतवर्ष में अति उत्तम थी; और अब भी ये हार्दिक गुणों में संसार भर की स्त्रियों से किसी तरह कम नहीं है यद्यपि हम उनकी अवस्था सुधारने में सर्वदा असावधान रहे हैं, पर हमको यह भी मानना ही पड़ेगा कि स्त्रियों की अवस्था बहुत बातों में सन्तोषजनक नहीं है। जो व्यक्ति जाति के पुनरुज्जीवित करने में लगे हुए हैं, वे जाति की त्रुटियों की उपेक्षा नहीं कर सकते। काले को सफेद सिद्ध कर देना चतुराई अवश्य है पर सत्य देशभक्ति नहीं है।

अछूत जातियों के विषय को लीजिये। कोई हिन्दू ऐसा न होगा जो इस अधोगति पर लज्जित हो अपने सिर को न झुकाले। बड़ी हृदयविदारक बात तो यह है कि स्वार्थी मनुष्य बहुत प्रकार से उनको अपने धर्म से जोकि उच्च जातियों का भी है विचलित होने पर वाधित करते हैं। यह अछूत जातियां देश को बल प्रदान करने के स्थान पर देश की दुर्बलता का एक कारण हो गई हैं। किस समय तक हम डोमों, चूड़ों, और भंगी इत्यादि जातियों को इस गिरी अवस्था में, जिसमें वे आज हैं रहने देंगे? यह ताना हम कब तक सुना करेंगे कि हमारी देशभक्ति दिखलावटी और कोरी बनावटी है क्योंकि हम अपने देश के भाई बहनों की सेवा वैसी नहीं करते जैसी करना हमारा धर्म है।

मिस्टर गोखले का यथार्थ कथन है कि भारत-माता पर प्रकृति की तो कृपादृष्टि है पर उसकी सन्तान उसकी सेवा ठीक २ नहीं करती। यदि यह मुझमें धृष्टता न समझी जाय तो मैं कहूंगा कि मिस्टर गोखले की यह बात बिलकुल सत्य है। जिस दिशा में दृष्टि डालिये, काम ही काम करना पड़ा है। भक्ति और प्रेम से यदि कार्य किया जाय तो भारतमाता की सेवा में कोई काम ऊंचा है न नीचा, और न उत्तम है न अधम। समाज-सुधारक राजनैतिकों से क्यों लड़ते हैं? विद्या-प्रचारक को धर्म-प्रचारक का कार्य दोषित क्यों जँचता है? चित्रकार को सफाई पर ध्यान देने वाले क्यों आंखों में खटकते हैं? माता को हर प्रकार की सेवा की आवश्यकता है। और जो शुद्ध मन से सेवा करता है माता उसे आशीर्वाद देती है। हमारे सन्मुख कार्य अपरिमित है और कार्य करने वाले इने गिने हैं। मैं, ऐसे कार्य समाकुल व्यवसायी पुरुषों को जो कभी कभी थोड़ासा समय देश-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा के लिए भी निकाल लेते हैं 'काम करने वाला' नहीं कहता और न वह यथार्थ में इस नाम के योग्य है। हम उनके काम के कृतज्ञ हैं, पर ऐसे ऐतिहासिक समय में जैसा कि आज है, देश ऐसे काम करनेवालों पर हो भरोसा कर के अपना उपकार नहीं कर सकता। इङ्गलैंड और भारतवर्ष की राजनैतिक जीवनों की तुलना करना निरर्थक है। कोई विचारशील मनुष्य एक क्षण में भली प्रकार देख सकता है कि हममें और उनमें कितना महान अन्तर है? इङ्गलैंड में बहुत कुछ कार्य जो हमें करना पड़ा है, समाप्त हो चुका है। हम अपनी इमारत खड़ी करने में खुदाई और सफाई भी अभी नहीं कर चुके हैं और यही उस समय जब हम अपने को इङ्गलैंड से तुलना देने लगते हैं, भूल जाते हैं। और फिर यह क्यों भूल जाते हैं कि आज भी अपने देश की दशा सुधारने के लिए प्रत्येक विभाग में अवैतनिक और वैतनिक काम करने वालों की सेना इङ्गलैंड में उपस्थित है? यहां मैं स्थानाभाव से इङ्गलैंड में काम करने वाली सभाओं और समितियों का नाम नहीं दे सकता। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि हमको अपने कार्य करने की रीति बदलनी चाहिये। हमें देश के कार्य में रीति, क्रम, और उत्साह की आवश्यकता है। इसी संबन्ध में मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि हम को लोकहित-जीवन के सम्बन्ध में विचारों को भी बदलना चाहिये। हमें केवल सच्चे भक्तों और कार्य परायण मनुष्यों को ही गौरव देना चाहिये और इसी प्रकार इन गुणों की उत्तेजना हो सकती है। सत्य मुझे यह कहने पर वाधित करता है कि हम जहां गुण को धन या उच्च पदवी के साथ नहीं देखते हैं, हम गुण का वह आदर नहीं करते जो उसके योग्य है। किन्तु यदि हम लोकहित जीवन को उत्साहित करना चाहते हैं तो इस बात को हमें छोड़ना होगा। एक धर्मपरायण और बुद्धिमान नवयुवक को क्या उत्तेजना है कि वह अपनी जीविका की आशाओं को तिलांजुली देकर दरिद्रता में जीवन बिताये और समय आने पर ऐसे लोग भी जो देश-सेवा करते हैं उनकी उपेक्षा करें। मैं यह कहूंगा यह अब भी हममें बड़ी भारी त्रुटि है कि देश-सेवा में भी हम धन, उपाधि और संसारिक सफलता के पक्षपाती हैं।

हमारे सन्मुख नई अवस्था उपस्थित है। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस लड़ाई ने पुरानी अवस्था को बिलकुल परिवर्तित कर दिया है और नया संवतसर हमारे सम्मुख है। भारत इस नवीनयुग में क्या भाग लेता है बस यही हमें देखना है। मुझे बिलकुल संदेह नहीं है और मैं पूर्ण रूप से विश्वास करता हूं कि भारतवर्ष स्वतन्त्र हो कर ब्रिटिश साम्राज्य में बराबर का हिस्सेदार होगा और उसको साम्राज्य में एक आदरणीय और उच्च स्थान मिलेगा। राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करके देश-सुधार होगा और पुनः इस ओर उन जातियों की दृष्टि फिरेगी जो आत्मिक उन्नति की भूखी हैं। मैं विश्वास करता हूं कि भारतवर्ष का भविष्य उसके भूत से कहीं बढ़चढ़ के होगा। पर हमको फलीभूत होने के लिए क्रम से अपने आपको निर्माण करने की आवश्यकता है। बिना निर्माण के क्रम से पृथक उद्यम दुष्कर है। बिना धन के कोई काम चलाना असाध्य है। मैं इस बात पर अधिक आग्रह करना चाहता हूं कि यदि हम सफल होना चाहते हैं तो हमें अब काम करने का दूसरा ही क्रम ग्रहण करना चाहिये। हमको धन की क्रम से चलने वाले निर्माणों की और सब से अधिक ऐसे तत्पर नर-नारियों की आवश्यकता है जो सब छोड़कर देश ही का काम करें, और जिनको देश सेवा ही में आनन्द प्राप्त होना हो और जो काम पड़ने पर देश सेवा में अपने जीवन की आहुति देने पर भी उद्यत हों। ईश्वर करे कि ऐसे मनुष्य देश के उन कामों को, जो हमें करना है—अपने हाथ में लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान और भारतवर्ष।

[लेखक—मिस्टर एस० कामसका]

सामयिक चर्चा।

जापान और भारतवर्ष के बीच में प्रगाढ़ विचार सम्बन्ध है, किन्तु; व्यापार विषय में उनका पारस्परिक सम्बन्ध विच्छिन्न है। यूरोप का प्रथम वैचारिक सम्बन्ध मध्य-काल में ही भारतवर्ष से हुआ था, किन्तु; इसका यह सम्बन्ध निर्बल पड़ गया है और व्यापारिक सम्बन्ध संगठित करने में वह जापान से भी आगे निकल गया, सुतरां जीवनोपयोगी पदार्थों के आदान-प्रदान से ही भूमि का अधिकार प्राप्त करने में वह सफल हुआ। हमारे लिए यह बड़े दुःख की बात है कि भारतवर्ष से सम्बन्ध जोड़ने में जापान अभी उन्हीं देशों की श्रेणी में पड़ा हुआ है, जहां व्यापार बहुत कम हुआ करता है। यदि हमारी जहाज़ी व्यवस्था १७वीं शताब्दी से यूरोप की भांति होती और हमारी राष्ट्रीय वस्तु व्यवस्थाएँ इच्छापूर्वक होतीं तो जापान यूरोप से पहिले भारतवर्ष में जा पहुंचता। यह कहना अति रञ्जन न होगा कि आज से २० वर्ष के भीतर जापान और भारतवर्ष के सम्बन्ध में सम्पूर्ण परिवर्तन हो जायगा।

(२)

धार्मिक प्रश्न।

अन्तर्जातीय सम्बन्ध सूत्र यदि पूर्ण रूप से नहीं तो न्यूनाधिक राष्ट्रीय विचारों पर निर्भर है; क्योंकि दो जातियों की मित्रता में ये ही मुख्य कारणी भूत हुआ करते हैं। भारत-वासियों के भाव जापानियों के प्रति बहुत अच्छे रहे हैं, अथवा यों कहिये कि जापान से मित्रता जोड़ने के लिए वे राष्ट्रीय सुप्रवृत्ति प्रकट करते हैं, किन्तु; यह सुप्रवृत्ति अच्छे भाव होने के कारण नहीं वरन् राष्ट्रीय विश्वास पर निर्भर है जो भावुकता से कहीं अधिक गुरुतर है। भारतवर्ष के रहनेवाले धर्म परायण हैं उनके विचार सर्वत्र धर्ममय होते हैं, वे धर्म को छोड़ कर दूसरी बात का ख्याल नहीं कर सकते, धर्म ही उनका सब कुछ है। इसी लिए निज धर्म के अनुसार उनमें जाति प्रथा की प्रधानता है जो संसार के अस्तित्व तक बनी रहेगी। भारतवासियों की दृष्टि में राज्य रक्षा की अपेक्षा जाति रक्षा का भाव अधिक गौरव युक्त है। जाति में जन्म लेकर मनुष्य उसीमें बना रहे, तभी वह मनुष्य है अन्यथा कुछ नहीं। वह अन्य जाति वालों के साथ विवाह नहीं कर सकता, वह खान-पान नहीं कर सकता और न वा किसी अन्य प्रकार का संमिश्रण कर सकता है। भारतवासियों का सार्वभौमिक आदर्श धर्म है और वे उसकी रक्षा करना अपना पवित्र कार्य समझते हैं। इस कार्य की प्रपूर्ति में जाति प्रथा का होना अत्यन्त आवश्यकीय समझा गया है।

(३)

भारत—जापानी मित्रता।

भारतवर्ष में २००० से भी ऊपर जातियां हैं, किन्तु स्थूल दृष्टि से देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि एक ही जाति बहुत बड़े अंश पर आच्छादित है और वह जाति हिन्दू है। दूसरी ओर मुसलमानों की जाति है और इसके अति-रिक्त कृश्चियन भी, जिनकी संख्या भारतवर्ष में बहुत कम है, एक ही जाति कहला सकती है। यदि हम अपनी बुद्धि को तनिक और विस्तृत करें तो एशिया महाद्वीप के रहनेवाली अथवा रङ्गीन मनुष्यों की एक बहुत बड़ी जाति गौराङ्ग मनुष्यों की जाति से अलग हो जाती है। इस तरह जापानियों और भारतवासियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इस विचार के आधार पर एक ही जाति में समझना सम्भवतः धृष्टता मालूम दे, फिर भी जापान के रहनेवाले बौद्ध मतानुयायी हैं और भारतवर्ष में यद्यपि इस समय बौद्धमत का प्रचार नहीं है तथापि हिन्दू धर्म वहां वर्तमान है जो बहुत कुछ बौद्ध धर्म से मिलता जुलता है। अतएव भारतवासी किसी न किसी तरह जापानियों की गणना अपनी जाति में कर सकते हैं। भारतवासियों का मुख्य लक्ष्य यह रहा करता है कि सामाजिक स्थिति जाति-भिन्नता के सिद्धान्तों पर निर्भर करती है और उनके कथनानुसार एक जाति के लोगों में परस्पर प्रेम-भाव होना चाहिये। हिन्दुओं के मतानुसार जिन्हें अन्तर्जातीय सम्बन्ध सूत्रों का कुछ भी ज्ञान नहीं है एक ही जाति के लोगों में लड़ाई का होना हिन्दुओं के मुख्य सिद्धान्तों एवम् उनके देवी-देवताओं की इच्छा के प्रतिकूल है। भारतवासी हमारे देश के प्रति सद्भाव रखते हैं। वे सभ्य होते हैं, उनके स्वभाव प्रेम-पूरित होते हैं। वे ऐसे धर्म-दृढ़ होते हैं कि समस्त संसार में उनकी बराबरी करनेवाली कोई जाति नहीं है और यही उनकी धार्मिक दृढ़ता जापान और भारतवर्ष के बीच प्रेम-बंधन के अविच्छिन्न होने का काफी प्रमाण है।

(४)

भारत के प्रति ग्रेटब्रिटेन का वर्ताव।

भारतीयों के अनुकूल मनोभावों से जापान की अपेक्षा ग्रेटब्रिटेन कहीं अधिक लाभ उठा रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय विचारों से यूरोपीय विचारों की एकता में बहुत कुछ कठिनाइयां प्रस्तुत हैं और यही कारण है कि यद्यपि युद्ध से पूर्व सहस्रों वर्ष से भारतवर्ष में अंग्रेज़ों का निवास है तथापि वे अब तक भारतीय रीति-नीति और आचार-विचारों को बहुत कम समझ सके हैं, किन्तु फिर भी ग्रेटब्रिटेन के लिए यह प्रशंसा की बात है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति को सफल करने में वह कृतकार्य हुआ है।

भारतवर्ष धर्म प्राण देश है। इसके रहने वाले अन्य देश के निवासियों की अपेक्षा धर्म को विशेष महत्त्व देते हैं। इसीलिए आर्थिक और राजनैतिक विषयों को छोड़कर इङ्गलैंड भारतवासियों के धर्म सम्बन्धी मामलों में कभी हस्तक्षेप नहीं करता बल्कि ऐसे मामलों का निर्णय वह भारतीयों ही पर छोड़ देता है। वह जानता है कि ऐसा न करने से अनेक आपत्तियों का सामना करना होगा। वह देख चुका है कि प्रत्यक्ष या परोक्ष में धार्मिक हस्तक्षेप होने के कारण ही समय समय पर झगड़े उठ खड़े हुए हैं। इसीलिए मेरा विश्वास है कि ग्रेटब्रिटेन की भारत सम्बन्धी नीति का मूल स्वरूप भारतवर्ष को अंग्रेज़ी ढांचे में न ढाल कर, प्रत्युत आभ्यन्तरिक कार्य व्यवस्था को ठीक करना, देश में नियम और शान्ति स्थापित करना, भारत की धन वृद्धि करना और स्वयम् उससे यथा सम्भव लाभ उठाना है।

(५)

इन्डो-जापानी वाणिज्य की शोचनीय स्थिति।

जापान और भारत के भाव-साम्य का इन दो जातियों के बीच भविष्य में व्यापार पर बहुत प्रभाव पड़ेगा। मान लिया जाय कि हम अपने भारतीय सम्बन्ध सूत्रों में से व्यापार का सूत्र अलग कर दें तो अवशिष्ट सम्बन्ध प्रायः 'नहीं' के बराबर हो जाते हैं। सन् १९१९-२० में समस्त देशों ने भारतवर्ष से २४७०० लाख येन* का व्यापार किया, किन्तु हम उससे २५०० लाख येन का ही व्यापार कर सके, जिसमें से हम ने दस करोड़ येन की रुई वहीं भेजी और शेष १५ करोड़ का अन्य चीज़ें रवाना कीं। क्या हम इस प्रकार भेद-भाव और परार्थी

* जापान का एक येन लगभग १ रुपया ९ आना के बराबर होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लेनदेन से सम्बन्ध रखनेवाली भिन्नताओं को भविष्य में फिर भी देखना पड़ेगा?

ऊपर के अङ्कों से यह बात प्रकट होती है कि भारत के डेढ़ सौ करोड़ येन के बाहर से आनेवाले माल का ⅘ चतुर्थ-पंचमांश यूरोपीय देशों से आता है। एशिया और यूरोप को उसका माल सामान परिमाण में जाता है, अर्थात् उसका रफ़्नी का व्यापार मामूली है। भारत में आने वाली चीज़ों की ओर ध्यान देने से यह कहना पड़ता है कि यदि एशिया में ग्रेटबृटेन और जर्मनी जैसे दो उद्योग-व्यवसायी देश होते तो हम कम से कम इन देशों की तरह भारत को माल भेजते, वस्तुतः यूरोप और एशिया का भारत सम्बन्धी व्यापार आजकल की अपेक्षा परिमाण में बराबर होता।

सन् १९०५ में जब कि भारतवर्ष में स्वदेशी आन्दोलन की धूम मची हुई थी, अंग्रेज़ी माल का चारो ओर वहिष्कार हो रहा था, लोगों की ज़रूरत पूरा करने के लिए जापानी चीज़ों पर दृष्टि पड़ने लगी। वे प्रसन्नतापूर्वक जापानी माल को अपनाने लगे। इसके पश्चात् यूरोपीय महाभारत के छेड़ने से भारत में हमारे यहां की बनी वस्तुओं की मांग बहुत बढ़ गई है। इसका कारण केवल यही है कि भारतवासी जापान से प्रेम करते हैं। किन्तु दुःख की बात है कि अनेकानेक अनुसंधान करने पर मुझे मालूम हुआ कि उन्नति करने में हमारी गति बहुत ही मन्द है। हमारे यहां आवश्यक माल तैयार नहीं किया जाता, जो कुछ तैयार हुआ करता है वह अन्ट-सन्ट होता है। माल की रवानगी में भी देर हुआ करती है और इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार की असावधानता है जिन्हें वर्णन करने की आवश्यकता नहीं। संक्षेप में यही कहना यथेष्ट है कि हमारा वाणिज्य-व्यवसाय चीन, उत्तरीय समुद्र और भारतवर्ष के लिए अत्यन्त क्षीण दशा में है।

(६)

भारतीय वाणिज्य का भविष्य।

मैं भारतवर्ष में वर्षों तक रहा हूं और उसके अन्तर्गत भिन्न २ प्रदेशों में घूम-फिर-कर मैंने इस बात का अनुभव प्राप्त किया है कि भारतवर्ष की प्राकृतिक वस्तु व्यवस्था अपरिमेय है। मैंने यह भी जान लिया है कि भारतवासी ऊपरी चमक दमक वाली चीज़ों की अपेक्षा मज़बूत और सस्ती चीज़ों का क़दर ज्यादा करते हैं। यह केवल समय का ही प्रश्न रह गया था कि जर्मनी की व्यापारिक सफलता और भी अधिक होती जैसी गत बीस वर्षों में उसने भारतवर्ष में प्राप्त की थी। जापान द्वितीय श्रेणी की चीज़ें तैयार करने की कला में जर्मनी के बराबर है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारा भारत सम्बन्धी व्यापार भविष्य में बहुत कुछ विस्तृत होगा। यदि मैं गलती नहीं करता तो यह कहना सत्य है कि भारतीय बाजारों के ½ भाग पर अधिकृत होने में जापान को अधिक समय की अपेक्षा नहीं करनी होगी, उसका भविष्य बहुत ही सन्निकट है।

मैंने पहिले ही जापान के प्रति भारतीयों के सद्भावों का वर्णन किया है और ये सद्भाव ही शान्तिपूर्ण मित्रता का मार्ग निश्चित करते हैं। इसलिए यदि जापानी अपने विचारों और भावों को भारतीयों के अनुकूल कर लें, उनसे सच्ची और गहरी सहानुभूति रक्खें, भारतवर्षीय मांग को पूरी करने के लिए उद्योग धंधों की वृद्धि करें और अपनी बनी हुई चीज़ों के बदले में भारत के कच्चे माल को खरीदें अर्थात् भारत की प्राकृतिक वस्तु व्यवस्था से लाभ उठावें तो हम यह निःसङ्कोच कह सकते हैं कि अन्यान्य कठिनाइयों और अड़चनों के होते हुए भी आज से २० वर्ष के भीतर जापान और भारतवर्ष के बीच में दृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो जायगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र में नया युग ।

[लेखक—श्रीयुत जगमोहन 'विकसित' ।]

यूरोप से उठी हुई स्वाधीनता और स्वतंत्रता की लहरें जब दूर देश एमेरिका तक में जा टकराईं, तब यह असम्भव से भी बढ़कर बात होती यदि यूरोप का पड़ोसी मिश्र इन लहरों की हिलोरों में बिना पड़े रह जाता । परिवर्तन की इस गहरी व्यापक गति के साथ तो मिश्र दौड़ा किन्तु; उसने अधिक विलम्ब किया। कर्मवीर खदीव मुहम्मद अली के प्रयत्न का फल अभागे मिश्र के लिए, अपने हाथों अपने पैर में कुल्हाड़ी मारने से अधिक मूल्य का न निकला। जागृति का संदेश पहुंचा, निद्राभङ्ग, हृदय-हीन मिश्र कुनमुनाया और शान्त हो रहा। स्वाधीनता की भेरी बजी, पराधीन, आत्म-विस्मृत मिश्र चौंका और अचेत हो रहा। स्वतंत्रता की वायु ने ठोकरें मारीं, वेग भरे धक्के लगाये, परतंत्र पद-दलित मिश्र जगा और फिर सो रहा। पर उलट फेर की क्रीड़ा भूमि यूरोप से जागृति, जीवन, स्वाधीनता और स्वतंत्रता के बार बार उठते हुए नाद ने, अन्त में मिश्र का आकाश हिला दिया। मिश्र की सोती हुई आत्मा सोती न रह सकी। मिश्र में जागृति का सञ्चार हुआ। आशा का प्रादुर्भाव और विश्वास का जन्म हुआ।

समय समय पर ईरान, यूनान और रोम आदि से जो वेग भरी आँधियाँ उठीं और ज़ोर के ज़लज़ले आये—उनको देखकर कहना पड़ता है कि उलट फेर की पहाड़ सी बनती बिगड़ती लहरों में पड़कर मिश्र को भारत की अपेक्षा कहीं अधिक डुबकियां लगानी पड़ी हैं। इसीलिए हमारी धारणा है कि मिश्र की आलोचना न केवल इसी विचार से हितकर होगी कि मिश्र उन देशों में एक देश है जहां नये युग की हवा बह उठी है वरन् इस विचार से भी कि नये युग का संदेश अपनाने वाले भारत के साहसी हृदय को इस आलोचना से बल पहुंचेगा। नये युग की चर्चा छेड़ने से पहिले यह उचित जान पड़ता है कि मिश्र के प्राचीन युग को एक बार झाँककर देख लिया जाय।

'समुद्र पर जहाज़ तैरना, खेती, राज्यनिलक, विचारालय, रणक्षेत्र' इत्यादि अनेक प्रकार के कमनीय, रंगीन और सजीव चित्रों से जो मेमफिस नगर की टूटी प्राचीर और पीरामिड्स में पाये जाते हैं, उस समय के धर्म, समाज, व्यापार, राष्ट्र और शासन आदि का पता चलता है। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो हेलियोपोलिस के सूर्य मन्दिर में बारह वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करता रहा था। इमारतों की दृढ़ता और विशालता से विराट राष्ट्र-शक्ति, असीम सम्पत्ति, प्रबल क्रिया-कुशलता, सौन्दर्य-ज्ञान और श्रम-शीलता का परिचय मिलता है। ऐसे मसाले बनाये जा सके थे कि पांच सहस्र वर्ष से भी अधिक समय के सम्राट्-शव रक्षित हैं जिनकी देह और मुख श्री से भ्रम होता है, मानों वे सो रहे हैं। राजवितति के विशाल और विस्तृत भवन (पीरामिड्स) देखकर दर्शक चकित हो जाते हैं, सोचने लगते हैं कि इतने बड़े और भारी पत्थर यहां कैसे आये होंगे! किस कल से उठाये और लाये गये होंगे! कितने दिन तक, कितने मनुष्य लगे रहे होंगे! मिश्र का यह स्वर्ण युग था। इस स्वर्ण-युग की कथा सभ्यता की बाढ़ में इतराई हुई जातियों के हृदय में मिश्र के प्रति ईर्षा और सन्ताप भरी भक्ति उत्पन्न कर देती है और उनके हाथों में फावड़े, कुदाल थँमा कर छोड़ती है, पर दुख है कि इस स्वर्ण-युग की निर्माता जाति—जिसकी कृति मानव-सभ्यता के खोये हुए इतिहास की देदीप्यमान किरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है—अपने आदर्श, धर्म, समाज—सभी प्रकार के चित्रपट समेट कर, इस भवनाट्यशाला को सदा के लिए नमस्कार कर चुकी है।

ईसा से पूर्व छठवीं सदी में ईरान नरेश ने मिश्र में अपना अधिकार जमाया। आगे चल कर विजयी सिकन्दर ने मिश्र की छाती पर चने दले और स्कन्दरिया को विपुल ऐश्वर्य का केन्द्र बनाया। किन्तु समय की गति ने उसके विपुल ऐश्वर्य, विराट् ग्रन्थालय, आश्चर्यभवन प्रभृति में से किसी का चिह्न तक न शेष रक्खा। अब मिश्र में रोमन साम्राज्य का विस्तार हुआ। ईसा की प्रारम्भिक कई शताब्दियों तक किसी सम्राट् के समय में प्राचीन धर्मावलम्बियों की और किसी के समय में क्रिश्चियनों की भयानक दुर्गति होती रही। ख़लीफ़ा उमर के शासनकाल में—सातवीं शताब्दी में—मुसलमानों ने मिश्र में विजय-पताका फहराई। मिश्र के इस युग की बातें ख़ूनख़च्चर और मार-काट की लम्बी कहानियां हैं। अठारहवीं शताब्दी तक मिश्र टर्की की भरपूर छत्रछाया में रहा।

उन्नीसवीं शताब्दी

के प्रारम्भ काल में खदीव मुहम्मद अली ने परतंत्रता के दुख का अनुभव किया और मिश्र को स्वतंत्र करना चाहा। इधर नवीन यूरोप के हृदय में भी टर्की का विशाल साम्राज्य कांटे की तरह खटक रहा था, वह चाहता था कि मिश्र को प्रबल बनाकर टर्की को नीचा दिखाया जाय। इस चाह में नेपोलियन का जो पृथ्वी के मान चित्र को नये रूप में देखना चाहता था तथा स्वार्थ-लोलुप फ्रांसीसी जाति का, जिसकी उस समय यूरोप में धाक बँधी थी—पूरा हाथ था। मुहम्मद अली ने देश में नये-युग के आवाहन के लिए फ्रांस से वैज्ञानिक, डाक्टर, इंजीनियर, कारीगर सभी प्रकार के पंडित बुलवाये। किन्तु मिश्र का कल्पित भविष्य, जिसे खदीव ने ज्योतिर्मय समझा था—अंधकारमय निकला। मिश्रनिवासी अनुकरण के दास हो गये। उनके हृदय में यूरोप की चरित्र-हीनता घर कर गई। वे विलास-प्रियता के सच्चे प्रेमी और वाह्य निष्ठा के अनन्य-भक्त बन बैठे। फ्रेञ्च भाषा मातृभाषा सी बन गई। विद्वान का अर्थ फ्रेञ्च भाषा का पंडित होने लगा। शिक्षाभवन, बाज़ार, होटल, न्यायालय, सम्वाद-पत्र, विज्ञापन, थियेटर, ट्राम, रास्तों के नाम, जहां देखो वहीं फ्रेञ्च भाषा हो गई।

मुहम्मद अली के शासनकाल में ही यूरोप की अन्यान्य जातियों ने भी मिश्र में पदार्पण करना प्रारम्भ किया। काइरो नगर के म्यूज़ियम भवन में एक पत्र संरक्षित है जिसमें ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासनकाल में बम्बई के सौ व्यापारियों ने खदीव से प्रार्थना की है कि अंग्रेज़ व्यापारियों को मिश्र होकर भारत में आने जाने की आज्ञा दी जाय।

धीरे धीरे मिश्र, संसार की अर्थ-लोलुप जातियों का बाज़ार बन गया। ग्रीक, आर्मीनियन, यहूदी, इटैलियन, एमेरिकन, जर्मन, फ्रेञ्च, अंग्रेज़ आदि जातियां मिश्र की छाती पर बैठकर धन सञ्चय करने लगीं। विचार-प्रणाली बड़ी विचित्र हो उठी। प्रत्येक जाति के अभियोग का निर्णय अपने अपने देश के क़ानून के अनुसार होने की व्यवस्था की गई। किसी विदेशी से एक मिश्रनिवासी की ज़रासी छेड़ हुई कि उसका मटियामेट हो गया। मान लो विदेशी इटली निवासी है तो विचारपति इटली के क़ानून का अभिज्ञ होना चाहिये और मुक़द्दमे की सहायता के लिए वैसा ही वकील भी। इस दुर्दशा में जनसाधारण के समय और अर्थ के अपव्यय की सीमा न रही। मिश्र के रहनेवाले

विपद के खिलौना

बन गये। बड़े बड़े कारबार, बैंक, अनाज व्यवसाय, सब विदेशियों के हाथ में चला गया। स्कूल, कालेज, कल, कारख़ाने, समाचार-पत्र, राष्ट्रसञ्चालन कहीं भी मिश्रवासियों का हाथ न रहा। मिश्र की बाज़ारें विदेशी माल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खच भर गई। नवयुवक—जिनसे कोई भी देश आशा कर सकता है—मद्य, मांस, तमाकू और चाय के सेवन में ही सारा सुख समझ बैठे। पाश्चात्य भाषा में बातें करना, पाश्चात्य ढंग का रहन-सहन प्रिय हो गया। पाश्चात्य भाषा लिख पढ़ जाने पर वे अपने को कोई दूसरा ही जीव समझने लगे और देशवासियों से घृणा करने लगे।

अपव्यय तथा विलास-प्रियता ने मिश्र के पैरों में ऋण की मोटी जंजीर डाल दी और अदूरदर्शिता ने स्वेज नहर के पूरे चौथाई भाग में अंग्रेज़ों का आधिपत्य जमा दिया। मिश्र की स्वतंत्रता का आकाश-मंडल

पराधीनता के बादलों

से ढँक गया। फ्रेञ्च जाति का इतिहास मिश्र में भी वैसाही है जैसा कि भारत में। फ्रेञ्च आये, पीछे पीछे अंगरेज पहुंचे। सब कुछ करने की इच्छा रखते हुए भी फ्रेञ्च कुछ कर धर न पाये और अनिच्छा प्रकट करते हुए भी अंग्रेज़ सब समेट बैठे। ३६ वर्ष बीते जब से अंग्रेज़ का मिश्र से सम्बन्ध हुआ। थोड़ेही काल में मिश्र का शासन अंग्रेज़ों के हाथ आगया। मिश्र की शान्ति रक्षा के लिये अंग्रेज़ी सेना नियत हुई। कहने के लिए मिश्र का अधिकारी खदीव रहा पर मिश्र की मंत्रणा सभा की डोर इंगलैंड के राज-नीतिज्ञों द्वारा हिलाई जाने लगी। मिश्र ने राज-भक्ति, दब्बूपन और सहनशीलता का परिचय दिया। शासकों ने घृणा, उद्दण्डता और उग्रता से काम लिया। फल यह हुआ कि देश के उन हृदयों को, जिन्होंने नये-युग का सन्देश सुना था, सच्चे स्वरूप का पता लग गया। देश के उद्धार के लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया गया। यूरोप में अध्ययन करनेवाले मिश्र के नवयुवक प्रतिवर्ष जैनोवा में एकत्र होकर, बृटिश से मिश्र के सुधार का आग्रह करने लगेः—

'देश में मृत्यु-संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है, सफाई और स्वास्थ्य के लिए सरकार रुपया नहीं व्यय करती, सर्वसाधारण की जान-कारी के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी कोई रिपोर्ट नहीं प्रकाशित होती, शिक्षा के अभाव से किसान वर्तमान वैज्ञानिक कलों और यंत्रों से काम नहीं ले सकते—इनके लाभ और प्रयोग भी नहीं समझ सकते। देश के प्रधान निवासी क्रिश्च-यन और मुसलमान हैं। संख्या में मुसलमान अधिक हैं। इन मुसलमानों में प्रति हज़ार पुरुषों में ७८ पुरुष और प्रति हज़ार स्त्रियों में केवल दो स्त्री पढ़ी लिखी हैं, स्त्री शिक्षा नहीं है। वर्तमान शिक्षा का रूप देश के प्रति घृणा उत्पन्न करनेवाला और विदेशी बना कर छोड़ने वाला है। शिक्षा केवल निम्न और मध्यम श्रेणी की है। देश में उच्च-शिक्षा की व्यवस्था नहीं है।' आदि तीव्र समालोचना की गई। आन्दोलन ने जैसे जैसे व्यापक रूप धारण किया, अधिकारीवर्ग ने वैसेही वैसे दमननीति का प्रसार किया। इतना ही नहीं, १६०६ ई० में जब जातीय आन्दोलन ज़ोरों पर हुआ तो कुछ मिश्र वाले यह कहते हुये खड़े किये गये कि इस आन्दोलन से हमारी हानि हो सकती है, किन्तु दिल्लगी यह हुई कि इन लोगों ने भी अपने प्रार्थना-पत्र में सबसे पहली बात यही लिखीः—'स्वाधीन होना हम भी चाहते हैं।' किन्तु दूसरे पक्ष वालों की ओर से जैसा सदा से सुनने में आयाः—'तुम अभी इस योग्य नहीं हो कि देश के शासन में हाथ बटा सको, तुम में देशभक्ति तो है पर देश की स्थिति का तुम्हें ज्ञान नहीं। आन्दोलन में केवल भाव-वेग है, तुम्हारी सम्मति देश के लिए हितकर नहीं। नैशनलिस्ट पार्टी मिश्र को आगे बढ़ाने के पलटे दो पांव और पीछे खिसका रही है।' आदि बातें आन्दोलनकारियों को सुनाई पड़ने लगीं। इस

जागृति के आन्दोलन

पर लार्ड किचनर के जमाने में अनुदारता और उग्रता की ज़ोरदार मुहरें लगाई गईं। प्रेस और पत्र बन्द करने के लिए तथा राजनैतिक सभाओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और आन्दोलनों को रोकने के लिए कानून पर कानून पास हुए। आक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय के अरबी प्रोफेसर 'अललिवा' के सम्पादक प्रसिद्ध शेख साहब तक को जेल की हवा खानी पड़ी। पर इन विघ्नों से नेताओं की गति धीमी न पड़ी। अन्त में उन्हें विजय मिली। सरकार को इस आन्दोलन की सत्यता स्वीकार करनी पड़ी, कमीशन बिठलाया गया। कमीशन ने शिक्षा के अभाव पर खेद प्रकट किया। किसानों की स्थिति को भी बहुत असन्तोषजनक बतलाया। सम्मति दी कि देश में कृषि शिक्षा के लिए एग्रीकेलचर प्राइमरी, सेकेंडरी और युनीवर्सिटी स्कूल खोले जायँ। फलतः किसानों के सुधार के लिये सरकारी स्कूल खोले गये, जिनकी संख्या अब दिन दिन बढ़ रही है।

मिश्र ने आन्दोलन के साथ ही साथ अपने परों खड़े होने का बड़ा सुन्दर प्रमाण दिया। मिश्रनिवासियों का सब से पहिला जो शानदार काम हुआ वह राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का खोलना है। इस विश्वविद्यालय में देश की राष्ट्र-भाषा अरबी द्वारा उच्च से उच्च विषय की शिक्षा प्राप्त करने का प्रबन्ध किया गया है। शिक्षा पर राष्ट्र का विकाश निर्भर है। दूसरे के भावों से हृदय को सींचकर पनपने की आशा आकाश पुष्प-चयन की आशा से अधिक मूल्यवान नहीं। उठने की आकांक्षा रखनेवाले किसी भी पद-दलित और अवनत देश का पहिला कर्तव्य 'अपनी शिक्षा का प्रबन्ध आप करना' ही कहा जा सकता है। यह समझकर कि 'प्रयत्न सतर्कता और दृढ़ता के साथ ध्येय की ओर पैर बढ़ाये जानेवाली आत्माओं को बाधाओं से बल और ईश्वर से सहायता मिलती है' मिश्र नये-युग के साथ दौड़ रहा है और विश्वास कर रहा है कि वह दिन निकट है जिस दिन मिश्र भी उन्नत राष्ट्रों में परिगणित होगा, इस समय यूरोप में होनेवाली सन्धि कान्फरेंस की ओर उत्सुकता और आशापूर्ण दृष्टि से ताकना मिश्र के लिए वैसा ही स्वाभाविक और समुचित है जैसा कि भारत के लिए है। फारस के प्रतिनिधि सन्धि-परिषद् में उपस्थित होने के लिए पेरिस पहुंच गये हैं. और खबर आई है कि वे फारस की स्वतंत्रता का प्रश्न वहां उठाना चाहते हैं। वे अपने देश से विदेशी फौज़ों के हटा लेने, उस सेना द्वारा की गई क्षति को पूर्ण करने, सन् १८२८ ई० में जबर्दस्ती से को गई सन्धियों को रद्द करने, रूस द्वारा हड़प किये गये बाकू, शिवरान, गुएडजी, एरीवान और नाकछेवान प्रान्तों को वापस देने की मांग करनेवाले हैं। इसके साथ ही वे चाहते हैं कि यदि मेसोपोटामियां में नया स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो तो शिया धर्म-स्थानों की देखभाल उनके अधीन रहे। अस्तु; अब देखना है कि उदार, उन्नत और प्रबल राष्ट्रों से बेचारे मिश्र को नये युग के आवाहन में कितनी सहायता मिलती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आशावाद ।

[लेखक—श्रीयुत हरिहरप्रसाद, बी० ए० ।]

भारतवर्ष का ज़माना भविष्य की तराज़ू में लटक रहा है। अंधकार और प्रकाश की शक्ति उस पर शताब्दियों तक कब्ज़ा करने के लिए प्रयत्न कर रही है। क्या हिन्दुस्तानी उन्नति करेंगे और मनुष्य बनेंगे? यह एक प्रश्न है जो तमाम देश के प्रबन्ध पर विचार करनेवाले चिन्ताशील आत्माओं के सन्मुख उपस्थित है। हम बहुधा निराशचित्त महात्माओं को कहते हुए सुनते हैं कि भारतीय जाति एक नष्ट-भ्रष्ट हो जानेवाली जाति है। हमारे योग्य हित-चिन्तक विश्वास दिलाते हैं कि प्रकृति को यह मंजूर है कि हिन्दुस्तानियों को अभी कम से कम एक शताब्दी तक अविद्या और दीनता की दशा में रक्खे। हमारे समाज-सुधारक बहुत ज़ोर के साथ कहते हैं कि भारत का आर्थिक प्रश्न उस समय तक हल नहीं हो सकता जब तक इनेगिने सुधार कार्यरूप में परिणत न हो। हमारे यहां ऐसे धार्मिक महन्त हैं जो प्रायः कहा करते हैं कि भारतवर्ष के भविष्य के लिए कोई आशा नहीं जब तक कि वह ईश्वरीयता का जामा न पहिने। प्रायः अर्द्ध-शिक्षित और भिन्न २ श्रेणी के लोग जो इस परिवर्तन के समय में पाये जाते हैं, अपनी योग्यता के अनुसार काम कर रहे हैं—कुछ न कुछ साधारण सुधार करते हैं—किन्तु; इन महात्माओं की दृष्टि में भारतवर्ष की प्राण-प्रिय आशाओं के पूरा होने का समय बहुत दूर है। इन्हें विश्वास नहीं कि अकाल, महामारी और अविद्यान्धकार का अन्त शीघ्र होगा। इन्हीं कारणों से राष्ट्र के उन्नत हृदय नवयुवक दुखी और निराश हो रहे हैं, उनके दिलों में नेताओं की इस शिक्षा से नैराश्यता बड़ी सरलता के साथ जगह कर लेती है। उमङ्ग और उच्चाभिलाष का साथ ही साथ अन्त हो जाता है। कोई व्यक्ति अपने आनन्दमय जीवन को मातृभूमि की पवित्र वेदी पर बलिदान करना नहीं चाहता। यह तो निश्चय है कि जिस आदर्श को कार्यरूप में परिणत नहीं किया जाता वह सरगर्मी पैदा नहीं कर सकता एतदर्थ, सर्वसाधारण की उमङ्ग को उभारना बिलकुल व्यर्थ सा मालूम पड़ता है। भारतवर्ष के भाग्य का निर्णय बीसवीं शताब्दी में एक मुख्य प्रश्न है। निकटवर्ती समय की निराशा हमारी सारी चेष्टाओं पर, इन चेष्टाओं पर जो अत्यन्त कठिनाइयों और कष्टों एवम् बहुत बड़े आत्मोत्सर्ग के पश्चात् अपना फल प्रगट करती है—लकवा मारने का काम कर रही है।

वे व्यक्ति जो निराशावादी हैं, नवयुवकों से कहते हैं कि देश की आर्थिक दशा बढ़ने के पूर्व तुम्हें बहुत बड़े बड़े पड़ाव तय करने पड़ेंगे। ये लोग हिन्दुस्तानियों की योग्यता के बारे में बहुत ही साधारण राय रखते हैं। वे कहते हैं कि हम बहुत ही खुशामदी और गिरे हुए हैं। हम में आचरण नहीं, हम में जोश नहीं, हम में शक्ति नहीं, हम में एकता नहीं, हम निरक्षर भट्टाचार्य हैं। हम एक दूसरे से मिलकर काम करना नहीं जानते, हम में अधिकांश लोग अयोग्य और स्वार्थी हैं। हमारी स्त्रियां पढ़ी-लिखी नहीं हैं। हम यूरोप से शताब्दियों पीछे हैं। देश के प्रबन्ध में हमारी योग्यता और हमारा ज्ञान बहुत ही परिमित है, हमारे मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं। संसार के अन्य देश बहुत शक्तिशाली हैं, उनका महत्व कहीं ज़्यादा है। वे अपने उद्देश्यों को पूरा करने में अत्यन्त चतुर हैं। भला, ऐसी दशा में सफ-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लता का होना कैसे सम्भव है? निःसन्देह, इन महानुभावों की ये दलीलें--यदि आजकल के वैज्ञानिक रहन-सहन के ढङ्ग पर विचार न करके देखी जायँ तो-बहुत ज़बर्दस्त हैं। किन्तु जिस प्रकार किसी अभागे आदमी के विरुद्ध प्रत्येक आदमी अपनी सम्मति रखता है, ठीक उसी प्रकार हिन्दुस्तान की दशा है। वर्तमान समय की अविद्या और दरिद्रता राष्ट्र की शक्ति को ऐसी कुम्हला रही है कि वह भविष्य को देख ही नहीं सकती।

इस कथन से मेरा अभिप्राय यह है कि भारत का आर्थिक प्रश्न इसके पूर्व कि २० वर्ष गुज़रे हल हो जायगा। जो शक्तियां भारतवर्ष में काम कर रही हैं उनकी गति को भलीभांति समझ लेने के पश्चात मेरा यह दृढ़ मत है, इस मत को मैंने अपनी उमङ्ग से प्रभावित होने नहीं दिया। मैंने केवल समाज शास्त्र के नवीन तरीकों को भारतवर्ष पर चरितार्थ करने का प्रयत्न किया है और उन्हीं से यह परिणाम निकाला है जिसके कारण समाज-सुधारकों को नैराश्यता के विचार मस्तिष्क से निकाल देना चाहिये। बुद्धि हमें आशा का पाठ पढ़ाती है हृदय भी उसी ओर सङ्केत करता है और जब हृदय और मस्तिष्क एक होते हैं तो हमें निराश होने का कोई कारण नहीं।

भारतवर्ष के भविष्य को आच्छादित करने वाले काले बादलों में ऐसी कौनसी रुपहली रेखा है? इस प्रश्न पर विचार करने के लिए हमें उन तमाम शक्तियों को, जो जीवन की आन्तरिक दशा को प्रगट करती है, देखना चाहिये—और उन्हीं पर वाद-विवाद करना चाहिये।

हिन्दुस्तानी रियासतें।

बहुत से लोग यह भूल जाते हैं कि भारतवर्ष का एक तिहाई हिस्सा देशी राज्यों के अधिकार में है और दो स्वतंत्र रियासतें देश में हैं। रियासतों में हमारी अभिलाषाओं के प्रकट करने में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है, वहां पब्लिक-स्प्रिट दिखलाने का काफी मौका है। वहां सामाजिक-संगठन की ऐसी गिरी हुई दशा नहीं है जैसी बृटिश इन्डिया में है। लोग कायर और दास नहीं हैं। उनमें देश का गर्व मौजूद है। वीरोचित खेल और व्यायाम वहां भूले नहीं जा चुके हैं। पूर्वीय समाज का प्राकृतिक वायुमंडल किसी निर्द्धारित सीमा तक स्वतंत्रता का अधिकार देता है। रियासतों में जीवन, शक्ति और पुरुषत्व है। दरबारों में सुधार हो रहे हैं। उन्नत-मस्तिष्क शासक उन लोगों के लिए जिन पर वे टैक्स लगाते और शासन करते हैं, अपना कर्तव्य पूरा करने का प्रयत्न कर रहे हैं। विदेश-यात्रा कुछ राजाओं की आंखें खोल चुकी है कि किस तरह उन्नति करनी चाहिये।

सरकारी विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट सरकारी नौकरियों के न पाने पर रियासतों में पहुंच रहे हैं, यह क्रम कुछ समय व्यतीत होने पर उन्नति करेगा। पुराने और अयोग्य मंत्रियों के न रहने पर सुशिक्षितों को अवसर मिला है कि राजकीय कामों में वे अपनी योग्यता दिखलावें। जब कि ७ करोड़ के लगभग अपने देश भाई रियासतों में रहते हैं तो मातृभूमि के किसी सेवक को निराश नहीं होना चाहिये कि उसके लिए देश-हित-साधन का कोई द्वार नहीं है। स्वतंत्र चित्त के देश सेवा करनेवाले लोग रियासतों में बहुत कुछ काम कर सकते हैं। योग्य और न्याय-प्रिय समाचारपत्र-सम्पादक सर्वसाधारण में जीवन पैदा कर सकते हैं, जिन्दा दिलों को उभार सकते हैं, और जनता में सामाजिक शक्ति का संचार कर सकते हैं। जीवन-शून्य वाद-विवाद कांग्रेस और बृटिश हिन्दुस्तान के समाचारपत्र, गुलाम आबादी की लाश में प्राण नहीं फूंक सकते। सार्वजनिक शिक्षा-प्रचार से स्वतंत्र राजनैतिक संस्थाओं का जन्म दिया जा सकता है जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजाओं की हुकूमत कम हो जायगी। ऐसा ही यूरोप में हुआ है और यही हिन्दुस्तान में होगा।

धार्मिक-संस्थाएँ।

ये देश के मामलों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखतीं किन्तु इनमें जीवन और शक्ति है। ये अपने ऊपर शासन करना जानती हैं। ये जानती हैं कि भारतवर्ष उनका देश है और देशभक्ति उनका धर्म है। बस केवल उनके उचित गर्व को काम की ओर झुक जाने भर की देर है। इनकी ज्योति अभी बुझी हुई नहीं है उसे लपट की भांति प्रकाशमय कर देना चाहिये।

यह विचार करने से दुःख होता है कि धार्मिक संगठन करनेवाली भिन्न २ समाजें स्वतंत्र और स्वाधीन जीवन स्थिर रखने में शक्तिहीन हैं—मृत्यु का हाथ उन पर आपहुंचा है। वे दासत्व और कायरता का विष फैला रही हैं। वे धर्म का वर्णन करती हैं किन्तु भय उनके दिल में है। वे परमात्मा की पूजा के गीत गाती हैं परन्तु अन्याय और अत्याचार की उपासना करती हैं। वे मुक्ति की इच्छा करती हैं किन्तु जंजीरों में जकड़ी हैं उन्हें चाहिये कि प्राचीन संगठन से उपदेश ग्रहण करें।

मध्यश्रेणी के लोगों की उन्नति।

पचास वर्ष के समय में मध्यश्रेणी के लोगों की उन्नति आश्चर्यजनक है। यह एक अद्भुत श्रेणी मालूम पड़ती है। इसके जीवन का अवलम्बन सरकारी शासकों की दया पर निर्भर है। यह उन्हीं की निर्माण की हुई है जब इस श्रेणी के लोग कायर और लालची हो जाते हैं तो देश को मटियामेट कर देते हैं, किन्तु जब उनमें से कुछ लोग भी साहस और जोश दिखलाते हैं तो उनका प्रभाव राजाओं और ज़मींदारों से कहीं अधिक होता है। इस श्रेणी के लोग देश को बना और बिगाड़ सकते हैं। लक्षणों से मालूम होता है कि वे बिगाड़ने की अपेक्षा देश को सुधारने की ओर हैं। वकीलों के क्लब, कान्फरेंस, छोटी २ सरकारी नौकरियां, भिन्न २ समाजें और कांग्रेस अधिकारी तंत्र को ढीला किये बिना बाज़ नहीं रह सकतीं! इस श्रेणी के संगठन पर आक्रमण नहीं हो सकता। सरकार स्वयम् इसकी रक्षा करती है। मध्यश्रेणी के लोग ही भारतवर्ष के नेता बनेंगे। इस विषय में राजा लोग भी इच्छुक हैं कि यह श्रेणी उनकी सेवाओं का दम भरे। क्योंकि देश के समाचारपत्र और साहित्य इसके हाथ में हैं। राष्ट्र में एक भीषण परिवर्तन हो रहा है, मार्ग दिखलाने के लिए धन का स्थान मस्तिष्क ले रहा है। भारतवर्ष में जनसाधारण की सेवा करनेवाले आजकल के शासक हैं, इनका प्रभाव प्रति वर्ष उन्नति करेगा। बीसवीं शताब्दी का भारत सिक्खों और मरहठों के समय से बिलकुल भिन्न और निराला होगा।

धनी लोग

सामाजिक परिवर्तन में काफी भाग नहीं ले सकते। वे तूफान और प्रचंड वायु में ठहर नहीं सकते। कायरता उनका स्वाभाविक लक्षण है। ऐसी दशा में यदि इस श्रेणी से नेताओं का चुनाव हो तो यह समाज का दुर्भाग्य ही समझना चाहिये। भूतकाल में इनका चुनाव हमारे पतन का यह एक मुख्य कारण रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि धन-पात्र पढ़े-लिखों के अच्छे सहायक हैं किन्तु उन्हें इतने अधिकार दिये जायँ कि वे पुराने ढँगों को अपने कब्ज़े में ले आएँ और उनकी उन्नति के लिए योजना करें। कारण स्पष्ट है कि वे अपनी मिलकियत की रक्षा का विचार पहले करेंगे तत्पश्चात् जनसाधारण के लाभ की ओर ध्यान देंगे। उचित तो यह है कि ब्राह्मणों को वैश्यों के ऊपर होना चाहिये। मध्यश्रेणी के लोगों की उन्नति किसी दांव पेंच से रुक नहीं सकती, यह हमारे लिए बड़े महत्व का प्रश्न है कि हम इसकी शक्तियों को ठीक मार्ग पर ले आवें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनता ।

भारतीय मनुष्य साधारणतः बलवान और मर्दाना होते हैं, यद्यपि देश का कुछ भाग शारीरिक दृष्टि से गिरा हुआ है और यह एक अटल सिद्धान्त है कि किसी जाति में शारीरिक क्षीणता का होना उसके मस्तिष्क-पतन का कारण होता है, यही बात है कि ये लोग देश की उन्नति में अधिक भाग नहीं ले सकते--ये सारी आवश्यकताओं के लिए व्यर्थ हैं। तथापि बारह करोड़ हिन्दुस्तानी, जो मज़बूत और बलवान काश्तकार हैं, संसार की सब से अच्छी जाति के मुक़ाबले में रक्खे जाने के लायक हैं। सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक गिबन के मतानुसार इनकी संख्या सम्पूर्ण रोम-राज्य से अधिक है। ये सादा जीवन व्यतीत करते हैं और बड़े ही शुद्ध आचार-विचार के होते हैं। राष्ट्र के लिए इन गुणों का होना अत्यन्त आवश्यकीय है।

स्त्रियां ।

हमारी स्त्रियों में जो जीवन है उसे हम अब तक काम में नहीं ला सके। स्त्रियां पराधीनता की दशा में हैं किन्तु यदि देखा जाय तो समस्त संसार की स्त्रियों का यही हाल है। इस दृष्टि से पूर्व और पश्चिम में बहुत ही कम अन्तर है। भारतीय स्त्रियां भविष्य के परिवर्तन में काफ़ी हिस्सा लेने के योग्य हैं। वे पति-भक्ति-परायणा हैं। इसके अतिरिक्त उनमें अन्य अनेक गुण हैं। आवश्यकता है कि प्रत्येक नवयुवक अपनी स्त्री को देशहित की शिक्षा देने में दृढ़प्रतिज्ञ हो जाय क्योंकि इस विषय में उनकी एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है।

हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न ।

कुछ लोग हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न को निराशा की दृष्टि से देखते हैं, किन्तु मुझे अधिक कठिनाइयां दिखलाई नहीं पड़तीं। पश्चिमी शिक्षा दोनों जातियों के नेताओं को परस्पर एक दूसरे से मिला देगी और द्वेष की जंजीर को काट देगी। सेंट्रल हिन्दू कालेज और अलीगढ़ कालेज में आचरण का जो सांचा ढल रहा है वह वास्तव में अपने ढंग का एक ही है। एक पंडित और मुल्ला की अपेक्षा विश्वविद्यालय की उच्च-शिक्षा प्राप्त हिन्दू-मुसलमान ग्रेजुएट एक दूसरे को ज़्यादा समझते हैं। पश्चिमी शिक्षा वह काम कर रही है जो अकबर ने अपने शासनकाल में किया था।

इनेगिने लोगों का कहना है कि पश्चिमी शिक्षा ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच की खाड़ी को और भी चौड़ा कर दिया है, द्वेष कम होने की अपेक्षा अधिक बढ़ गया है, किन्तु ये लोग अदूरदर्शी हैं। इन लोगों ने प्रस्तुत विषय पर बहुत ही कम विचार किया है। जो परिणाम इन्होंने निकाल रक्खा है वह बड़ी शीघ्रता के साथ निश्चित किया गया है। इन्हें स्मरण रखना चाहिये कि कुछ स्वार्थी लोगों की आवाज़ समय की बढ़ती हुई शक्ति को रोक नहीं सकती। भँवर और चक्करों का उठना सम्भव है किन्तु पानी का बहाव रुक नहीं सकता। जो शक्ति विद्यार्थियों को हावर्ड और आक्सफोर्ड लिए जाती है वह हैदराबाद और भूपाल में मिला बना देगी।

दोनों जाति के नेता इस बात को स्वीकार करेंगे कि भविष्य में भारत का सामाजिक और राजनैतिक जीवन आजकल की हिन्दू-मुस्लिम जनता के साधारण जीवन से भिन्न होगा क्योंकि पश्चिमी सभ्यता बीच के अन्तर को बड़ी तेज़ी से हटा रही है। सर्वसाधारण अपनी प्राचीन रीति नीति पर स्थिर रहेंगे परन्तु दोनों जातियों के शिक्षितगण सामाजिक स्थिति और समय की चाल को देखकर दूध चीनी की भांति आपस में मिल जायँगे। एक मुसलमान बैरिस्टर-एट-ला, हाफ़िज़ और हाजी की किसी बात को नहीं मानता। सच तो यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि भारत वर्ष में शिक्षितों की एक नई जाति बन रही है ।

बीसवीं शताब्दी की कठिनाइयों को अठारहवीं शताब्दी के भारतवर्ष से तुलना नहीं करनी चाहिये । देश का शिक्षित सम्प्रदाय जो यूरोप और एमेरिका के मध्यश्रेणी के लोगों से मिला हुआ है, क्रम क्रम से स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होगा । जापान की उन्नति का यही रहस्य है। हिन्दुओं में उच्च-जातियां अपनी प्राचीन अन्ध-नीति को मानना छोड़ देंगी और मुसलमानों के नेता अपने कलङ्कों एवम् सामाजिक रूढ़ि नीति पर स्वयम् दिल्लगी उड़ायेंगे, क्योंकि अर्वाचीन विज्ञान का प्रबलभाव प्राचीन रीति-नीति को उड़ा रहा है। एशियानिवासी विद्यार्थीगण अब बग़दाद और बनारस से शिक्षा नहीं लेते, किन्तु बर्लिन, पेरिस और लंदन से उपदेश ग्रहण करते हैं । ज्योति की किरण जनसाधारण में अपना प्रभाव बिना डाले नहीं रह सकती किन्तु अभी इसके लिए कुछ देरी अवश्य है । इस बीच में हिन्दू-मुसलमानों को अपनी अन्ध परम्परा रीतिनीति को भूल जाना चाहिये । और मनुष्यता देवी का स्वतंत्र एवम् सच्चा भक्त होना चाहिए । पश्चिमी शिक्षा का प्रसार बढ़ता जा रहा है । कोई व्यक्ति आज मनु की स्मृति और इस्लाम की शरीअत को हाथ में लेकर यह नहीं कह सकता कि हम इस मार्ग से उन्नति करेंगे ।

भारतवर्ष अपने को एक बन्द पानी का तालाब बना कर और उसमें प्राचीन समय के कीड़े-मकोड़े पैदा कर के बीसवीं शताब्दी में उन्नति नहीं कर सकता, उसे समय के साथ चलना होगा । हमारी जाति में जीवन के चिह्न हैं जिन्हें काम में लाने की आवश्यकता है, और आवश्यकता है इस बात की, कि पश्चिमी सभ्यता का अनुसरण हो । जो लोग भय से काम कर रहे हैं, उनसे मैं कहता हूं कि वह समय दूर नहीं जब कि उनकी अभिलाषाएँ पूरी हों, किन्तु, शर्त यह है कि निराशा की वेदी पर वे अपने को बलिदान न होने दें ।

पिछड़ने वाले यों पिछड़े ।

(राष्ट्रीय-ध्वनि)

पिछड़ने वाले यों पिछड़े । बिछुड़ने वाले यों बिछुड़े ॥
दौड़े बहुत मगर आख़िर में सब के दम उखड़े ॥ पिछड़ने वाले०

होश बड़ गये पथ में देखे कण्टक कष्ट कड़े ।
हारे हिम्मत हाय ! हठीले हठ से हमें हड़े ॥ पिछड़ने वाले०

लक्ष्य एक ही था पर पथ के लिए लड़े झगड़े ।
ऐसी हवा भरी फिर सर में बाँधे गये धड़े ॥ पिछड़ने वाले०

उपल बनी चिन्तामणि अपनी कैसे कुदिन पड़े ।
नहीं पसीजी लाख विनय हम करते रहे खड़े ॥ पिछड़ने वाले०

कुपित सुरेन्द्र गर्जना सुन के मन में भय उपड़े ।
गिरिधर मोहन ने पति राखी देशहितार्थ लड़े ॥ पिछड़ने वाले०

"सनेही" ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तद्वार वाणिज्य का परिणाम ।

[लेखक—श्रीयुत श्यामसुन्दर पाण्डेय ।]

५० वर्ष पहले संसार के सभी देशों से अधिक माल विलायत में बनता था। कोई भी देश विलायत का प्रतिस्पर्द्धी न था। जब कोबडेन मुक्तद्वार वाणिज्य पर व्याख्यान देता और उसे स्थापित कराना चाहता था, तब उसका विश्वास था कि विलायत अभी संसार में जैसा वाणिज्य व्यवसाय का मुख्य स्थान है, वैसा ही रहेगा। विलायत में अब भी बहुत सा माल बनता है, किन्तु वह सर्व प्रधान माल बनाने वाला देश अब नहीं रहा। अमेरिका, जर्मनी, जापान तथा और और देशों ने संरक्षक नीति द्वारा देश के उद्योग-धन्धों की उन्नति करली है और संसार के मुख्य मुख्य स्थानों तथा विलायत की बाजारों में ही उससे प्रतिद्वन्द्विता कर रहे हैं। संरक्षण नीति के अवलम्बन करनेवाले देशों ने विलायत से अधिक उन्नति करली है। युद्धारम्भ के पहले वे विलायत में अधिक माल भेजते थे और उनके यहां विलायत के माल का जाना कम होता चला जाता था। विलायत के कितने ही उद्योग-धन्धों की उन्नति विदेशी प्रतियोगिता के द्वारा रुक गई, यहाँ तक कि पोत-निर्माण-कला (shipping) जो विलायत का राष्ट्रीय उद्योग-धन्धा था, वह भी विदेशियों की पोत-निर्माण-कला के नीचे आगया।

अब यह स्वीकार किया जाने लगा कि विदेशों की इतनी उन्नति का कारण संरक्षण नीति का अवलंबन ही है। उन्होंने इच्छा से इस नीति का अवलम्बन कर यत्न से उसका अनुसरण किया। संरक्षण नीति ने अपना काम कर दिखाया। इसने विदेशी राष्ट्रों की बाजारों से विलायती माल का वहिष्कार किया, निरपेक्ष राष्ट्रों की बाजारों में उसे नीची दर पर बेचवाया और खास उसके देश की बाजारों में भी बेढब धावा मारा।

सन् १९०३ ई० में बरमिंघम की वक्तृता में मि० जोजफ चेम्बरलेन ने कहा था—"जब हम[ारे] देश ने मुक्तद्वार वाणिज्य का अवलम्बन किया तब अवस्था कैसी हुई? विदेशी राष्ट्र उस समय पिछड़े हुए थे और माल नहीं बनाते थे। हमारे देश के बने हुए माल में उन्होंने कर लगा दिया। यह सम्भव है कि पहले पहल उन्हें घाटा सहना पड़ा हो, किन्तु उन्होंने अपने देश के भविष्य तथा भावी पुत्रों की ओर देख ......जिनका समय पर ध्यान रखना चाहि[ये] (हंसी) कर की चहारदिवारी के पीछे उन्होंने अपने उद्योग-धन्धे खास कर उन्हीं २५ वर्षों में सुधारे, जिनमें मुक्तद्वार वाणिज्य से हमारी उन्नति हुई। धीरे धीरे वे राष्ट्र अधिक माल बनाने लगे। उन्होंने क्रमशः अपने बाजारों की कुंजी हाथ में कर ली। हमारे माल का वहिष्कार कर वहां उन्होंने अपने उद्योग-धन्धे फैलाये जिनकी खपत से अपनी बाजारों में सन्तुष्ट हो कर वे हमारी बाजारों पर धावा कर रहे हैं।"

सन् १८८३ ई० में जोजेफ चेम्बरलेन ने मुक्तद्वार वाणिज्य के लिए मैदान साफ किया था। १९०३ में वे चुंगी के सुधारों के पक्षपाती हो गये। संरक्षण नीति से विदेशी राष्ट्रों के उद्योग-धन्धों की उन्नति और मुक्तद्वार वाणिज्य से विलायत के उद्योग-धन्धों की अवनति का [उन] पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने सत्पथ के अवलम्बन के लिए अपना सिद्धान्त बदल दिया। अक्तूबर १९०३ में ग्रीनक की प्रतिकार-विषयक वक्तृता में उन्होंने कहा था:—"आज हम और आप प्रतिकार के पक्ष में हैं, जिसे हमारे प्रतिपक्षी संरक्षण नीति कहते हैं, इससे किसी को ध[...]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न कहना चाहिये कि विभिन्न नीति अवलम्बी-मुकद्वार वाणिज्य व्यवसायी-रहने के कारण यह हमारे लिए अनुचित है। (आनन्दध्वनि) जब गर्मी १०० डिग्री पड़ती है तब मैं बहुत पतले कपड़े पहिनता हूं, किन्तु जब वह घट कर शून्य हो गई तब मेरे पहिनने के लिए क्या रहा (हंसी)। जिन्होंने निःशुल्क वाणिज्य की पीठ ठोंकी थी, जब उसके अवलम्बन करने पर उनकी भविष्यद्वाणी ठीक होती गई तब न तो उस विषय के सोचने और न उसके विषय में सन्देह प्रकट करने का कारण ही रहा और न हमने ऐसा किया। २५ या ३० वर्षों तक विविध उपायों से इसका अवलम्बन किया गया, तब मेरे हृदय में सन्देह नहीं रहा कि यह नीति इस देश के लिए अच्छी है और इस नीति के द्वारा हमारे देश की जैसी उन्नति हुई वैसी और किसी नीति द्वारा न होती। यह सब पचीस वर्षों की बात रही। गत ३० वर्षों में अवस्था बदल गई और मुझे जंचता है, कि न तो उदार और न प्रारम्भिक नीति.........किन्तु उन्मत्त प्रतिघातकारी चुंगी का अवलम्बन करना चाहिये, क्योंकि जब अवस्था बदल गई तब हमारी नीति क्यों न बदले"। विदेशी प्रतियोगिता का विलायती उद्योग-धन्धों पर कैसा प्रभाव पड़ा यह विलायती माल की आमदनी के आंकड़े विभाग के ब्यौरे से विदित होता है। सर रोयर लेथब्रिज का कहना है कि भारत में विलायती माल की आमदनी घटती तथा संरक्षण नीति वालों की शीघ्रता से बढ़ती गई।

मि० लीजस्मिथ विलायती वाणिज्य के अवनति होनेवाले सिद्धान्तों पर विश्वास नहीं करते। उनका कहना है कि जब विदेशी प्रतियोगिता का सूत्रपात हुआ था, तब विलायती माल की आमदनी अधिक थी, इससे ऐसी आशा नहीं की जा सकती कि इतनी अधिक संख्या से प्रारम्भ कर हम भी उसी परिमाण से बढ़ें जैसे कि विदेशी राष्ट्र। वे कहते हैं कि प्रति सैकड़ा का हिसाब मोट के (Amount) साथ किया जाय। आरम्भ में प्रति सैकड़ा वस्तुओं की बाढ़ अधिक हो सकती है, किन्तु जहां प्रति सैकड़ा कम है वहाँ यथार्थ बढ़ती प्रति सैकड़ा जोड़ने से अधिक होगी।

यह सब ठीक मान लेने पर भी मि० लीजस्मिथ यह नहीं समझा सकने कि यहां २० वर्षों में विलायत के कुछ वाणिज्य द्रव्यों की आमदनी क्यों घट गई?

वस्तुएँ	विलायती आमदनी (१८९३-९४)	(१९१३-१४)
घड़ियाँ	३८९००० रु०	३६०००० रु०
रँगनेवाले पदार्थ	१०४५००० "	५५५००० "
लोहे की छड़ें	२३६५००० "	१३२०००० "
रुई के मोजे आदि	८६८००० "	६७१००० "
ऊन के दुशाले	१४४३००० "	७९५००० "
खिलौने	९६५००० "	६१५००० "
रेशमी कपड़े	६३४०००० "	२७७५००० "
दियासलाई	९९०००० "	९०००० "

सन् १९१३-१४ में कुछ वस्तुएं विदेशों से विलायती वस्तुओं से अधिक मूल्य की यहां आई जिनका पता आंकड़े विभाग के ब्यौरे को देखने से लग सकता है। सर रोयर लेथब्रिज का कहना है:—"पहले भारतीय व्यापार के सभी विभागों में हमीं सर्वोच्च थे, अब तो हम किसी में भी नहीं" मुकद्वार वाणिज्य के नियम से विलायत में बाहरी माल की आमद के कारण उसके कई उद्योग-धन्धे रुक गये, इस विषय का लीजस्मिथ विवरण नहीं देते। उन्होंने मि० जोज़ेफ चेम्बरलेन के प्रश्नों का उत्तर ही नहीं दिया। सन् १९०३ में ग्रीनक की वक्तृता में मि० चेम्बरलेन ने कहा था:—"ग्रीनक चीनी के व्यवसाय का प्रधान केन्द्रों में रहा है। हमारे चीनी साफ करने के कितने ही कारखाने थे। इस व्यवसाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बड़ा लाभ होता था, केवल इसीमें नहीं इसके सहायक कारखानों में भी बहुत से देश-वासियों के पेट पलते थे।

पीछे विदेशी प्रतियोगिता का समय आया जिसे सहायता मिलती थी। उसके सामने हमारे व्यापार की न केवल अवनति ही हुई है, किन्तु उसके बहुत ही अच्छे, बहुत ही धनी, बड़े ही उद्यमी आविष्कारकों को छोड़ कर हम लोगों में से शायद ही कोई इस पर अधिकार रख सका हो। जो कुछ हो, इस समय निःशुल्क वाणिज्य की आमद से यह उद्योग-धन्धा नष्ट हो गया और जो उद्योग-धन्धा एक बार नष्ट हो गया उसका उद्धार करना सहज नहीं। कहना तो यह चाहिए कि मुक्तद्वार वाणिज्य के सिद्धान्त की प्रधानता के कारण हमारे समस्त उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। मि० कोबडेन··· और जरूर ही उन्होंने समझ बूझ कर ऐसा कहा होगा······ और ऐसा अनुमान किया जाता था कि यदि उनके सिद्धान्त कार्य में परिणत किये गये, तो देश में एक एकड़ जमीन भी बिना जोती बोई न रहेगी और किसी भी किसान की बुरी अवस्था न रहेगी। मैं यहां किसानों में वक्तृता नहीं देता यदि देता होता तो मि० कोबडेन की आशा में यथार्थ घटनाओं से कितना अन्तर दिखाता। (आनन्द-ध्वनि) हमारे देश के उद्योग-धन्धों में प्रधान खेती का धन्धा पूर्ण रूप से नष्ट हो गया। चीनी गई, रेशम गई, लोहे पर ताक लगी, ऊन पर ताक लगी, रुई भी जायगी। बतलाओ तुम कब तक इसे सहोगे?

उत्तर है कि "अधिक नहीं" विलायत एक न एक रूप में संरक्षण नीति का अवलम्बन करेगा और विलायती राजस्व की प्रथा अब, युद्ध के बाद; इसे अनिवार्य ही कर देगी। युद्ध के पहिले विलायत की कर-विषयक तथा अन्य आमदनी ३०००००००००) थी, और सब की सब खर्च हो जाती थी। युद्ध के समय विलायती कर-विषयक आय में वृद्धि हुई है किन्तु खर्च भी अधिक बढ़ता गया, जिससे उसे हर साल में अधिक रुपया उधार लेना पड़ा। उदाहरणार्थ सन् १९१७-१८ में २६८४७६०००० रुपये की कमी हुई जो उधार लेकर पूरी की गई। मि० बानरला ने अनुमान किया है कि सन् १९१८-१९ में ४४५८२६५५०००) खर्च होगा, जिसमें "कर" से १२६३०७५००००) आयेगा और ३१९५१६००००) उधार लेकर पूरा किया जायगा। विलायत का राष्ट्रीय कर्ज़ युद्ध के पहिले ६४९५३०००००) था। वर्तमान सरकारी साल के अन्त में ११९७००००००००) हो जायगा।

सन् १९१८-१९ में मि० बानरला प्रस्ताव करते हैं कि १२६३०७५००००) (जो युद्ध के पहले की आय के चार गुणे से भी अधिक है) इनकमटैक्स, चिट्ठियों का महसूल, तमाकू और मादक द्रव्यों की चुंगी, दियासलाई, चीनी तथा एक प्रकार का नया विलासिता का "कर" लगा "कर" वसूल किया जाय। यद्यपि चेन्सलर आफ दि एक्सचेकर (खजाने के प्रधान) होने के कारण युद्धारम्भ के पहले साल की भांति "कर" लगाकर रुपया वसूल न करने के कारण मि० पोथैक लारेंस तथा अन्य लोग मि० लायड जार्ज का तिरस्कार करते हैं, किन्तु यह दोष मि० बानरला पर किसी तरह नहीं लग सकता। वर्तमान समय में आय और व्यय की कमी के रुपये उधार लेकर पूरे किये जाने के लिए अधिक टैक्स का कारण युद्ध था। युद्ध के बाद की दशा अब ऐसी न होगी।

मि० पेथिक लारेंस का कहना है कि आज कल काला ऊंचा "कर" लगाने पर भी युद्ध के बाद आय और व्यय बराबर मिलना कठिन ही है। उनकी तर्क का सारांश इस भांति है:—युद्ध के बाद एक वर्ष तक असाधारण फ़ज़ूल खर्च जारी रहेगा। संधि के पश्चात् युद्ध के समय की भांति उस संक्रमण काल में भी विलायत को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उधार लेकर ही अधिकांश खर्च पूरा करना होगा। यदि मान लिया जाय कि युद्ध मार्च १६१८ को बन्द हो गया तो मि० लारेन्स के अनुसार विलायत को मार्च १६१६ के अन्त में १६५०००००००) ऋण लेना होगा। राष्ट्रीय ऋण मार्च १६१६ के अंत में ११६७००००००००) हो जायगा। जिसका व्याज साधारणतः ५२५००००००) होगा। यदि सिंकिंग फण्ड जारी कर दिया जाय और प्रति सैकड़ा एक १) निकाल कर अलग रख दिया जाय तो वार्षिक व्यय १०५००००००) होगा। युद्ध के सिपाहियों आदि को पेंशन ७५००००००) और राष्ट्रीय खर्च, सैनिक तथा असैनिक ४२००००००००) यह सब मिलाकर १६१८–१६ का आनुमानिक व्यय ११६५००००००००) हुआ।

आय के विषय में मि० लारेन्स के अनुसार १६१७–१८ के हिसाब से १६१८–१६ में कर की आय ६३००००००००) होगी।

एक्सेस प्राफिट टैक्स का पूरा व्योरा।

चुंगी तथा आबकारी	१५७५००००००)
मृत्यु का कर (Deathduties)	४५००००००)
आय का तथा अतिरिक्त कर	३३७५००००००)
पोस्ट आफिस	५२५००००००)
अन्य आमदनी	३७५००००००)
कुल जोड़	६३००००००००)

इसमें विलायत के द्वारा मित्रों को दिये गये ऋण का व्याज ७५००००००) जोड़ कर कुल ७०५००००००००) हुआ। आनुमानिक आय और व्यय में ४२००००००००) की कमी है। मि० लारेंस का कहना है कि सदा के लिए ऋण चुकाने के हेतु रुपया इकट्ठा कर लिया जाना चाहिये।

मि० लारेंस की तर्क के लिए यह मान लेते हैं कि, युद्ध ३१ मार्च १६१८ को बन्द हुआ। इसलिए इस बात का ध्यान देकर मि० लारेंस की संख्या को सुधारना होगा। युद्ध ११ नवम्बर १६१८ को बन्द हुआ। यदि सरकारी वर्ष का वही शेष दिन हो, तो ११ नवम्बर १६१६ को राष्ट्रीय ऋण ११६७००००००००) हो जायगा। १६१८–१६ के संक्रमण काल में, अनुमान से राष्ट्रीय ऋण में १५००००००००) और मिल जायगा, इससे ११ नवम्बर १६१६ को राष्ट्रीय ऋण १३४७००००००००) हो जायगा। उसका व्याज ६३७५००००००) और १) प्रति सैकड़ा सिङ्किङ्ग फण्ड १३३५००००००) हो जायगा। युद्ध की पेंशन और सैनिक तथा असैनिक (दूसरा) खर्च सन् १६१८–१६ के लिए मि० लारेंस के अनुमान के अनुसार क्रमागत ७५००००००) और ४२००००००००) होगा। इससे आनुमानिक व्यय १२६६००००००००) हुआ, क्योंकि पेंशन का अनुमान सम्भवतः कम है। १६१८–१६ में पेंशन फण्ड में १५००००००) या २२५००००००) अधिक जोड़ा जा सकता है।

४२००००००००) सैनिक तथा असैनिक साधारण व्यय का अनुमान अधिक या कम है, यह युद्ध के पश्चात् सरकार की चिरस्थायिनी शांति के ऊपर निर्भर है। १६१३–१४ में विलायत ने जल-सेना के लिए ७३३२४५०००) खर्च किया और सन् १६१४–१५ के व्यय का अनुमान ७७३२५००००) हुआ है। जल-सेना का यथार्थ खर्च १६१८–१६ में ७५००००००) से अधिक या कम दोनों हो सकता है। यह संधि परिषद् के परिणामों पर निर्भर है। सन् १६१६ में बचाव के कार्यों में खर्च की कमी या बढ़ती के अनुसार अधिक भेद हो सकता है। 'अतिरिक्त-कर' की आय के सहित मि० बानरला ने आय का अनुमान १२६३०७५००००) किया है। इङ्गलैंड के द्वारा मित्रों के दिये गये ऋण का व्याज ७५००००००) घटाने से, युद्ध के बाद "कर" न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटने पर १२९७५००००००) का खर्च पूरा करने के लिए ७०८००००००००) एक्सेस प्राफिट टैक्स द्वारा वसूल किया जायगा। २५८००००००००) की कमी विलायत कैसे पूरी करेगा, यही समस्या है। जितना 'कर' युद्ध के पहिले देते थे उससे चौगुना तो अभी विलायतवाले दे रहे हैं और युद्ध के पहले की आमदनी का ६५ प्रति सैकड़ा मि० बानरला द्वारा प्रस्तावित 'अतिरिक्त कर' ही है। यदि मूल धन का कोई निश्चित अंश वसूल करनेवाले उपाय का अवलम्बन नहीं किया गया तो वर्तमान 'कर' की अवस्था देखते हुए 'कर-वृद्धि' असम्भव है। ऐसा बताया जाता है कि यह 'कर' गौण होगा और विलायत में आनेवाले माल पर लगेगा। इसके पहले दूसरे देशों ने जो किया है, विलायत भी वही करेगा........। वह विदेशी प्रतियोगिता से अपने उद्योग-धंधे बचाने के लिए तथा आय पाने के लिए संरक्षित नीति का अवलम्बन करेगा। संरक्षण नीति का अवलम्बन करनेवाले बहुत से देशों के कर का इतिहास बतलाता है कि संरक्षित-कर की आमदनी घृणित नहीं कही जा सकता। उदाहरणार्थ, १८७८ की जर्मनी के कर की आय-विषयक नीति के अवलम्बन का कारण उसकी साम्राज्य-सम्बन्धी आय की अवस्था थी। जर्मन साम्राज्य का खर्च दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जाता था। प्रधान कर पहले ही अधिक था, इसलिए आगत माल पर चुंगी लगानेवाले 'कर' वसूल करने के गौण उपाय का अवलम्बन कर खर्च चलाने का बन्दोबस्त किया गया। ऐशली का कहना है:—"संरक्षण नीति के अवलम्बन से कृषि और उद्योग-धंधे दोनों ही चमके हैं, यदि वे अपने आप उन्नति के लिए छोड़ दिये जाते तो उन्नति असम्भव थी। साम्राज्य के लिए संरक्षण कर के अवलम्बन की व्यवस्था की गई उसका यही यथार्थ कारण था।

प्रिन्स बिस्मार्क के कहने से कृषि और उद्योग-धंधों के विषय में सन् १८७८ की नीति के सिद्धान्तों का परिमित अवलम्बन किया गया। इस नीति के कर-विषयक परिणामों के विषय में ऐशली का कहना है:—"साम्राज्य के खजाने के लिए नई चुंगी के नियम लाभदायक हुए हैं। १८७७-७८ में कुल 'कर' की आमदनी १०३७००००० मार्क थी; १८८३-८४ में बढ़कर १८६७००००० मार्क हो गई। अर्थात् प्रति मद् ४.२ बढ़ा। और १८८९-९० में बढ़कर ३५७७०००००० मार्क हो गई अर्थात् प्रति मद् ७.३ बढ़ा। भिन्न २ रियासतों से साम्राज्य के खजाने में १८७८-७९ में ७००००००० मार्क आया, किन्तु १८८२-८३ तक शीघ्रता से घटता गया और फिर 'कर' की आय न केवल पहले कीसी ही रही, बल्कि इस साल में आय इतनी हुई कि वह रियासतों में बांटी जा सकती थी। १८८४-८५ में बांटने के लिए ४१०००००० मार्क एकत्र हुआ। मि० लारेंस ने अनुमान किया है कि 'कर' की आमदनी पर खाद्य और कच्चा माल छोड़कर, १०) प्रति सैकड़ा बढ़ा देने से १५०००००००) अधिक आयेगा। साम्राज्य-वादी साम्राज्य से आनेवाले गेहूं पर =) प्रति कार्टर पर 'कर' लगाने के लिए कहते हैं, किन्तु अंग्रेज़ जो पक्का माल बनाते हैं, कच्चे माल पर कभी 'कर' लगाना सहन नहीं कर सकते। किन्तु तो भी सम्भवतः ऐसे 'कर' के लगाने का बन्दोबस्त हो सकता है जिससे खाद्य और कच्चे माल की आमदनी को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर लगाने से बहुतसी आय हो सकती है।

इसके बाद अधिक समय तक आय से युद्ध का खर्च अधिक लगेगा, इस विषय पर लक्ष्य रख कर, क्या यह सम्भव मालूम होता है कि गौण उपाय के द्वारा चुंगी लगा कर अधिक रुपया वसूल किया जाय?

चुंगी के प्रश्न पर विलायत में मतभेद है। कुछ लोग ऐसे हैं जो व्यवसाय को विदेशी प्रतियोगिता से बचाने तथा साम्राज्य के व्यवसाय के प्रोत्साहन के लिए संरक्षित चुंगी लगाने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोर देते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो समझते हैं कि विदेशियों के विरुद्ध संरक्षण नीति के अवलम्बन से विलायत को लाभ के बदले हानि ही होगी। उदाहरणार्थ, इकानोमिष्ट (Economist) पत्रने 'The Budget and tariff reform' नामक लेख में १ अप्रैल १९१६ को लिखा था :--"युद्ध शेष होने पर विलायत को पहले की अपेक्षा निःशुल्क वाणिज्य की अधिक आवश्यकता है, अभी हमें स्मरण रखना है कि युद्ध करने के पश्चात वर्षों हमें युद्ध के कर्ज़ को सहन करना होगा। इस लिए हमारे पूर्व पुरुषों ने बड़ा घोर युद्ध कर घटती को दूर करने के लिये 'संरक्षित कर' के कण्टकों को दूर कर दिया......यूरोप का अब दिवाला निकलने वाला है और...... युद्ध के बाद इस देश को उस विलायती, विदेशी और औपनिवेशिक व्यापार की पहले कीसी आवश्यकता इसलिए होगी कि युद्ध के बाद विलायत का युद्ध-कर्ज़ तथा पेंशन का असाधारण खर्च विना कठिनाई और झंझट के पूरा पड़ जाय।" किन्तु यह दिखाने की आवश्यकता है कि जिस समस्या को विलायत युद्ध के बाद हल करने वाला है वह उससे भिन्न है जिसका सामना अंग्रेज़ों के पूर्व पुरुषों को करना पड़ा था।

नेपोलियन के युद्धों के समय और उन युद्धों के बाद ५० वर्षों तक के समय में विशेष कर विलायत सर्व प्रधान पक्का माल बनानेवाला देश रहा है। संरक्षण के द्वारा उसके राष्ट्रीय उद्योग-धन्धे रुक गये थे। वह एक ओर तो सस्ता भोजन चाहता था और दूसरी ओर चाहता था पक्का माल बेचने के लिये विदेशों की बड़ी बड़ी बाजारें। मुक्तद्वार वाणिज्य के द्वारा उसने दोनों पाये। इसमें कोई आश्चर्य भी नहीं कि नेपोलियन के समय की घटती उसने "संरक्षित कर" के कष्ट को दूर कर के पूरी की हो किन्तु यह ऊपर दिखाया जा चुका है कि प्रधानतः निःशुल्क वाणिज्य के द्वारा बीसवीं सदी में उसके उद्योग-धन्धों का विनाश अधिक हुआ। तिस पर युद्ध के बाद उसे युद्ध 'कर' का भारी बोझ उठाना होगा। और 'सरक्षित कर' लगा कर बोझ हलका करने का प्रलोभन कुछ अंशों में अनिवार्य होगा जिससे साथ ही साथ विलायत के प्रधान उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन मिलेगा और वे पुनरुज्जीवित हो जांयगे। इस तरह युद्ध के बाद ऐसा सम्भव हो सकता है कि विलायत जिसने ७५ वर्ष तक निःशुल्क वाणिज्य का पक्ष समर्थन किया। (क्योंकि वह उसके स्वार्थों के अनुकूल था) अब मुक्त-द्वार वाणिज्य को स्वार्थों के अनुकूल होने के कारण, विसर्जन कर सकता है।

स्वभाग्य-निर्णय।

[लेखक—श्रीयुत कृष्णाविहारी मिश्र बी० ए० ।]

जगत इच्छक हे दयामय नेक देहु निहार।
द्विरद भारत दसा दुख मय तुरत करहु उधार।
घोर अगम अगाध दीसत नहीं कोउ उपचार।
फँसो हहरत विकट सर तट प्रघट सासन भार।

ग्राह कठिन कराल व्यूरोक्रैसि शक्ति अपार।
अहह ऊबन चहत डूबन करहु वेगि सुधार।
वाहु आतम सुभाग्य निरनय अभय कोमल धार।
धरम सरसिज सुरभि सरसत होय सुलभ उबार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोटों की वृद्धि और मँहगी।

[लेखक-श्रीयुत कृष्णा-सीताराम पेंढरकर।]

आजकल चारो ओर यह चिल्लपुकार मची है कि नोटों की बहुत वृद्धि हो जाने से उनके विनिमय में बाज़ारों में रुपये नहीं मिलते और यदि मिलते भी हैं तो बट्टा बहुत अधिक देना पड़ता है। इससे लोगों को बहुत हानि उठानी पड़ती है। कुछ दिन पहिले मध्यप्रान्त में यह चिल्लाहट ज़ोरों से मची थी, परन्तु अब सरकार की ओर से वहां रुपये मिलने का प्रवन्ध हो जाने से यह चिल्लाहट बहुत कुछ कम हो गई है। परन्तु अब यह कठिनाई बम्बई प्रान्त, विशेषतः बम्बई नगरी में उपस्थित हुई है, क्योंकि वहां के करेन्सी आफ़िस तक में आजकल नोटों के रुपये नहीं मिलते। वहां नोट के रुपये भुनानेवालों की रोज ऐसी भीड़ हुआ करती है कि प्रवन्ध के लिए सरकार को विशेष पुलीस रखनी पड़ी है। जब बम्बई नगर ही का यह हाल है तो पाठक अन्य स्थानों की कठिनाई का अन्दाज़ा सहज ही लगा सकते हैं। सरकारी खज़ानों, पोस्ट आफ़िसों और बंकों की शाखाओं में, जहां जहां सरकार को रुपये देने पड़ते हैं, वहां नोटों के बण्डलों ही से काम लिया जाता है, माँगने पर भी लोगों को रुपये नहीं दिये जाते।

१) और २॥) के नोटों को जारी करने के समय सरकार की ओर से कहा गया था कि किसी भी सरकारी खज़ाने से इनके रुपये मिल सकेंगे और पोस्ट आफ़िस से एक दिन में कोई भी मनुष्य नोटों के बदले ५) रुपये नक़द पा सकेगा। इसीसे देश में १) और २॥) के नोटों का प्रसार बिना विघ्न-बाधा के हुआ; परन्तु अब यह बात बिलकुल स्वप्नवत् हो गई है और बम्बई के करेन्सी आफ़िस को छोड़ अन्य किसी आफ़िस या बाज़ार में दावे के साथ नोटों के बदले रुपये नहीं मांगे जा सकते। इससे कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों और पेन्शनरों को नोट भुनाने में बट्टे के रूप में बहुत हानि उठानी पड़ती है। इस तरह बहुत से लोगों की व्यर्थ में हानि होती है और सरकार की ओर से जबरन नोटों का प्रचार करने की चेष्टा होने के कारण मँहगी भी दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है, अर्थात् जैसे २ सरकार अधिकता से नोटों का प्रसार कर रही है, वैसे ही वैसे बट्टा देने और मँहगी के रूप में लोगों को दोहरी हानि उठानी पड़ रही है। नोटों की वृद्धि बेअन्दाज़ होने और उनके विनिमय में रुपये मिलने में कठिनाई होने के कारण, उन लोगों को बहुत हानि उठानी पड़ रही है, जिन्हें वेतन में सिर्फ नोट ही मिलते हैं। नोटों की वृद्धि से मँहगी की वृद्धि कैसे होती है, यह समझना बट्टे से होनेवाली हानि की तरह सुलभ नहीं है, इसलिए नीचे उसका सविस्तर वर्णन दिया जाता है।

७ वर्ष के पहिले सरकार ने यह जांच करने के लिए एक बंगाली अफ़सर को नियुक्त किया था कि भारत में मँहगी क्यों बढ़ रही है? उन्होंने अंकों से यह सिद्ध करने की खूब चेष्टा की कि रुपयों और नोटों की वृद्धि से मंहगी का कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु यह सम्बन्ध इतना घना और स्वाभाविक है कि यदि इस तरह के १० रिपोर्ट भी लिखे जायँ तो भी वह असत्य प्रमाणित नहीं किया जा सकता। यूरोपीय महायुद्ध आरम्भ होने के बाद दो वर्ष तक मँहगी की वृद्धि उल्लेख योग्य नहीं हुई, परन्तु उसके बाद यह बहुत अधिक बढ़ गई। यदि अब भी सरकार नोटों का प्रचार इसी तरह करती जाय तो मँहगी की वृद्धि इसी तरह होती जायगी। करांची के मि॰ मेकेनी ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी पुस्तक "High prices" में गणित शास्त्र के प्रमाणों से यह प्रमाणित किया है कि सिर्फ महायुद्ध से नहीं किन्तु;

नोटों की वृद्धि

ही से देश में सब चीजें महंगी हो गई हैं। यदि लेनदेन बढ़ता है तो रुपयों या नोटों की अधिक आवश्यकता होती है और यदि हर-साल उसी हिसाब से रुपयों या नोटों की वृद्धि होती जाय तो बाज़ार दर पर इसका असर नहीं पड़ता। परन्तु लेनदेन में वृद्धि न होने पर भी यदि बाज़ार में रुपयों और नोटों की वृद्धि हो और उनको घटाने का कोई उपयुक्त साधन न हो तो मंहगी का बढ़ना स्वाभाविक ही है। सन् १८९३ ई० तक टकसालों में चाँदी देकर रुपये ढला लिये जासकते थे और घर पर रुपयों को गला कर चांदी बनाई जासकती थी, इस लिए बाज़ारों में सिक्कों की अधिक वृद्धि नहीं हो पाई थी। यदि बाज़ार में रुपये अधिक होते थे, तो लोग गलाकर उन्हें कम कर देते थे, परन्तु जिस दिन से रुपये का स्वाभाविक मूल्य नष्ट होकर उसका कृत्रिम मूल्य निर्द्धारित हुआ, उसी दिन से रुपयों की तादाद घटाने का यह सरल मार्ग नष्ट होगया। कृत्रिम रुपयों की अधिकता से बाज़ार में सिक्कों की इतनी वृद्धि होगई कि मंहगी की मार से लोग जर्जर हो गये और सरकार को नये रुपये ढालने का काम स्थगित रखना पड़ा।

महायुद्ध आरम्भ होने के पहिले नोटों के सम्बन्ध में यह प्रबन्ध था कि प्रचलित नोटों की तादाद कितनी ही क्यों न बढ़े, परन्तु १४ करोड़ रुपये मूल्य के नोटों को छोड़ कर अन्य नोटों के मूल्य की रकम खज़ाने में जमा रखनी पड़ती थी। इसका फल यह होता था कि नोटों की वृद्धि कितनी ही अधिक क्यों न हो, उसके बदले उतने ही सिक्के या चांदी खज़ाने में जमा रखनी पड़ती थी, और इस तरह बाज़ार में प्रचलित सिक्कों का परिमाण बढ़ता न था जिससे मंहगी भी नहीं बढ़ती थी। परन्तु महायुद्ध के निमित्त सरकार ने वह नियम भी रद्द कर दिया और बाज़ार पर नोटों तथा सिक्कों की दोहरी मार पड़ने लगी। ऐसी दशा में यदि सब वस्तुओं का दाम बढ़ने लगा तो आश्चर्य ही क्या है?

सन् १८९३ ई० के बाद से नोटों और कृत्रिम रुपयों की वृद्धि से बाज़ारों में प्रचलित सिक्कों की कैसी वृद्धि हुई, और बाज़ार,दर पर उसका प्रभाव पड़कर मंहगी कैसी बढ़ी, इसका हाल नीचे दिये हुए अंकों से मालूम होगाः—

ये अङ्क लाख रुपये के हैं।

सन्	चांदी के सिक्के	रक्षित धन के सिवा नोट	मँहगी वृद्धि फी सैकड़े
१८९२	१२,०००	८००	१००
१८९३	११,४००	८००	९६
१८९४	१०,७००	८००	८५
१८९५	११,०००	८००	८९
१८९६	१०,६००	१०००	९९
१८९७	१०,५००	१०००	१२०
१८९८	१०,०००	१३००	१०८
१८९९	१०,७००	२४००	१०७
१९००	११,१००	२१७०	१२६
१९०१	१२,६००	२१००	१२०
१९०२	११,६००	२५००	११५
१९०३	११,७००	२६००	१११
१९०४	१२,१००	२८००	११०
१९०५	१२,८००	३१००	१२०
१९०६	१४,६००	३३००	१२५
१९०७	१५,५००	२२००	१३८
१९०८	१४,५००	१४००	१४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्	चांदी के सिक्के	रक्षित धन को सिवा नोट	मँहगी वृद्धि फी सैकड़े
१९०९	१५,७००	२५००	१३८
१९१०	१५,९००	२६००	१३५
१९११	१६,२००	४६००	१४६
१९१२	१६,३००	५३००	१४७
१९१३	१७,९००	५१६२	
१९१४	१८,३००	५१५५	
१९१५	१८,४५०	५००४	
१९१६	२०,५००	४८४६	
१९१७	२३,१५०	६१४८	
१९१८	२४,०००	९२५०	

ऊपर के अंकों से यह दिखाई देगा कि जिस वर्ष नोटों या प्रचलित सिक्कों की वृद्धि हुई है, उस वर्ष या उसके अगले वर्ष मंहगी की वृद्धि हुई है। १८९७ और १९०० की मंहगी अकाल के कारण थी, इसलिए यदि उन वर्षों का हिसाब छोड़ दिया जाय तो दिखाई देगा कि १८८२ ई० से १८९९ ई० तक नोटों या सिक्कों की वृद्धि न होने से मंहगी भी नहीं बढ़ी। १९०५ से १९०८ तक सिक्कों और नोटों की वृद्धि होने से मंहगी भी बहुत अधिक बढ़ गई। इससे ३ वर्ष तक सरकार ने सिक्कों और नोटों का बनाना छोड़ दिया, जिससे बढ़ने वाली मंहगी भी कम होने लगी। १९१३ ई० से फिर अधिक रुपयों की ढलाई होने लगी; जिससे फिर मंहगी बढ़ने लगी। इसके बाद महायुद्ध के पहिले दो वर्षों में सिक्कों की विशेष वृद्धि नहीं हुई, परन्तु विगत दो वर्षों में सिक्कों और नोटों का परिमाण बहुत अधिक बढ़ गया और मंहगी भी कल्पनातीत बढ़ गई। १९१३ के बाद मंहगी की वृद्धि का हिसाब सरकारी ब्योरे में नहीं दिया गया है, परन्तु इसकी वृद्धि का पता पाठक स्वयं लगा सकते हैं।

वर्तमान मंहगी को कम करने के लिए आवश्यकता है कि सरकार परदेश से आने-वाले सोने, चांदी, की आमद पर की रुकावट को दूर कर दे। इसके लिए यह प्रबन्ध भी होना चाहिये कि टकसालों में चांदी और सोना लेकर बाहरी लोगों को रुपये ढाल दिये जायँ। अभी कुछ दिन तक सरकार स्वयं चांदी ख़रीद कर रुपये न ढलायें और नोटों की संख्या कम करने के लिए कुछ दिनों तक उसे नये नोटों का निकालना बन्द कर के सरकारी ख़ज़ानों से नोटों के बदले रुपये मिलने का प्रबन्ध कर देना चाहिये। इसके सिवा मँहगी को कम करने के लिए चांदी सोने के सिक्कों को गलाने की मनाही भी रद्द कर देनी चाहिये। यदि ऐसा प्रबन्ध न किया गया तो वर्तमान मँहगी कम होने के बदले बढ़ती ही जायगी और निर्द्धारित वेतन पानेवाले कर्मचारियों और मज़दूरों की हानि हो जायगी। इसका फल यह होगा कि आजकल वेतन बढ़ाने के लिए जैसी हड़तालें हो रही हैं, वैसी ही हड़तालें भारत के भिन्न २ स्थानों में अधिकता से होने लगेंगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार-संकट।

[लेखक—पं० कृष्णाकान्त मालवीय ।]

"अगर फुर्सत मिली हो स्वर्थ की बातों को सुनने से।
धरम की बात भी सुन लीजिये सरकार थोड़ी सी॥"

पाठकों! इसके पहले कि वर्तमान राष्ट्रों की आप देखभाल करें हम यह चाहते हैं कि पुराने इतिहास पर भी आप एक नज़र डाल लें क्योंकि जैसा कि विद्वानों का मत है हमको यह दिखाई पड़ रहा है कि यूरोप का इतिहास अपने को दोहरा रहा है। आप इस समय देख रहे हैं कि पेरिस में सन्धि-परिषद् के अधिवेशन हो रहे हैं, राष्ट्र-संघ का निर्माण हो रहा है, राष्ट्र इस प्रयत्न में लीन हैं कि भविष्य में युद्ध रोका जाय और संसार से युद्ध का नामोनिशान मिट जाय। इतिहास के पृष्ठों को उलट कर देखने से ऐसी घटनाएँ पूर्व काल में भी होती हुई दिखाई देती हैं। उस समय में संसार के रङ्ग-मंच पर

फ्रांस का दौरदौरा

था, उस समय जर्मनी या क़ैसर का पता न था, लोग नेपोलियन और फ्रांस का नाम लेकर सुबह और शाम उठते बैठते थे। यूरोप में फ्रांस का झंडा फहरा रहा था और नेपोलियन के नाम से राजाओं का मुकुट और सिंहासन हिल जाता था। इङ्गलैंड, जर्मनी, रूस और आस्ट्रिया को पैर बढ़ाने को संसार में ठौर नहीं मिलता था। उस समय फ्रांस की वही दशा थी जो जर्मनी की १६००-१४ में थी। जिस तरह इस काल में जर्मन लोगों का यह खयाल था कि—"क़ैसर प्रशिया का प्रधान है, प्रशिया जर्मनी का, जर्मनी संसार का शिरोमुकुट है और इस दुनिया में कोई बात बिना जर्मनी और क़ैसर के हस्तक्षेप के तय नहीं होनी चाहिये, उसी तरह से नेपोलियन के समय में फ्रांस निवासियों का यह ख्याल था कि फ्रांस संसार की किस्मत का विधाता है। जिस तरह से बढ़ती हुई जर्मन जनता के निवास-स्थान की जर्मनी को चिन्ता थी उसी तरह उस समय फ्रांस को अपनी बढ़ती हुई जनता के लिए उपनिवेशों की आवश्यकता थी। तात्पर्य यह कि फ्रांस यूरोप का शिरोमुकुट था और नेपोलियन के इशारे से यूरोप के राष्ट्र चलते थे। किन्तु

फ्रांस का पतन

हुआ। इङ्गलैंड, जर्मनी, रूस और आस्ट्रिया ने मिलकर फ्रांस को कुचला। घटना इस प्रकार घटित हुई। नेपोलियन संसार का शासक होना चाहता था। यूरोप में जो कोई सर उठाता उसे वह कुचल देता। इङ्गलैंड राजनीति में सदा से कुशल रहा है। प्रधान सचिव "पिट" ने रूस और आस्ट्रिया को अपनी ओर मिलाया। नेपोलियन से यह छिपा न रह सका। उसने

आस्ट्रिया पर वार

तुरन्त किया। आस्ट्रिया की प्रधान सेना को उसने क़ैद कर लिया और शीघ्र ही दिसम्बर १८०५ में उसने रूस और आस्ट्रिया की सम्मिलित सेना को परास्त किया। इससे "पिट" को बहुत व्यथा पहुंची और उनकी मृत्यु हो गई। इसके बाद हालैंड और नेपिल्स के राज्यों पर अधिकार कर नेपोलियन ने जर्मनी पर चढ़ाई कर दी। कुछ सप्ताहों में ही जर्मन सेना नष्टभ्रष्ट हो गई, जर्मनी के प्रायः समस्त प्रधान किलों पर फ्रांस का झंडा फहराने लगा। इसके बाद नेपोलियन ने रूसी सेना को सर किया।

इङ्गलैंड को धक्का

पहुंचाने को नेपोलियन ने बर्लिन (Berlin Decrees) और मिलन (Milan Decrees) की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञप्तियों की घोषणा की। इनका अर्थ यह था कि यूरोप के राष्ट्र इङ्गलैंड से किसी प्रकार का व्यापारिक सम्बन्ध न रक्खें। (कुछ ऐसा ही इस समय मित्र राष्ट्रवाले जर्मनी के व्यापार के सम्बन्ध में करना चाहते हैं) पोर्तुगाल के राष्ट्र ने इन विज्ञप्तियों की अवहेलना की, नेपोलियन ने उसे भी खासी शिक्षा दी और अपने भाई को वहां का राजा बना दिया। नेपोलियन की शक्ति को बढ़ते देख यूरोप के राष्ट्र चौंके, फिर आपस में धीरे धीरे सन्धि स्थापित हुई। इङ्गलैंड ने फ्रेंच सेना से लड़ने के लिए स्पेन पर चढ़ाई की, आस्ट्रिया दक्षिण जर्मनी में फ्रांस पर हमला करने को उठा और अप्रेल, १८०९ से १४ तक युद्ध जारी रहा। एक ओर अंग्रेज़ी फ़ौज वेलिङ्गटन के नेतृत्व में विजय प्राप्त कर रही थी, दूसरी ओर नेपोलियन आस्ट्रिया को कुचल रहा था। इसी समय

रूस क्षेत्र में आया।

रूस-इङ्गलैंड से व्यापार जारी रखना चाहता था, यह नेपोलियन को असह्य था। उसने रूस पर चढ़ाई कर दी। सेना चढ़ गई किन्तु रूस की विस्तृत भूमि के बर्फिस्तान में वह करती क्या? भोजन-वसन की सामग्री कहीं नहीं मिली और सेना को विवश हो लौटना पड़ा। नेपोलियन के

पतन का प्रथम चिह्न

यह था। पहिले ही बार उसकी सेना अपने उद्देश्य में असफल हुई थी। इसी समय में उत्तरीय जर्मनी की फ्रेंच प्रजा ने बग़ावत का झंडा उठाया। नेपोलियन को स्पेन से सेना इधर बुलानी पड़ी। वेलिङ्गटन को मौक़ा मिला और उसने फ्रेंच सेना को नीचा दिखाया। इसी समय पर जर्मन, आस्ट्रियन और रूसी सेना ने मिलकर आक्रमण किया।

नेपोलियन का सितारा

नीचा हुआ। लेपज़िग में हारकर नेपोलियन फ्रांस की ओर हटा और मित्रदल की सेना पेरिस पर चढ़ गई। नेपोलियन सिंहासन से उतारा गया, लुई अठारहवां फ्रांस का राजा बनाया गया और नेपोलियन एलबा द्वीप में निर्वासित किया गया। यूरोप शान्त हुआ, राष्ट्र सेना कम करने का स्वप्न देखने लगे और इस विचार में लीन हुए कि युद्ध भविष्य में बन्द किया जाय। जिस तरह आज दिन पेरिस में उसी तरह उन दिनों

वियना में सन्धि-परिषद्

बैठी थी। फ्रांस के नष्ट-भ्रष्ट होने की लालसा सब के हृदयों में थी किन्तु किसी ने कभी स्वप्न में भी यह नहीं देखा था कि उसका पतन होगा। जैसी आज जर्मनी की दशा है उससे भी गई गुज़री दशा उस समय फ्रांस की थी। आज के समान जर्मनी के नहीं वरन्

फ्रांस के उपनिवेशों

को बांटने को, उसके माल से मालामाल होने को, मृत शरीर से रक्त चूसने को और उसकी हड्डियों को बुकनी करने को राष्ट्रों के प्रतिनिधि सितम्बर १८१४ में वियना में एकत्रित हुए। इङ्गलैंड था, जर्मनी था, रूस था, आस्ट्रिया था और छोटे मोटे राष्ट्रों के कितने ही प्रतिनिधि थे। बिलकुल जैसा इस समय हो रहा है वही सामान था। परिषद् का अधिवेशन १४ सितम्बर से १५ जून तक होता रहा। फ्रांस से प्रायः सब कुछ छिन गया। लूट में सीलोन, मारिशस, माल्टा, केपकालोनी, हेलीगोलैंड (द० एफ्रिका) इङ्गलैंड को मिला, उत्तरीय इटली आस्ट्रिया को, रूस को पोलैंड और जर्मनी को सेक्सनी और राइन प्रदेश मिले। यह प्रत्यक्ष माल था। परिषद् का अधिवेशन हो ही रहा था कि एलबा द्वीप से

नेपोलियन निकल भागा,

फ्रांस में पैर रखते ही वह फिर राजा हो गया। किन्तु यह राज्य केवल सौ दिनों तक चला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्र-सेना ने चारों ओर से चढ़ाई कर दी और १८१५ में वाटरलू में वेलिङ्गटन ने नहीं, जैसा कि स्कूली पुस्तकों में हम पढ़ते हैं, वरन् जर्मन जनरल ब्लूचर ने नेपोलियन को ज़मीन से मिला दिया। फ्रेंच सेना भाग खड़ी हुई और नेपोलियन पेरिस को भागा। मित्र-दल की सेना पेरिस तक चढ़ गई और क़ैसर की भांति नेपोलियन को प्राण बचाकर अपने राज्य से भागना पड़ा। समुद्र के किनारे पर नेपोलियन एक ब्रिटिश जहाज़ पर गया और क़ैद हो गया। जिस तरह आज क़ैसर को दंड दो, फांसी दो, क़ैद करो" का बाज़ार गर्म है उसी तरह से उस समय में हुआ और नेपोलियन सेंट हेलिना के द्वीप में बन्दी बनाया गया। इस लेख के संबंध के लिए इतिहास के इतने पृष्ठ काफी हैं किन्तु इनके साथ हम यह भी कह देना चाहते हैं कि पाठक यह न समझें कि उस समय में सन्धि-परिषद् का ही अधिवेशन हुआ था, बटवारा ही हुआ था और राष्ट्र-संघ या राष्ट्रों की पंचायत नहीं हुई जिसका उद्देश्य भविष्य में युद्धों का मिटाना होता। जैसे आज कल राष्ट्र-संघ का संगठन हो रहा है उसी प्रकार से उस समय में राष्ट्र-संघ से भी अच्छे

पवित्र-सन्धि (Holy alliance)

के नाम से राष्ट्रों की पंचायत हुई थी। वाटरलू के युद्ध के बाद ही रूस, आस्ट्रिया, जर्मनी आदि ने मिलकर पवित्र-संघ स्थापित किया था। इसका उद्देश्य परस्पर रक्षा और फ्रांस के सिंहासन पर नेपोलियन-वंश के किसी मनुष्य को न बैठने देना था। आज दिन इसी प्रकार यूरोप में Hohenzallern क़ैसर के घराने के प्रति ऐसी ही घृणा प्रकट की जा रही है और कहा जा रहा है कि उस घराने का कोई मनुष्य जर्मनी के सिंहासन को सुशोभित न करे। यह सब हुआ किन्तु सन्धि-परिषद् और

रा[ष्ट्र]-संघ व्यर्थ हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रबन्ध और लूट खसोट ऐसी हुई थी कि वह स्थायी नहीं रह सकती थी। अन्याय और अत्याचार के कारण संसार ने करवट ज़रूर बदला था किन्तु वह कढ़ाई से निकलकर भट्ठे में गिर पड़ा। ऐतिहासिकों की राय में १८१५ का पवित्र-संघ १७८६ के संघ से किसी बात में अच्छा न था और उसका फल संसार को शीघ्र ही भोगना पड़ा। फ्रांस ने राजा की वंशपरम्परा को ताक पर रक्खा, हालैण्ड, बेल्जियम अलग अलग हुए। यूनान टर्की से छूटा, और टर्की का अङ्गभङ्ग आरम्भ हुआ। इटली और पोलैंड में राष्ट्रीयता को सफलता प्राप्त नहीं हुई, वे फिर गुलाम हो रह गये, स्पेन में गड़बड़ मची रही। इतना ही नहीं १५ वर्ष बाद ही वियना कांग्रेस और

पवित्र-संघ नष्ट हो गया।

१८३० में मित्रों की मित्रता काफ़ूर हो गई, समझौता सब दूर हो गया और मनमानी शुरू हो गई। १८५५ से १८११ तक का यूरोपीय इतिहास विचित्रताओं और महत्वाकांक्षाओं का घर है। प्रजा ने प्रजातंत्र का पाठ पढ़ना आरम्भ किया। इङ्गलैंड में (मेनचेस्टर में) एक प्रजातंत्रवादी का व्याख्यान सुनने को लोग एकत्रित हुए थे। फ़ौज ने सभा को भङ्ग करना चाहा। सरकारी हुक्म से सुननेवालों पर सेना टूट पड़ी कितने ही मरे और घायल हुए। प्रजा ने मंत्रि-मंडल से बदला लेने को समस्त मंत्रियों को एकदम से संसार से उठा देने का निश्चय किया। यह छिपा न रहा और लोगों को फांसी हुई। उत्तरीय इङ्गलैंड और स्काटलैंड में इधर उधर बलवे होने लगे। कृषकों में जागृति हुई। प्रजा ने अपना स्वत्व मांगना शुरू किया और सुधार बिल पास हुआ। फ्रांस में भी गड़बड़ आरम्भ हुई, नेपोलियन तीसरा राजा बन बैठा। जर्मनी में भी बलवे होने लगे और रूस ने टर्की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को त्रस्त करना आरम्भ किया। ज़ार निकोलस ने बैठे बिठाये एक बहाना ले

टर्की पर चढ़ाई

कर दी और उसके दो प्रदेशों पर कब्ज़ा कर लिया। इङ्गलैंड टर्की की मदद को या बढ़ती हुई रूस की शक्ति को कम करने को तैयार हुआ। फ्रांस ने भी टर्की की बांह गही। फल यह हुआ कि मार्च १८५४ में इङ्गलैंड और फ्रांस ने रूस से युद्ध ठान लिया। पुराना शत्रु फ्रांस मित्र हो गया और पुराना मित्र रूस शत्रु हो गया। इटली कुछ ही समय बाद स्वतंत्र हो गया दूसरी ओर जर्मनी के बिस्मार्क विधाता ने जर्मनी को धीरे धीरे आगे बढ़ाना शुरू किया। कुछ ही समय में आस्ट्रिया, फ्रांस, रूस को अपनी कूटनीति से नीचा दिखा कर तथा वश में कर

जर्मनी रङ्ग-मञ्च पर आया

और संसार को भीषण महाभारत देखना पड़ा। क्यों? क्योंकि वियना की कांग्रेस और पवित्र-संघ ने अन्याय की दीवारें उठाई थीं। सन्धि-परिषद् में राष्ट्रों ने लूट से अपना घर भरा था, उन्होंने फ्रांस का नष्टभ्रष्ट कर उसके उपनिवेश छीने थे, फ्रांस की परिषद् में कोई सुनवाई नहीं हुई थी, समस्त राष्ट्र स्वार्थ से अंधे हो रहे थे और सब को साम्राज्य-विस्तार की लालसा सब से परे थी।

भूमि की भूख

मदिरा के नशे की भांति शान्त नहीं होती, मद जितना पिया जाय, इच्छा और पिपासा उतनी ही और बढ़ती है। यह शान्त होनेवाली नहीं और शरीर के नष्ट होने पर ही शान्त होती है। भूमि की भूख की ज्वाला भी जब तक शरीर को भस्मीभूत नहीं कर लेती, बढ़ती ही जाती है और शान्त होना नहीं जानती। उस समय का बटवारा न्याय पर नहीं स्थित था, अपने अपने मतलब के प्रदेशों को लोगों ने धर दबाया था, फ्रांस की पूछ नहीं थी और जिसके हाथ लाठी थी उसकी जय थी। न्याय का कहीं नाम न था, एक राष्ट्र की प्रजा भेड़ बकरी की भांति दूसरे राष्ट्र की प्रजा बना दी गई थी। उस समय फ्रांस की दशा आज के जर्मनी की दशा से कहीं हीन थी। राजसत्तावादी और प्रजातंत्रवादी खून की नदियां बहा रहे थे। फ्रांस में कम्यून (म्यूनिसिपैलिटियां) का राज्य था, सभी शहर स्वतन्त्र शासन कर रहे थे। भीषण मारकाट और रक्तपात जारी था। किन्तु १८७१ का फ्रांस जागा। उसने शक्ति का संचय किया और आज वह जर्मनी को उसी दशा में देख रहा है जिस दशा में कि वह था। सन्धि-परिषद् को इन इतिहास के पृष्ठों को अपने सामने रखना चाहिये और इनसे सबक लेना चाहिये। सन्धि-परिषद् विकृत रूप से चल रही है। भूमि की भूख की ज्वाला से सम्मिलित राष्ट्र जल रहे हैं और दूसरों की भूमि, दूसरों के अधिकारों को पददलित करके ही वे उसे शांत करना चाहते हैं। भूख इस प्रकार न शान्त हुई है और न हो सकती है। जर्मनी पंचायत में नहीं है। जिसकी भृकुटी से संसार के राष्ट्र हिल जाते थे, जिसकी कनखियों के इशारे के सहारे से संसार के राजनीतिज्ञ अपनी चालें चलते थे, राष्ट्रों की पंचायत में जिसकी हां में हां मिलाते लोगों की ज़बान नहीं थकती थी वह आज राष्ट्रों की पंचायत से बहिष्कृत है। क्यों? इसलिए नहीं कि न्याय हो रहा है बरन इसलिए कि अब वह १८१५ के फ्रांस की भांति शक्ति-हीन है, उसके घर में झगड़ा चल रहा है और हुंकार की उसमें शक्ति नहीं।

क़ैसर को दंड

देने, उसे क़ैद करने की चर्चा का बाज़ार गर्म है, यह नेपोलियन के साथ भी हुआ था किन्तु नेपोलियन के न होते हुए भी फ्रांस बलवान हुआ और अपने शत्रु से उसने बदला लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रराष्ट्र कैसर का अपमान नहीं कर रहे हैं, कैसर से संसार से कोई मतलब नहीं किन्तु जर्मन जाति संसार में रहेगी, जर्मन लड़के इतिहासों में आज की घटनाओं को पढ़ेंगे और मनुष्यों की भांति वे इस अपमान का बदला चाहेंगे। सन् १८६३ में भी फ्रांस राइन (Left Bank of the Rhine) के पश्चिमीय प्रदेशों पर कब्ज़ा चाहता था आज उसको यह लालसा फिर प्रबल हो गई है और जर्मनी से इसका अलग होना उसी तरह जर्मनी को खटकेगा जिस तरह से अलसेसलोरेन आज तक फ्रांस को खटकता रहा। जर्मन जनता भी विभाजित नहीं की जा सकती, आस्ट्रिया हंगरी के जर्मन-निवासी भी यों न पड़े रहेंगे। यदि खून का कोई सम्बन्ध है, यदि जातीयता का कोई भाव है, यदि राष्ट्रीयता का कोई जोश है जो सब तरह के कष्टों के सहने के लिए मनुष्यों को प्रसन्नता से तैयार कर देता है तो जर्मन राष्ट्र इस समय से भी प्रबलशाली राष्ट्र होकर उदित होगा और संसार को उसका सामना करना होगा। सुनते हैं पोलैंड को बन्दरगाह देने को जर्मनी का बन्दरगाह उससे छीना जायगा, क्या जर्मन राष्ट्र इसे सहन करेगा? जर्मनी के उपनिवेश भी छीने जा रहे हैं। न्याय के लिए? नहीं नहीं, दूसरे राष्ट्रों की भूमि-पिपासा की शान्ति के लिए। फ्रांस, इटली, दक्षिण एफ्रिका, आस्ट्रेलिया, जापान, यूनान और भारत सभी अधिकार प्राप्ति के लिए पागल हो रहे हैं, इससे शान्ति नहीं स्थापित हो सकती।

टर्की का भी अङ्ग-भङ्ग

हो रहा है। १८७७ से रूस कुस्तुनतुनियां पर कब्ज़ा चाहता था। यूरोप में टर्की का होना यूरोपीय राष्ट्रों को बहुत दिनों से खटक रहा है। पीटर दि ग्रेट ने अपने वंशजों के लिए अपने बिल में ही लिख दिया था कि टर्की के प्रदेशों पर बिना कब्ज़ा किये रूस की वृद्धि नहीं। इटली से लड़ाई हुई तब भी किसी ने टर्की की मदद नहीं की। सर एडवर्ड ग्रे ने कहा था कि इटली संसार के मंच पर सब से पीछे आया है। उसे राज्य विस्तार का मौका नहीं मिला, अब उसके हाथ अवसर आया है, ऐसी अवस्था में हम उसके मार्ग में नहीं खड़े होना चाहते। टर्की के कितने ही प्रदेश स्वतंत्र हो गये और वह भी उस समय में जब कि टर्की में नवयुवक दल का शासन था जिसकी सब लोग प्रशंसा कर रहे थे और जिनसे कि बहुत कुछ आशा थी किन्तु टर्की को सुशासन स्थापित करने में सहायता देने की बात तो दूर रही उसी समय मौका पाकर राष्ट्र उस पर टूट पड़े। एमेरिका भी उस समय न्याय करने को नहीं खड़ा हुआ। १९१४ में इस महाभारत के आरम्भ होते ही यूरोपीय राजनीतिज्ञों ने

कुस्तुन्तुनिया का बटवारा

निश्चित कर लिया था। उस समय "टाइम्स आव इन्डिया" ने लिखा था कि सुलतान के हाथ से लेकर इसे ज़ार को दे देना चाहिये। उसने लिखा था कि रूस के पास सेना है, नौ-सेना है, वह बड़े वेग से उन्नति भी कर रहा है, किन्तु जब तक कुस्तुन्तुनिया पर तुर्कों का कब्ज़ा है, जब तक डार्डिनेलस पर तुर्कों का अधिकार है तब तक रूस के व्यापार की वृद्धि नहीं हो सकती। उसी समय यह चर्चा भी चली थी कि टर्की यूरोप से निकाल बाहर किया जाय। अब फिर यही सब हो रहा है। फर्क यही है कि रूस अब मित्र नहीं रहा, इसलिए रूस को नहीं वरन् सभी मित्रराष्ट्रों का कुस्तुन्तुनिया पर समान अधिकार रखने की बातचीत हो रही है। यह बहुत बुरा होगा। कुस्तुन्तुनिया केवल भौगोलिक नाम नहीं है, वह एक शहर मात्र भी नहीं है, वह मुस्लिम सभ्यता का हृदय है और कुस्तुन्तुनिया पर से तुर्क झंडा हटाना वैसा ही हानिकर है जैसे संसार से मुस्लिम सभ्यता को नेस्तनाबूद करना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि टर्की ने कोई पाप किया है तो जर्मनी उसका गुरू है, कोई बर्लिन पर कब्ज़ा करना क्यों नहीं चाहता ? इस सम्बन्ध में हमको यह भी न भूलना चाहिये कि मुस्लिम धर्म कोरा धर्म ही नहीं है, वह एक उच्चकोटि की सभ्यता है और संसार में उसका प्रभाव कम करना बहुत बड़ा पाप होगा। हमको जर्मनी या टर्की से कोई सम्बन्ध नही, हमको रूस, फ्रांस, एमेरिका आदि से भी इस मामले में कोई सम्बन्ध नहीं, हमको सम्बन्ध है केवल भारत और उसके भविष्य से। भारत संसार में है और भारत का भविष्य संसार के भविष्य से लिपटा हुआ है इसलिए

संसार के भविष्य

का चिन्ता हमको है। सन्धि-परिषद् में उस भविष्य का चित्र चित्रित हो रहा है, निकट भविष्य की सांकी का ख़ाका छोड़ा जारहा है इस लिए संसार के नागरिक की हैसियत से हमारा उससे घना सम्बन्ध है। सन्धि-परिषद् स्वार्थ और भूमि की भूख से मतवाली हो रही है, हम देख रहे हैं कि वह चिरस्थायी शान्ति की नहीं वरन् युद्ध की नीव डाल रही है और इस कारण से हम समझते हैं कि भावी संसार-संकट का वह बीज वपन कर रही है। स्वभाग्य निर्णय का मसला भी नया नहीं है। ट्रिपली के युद्ध में ही सर एडवर्ड ग्रे ने उसका बीज बोया था। किसी अगली संख्या में हम कभी इस बात को दिखलावेंगे कि संसार-संकट और स्वभाग्य-निर्णय में क्या सम्बन्ध है। इस समय इतना ही कह देना काफी होगा कि सन्धि-परिषद्, राष्ट्र-संघ आदि से संसार में शान्ति नहीं बिराजेगी, शान्ति के लिए पवित्रता और न्याय की ज़रूरत है और शान्ति का स्वप्न संसार में उसी दिन देखा जा सकता है जब संसार में प्रत्येक जाति और राष्ट्र स्वतंत्रता प्राप्त कर ले, आ सभ्यता, धर्म, न्याय, समता और उदारता की वेदी पर स्थिर हो, जब इन्द्रिय-परायणता और स्वार्थमय साम्राज्य-विस्तार की लालसा राष्ट्रों की मिट जाय और जब गोरे, काले, भूरे, पीले, ईसाई, मुसलमान, जापानी, चीनी, हब्शी सब को संसार में समान अधिकार प्राप्त हो।

"अभ्युदय"।

मिला तो क्या न मिला तो क्या !

जिसे पाके दिल न खुशी हुआ वो मिला तो क्या न मिला तो क्या।
जो रहे नहीं के समान है वो मिला तो क्या न मिला तो क्या ॥
वही प्रीति है जो निबाह हो न अलग हो कोई गुनाह हो।
अलग हो हो कर जो मिला रहा वो मिला तो क्या न मिला तो क्या ॥
है मदद सलाह हुकुम नहीं कभी हम नहीं कभी तुम नहीं।
जो कि पास रहते भी दूर है वो मिला तो क्या न मिला तो क्या ॥
न वो बैर है न वो चाहना रहे बाकी जिसमें उलाहना।
वही हो सका जो किये बना वो मिला तो क्या न मिला तो क्या ॥
जो चला मगर न पहुंच सका तो ये उसकी भूल है क्यों रुका।
जो सिफारिशों के सबब मिला वो मिला तो क्या न मिला तो क्या ॥

श्रीकान्त-कुसुमाकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान स्थिति और हमारा कर्तव्य ।

[लेखक--श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव, बी० ए० एल० एल० बी०]

क्लैब्यं मास्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥
—श्री० भ० गी० ।

आर्तरूपी अर्जुन को श्रीकृष्ण पूर्ण रूप से कर्मयोग में प्रविष्ट होने के लिए उत्साहपूर्वक आग्रह कर रहे हैं। जो उनके शब्द को सुनकर उनकी आज्ञा का पालन करेगा वही भारतसपूत कहलावेगा और जो दासता और कायरता की मदिरा में मत्त उनकी आज्ञा का निरादर करेगा वह अपना सर्वनाश करके अपने प्यारे देश का गला घोटने वाला हत्यारा कहलावेगा। भारतवासी मोहमयी निद्रा में विलीन होने से बचा लिये गये। वे यह देखकर आवश्यकता से अधिक प्रफुल्लित हो गये थे कि उनको शीघ्र ही उत्तरदायित्वपूर्ण स्वराज्य मिल जाने का "वचन" दे दिया गया है। फिर कुछ भारतीय सुधार-योजना को, जो राज्य की ओर से प्रकट हुई, देखते ही ऐसे शिथिल पड़ गये थे कि उस योजना के समर्थन में और राज्याधिकारियों को धन्यवाद देने ही में अपनी कर्मण्यता का प्रदर्शन करने लगे थे। एक घटना के पश्चात दूसरी घटना ऐसी ही होती गई कि वे राज्य की दमननीति के स्वाभाविक प्रेम को विस्मृत ही कर बैठे थे। राज्याधिकारियों की विचित्र नीति ने भारत में भेद के बीज का वपन कर दिया और अपना स्वार्थ और अपनी स्वेच्छाचारिता को तृप्त करने के लिए उनके भाग्य से इस फूट में एक अच्छी औषधि मिल गई, नौकरशाही को बल मिल गया और वे मन ही मन में भारत के भोलेपन पर मुस्कराने लगे। सुधार-योजना के प्रकाशन के सम्बन्ध में चार छः बातें भारत को अपनाये रहने के लिए कभी पार्लामेंट में, कभी कहीं, कह डाली गई। इसके पश्चात् ही लार्ड की पदवी से हमारे सर सत्येन्द्र को विभूषित कर दिया। बस फिर क्या था, भारतवासियों के हृदयों में आनन्द-मयूर नृत्य करके राज्याधिकारियों की प्रशंसा के मधुर गान गाने लगे। भारत की शुष्क भूमि की ओर से दृष्टि हट गई और भारत का उद्यान, जो वास्तव में परिम्लान है, हरा भरा दीखने लगा। उनके नेत्रों के आगे मायावी जाल का पर्दा डाल दिया गया था और पहिले ही से शिथिल होने के कारण उनमें इतनी भी शक्ति नहीं थी कि उस पर्दा को हटाकर अपनी वास्तविक अवस्था को देख सकते। उनको यह जानने की भी शक्ति नहीं थी कि वे ये दृश्य स्वप्न में देख रहे थे। उनकी स्मरण और विवेक शक्ति भी संज्ञाहीन हो गई थी, इसीलिए उनको श्रीमती बीसेन्ट, मिस्टर अरण्डेल और मि० वाडिया की निन्दनीय नज़रबन्दियां भूल गई थीं। इनको यह स्मरण नहीं रहा कि आजकल भी वे ही राज्याधिकारी हैं जिन्होंने मुहम्मद अली और शौकत अली की स्वतंत्रता का अपहरण किया था। उनको यह ज़रा भी ध्यान नहीं रहा कि यह वही नौकरशाही है जिसने लोकमान्य तिलक और श्रीयुत् पाल की स्वतन्त्रता को भारत-रक्षा क़ानून द्वारा कलङ्कित किया था और उसी क़ानून के भाई प्रेसएक्ट के असहनीय अन्याय का भी ताप उनके हृत्पटल से हो गया था। वाहरी नौकरशाही! तू ने उनको अपने मीठे २ "वचनों" से लुब्ध मुग्ध कर दिया था। क्या वे यह नहीं जानते थे कि जब से महारानी विक्टोरिया का राज्याभिषेक हुआ तब से आज तक हमको कितने "वचन" दिये गये और उनमें से कितने पूरे किये गये? ख़ैर अब तक जो हुआ सो हुआ। परमात्मा बड़े कृपालु हैं, सर्वशक्तिमान सर्वज्ञ हैं, वे भारत को नहीं भूले हैं। जब उन्होंने देखा कि भारत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशा शोचनीय हुई जाती है, वह निद्रा में मग्न होकर बेसुध हुआ जाता है तो उन्होंने रौलेट बिलरूपी दो भारी बम उसपर फेंके जिनसे भारत सजग होकर कर्मण्यता के क्षेत्र में कूद कर अपनी रक्षा करे। सहसा भारत घबराकर जाग उठा। सब बातें स्वप्नवत दीखने लगीं, मर्मस्थल फिर हरा हो गया, स्थिति असहनीय प्रतीत होने लगी, भेद, फूट अपना २ मार्ग ग्रहण कर पलायन होने लगे। मायावी परदा नेत्रों के सामने से हटने लगा परन्तु नौकरशाही भी सचेत हो गई, वह भी अपने तन्त्र-मन्त्र का आश्रय लेने को उद्यत हो गई। वह अपनी मीठी २ भङ्ग तैयार करके भारत के नेताओं को देना चाहती है परन्तु नेतागणों का चैतन्य रहना ही वाञ्छनीय है। वे अपने विवेक का त्याग न कर दें, नौकरशाही के मीठे २ "वचनों" के जाल में ग्रसित न हो जावें, अपने देश के कल्याण को आठो प्रहर दृष्टि के समक्ष रक्खें, सरकार इन क़ानूनों को देश और प्रजा के लिए अमृत कह कर देती है वह अमृत नहीं वह भारत के लिए विष है। नौकरशाही के "वचनों" का कोई मूल्य नहीं, एकबार नहीं हजार बार हमको ऐसे ऐसे "वचन" दिये गये जिन पर हमारे देश का कल्याण निर्भर था परन्तु वे पूरे नहीं किये गये। महारानी विक्टोरिया के घोषणापत्र का स्मरण कीजिये, उसी में एक स्थान पर ज़ोरों के साथ कहा गया था That from the highest to the humblest all may feel that under our rule the great principles of liberty equility and justice are secured to them and that to promote their happiness to add to their prosperity and advance their welfare are ever present aims and objects of our Empire अर्थात् रङ्क और राजा सब को यह निश्चय हो जावे कि हमारे राज्य में

स्वतन्त्रता, साम्यता और न्याय

के महान् सिद्धान्त उनके लिए व्यवहृत किये जावेंगे और उनके सुख कल्याण और उनकी उन्नति की वृद्धि करना हमारे साम्राज्य का ज्वलन्त ध्येय और उद्देश्य रहेगा। जब नवीन राज्याभिषेक हुए, तब २ महारानी का घोषणापत्र नाममात्र को दुहरा दिया गया। उधर दल के मन्त्रिमण्डलों के सदस्यों के मुखों से सदैव "स्वतन्त्रता, स्वाधीनता, समता" आदि शब्दों की वर्षा ही होती रही परन्तु वह संसार के अन्य प्रदेशों के लिए ही, भारत के साथ व्यवहार के लिए नहीं। यहां दमन-नीति की पताका फहराती रही। जिस दमन-नीति को संसार के अन्य देश परास्त कर डालते हैं और घोर निरादर के साथ जिसके टुकड़े २ कर डालते हैं उसी का प्रभाव यहां जम रहा है। भिल्लिनी की वंशीध्वनि को सुनकर जैसे कोई मृग मुग्ध हो जाते है और अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं उसी प्रकार कभी २ हमारे कोई नेता नौकरशाही की ज़हरीली मधुर बीन के पाले पड़ कर अपने देश के कल्याण की हत्या के साधन हो जाते हैं। ये रौलेट बिल स्वतंत्रता की फांसी है। भारतीयों के मनुष्यत्व को उन्मूलन करने के लिए पैनी धारवाली तलवारें हैं। जो यह कहने का दावा करते आये हैं कि हम स्वतन्त्रता के कट्टर भक्त हैं और हम सब को स्वतन्त्रता देंगे वे ही भारत की स्वाधीनता को ग़ैर-क़ानूनी क़ानून की अग्नि में भस्म करना चाहते हैं, इससे बढ़कर विश्व में और क्या अन्याय हो सकता है। यह हमको कहने में ज़रा भी संकोच नहीं होता कि सरकार यद्यपि अपनी नीति स्वतन्त्रता की बतलाती है तथापि वह उस स्वतन्त्रता को अन्य देशों, नहीं २ भारत को, स्वप्न में भी नहीं देना चाहती। इस समय मैकॉले होते तो ब्रिटिश जाति को तीव्र धिक्कार राष्ट्रक सुनाते क्योंकि उनका वचन था कि हम स्वतन्त्र हैं, हम सभ्य हैं, परन्तु यह सब व्यर्थ ही है यदि हम उस स्वतन्त्रता और सभ्यता के समान भाग मनुष्य वर्ग के किसी भाग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने में ज़रा भी संकोच करें।" कदाचित अब यहां की नौकरशाही मार्ले का भी निरादर करेगी क्योंकि उन्होंने एक बार कहा था कि "वास्तव में वह दिन बुरा होगा जब कि हम अपनी मातृभूमि के लिए एक अन्तःकरण रक्खें और उस विस्तृत प्रदेश (भारत) जो हमारी दृष्टि के बाहर है दूसरा अन्तःकरण रखें", दुर्भाग्यवश वह बुरा दिन आ ही गया। सरकार स्वतन्त्रता की माला जपती है परन्तु वह बगुला भक्त के समान है। संसार भर में उसने प्रसिद्ध कर दिया कि हमारी नीति स्वाधीनता की नीति है, परंतु कोई भी मनुष्य क्या, नौकरशाही ही अपने हृदय पर हाथ रख कर कह दे कि सरकार का यह गाल बजाना कहां तक सत्यमय है? भारत में तो उन्होंने सिद्ध करके दिखला दिया कि उनकी नीति कम से कम भारत के लिए असह्य दमन की है। जिस स्वतन्त्रता की वे स्वदेश में पूजा करते हैं उसी को वे निर्दयता से अपने पैरों के नीचे रौंद रहे हैं। यह वे भले ही मन में समझ लेवें कि वे भारत का दमन करके अपने को और भी ऊंचा और स्वतन्त्र कर लेवें परंतु इसमें उनकी भूल है। यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है। यह बात सरकार के प्राचीन 'वचनों' के भी विरुद्ध है। महारानी विक्टोरिया का "वचन" था कि "भारतवासियों की उन्नति ही से हमारा बल बढ़ेगा। उनके सन्तुष्ट रहने ही में हमारी रक्षा हो सकती है और उनकी कृतज्ञता ही हमारे लिए पारितोषिक रूप है"। आप स्वतंत्र हो जावें और रहें और भारत की स्वतंत्रता को बलपूर्वक अपहृत कर दें यह उसी प्रकार असंभव है जैसे भ्रमर यदि चाहे कि निशि दिन कमल का रस चूसता हो रहे और सदैव स्वतंत्र भी रहे, क्योंकि रात्रि आने पर उसे कमल के सम्पुट में बन्दी के समान पड़ा २ रुदन करना पड़ता है। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि बिना प्रजा के सन्तुष्ट रहे कोई राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता। नौकरशाही ने भी इस बात को स्वीकार किया है। उदारदल के ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल ने भी इसको माना है। ब्राइट का कहना है:—"इङ्गलैण्ड का कल्याण भारत के कल्याण द्वारा ही हो सकता है। (जार्ज) ने भी कहा था कि "भारत के शासन करने के लिए हमको सहानुभूति की बड़ी आवश्यकता है"। हम तो ज़ोर २ से चिल्लाकर कहते हैं कि हमारे साथ दमन-नीति का प्रयोग मत करो, हमारी स्वतन्त्रता के बाधक क़ानूनों को मत बनाओ परन्तु वाइसराय महोदय और सर विलियम विन्सेन्ट, देश तथा राज्य की रक्षा की दुहाई देते हुए, हमसे कहते हैं कि तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, तुम नासमझ बच्चे हो, अपनी भलाई बुराई नहीं समझते। वे कहते हैं कि तुम्हारी भलाई इसीमें है कि तलवार के ज़ोर से भारत का शासन किया जावे। यहां बात वही आन कर पड़ती है कि राज्य को प्रजा की कुछ परवाह नहीं। प्रजा चाहती है कुछ और, राज्य करता है कुछ और। प्रजा की इच्छानुकूल राज्याधिकारी शासन करना पसंद नहीं करते, परन्तु हम कहते हैं कि सरकार Sir I. R. O. Comel के वचनों का स्मरण करे जो उन्होंने आयर्लैंड के लिए कहे थे:—"प्रजा की इच्छा के विरुद्ध शासन सदैव बुरा होता है और विशेषतया आयर्लैंड में"। हम कहते हैं उससे भी विशेषतया भारत में। सैयद अब्दुल रसूल भी यही कहा करते थे। वे ही क्या, बड़े २ राजनीतिज्ञों का यही कहना है कि यदि शान्तिमय शासन रखना है तो प्रजा की इच्छा और सम्मति के अनुसार राज्य करो, उनके प्रतिकूल मत जाओ। परन्तु सरकार को इन बातों की परवाह नहीं, क्योंकि प्रजा ही में उनको अनेकों अन्धभक्त मिल जाते हैं जो भारत के कल्याण का भण्डाफोड़ कर देते हैं। पहिले तो हमीं में से कुछ लोग दमन के विरुद्ध बीड़ा उठाकर खड़े होते हैं और फिर न जाने किस विचार से बैठ जाते हैं। इसी प्रकार नौकरशाही का काम बन जाता है। उसको अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम में हम में से कुछ को शिथिलता से सफलता प्राप्त हो जाती है। पीछे वेही हमारे भाई दमन के मार पड़ने पर रोते चिल्लाते हैं। सरकार तो अपनी जगद्विख्यात स्वतंत्र नीति को भारत के कामों में भूल ही जाती है परन्तु हम क्यों भूलने देते हैं? क्या बृटिश राज्य को स्मरण नहीं है कि युद्ध के दिनों में उन्होंने क्या क्या कहा था? वास्तव में वे दीन और परतंत्र देशों की रक्षा करने और उनको स्वतन्त्र करने के लिए ही युद्ध में प्रवृत्त हुए थे। जो सहायता भारत ने युद्ध में की, वह आज संसार के कोने २ में प्रशंसित हो रही है। भारत ने अपने वीर पुत्रों को रणचंडी की वेदिका पर बृटिश राष्ट्र के लिए समर्पण कर दिया। भारत ने अपनी कितनी महिलाओं को पति हीन और पुत्र हीन भी बृटिश जाति के लिए कर दिया, परन्तु यह नौकरशाही की कृतघ्नता है कि वह भारत को परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ रही है। एक साधारण व्यक्ति के साथ आप भलाई कीजिये तो वह भी आपके साथ भलाई करेगा। क्या वे बातें कहने ही के लिए थीं, काम में लाने के लिए नहीं? खैर यह भी हो चुका। सन्धि-परिषद् में भारत के लिए क्या किया गया? पहिले भी और अब तक भारत के मन्त्री ने, सम्राट् ने— और, एंग्लो-इण्डियनों को छोड़कर—सभी ने भारत की युद्ध सहायता की प्रशंसा की, और करते हैं, परन्तु सब व्यर्थ, इस से चुप रहना ही अच्छा है। George Lansbury ने कहा था कि 'ग्रेटब्रिटेन सन्धि-परिषद में अन्य देशों के लिए स्वतंत्रता माँगने के वास्ते नहीं जा सकता, जबतक भारत को वैसी ही स्वतन्त्रता देने को वह तैयार न हो जिसकी प्राप्ति के लिए वह लड़ रहा है"। एक कवि K. G. P. का कहना है:—

(Oh, make our England see what India needs. She battle for our freedom Shall we dare refuse to battle comrades freedoms share R. S P.)

"हमारे इङ्गलैंड को इस बात के देखने के लिए मजबूर करो कि भारत क्या चाहता है! वह हमारी स्वतंत्रता के लिए लड़ रहा है। क्या हम इस बात का साहस करें कि अपने युद्ध के साथियों को स्वतंत्रता का भाग देने से इन्कार कर देवें"?

इन सब बातों से सरकार को क्या सरोकार! राष्ट्र-संघ के निर्माण की ओर ध्यान दीजिये, राष्ट्र-पति विलसन के भाषणों को देखिये, परन्तु ये सब भारत की सरकार के लिए निरर्थक हैं। ये सब बातें मूर्खों ही की सही, निःसार ही सही, परन्तु सरकार हमको बतला सकती है कि उसको क्या हक़ है, क्या अधिकार है कि हमारी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण करे! हम मनुष्य हैं, वे भी मनुष्य हैं। जो उनके अधिकार होंगे वे हमारे भी होंगे। हम उनसे किसी बात में कम नहीं हैं परन्तु अब हमारी सरकार ने फ़रमा दिया है कि बिल नम्बर १ केवल राजविद्रोहात्मक अपराधों के लिए ही प्रयुक्त होगा। परन्तु यह भी कहिये इस बात का जिम्मा कौन लेता है? क्या सर विलियम विन्सेंट इसके ठेकेदार होंगे? वे हों या न हों हमको सरकार की ऐसी बातों का विश्वास नहीं हो सकता और इसके कारण भी हैं। जिस मनुष्य को आप पकड़ना चाहें, दंड देना चाहें बस कह दो यह राजविद्रोही है। जिस आन्दोलन को रोकना चाहें, कह दो कि यह राज्य को लौटपौट कर देगा जिस सभा-संस्था को तोड़ना चाहो, कहदो कि ये राजभंगकारी हैं, तुम्हारा मतलब तो गठ गया, हमारी भी ज़बान बन्द हो गई। यही न्याय हो गया। किन्तु हम पूछते हैं कि क्या यह न्याय है कि राजविद्रोही के साथ साधारण न्यायमय क़ानूनों का प्रयोग न किया जावे? यदि साधारण न्याय से उनकी व्यवस्था निर्णय करना पाप है तो ऐसा क़ानून बना दीजिये कि सरकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राय में जो मनुष्य राजविद्रोही समझा जावेगा वह तोप से उड़ा दिया जावेगा । जो सभा-संस्था आन्दोलन कारणी समझी जावें, उसके नेताओं को बिना पूछताछ के फांसी दे दी जावे । ऐसा करने से भारत सरकार को अमोघ यश मिल जावेगा । रौलट बिल्ज़ की धारायें और नियम सबको मालूम हो गई हैं, उनके उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं । हम यही कहेंगे कि भारतवासियों की स्वतन्त्रता के गले में फांसी डाली जा रही है । भारतनिवासियों की गणना पशुओं में की जारही है भारतमाता की छाती पर पहाड़ तोड़ा जा रहा है । भारतसपूतों की ज़बान काटी जा रही है, उनके हाथ पैर सब शरीर से अलग किये जा रहे हैं । उनका जीवन असम्भव किया जा रहा है । ऐसे २ अपराधों का सङ्गठन किया जा रहा है जिनको साधारण मनुष्य भी पृथ्वीमण्डल पर अपराधों में नहीं गिन सकता । बृटिश साम्राज्य की नीति को पैरों के नीचे ऐसा कुचला जा रहा है कि उसका कारणमात्र भी शेष न रहे । प्रजा के जन्माधिकारों की हत्या निर्दयता के साथ की जा रही है । कहा जाता है कि राजद्रोह के दबाने के लिए साधारण क़ानून काफ़ी नहीं हैं, किन्तु यह बात न्याय बुद्धि और विवेक के सर्वथा विरुद्ध है । जैसी क़ानून के सिद्धांतों की नीति के मूलाधार की लोटपोट इन प्रस्तावित क़ानूनों द्वारा की जा रही है, वैसी कहीं संसार भर में नहीं हुई और न होगी परन्तु भारत सरकार और रौलेट महाराज की बुद्धि संसार के बड़े से बड़े विद्वानों से विलक्षण है ।

राजविद्रोह का बीज भारत में किसने बोया ? नोकरशाही ने । इस उत्तर में ज़रा भी असत्य नहीं है । लार्ड कर्ज़न ने जब बङ्गभङ्ग किया, तभी से असन्तोष और सत्यात्मक क्रोध की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी । संसार के इतिहास के पन्नों को लौट कर देखिये, पता चलेगा कि राजविद्रोह हुआ है तो राज्याधिकारियों की कृतघ्नता और उन्हीं के दोष से । जैसे क़ानून अब यहां बन रहे हैं उन्हीं से राजविद्रोह की उत्पत्ति होती है, उसकी अग्नि भड़कती है । सरकार कहती है कि इन क़ानूनों से वह अग्नि भभकने न पावेगी किन्तु यह बात संसार के इतिहास और अनुभव के अनुसार सर्वथा असम्भव है । यह बात निश्चित है कि दमन-नीति की सफलता कभी कहीं नहीं हुई, सदैव उसका बुरा परिणाम ही हुआ है । सरकार नेत्रों को बन्द करके इस काम को न करे । कैनेडा और फिलिपाइन्स को देखिये, स्वराज्य पाते ही वह सर्व विप्लवादिक शान्त हो गये । भारत को स्वराज्य दीजिये, उसको स्वतंत्र कीजिये, फिर देखिये कि राजविद्रोह का नाम भी यहां न रहेगा" । लार्ड मार्ले का कथन है कि "जब प्रजा में असन्तोष फैलता है तो उसमें दोष प्रायः राजा का होता है न कि प्रजा का । राज्यनियम बदले जा सकते हैं परन्तु प्रजा में परिवर्तन नहीं हो सकता ।" इस वाक्य पर सरकार विचार करे और बुद्धि से काम लेवे । सरकार की भलाई इसी में है कि भारत को सन्तुष्ट रक्खे, असन्तोष को निकाल बाहर करे परन्तु क्या यह सब दमन-नीति से हो सकता है ? कदापि नहीं । इन अन्यायपूर्ण क़ानूनों से सरकार को और देश को हानि पहुंचेगी । ऐसे कानून ठहर नहीं सकते । बर्क के वचन को देखियेः—"मनुष्य वर्ग के स्वाभाविक अधिकार पवित्र वस्तु हैं और कोई क़ानून जो उनको धक्का पहुंचाने वाला होगा स्वयमेव मृत्युवत् (fatal) धक्का खायेगा ।"

सरकार यह भले ही कहे कि क़ानून तो तीन वर्ष के लिए ही होगा परन्तु हम तो एक क्षण भर के लिए भी यह भयङ्कर अधिकार नौकरशाही के हाथों में नहीं देना चाहते । तीन वर्ष में तो भारत के स्वतंत्र जीवन का संहार हो जावेगा । भले ही सरकार हमारे कुछ भाइयों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बातों को सुनकर प्रसन्न हो जावे या पीठ ठोंके किन्तु हम फिर भी यह कहेंगे कि कोई भी भारतवासी इन बिलों के पक्ष में नहीं है। यह हम अवश्य कहेंगे कि कुछ नेताओं ने भूल की कि सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करके अपनी पृथक सम्मति प्रकट की। क्या वे चाहते हैं कि यदि सरकार उनके संशोधन को मानले तो यह ज़हरीला सर्प भारत की स्वतंत्रता के वास्ते छोड़ दिया जावे? क्या वे इसके लिए तैयार हैं कि भारत का गला पैनी तलवार से न काटकर मन्दधार छुरी से काटी जावे? क्या वे इसको स्वीकार करेंगे कि उनपर बम का गोला न छोड़ा जावे बल्कि पत्थरों से मारमार कर उनका जीवन ले लिया जावे? क्या वे किसी प्रकार किसी समय, किसी रूप में भारत को स्वतंत्रता की हत्या कराने के पक्ष में है? हम सादर कहेंगे कि हमारे कुछ नेताओं ने इन प्रश्नों पर बिना विचार ही किये अपनी पृथक सम्मति देदी, यह दूसरी बात है कि सरकार अपनी टेक रखने के लिए उनके संशोधन को न माने। मान० मालवीय जी ने भारत की लाज रखली, मान० खापर्डे और मान० पटेल ने भी उनका साथ दिया। हमको विश्वास है कि हमारे नरमदल के भाई भी ठीक मार्ग पर आयेंगे। भारत के प्राण सङ्कट में हैं। जिसको भारत प्यारा हो वह सब कष्टों को--आपत्तियों को--भूलकर मैदान में आजावे। महात्मा गांधी खड़े होगये हैं वे किसी के बिठाये अब बैठने वाले नहीं। उनके मुख से जो शब्द निकल गये वे निकल गये, अब वे किसी शक्ति के लौटाये लौट नहीं सकते हैं। हम उनके अनुयायी हैं, भक्त हैं। भारत की रक्षा होगी—इसकी स्वतंत्रता क्षुण रहेगी इसको ईश्वर वाक्य जानिये।

सरकार ने हमको लोभ दिया था कि अगर सुधार चाहते हो तो इन बिलों को सर्वसम्मति से पास कर दो। परंतु वे इस बात को खूब समझलें कि हम अब धोखे में आने वाले नहीं हैं। वे हजार जादू फेरें, हजार तंत्रमंत्र करें, इन्द्रजाल फैलावें, हम अब उनकी बातों में फँसने वाले नहीं हैं हम ऐसे सुधारों को नहीं चाहते। उन सुधारों को वे अपने अटूट दमन नीति के खज़ाने में रक्खें, चाहे बाजार में लुटादें। हम स्वतंत्रता के पुजारी हैं, स्वतंत्रता के सामने हमको सब कुछ तुच्छ और हेय है। यदि हममें आत्म-बल है, यदि हम मनुष्य हैं, यदि सत्य कोई चीज़ है तो हम सुधार लेलेंगे। हम भिक्षुक तो हैं ही नहीं, हम तिजारत करने वाले तो हैं नहीं, हम जुवारी भी नहीं हैं जो पहिले अपने हाथपांव कटा लें, फिर उसके बदले 'सुधार' में लें। हम स्वतंत्रता के युद्ध करनेवाले हैं—For freedom's battle once begun, through bafflad off is ever won स्वतंत्रता का युद्ध एक बार आरंभ हो गया तो उसको धोखा चाहे कोई देले परन्तु अन्त में विजय स्वतंत्रता की ही होगी।" हमारी विजय होगी, अवश्य होगी, सरकार सोच समझकर काम करे। विजय के चिह्न प्रत्यक्ष म० गांधी और मा० मालवीय जी हैं। अब वह समय गया कि हम तुम्हारी धमकी में, तुम्हारी लल्लो चप्पो में आकर अपने आप अपने पैरों पर कुठार चलादें। देश में स्वतंत्रता का पवन बह उठा है प्रत्येक व्यक्ति के हृदय सरोवर में देश-प्रेम की तरङ्गें उठने लगी हैं। स्वराज्य और स्वाधीनता की गूंज से भारत की भूमि और भारत का आकाश व्याप्त हो रहा है, नौकरशाही की धांधली नहीं चल सकती। दमन नीति का झंडा यहां क्षणभर के लिए भी नहीं लगाया जा सकता। यूरोप एमेरिका में देवता नहीं रहते हैं वहां भी मनुष्य हैं। स्वतंत्रता के कट्टर अनन्य प्रेमी हैं। हम भी वैसे ही मनुष्य हैं। यहां दमन-नीति का जितना अधिक प्रयोग होगा उतनी ही अधिक असंतोष और धार्मिक क्रोध की ज्वाला बढ़ेगी। जहां तक हम समझते हैं सरकार भारत में राजद्रोह को बढ़ाना नहीं चाहती है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह उसको दूर करना चाहती है। यदि ऐसा है तो रौलटबिल्ज़, प्रेसऐक्ट, आर्म्सऐक्ट आदि सब दमन नीति वाले क़ानूनों को वह रद्द कर दें और अगर राजविद्रोह को बढ़ाना चाहती है तो ३३ करोड़ दमन-नीति वाले क़ानून बना डाले क्योंकि जब तक प्रति मनुष्य पीछे एक २ क़ानून न होगा तब तक राजद्रोह कैसे दब सकता है ?

प्यारे भारतीय भाइयो! सावधान हो जाइये। आप अपने देश की गति को देख रहे हैं, आप साथ ही सरकारी दांव पेंच को समझ रहे हैं। आपके मार्ग में कठिनाइयां बहुत हैं और स्पष्ट हैं, नुकीले पत्थर और जबरदस्त कांटे हैं, परन्तु देखिये सत्याग्रह भी आपके साथ है। यही अंतिम क़ानूनी उपाय है जिससे आप नौकरशाही पर विजय पा सकते हैं, जिससे आप अपनी स्वतंत्रता पर आनेवाले आक्रमण को रोक सकते हैं। स्मरण रखिये:—सत्यमेव जयति नाऽनृतम्। कर्म करते जाइये, न्याय, सत्य का मार्ग न त्यागिये आपकी विजय होगी। फल ईश्वर पर छोड़िये, अपने धर्म का पालन कीजिये और कर्मयोगियों के भूषण श्रीकृष्णचन्द्र जी के वाक्य का स्मरण करके दमननीति के विरोध के लिए—अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए—अपने देश के नाम पर, अपनी जाति के अभिमान पर निर्भय होकर खड़े हो जाइये, भारत की कीर्ति पर लांछन न आने पावे। भेदभाव तोड़ दीजिये, नरम गरम दोनों दल एक हो जाइये, भारत के जीवन-मरण का प्रश्न सम्मुख उपस्थित है यदि अवसर निकल गया, यदि आपसे जरासी भी भूल हो गई तो पीछे पछताना पड़ेगा, रोना पड़ेगा। बस हृदय को दृढ़ कर लीजिये, ईश्वर आपके साथ है।

लंडन की चिट्ठी।

[निज सम्वाददाता द्वारा प्राप्त]

पार्लामेंट के चुनाव के वक्त एक विलक्षण घटना हुई। मिस्टर लायड जार्ज के दल की आश्चर्यजनक जीत हुई है। इनके दल के ४७८ प्रतिनिधि चुने गये और सब दलों के मिलाकर २२६ प्रतिनिधि पार्लामेंट के लिये चुने गये। इनमें से ७३ स्वतंत्रतावादी आयरिश "सिनफिन"* जो चुने गये हैं, वे पार्लामेंट में पधारेंगे ही नहीं। अतएव जार्ज महाशय के दल का बाहुल्य ३२२ होगा। जो इस 'संयुक्त' दल के मन में आयेगा वह कर लेगा। इतना बाहुल्य पार्लामेंट में कभी देखने में नहीं आया था।

आस्क्विथ महाशय, जो लगातार आठ वर्ष तक प्रधान मंत्री रह चुके थे और ३३ वर्षों से एक विशेष स्थान के प्रतिनिधि चुने जाते थे, इस बार नहीं चुने गये। उनके उदार दल के मतानुयायी सभी लिबरल नेता हार गये।

'कामगर दल' के जितने मान्य नेता थे, उनमें से कोई भी पार्लामेंट के लिये नहीं चुना गया।

जार्ज महाशय के "संयुक्त" दल वालों के लिए फीसदी ५२ वोट दिये गये और उनको ७६ फीसदी फल प्राप्त हुआ। अन्य दलों को ४७ फीसदी वोट दिये गये और केवल २३ सैकड़ा प्रतिनिधि मिले। वोट द्वारा जार्ज दल

* "सिनफिन" के माने वास्तव में है "अपना (स्वदेशी) आयर्लैंड" तथा आयर्लैंड आयरिश के लिए। एक आयरिश महिला ने 'सिनफिन' की परिभाषा यों दी है—स्वदेश-प्रेम एवम सब स्वदेश-प्रेमी फरासीसी अंग्रेज़ वा एमेरिकन 'सिनफिन' हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का बाहुल्य समष्टि रूप से केवल ५ सैकड़ा होना था पर उनको प्रतिनिधि द्वारा ५२ सैकड़ा का बाहुल्य मिला, इससे यह बात भलीभांति प्रकट होती है कि यहां दलबन्दी और अन्य उपायों से प्रजा को अपने प्रतिनिधि चुनने की सुविधा होने पर भी उनके असली प्रतिनिधि पार्लामेंट में नहीं पहुंच सकते।

आयर्लैंड।

आयर्लैंड में स्वतन्त्रतावादी 'सिनफिन' लोगों का जोर बहुत बढ़ गया है। आयर्लैंड को १०० प्रतिनिधि चुनने का अधिकार है। ये प्रतिनिधि लंदन में आकर पार्लामेंट में होम-रूल (स्वराज्य) के लिए पुकार किया करते थे। किन्तु अब तो आयर्लैंड में प्रायः सभी लोग स्वतन्त्रतावादी होगये हैं। वे खुल्लमखुल्ला कहते हैं कि हम स्वतन्त्रता चाहते हैं, हम इङ्गलैंड के साथ अथवा उसके आधीन नहीं रहेंगे। अतएव वे यहां की पार्लामेंट में नहीं आना चाहते। जो ७३ स्वतन्त्रतावादी आयरिश देशभक्त आयर्लैंड के प्रतिनिधि चुने गये हैं उनमें से ३७ अंग्रेज़ों के जेलखानों में हैं। आयर्लैंड में केवल ३६ ही हैं। इन महाशयों ने ता० २१ जनवरी १९१९ को डबलिन में अपनी स्वतन्त्र राष्ट्रीय महासभा स्थापित की, जिसमें उन्होंने आयर्लैंड को स्वतन्त्र मानते हुए प्रजातन्त्र राष्ट्र की घोषणा की, उन्होंने कहा:—"हम आयर्लैंड के प्रतिनिधि यहां एकत्रित होकर आदेश करते हैं कि आयर्लैंड के भाग्य का निपटारा आयरिश लोग स्वयं करेंगे। आयर्लैंड आयरिश लोगों की जन्मभूमि और सम्पत्ति है।" अन्य राष्ट्रों को संकेत करते हुए इस राष्ट्रीय महासभा ने कहा कि हमने यह निश्चित कर लिया है कि अब से आयर्लैंड किसी अन्य जाति के आधीन नहीं रहेगा और हम आशा करते हैं कि अन्य राष्ट्र हमारी स्वतन्त्रता और नवीन 'प्रजातन्त्र' का स्वागत करेंगे।

पहली बार इस चुनाव में स्त्रियों को पार्लामेंट के लिए खड़ी होने का स्वत्व मिला था। १६ स्त्रियां 'वोट' मिक्षा मांगने निकली थीं। इनमें से इङ्गलैंड में किसी को भी काफी 'वोट' नहीं मिले। केवल एक महिला आयर्लैंड से चुनी गई थी। वह स्वतन्त्रतावादी 'सिनफिन' होने के कारण ब्रृटिश पार्लामेंट में नहीं आना चाहती, क्योंकि वह इङ्गलैंड का प्रभुत्व स्वीकार नहीं करती। इसके अतिरिक्त वह इस समय जेलखाने में है!

तीन स्वतन्त्रतावादी आयरिश प्रतिनिधि इङ्गलैंड की एक जेल में कैद थे। परसों खबर मिली थी कि वे वहां से भाग निकले हैं। आज (ता० ११ फरवरी १९१९) के अखबारों से विदित होता है कि इनमें से मुख्य डिमिलेरा महाशय पेरिस (फ्रांस) पहुंच गये हैं! इन्होंने कैसे समुद्र पार किया, कैसे इन्हें 'पासपोर्ट' मिला? यह सब आश्चर्यजनक और रहस्यमय है।

प्रतिनिधि चुनाव।

प्रतिनिधि चुनाव के समय की एक दो विलक्षण बातें यह हैं कि प्रथम बार चुनाव के समय कामगर लोगों के नेताओं ने भारतवर्ष का नाम भी लिया था। दूसरे, अधिकतर वोट उन उम्मेदवारों को मिले जिन्होंने कहा कि हम जर्मनी से लड़ाई का सब खर्च और युद्ध के कारण जो नुकसान हुआ, उसके दाम लेंगे और 'कैसर' को सूली पर चढ़ाने के लिए अनुरोध करेंगे।

यहां एक महाशय "होरेशियो बौटमले" नामधारी हैं, जो "जानबल" के सम्पादक हैं और जिनका काम गाली देना और लोगों को बदनाम करना है। इनका एक पैर मानो कचहरी में रहता है। ये महाशय कई वर्षों से दिवालिया थे। दिवालिया पार्लामेंट का सभासद नहीं चुना जा सकता, इसलिए आपको ३६००० पौंड ऋण की सफाई करना पड़ा और तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं जाकर आप उम्मेदवारों में खड़े हो सके। लेकिन, जैसे ही ये खड़े हुए इन्हें खूब वोट मिले और आप बड़े ज़ोर शोर के साथ पार्लामेंट के सभासद चुने गये।

चुनाव के दिनों में एक महिला (मिसेज स्नोडन) ने प्रधान मंत्री लायड जार्ज के विषय में यह कहा था:—"प्रधान मंत्री दगाबाज-सहकारी और झूंठा राजनीतिज्ञ है। इस व्यक्ति ने इस देश की परोपकारिणी वृत्ति और देशहित के कार्यों को निकृष्ट कर दिया है—इस व्यक्ति ने उदार दल की नौका को डुबो दिया है"।

प्रधान मंत्री ने स्वयं इस चुनाव के समय उन लोगों की तारीफ़ की जिनकी वह पहले निन्दा कर चुके थे और उनको अब घृणित व्यक्ति बतलाया जिनकी वे पहले मुक्तकण्ठ से सराहना किया करते थे।

भारतीय राजकीय चर्चा।

सिन्हा महाशय को उप-भारत-सचिव बनाने के उपलक्ष्य में बूढ़े लोग खुश हुए हैं, किन्तु नवयुवकों का विचार है कि स्पष्टवक्ता और निडर लोगों को यह लालच दिखाया गया है कि यदि सिन्हा का अनुकरण करोगे तो कभी 'मंत्रि-मंडल' में ले लिये जाओगे। नवयुवक यह जानते हैं कि इन बातों से क्या होता है? सिन्हा तो एक हैं। 'लेबरपार्टी' में कामगर दल के तीन चार नेता मित्र-मंडल में थे। उन्होंने कामगर लोगों के लिए क्या कर लिया? सिन्हा भी राजयंत्र के पहियों में एक सींख के समान हैं और उधर संसार को दिखाने के लिए अंग्रेज़ कहेंगे कि हम हिन्दुस्तानियों को ऐसे उच्च स्थान पर लेने को तैयार हैं। उन्हें वे भारत प्रतिनिधि बताकर 'शान्ति सभा' में भी ले गये हैं। सिन्हा महाशय के 'लार्ड' बनने में भी कोई हर्ष नहीं। हाउस आफ लार्ड ही तो भारतवर्ष का सब से बड़ा शत्रु है। उसे यहां तुड़वाना चाहिये और यथाशक्ति उसे उठने नहीं देना चाहिये।

आश्चर्य की बात है कि यह सब सुनते हुए भी 'लार्ड सिन्हा आफ रायपुर' के मित्र और गुणग्राहक उनको एक भोज देनेवाले हैं जिसमें वही लोग सम्मिलित होंगे जो १५) रु० भोज की कीमत देंगे!

× × × × × ×

लोकमान्य तिलक और उनके मुक़दमे के विषय में आगामी पत्र में लिखेंगे।

हमारा पुस्तकालय।

शान्तिदायी विचार। रचयिता और प्रकाशकः—पं० शिवकुमार शास्त्री, 'ज्ञानशक्ति' कार्यालय, गोरखपुर। पृष्ठ सं० ७८, मू० आठ आना।

इस छोटीसी पुस्तिका में लेखक ने ईश्वर, योग, समाधि, संसार का सच्चा स्वरूप, वेदान्त और योग की माया, दुःख रहस्य आदि कितने ही जटिल विषयों का संक्षिप्त में निरूपण किया है जो मनन करने योग्य है। वेदान्त प्रेमियों को चाहिये कि वे अवश्य इसे एक बार देखें। पुस्तक काम की है।

सीता बनवास। अनुवादकः—पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, प्रकाशकः—बर्मन कम्पनी मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)। पृष्ठ सं० १०५, मूल्य ॥)।

बङ्गला में पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखित 'सीता रबनवास' नामी एक पुस्तक है, प्रस्तुत पुस्तिका उसी का हिन्दी अनुवाद है। इसमें महाकवि भवभूति के उत्तर रामचरित के आधार पर उन समस्त घटनाओं का वर्णन है जो सीताजी के जीवनकाल में दूसरे बनवास के रूप में संघटित हुईं। पुस्तक अच्छे ढङ्ग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी गई है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इससे बालक वृद्ध, युवा, सभी लाभ उठा सकते हैं।

रास पंचाध्यायी और भँवर गीत। कविवर नन्ददास प्रणीत। प्रकाशकः—श्रीयुत परीक्षित सिंह, प्रबन्धक 'काव्य कुसुमाञ्जलि' कार्यालय, लाला का बाजार, मेरठ। पृष्ठ सं० ८० मूल्य ॥=) दस आने।

इस पुस्तक में उपरोक्त कवि ने अपनी मनोहारिणी कविता द्वारा श्रीकृष्ण प्रेम का जो अद्भुत वर्णन किया है, वह एक नहीं अनेकबार पढ़ने पर भी चित्त की तृप्ति नहीं होती। हमारा अनुरोध है कि 'कोमल-कान्त पदावली' के रसिक इसे देखने की कृपा करें, इनके मनोरंजन की यह ख़ासी चीज़ है।

भीष्म कम्पनी की पुस्तकें। पटकापुर-कानपुर की भीष्म कम्पनी ने हमारे पास छोटी २ ६ पुस्तकें भेजी हैं; उनके नाम ये हैं:—

१—नारीगायन, मूल्य एक आना।
२—राजा राममोहन राय, मूल्य डेढ़ आना।
३—संसार-विजयी, मूल्य तीन आना।
४—स्वराज्य-घोषणा, मूल्य दो आना।
५—भारत का भविष्य, मूल्य डेढ़ आना।
६—कथा-कहानी, मूल्य चार आना।

पुस्तकें साधारणतः अच्छी हैं और पढ़ने योग्य हैं।

चित्तौड़ की चढ़ाइयाँ—लेखक बाबू गौरीशङ्करलाल अख़्तर, पृष्ठ सं० १०६, मूल्य ॥=) दस आने।

यह पुस्तक उर्दू भाषा की एक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। इसमें मेवाड़ के कर्मवीर राजपूतों और धर्मपरायण राजपूत रमणियों की सच्ची वीरता और देशभक्ति का वर्णन है।

प्रेमोपहार। लेखक पं० कृष्णविहारी मिश्र, बी० ए० एल० एल० बी०। पृष्ठ सं० ४६, मूल्य ।) चार आना।

इसकी रचना, प्रसिद्ध कवि टेनिसन के 'एनक आर्डन' नामक काव्य के आधार पर हुई है। इसमें कवि ने प्रेम को पराकाष्ठा पर पहुंचा कर जैसी खूबी के साथ विषय समाप्त किया है उसे पढ़ने पर चित्त प्रसन्न हो जाता है। पुस्तक संग्रह योग्य है।

प्रातःकाल और शायङ्काल के विचार। अनुवादक-(स्वर्गीय) श्रीयुत दयाचन्द्र गोयलीय बी० ए० पृष्ठ स० ६५। मू० ।=) छः आना।

यह पुस्तक श्रीमती लिली, एल० एलन द्वारा सङ्कलित Morning & Evening thoughts का हिन्दी अनुवाद है। इसमें महीने के ३१ दिनों में प्रातःकाल और शायङ्काल के समय विचारने योग्य बातों का वर्णन है। विचार उत्तम और अनुकरणीय हैं, यह हम मुक्तकण्ठ से कह सकते हैं।

तन मन और परिस्थितियों का नेता-मनुष्य। इस बड़ी नामवाली पुस्तक के मूल लेखक-मि० जेम्स एलन और अनुवादक—स्वर्गीय गोयलीय महाशय हैं। पृष्ठ सं० ४८ और मू० ।) है।

इस पुस्तक में जीवन के इस महत्वपूर्ण प्रश्न परः—अर्थात्, उसे किस प्रकार व्यतीत करना चाहिये, भली प्रकार विवेचन किया गया है। बड़ा रोचक विषय है। पढ़ने में आनन्द आता है।

उपर्युक्त चारो पुस्तकों के मिलने का पता हैः—मैनेजर हिन्दी साहित्य भांडार, लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे नवीन सहयोगी।

भविष्य। इस नाम का एक साप्ताहिक समाचार-पत्र कर्मयोगी के भूतपूर्व सम्पादक श्रीयुत सुन्दरलाल बी० ए० द्वारा सम्पादित होकर प्रयाग से निकलने लगा है। इसके पांच अङ्क अब तक हमारे पास आचुके हैं। इन अङ्कों में बड़ी योग्यता के साथ वर्तमान राजनीति के प्रश्नों पर विचार किया गया है। पत्र होनहार है, हम हृदय से इसकी उन्नति चाहते हैं। वार्षिक मू० ३) । मिलने का पताः—मैनेजर भविष्य, इलाहाबाद।

निर्बल-सेवक। सम्पादक, श्रोत्रिय जगदीश दत्त जी, प्रकाशकः—निर्बल-सेवक आफिस बिजनौर (यू० पी०), मूल्य २) वार्षिक।

यह हिन्दी का पाक्षिकपत्र है। इसमें सामयिक विषयों पर खासे लेख और कविताएँ रहती हैं। मातृभाषा के प्रेमियों को चाहिये कि वे इसे आश्रय दें।

आर्य-कुमार। यह एक साप्ताहिक पत्र है। फतेहपुर (यू० पी०) से निकलता है। इसमें आर्य-समाज के मुख्य सिद्धान्तों को सामने रखते हुए विविध विषयों पर लेख रहा करते हैं। अब तक इसके जितने अङ्क हमारे पास आये, उनमें सम्पादन-कला की बहुत कुछ कमी रहते हुए भी अनेक ऐसी बातों का समावेश है जिन्हें पढ़कर सर्वसाधारण लाभ उठा सकते हैं। मूल्य ३) वार्षिक, मिलने का पताः—मैनेजर आर्य-कुमार, फतेहपुर (यू० पी०)।

ललिता। यह हिन्दी की एक मासिक-पत्रिका है, इसे प्रकाशित होते अभी कुछ ही समय हुआ। इसमें साहित्य विषय पर बहुत सुन्दर २ लेख और कविताएँ रहती हैं. उस पर विशेषता यह है कि पत्रिका सचित्र है। मूल्य भी कुछ अधिक नहीं, केवल ५) वार्षिक है। जो लोग इसे खरीदना चाहें वे मैनेजर ललिता, सेवा-सदन मेरठ के पते पर पत्र-व्यवहार करें।

सेवक। यह गुजराती भाषा का मासिक पत्र है। जनवरी सन् १९१९ से निकलने लगा है। इसका उद्देश्य गुजराती जनता में राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करना है जो सर्वतोभावेन प्रशंसनीय है। पत्र अपने ढङ्ग का अच्छा है। मूल्य २) वार्षिक। मिलने का पता—मैनेजर, "सेवक"—अहमदाबाद।

हिन्दी चित्रमय जगत् का विशेषाङ्क। हमारे पास पूने के सहयोगी हि० चि० ज० ने अपना विशेषांक भेजा है। यह विशेषांक जनवरी सन् १९१९ का है इसमें लगभग ३०।३२ गद्य-पद्य मय लेखों का सम्पादन है। इसके अतिरिक्त इसमें कई एक सुन्दर २ चित्र हैं, इसलिए इसकी विशेषता बढ़ गई है। हम सहयोगी को उसकी इस सफलता पर बधाई देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय टिप्पणियाँ।

शान्ति की मृगतृष्णा।

संसार शान्ति चाहता है, किन्तु शान्ति का कहीं नाम नहीं। हम देखते हैं कि राष्ट्र-सघ में पांच शक्तियों का आधिपत्य ऐसा जम रहा है, जिससे भविष्य में गुप्त अन्तर्राष्ट्रीय मंत्रणाएँ ज्यों की त्यों हुआ करेंगी, अधीनस्थ जातियां उठ न सकेंगी, स्थल और जल की सेनाएँ बनी रहेंगी, सुविधाजनक मंडियों और प्रभावान्वित भूप्रदेशों पर छीना-झपटी होगी, वस्तुतः इस कार्य में मित्र लोग आपस में एक दूसरे का हाथ बटाएँगे। यह सब कैसे? उत्तर स्पष्ट है कि पांसा पलट गया। औरों की बात जाने दीजिये, स्वयम् राष्ट्रपति विलसन के भाषणों में प्रजासत्ता के लिए संसार को रक्षित रखने की जो व्यवस्था पाई जाती थी, वह छूमन्तर हो गई। वे; 'स्वभाग्य-निर्णय, समानता, बंधुत्व, स्वतंत्रता' आदि शब्दों का अर्थ विस्तृत न करके कुछ इनेगिने लोगों के अन्तर्गत ही समझते हैं, यथाः—पोलैंड का राज्य स्वतंत्र हो, जूगो स्लैव और जेचो—स्लैव स्वाधीन हों, फिलस्तीन में यहूदियों का राज्य स्थापित किया जाय इत्यादि २"। बाकी और सब भाड़ में जायँ इनकी बला से। इन्हें इनकी कुछ परवा नहीं है।

आशान्वित हृदय के मनुष्यो! सावधान! कवि कहता है:—

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सुबीति बहार।
अब अलि रही गुलाब में निपट कटीली डार॥

कृतज्ञता का उत्कृष्ट नमूना!

संस्कृत में एक कहावत है:—"वेश्याङ्ग नैव नृपनीतिरनेक रूपः"—अर्थात् वेश्याओं की वेश-भूषा की भाँति क्षण २ में राजनीति बदला करती है, इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान समय में यह बात अक्षरशः सत्य मालूम पड़ रही है। जो राष्ट्रपति विलसन आज से कुछ मास पूर्व लोगों में श्रद्धेय और प्रतिष्ठित थे, जिनके मुखारविन्द से निकले हुए वचनों को सुनने के लिए यूरोप के बड़े से बड़े शक्तिशाली राष्ट्र लालायित फिरा करते थे, और न केवल इतना ही वरन् शांति का भावी साम्राज्य स्थापित करने में जिनके व्यक्तित्व की बहुत बड़ी गरिमा समझी जाती थी, उन्हीं महाशय के लिए कलकत्ते का इङ्गलिशमैन कहता है:—"ये न जाने कहां से बीच में कूद पड़े और यूरोप को अपनी उंगली के इशारे नचाने का प्रयत्न करने लगे। दो वर्ष पहिले यही महात्मा कहते थे कि हम यूरोप का कुछ भी हाल नहीं जानते; सो भी किस समय? जब यूरोप का एक भाग न्याय, सभ्यता और प्रजासत्ता के लिए और एमेरिका के लिए भी, शेष समस्त यूरोप से लड़ रहा था"।

शाबास! मित्रवर, शाबास! तुम्हारी कृतज्ञता की इस बानगी को देखकर हम तो दङ्ग रह गये!

रौलट बिल और सत्याग्रह।

भारतीय राष्ट्र की स्वतंत्रता नष्ट करने और इसे, इस बीसवीं शताब्दी में, एक आत्म-विस्मृत जाति बनाये रखने के लिए देश की कार्यकारणी सरकार जिन दो बिलों अर्थात् (१) दि इंडियन क्रिमिनल एमेन्डमेंट बिल और (२) इन्डियन क्रिमिनल ला इमेर्जन्सी पावर्स बिल को व्यवस्थापिका सभा द्वारा पास किया चाहती है, इस पर सहयोगी "न्यू-टाइम्स" कहता है:—

"भारत सरकार ने ३० करोड़ भारतवासियों को ललकारा है। यदि भारतवासी इस दर्प का उत्तर देने के लिए दक्षिणी एफ्रिका के सत्या-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही वीर (महात्मा गांधी) के झंडे के नीचे खड़े न होंगे तो उन्हें समाधि में पड़ रहना चाहिये और समाधि के ऊपर एक पत्थर के साइनबोर्ड यह लिखवा देना चाहियेः—

"यहां एक मुर्दा जाति पड़ी है"।

बहुत ठीक, हमारा भी यही मत है।

भारतवर्ष और फिलीपाइन।

इस समय जब कि हमें स्वराज्य के लिए क्रमशः और मन्दगति से उन्नति करने का आश्वासन दिया जारहा है, फिलीपाइन को पूर्ण स्वाधीनता देने के लिए एमेरिका व्याकुल हो रहा है। देखिए, फिलीपाइन रिव्यू में छपा है:—

"एमेरिका से दो अधिकारी यह कहने आये हैं कि हमारी स्वाधीनता हमारी इच्छा पर निर्भर है। कांग्रेस की एक कमेटी यहां यह निर्णय करने को आयेगी कि यहां की जनता की इच्छा क्या है? क्या हम एमेरिका की संरक्षकता में रहना चाहते हैं या उससे बिलकुल स्वतंत्र होना पसन्द करते हैं। हमारी स्वाधीनता के प्रश्न पर अब बिलकुल सन्देह नहीं किया जा सकता। हमारा जहां तक सम्बन्ध है यह निर्भ्रान्त समुज्ज्वल है। यद्यपि हमारी उन्नति सन् १९१३ तक बड़ी तेजी के साथ होनी चाहिये थी, तथापि हमने उसके बाद आश्चर्यजनक उन्नति की। विशेषतया जोन्स एक्ट पास होने के बाद हमने द्रुत वेग से लाभ उठाया जिससे शासन और व्यवस्था का पूरा २ दायित्व मिल गया। किन्तु; जैसा इस बार लिख चुके हैं, एमेरिका से हमारा सम्बन्ध कैसा ही रुचिकर क्यों न हो, हमारी वर्तमान उन्नति कितनी ही आश्चर्यजनक क्यों न हो, हमारे द्वीपवासी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त किया चाहते हैं, और उसे पाकर तभी वे सन्तुष्ट होंगे। हमारा आत्म-निर्णय बहुत प्राचीन है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति या जाति की यह महत्वाकांक्षा—अर्थात् वह जिस प्रतिष्ठा के साथ जीवन व्यतीत किया चाहती है और नियम शान्ति, सुप्रबन्ध तथा पारस्परिक सम्मान के अनुकूल जैसा रहना चाहती है—कम करने का अधिकार किसी को नहीं है। यह सिद्धान्त इतना स्पष्ट है कि जो कोई दूसरे विचार रखता है, वह अपने अन्तःकरण से पूछलें कि क्या किसी और ढङ्ग से उसे सन्तोष मिलेगा? यह बात फिलीपाइन वालों के साथ भी लागू है"।

प्रेस की सार्वभौमिक स्वतंत्रता।

निम्नलिखित सूची के देखने से मालूम होगा कि संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों में प्रेस को स्वाधीनता प्राप्त है, यथाः—

इङ्गलैंड में—प्रेस स्वाधीन है।

स्काटलैंड में—प्रेस स्वाधीन है।

आयर्लैंड में—प्रेस ऐक्ट नहीं है। हां; यदि कोई पत्र राजविद्रोहात्मक विचारों को फैलावे तो वह जप्त किया जा सकता है, किन्तु; यह नहीं कि प्रेस खोलते ही जमानत ली जावे।

संयुक्त राज्य एमेरिका—प्रेस की स्वाधीनता क़ानून से सुरक्षित है।

बृटिश उपनिवेश—प्रेस स्वाधीन हैं।

हंगरी—सन् १८६७ के क़ानून से प्रेस सुरक्षित है।

बेलजियम—सन् १८३१ से प्रेस स्वाधीन हैं।

अर्जेंटाइन रिपब्लिक—प्रेस की स्वाधीनता क़ानून से सुरक्षित है।

चिली—प्रेस की स्वाधीनता सुरक्षित है।

डेनमार्क—सन् १८४६ से प्रेस स्वतंत्र है।

फ्रांस—प्रजातंत्र शासन की स्थापना के समय से प्रेस स्वतंत्र है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जर्मनी—प्रेस के क़ानून स्वाधीनता की रक्षा करते हैं।

ग्रीस—प्रेस स्वतंत्र है।

हालैंड—बहुत समय पूर्व प्रेस स्वाधीन कर दिये गये हैं।

इटली—सन् १८४८ ई० में प्रेस को स्वाधीन कर दिया गया और अब तक बराबर उसी नियम का पालन किया जा रहा है।

मैक्सिको—प्रेस स्वाधीन हैं।

नारवे—प्रेस पूर्णतया स्वतंत्र हैं।

पोर्तगाल—प्रेस स्वाधीन हैं।

रूमानियां—प्रेस स्वतंत्र हैं।

स्पेन—प्रेस स्वाधीन हैं।

स्वीडन—प्रेस की स्वाधीनता रक्षित है।

स्वीज़रलैंड—प्रेस पूर्णतया स्वाधीन है।

यूनान—प्रेस को पूरी स्वतंत्रता है।

किन्तु; भारतवर्ष में ?

सन् १९१० ई० के प्रेस ऐक्ट के मुताबिक:—

बाम्बे क्रानिकल (अंग्रेज़ी) से २०००) रु० की ज़मानत।

अमृत बाज़ार पत्रिका ५०००) रु० की ज़मानत।

न्यू-इंडिया १००००) की ज़मानत ज़ब्त और २०००) की नई ज़मानत।

मराठा ... ... १०००) की ज़मानत।

केशरी (मराठी) ५०००) की नई ज़मानत।

केशरी (हिन्दी) ...... ५००) की ज़मानत।

मार्डन रिव्यू .... ५००) की ज़मानत।

ढाका हेरल्ड .... ५००) की ज़मानत।

न्यू टाइम्स .... ५००) की ज़मानत।

होमरूलर .... ५००) की ज़मानत।

सर्चलाइट .... ५००) की ज़मानत।

हिन्दवासी .... १०००) की ज़मानत।

प्रताप (हिन्दी) १०००) की ज़ब्त और १०००) की नई ज़मानत।

उत्साह (हिन्दी) ५००) की ज़ब्त १०००) की नई ज़मानत।

विजय (हिन्दी) २०००) की ज़मानत।

स्वदेश मित्रम (तामिल) से २०००) की ज़मानत ली गई है। इनके अतिरिक्त न मालूम कितने ही पत्र-पत्रिकाएँ ज़मानत ज़ब्त होने या नई ज़मानत न दे सकने के कारण चल बसे।

इस सूची को देखकर यदि फिर भी कोई स्वतंत्रताभिमानी राजपुरुषों की प्रशंसा करें तो निःसन्देह समझना होगा कि उनको उन्माद का रोग है।

इन्डियन मेडिकल सर्विस में वेतन वृद्धि।

रूटर ने सूचना दी है कि "ब्रिटिश मेडिकल एसोशियेसन के डेपुटेशन के मिलने पर भारत मंत्री ने कहा है कि इन्डियन मेडिकल सर्विस के (सिविल और मिलीटरी) दोनों विभाग के कर्मचारियों को गत दिसम्बर (१९१८) से ३३ फीसदी वेतन अधिक मिलेगा। इसका प्रधान कारण यह है कि अच्छी योग्यता के युरोपियन उम्मेदवारों का ध्यान आकर्षित हो। उन्होंने यह भी कहा है कि उनकी सम्मति में यह ठीक है कि अंग्रेज़ सर्जनों को उतनी सुविधाएँ मिलनी चाहिये जिसमें वे अच्छी तरह प्राइवेट प्रेक्टिस कर सकें। इस पर डेपुटेशन सन्तुष्ट हो गया और उसने वादा किया है कि रँगरूटों की भर्ती में वह अपनी सहयोगिता प्रकट करेगा"।

क्यों न हो, डेपुटेशन की अभिलाषाएँ पूरी हो गईं, उसे अब ज़रूरत ही क्या रही ? होवे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वे रोवें जिन्हें शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मुख्य कामों के लिए सरकार दूर से अंगूठा दिखलाती है !

असन्तोषजनक बजट।

इस समय जब देश में शिक्षा का प्रचार यथेष्ट रूप में नहीं है, प्रान्त २ में लोग दुर्भिक्ष के कारण त्राहि २ कर रहे हैं, नाना प्रकार की बीमारियां उन्हें काल-कवलित कर रही हैं, वाणिज्य-व्यवसाय की शोचनीय स्थिति है, भारत सरकार के अर्थ सचिव सर जेम्स मेस्टन ने प्रजा के हिताहित का ध्यान न रखते हुए बड़ी कौंसिल में इस वर्ष देश के आय-व्यय का जो चिट्ठा पेश किया है, वह बड़ा ही असन्तोष प्रद है। इस वर्ष राजस्व से

आमदनी १२७ करोड़ रुपया

और

खर्च १२७॥ करोड़ रुपया

होगा ! पुलिस के हाथ भर डन्डे पर जिस देश का शासन हो रहा है, वस्तुतः जहां पर किसी प्रकार की अशान्ति नहीं, वहां पिछले वर्ष की अपेक्षा १९ करोड़ रुपया और खर्च करना सरासर जबर्दस्ती नहीं तो और क्या है ? निकालसन कमीशन के अनुसार २९ करोड़ रुपया सेना सम्बन्धी कामों में खर्च किये जाने की व्यवस्था कोई १८ वर्ष पहिले की गई थी, युद्ध आरम्भ होने के पहिले यह रकम बढ़ते बढ़ते ३२ करोड़ तक पहुंच गई। इसके बाद :—

सन् १९१५-१६ में.........३३॥ करोड़
सन् १९१६-१७ में.........३७॥ करोड़
सन् १९१७-१८ में.........४३॥ करोड़
सन् १९१८-१९ में.........५५ करोड़
सन् १९१९-२० में.........६१ करोड़ ८० लाख

हो गई। अब रेलों की बात लीजिये :—इसमें सन्देह नहीं कि रेल-विस्तार से देश के वाणिज्य-व्यापार की वृद्धि और यात्रा सम्बन्धी अनेक कठिनाइयां दूर होती हैं, और इसीलिए 'मैके कमेटी' ने इस व्यय के लिए कुछ वर्ष हुए, १२ करोड़ रुपये खर्च करने की सम्मति दी थी, तथापि भारत सरकार विदेशियों की सुविधा और आमदनी की वृद्धि के लिए ३६ करोड़ रुपये खर्च करना आवश्यक समझती है ! इस तरह भारत सरकार के राजकोष की आय का ३/४ भाग सिर्फ सेना और रेल—इन्हीं दो मदों में उड़ जायगा, किन्तु, इसकी परवा नहीं। उसने शिक्षा, स्वास्थ्य और नहर के मदों से किफायत करना सोच रक्खा है। वह समस्त प्रान्तिक सरकारों को २ करोड़ २५ लाख रुपया देकर कहती है, बस ! इसी में सब मिलकर उपरोक्त विभागों के लिए बांट-चूंट लो ? अस्तु;

हमारी धारणा है कि इस वर्ष का बजट तैयार करने में अर्थ-सचिव ने बड़ी अदूर-दर्शिता से काम लिया है। उन्होंने लोक-हित का कोई काम नहीं किया। अगर कुछ किया है तो इतना ही कि उन्होंने १००० रु० की वार्षिक आमदनी रखनेवालों पर से इन्कम्टैक्स उठा लिया है। इससे ७५ लाख रुपये की हानि होगी सही, किन्तु; उधर एक्सेस प्राफिट टैक्स रखकर ६ करोड़ रुपये की जो आय-वृद्धि होगी, उसके सामने यह प्रायः "कुछ नहीं" के बराबर है।

आश्चर्य तो यह है कि इतने पर भी सरकार को रुपयों का टूटा पड़ा हुआ है और इसीलिए वह विजय ऋण के नाम से १५ करोड़ उधार लिया चाहती है ! अहो, वैचित्र्यम् !

रेलवे रेट।

पार्लामेंट में एक सदस्य के पूछने पर भारत-मंत्री मिस्टर ई० एस० मांटेगू ने यह कहा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम शीघ्र ही ऐसी व्यवस्था कर रहे हैं जिसमें विलायत जानेवालों को युद्ध के समय की अपेक्षा अब से कम रेट पर पास मिल जाया करें। अस्तु; यह है उदारता की वह बानगी, जो अपने देशवासियों की सुविधा का ख़याल करके हमारे प्रभु (!) इस समय शासन के नाम पर इङ्गलैंडवालों को दिखा रहे हैं, किन्तु; उन असंख्य दरिद्र नर-नारियों के लिए जो भारतवर्ष में रेल द्वारा यात्रा किया करते हैं, क्या हो रहा है? पता नहीं। पता हो तो कैसे हो, यार लोगों ने तो पढ़ रक्खा है:—"भारतवर्ष सोने की चिड़िया है"!

आमदनी और रफ्तनी।

गत जनवरी सन् १९१९ में व्यापार का परिमाण आंकड़े विभाग ने यों प्रकाशित किया है:—

आमदनी	रफ्तनी
११५६३००० पौंड	१६५२५०००

गत वर्ष की अपेक्षा

आमदनी में १७५४००० पौंड और रफ्तनी में ११,१२,००० पौंड की वृद्धि हुई है।

युद्ध के पूर्व

सन् १९१४ ई० में १२०२६००० पौंड की आमदनी और १४९३४००० पौंड की रफ्तनी हुई थी।

आंकड़े विभाग का विवरण।

देश में दुर्भिक्ष का कैसा प्रकोप है, यह समझने के लिए विगत वर्ष के खाद्य-पदार्थों की दर को इस वर्ष की दर के साथ तुलना करने पर मालूम होगा कि गेहूं और दाल का बाज़ार भाव ६१ फ़ीसदी चढ़ा हुआ है। चावल की दर ५६ फ़ीसदी बढ़ गई है। ज्वार ७२ फ़ीसदी, बाजरा ८१ फीसदी, चना १०६ फीसदी, घी और गुड़ की दर २७ फीसदी हो गई है। अलबत्ता; नमक अवश्य कुछ सस्ता है।

शोक! नौकरशाही सरकार को इस स्थिति पर कुछ भी तरस नहीं। वह अपनी ही धुन में मस्त है। सन्तप्त प्रजा की गाढ़ी कमाई से उत्पन्न १३० करोड़ रुपयों को फूंक कर भी वह कृषि विभाग पर एक छदाम खर्च करना नहीं चाहती! उल्टे, यह ज़रूर चाहती है कि जहां तक बने, कतर-ब्योंत कर सेना और रेल के लिए रुपये बचा लिये जायँ!

नीति की बलिहारी।

हाउस आव कामन्स में लाला लाजपत राय को एमेरिका से लन्डन या भारत आने के लिए प्रश्न किया गया, भारतमंत्री के उत्तर से मालूम हुआ कि उन्हें आने की आज्ञा नहीं मिल सकती।

ऐसा क्यों? केवल इसी लिए कि लालाजी प्रस्तावित भारत शासन-सुधार में काफी परिवर्तन चाहनेवालों में से एक हैं। और वे अगर यहां आगये तो जबदस्त आन्दोलन होगा। सूझ-बूझ और नीति की बलिहारी!

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १७ — संख्या ३

मर्यादा ।

मासिक पत्रिका ।

मार्च — १९१९

भाग १७] मार्च, सन् १९१९ [संख्या ३

सम्वत-सर का स्वागत ।

[लेखिका—श्रीमती तोरन देवी 'लली' ।]

स्वागत है नव वर्ष तुम्हारा,
प्रेम सहित पूरित सन्मान ।
लज्जा रख निज शुभागमन की,
करना भारत का कल्यान ॥
आते जाते रहते यों तो,
सबही प्रकृति नियम अनुसार ।
किन्तु प्रतापवन्त जन करते,
जीवन में जग का उपकार ॥
बाधायें आती हों पथ में,
निर्भय हो आजाने दो ।
साहस के विकसित होने को,
शुभ प्रकाश पा जाने दो ॥
नहीं भूलना यह, नव सम्वत !
कितना गुरुतर है यह भार ।
मनवांछित फल पाकर होवे,
तव कृतज्ञ सारा संसार ॥

महिमा दिखला करके अपनी,
करना अमर अहो शुभ नाम ।
आदर संयुत होय जगत में,
तेजस्वी जन का यह काम ॥
धीरज युत सत पथ पर चलना,
होना नहीं कभी हत आश ।
रजनी अन्त प्रभात न होवे,
इसका हमें नहीं विश्वास ॥
कर्मवीर कहलाने वालो !
नव सम्वत की रखना लाज ।
देख रहे हैं सब ही तुमको,
आशापूर्ण दृष्टि से आज ॥
"लली" हृदय में राख सदा ही
साहस का पूरा अभिमान ।
मर्यादा की रक्षा करना
हे प्यारे भारत सन्तान ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्रत्यक्ष आचरण और साधारण जीवन।

[लेखक—लाला हरदयाल, एम० ए० ।]

सर्वाङ्ग सुगठित राष्ट्र के लिए साधारण (Public) जीवन एक बहुत ही पवित्र अधिकार है। हमें बड़ी सावधानी के साथ समस्त हानिकारिणी शक्तियों से इसकी रक्षा करनी चाहिये। राजनीतिज्ञों का एक स्कूल भी है जो अप्रत्यक्ष (Private) आचरण को राजनीति से पृथक् करता है। वह स्कूल मनुष्य-जीवन को दो बनावटी भागों में विभक्त करता है और उसके अप्रत्यक्ष और साधारण जीवन पर विचार करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके विचार में मनुष्य चेतनता और प्रवीणता की इन पृथक् अवस्थाओं में आचरण के प्रतिकूल स्वतन्त्र रूप से आचरण कर सकता है। वह उन कार्यों का जो व्यक्तिगत अथवा अप्रत्यक्ष हैं, परित्याग कर देगा और हमें केवल राजनीतिज्ञों के साधारण आचरण की ओर देखने को कहेगा। इस तरह वह बड़े महत्व के नैतिक विभिन्नता को फैलाता है। वह धर्म को भी साधारण एवं अप्रत्यक्ष दो भागों में विभक्त करता है। इस प्रकार का विचार यूरोप के मुख्य केन्द्रों के भीतर फैला हुआ है। दुःख की बात है कि हममें से भी बहुत लोग राजनैतिक प्रवीणता को अग्रसर करने के लिए यूरोपीय प्रदेशों के से दोषपूर्ण नियमों को प्रचलित करने में प्रतिष्ठा पा रहे हैं। वे केवल इधर उधर की बातों में भटकते फिरते हैं। सच तो यह है कि उन्हें भारतीयों की आवश्यकताओं का यथेष्ट ज्ञान नहीं।

यह स्पष्ट है कि जो मनुष्य अपने अप्रत्यक्ष नैतिक विचारों में पिछड़ा हुआ है, वह राजनैतिक जीवन में किसी तरह यथेष्ट भाग नहीं ले सकता। उसे युवकों का पथप्रदर्शक या देश का नेता बनने का अधिकार नहीं। वह भारत के नवयुवकों को नष्ट कर डालनेवाला होगा। राष्ट्रीयता का पवित्र आन्दोलन झूंठे, दग़ाबाज़, दुराचारी तथा दुष्टों द्वारा नहीं चलाया जा सकता। क्योंकि आन्दोलन में केवल उच्च राजनैतिक विचारों से ही कुछ नहीं होता, वरन् उसमें क्रियाशीलता की ज़रूरत पड़ती है। इसीलिए हम कहते हैं कि हमें सच्चे मनुष्यों की आवश्यकता है, किसी जातिविशेष अथवा बात बनानेवालों की नहीं। हमारी सभा में झूठा, अनीतिज्ञ, बेईमान मनुष्य को स्थान नहीं मिलना चाहिए, चाहे वह बड़ा भारी राजनीतिज्ञ ही क्यों न हो, चाहे वह बड़े २ व्याख्यान ही क्यों न देता हो और चाहे उसकी नीति हमारी नीति से हज़ार गुणा श्रेष्ठ ही क्यों न हो। यदि उसका आचरण दोषपूर्ण है तो ये सब बातें व्यर्थ हैं। उस मनुष्य का नाम हमारे आन्दोलन की कार्यावली में कभी नहीं पाया जा सकता जिसकी नैतिक अवस्था हीन हो।

उपर्युक्त मूल सिद्धान्त को कभी नहीं भूलना चाहिये। अदूरदर्शी तथा कच्चे दिल के मनुष्य, जिन्हें कामों की अपेक्षा बातों ही में अधिक विश्वास है, हमारे सम्प्रदाय के बंधन को कठोर बतला सकते हैं। परन्तु वास्तव में, वह हमारे लिए गौरव की वस्तु है। हमको यह सदैव स्मरण रखना चाहिये कि बुरे तथा झूठे मनुष्य के ख़याल में कोई भी पतित जाति उन्नत-शील नहीं बनी, वस्तुतः केवल धर्म ही निर्बलों की रक्षा करता है और उनको बल प्रदान करता है। यदि हम धर्म को छोड़ दें तो यूरोप की शुष्क राजनीति हमें ख़तरे से नहीं बचा सकती। आधुनिक शिक्षाप्रणाली के रंग में रंगे हुए लोग, जो बुरी तरह से जातीय बन्धन से पृथक् हो रहे हैं, कहते हैं कि धर्म को दूर रखने ही से जाति का उत्थान हो सकता है। किन्तु; हम लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि प्रशान्त जातीय जीवन की क्षुद्र नीति से किस तरह हम तुच्छ बनते जा रहे हैं।

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जीवन संग्राम में सिर्फ़ नम्रता अथवा उग्रता ही किसी जाति की रक्षा नहीं करती। वास्तव में, भारत के जातीय जीवन के महार्णव में, जिसका प्रवाह शास्त्रोक्त धर्म में परिणत होकर जारी रहता है, ये सब बातें केवल जल-बुदबुद के सदृश हैं। आचरण की प्रभुता सम्मति से कहीं प्रचण्ड है; इतना ही नहीं, वरन् आचरण हीनता के कारण सम्मति का मूल्य कुछ भी नहीं समझा जाता। भारत गिरा हुआ है, इसका कारण यह नहीं है कि अप्रत्यक्ष तथा राजनैतिक आचरण के विषय में हम लोगों के विचार उच्च नहीं, वरन् यह है कि हम लोगों का हृदय शुष्क है और वह संसार की चीज़ों की ओर, बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी, कर्तव्य को परित्याग करने के लिए विशेष झुक जाता है। भारतीय मस्तिष्क गर्म अथवा नर्म बातों में बड़ी कुशलतापूर्वक तर्क कर सकता है, परन्तु भारतीय हृदय ठण्डा और भारतीय-आत्मा अचेतन है। यही वास्तविक रोग है। हमें मस्तिष्क बल की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है आचरण की, जिसकी हममें कमी है। अतएव शान्त राजनैतिक विचारों से आचरण की बुराइयों का सुधार नहीं हो सकता। एक छटांक धर्म एक मन शुष्क राजनैतिक फ़िलासफ़ी के बराबर है। राष्ट्रीय उन्नति के लिए पवित्रता, सत्यता और उदारता ये सब गुण हैं, और वह मनुष्य, जो इन सब गुणों से विभूषित है, आदर्श देशभक्त है। यद्यपि वह कभी राजनैतिक युद्ध-स्थल में नहीं घुसा है अथवा उसने, उन अनाचारी बुद्धिमान मनुष्यों के झगड़ों में, जो कहते हैं कि हम भिन्न २ राजनैतिक विचार के हैं—भाग नहीं लिया है, तथापि कोई हानि नहीं।

अप्रत्यक्ष आचरण मनुष्य की पवित्रता की जांच करनेवाला है। जो मनुष्य अपनी अप्रत्यक्ष बातों में दूसरों से मिथ्या भाषण करता है, वह कदापि सार्वजनिक जीवन में सत्य नहीं बोल सकता। जब वह प्लेटफ़ार्म पर वक्तृतायें देने के लिए खड़ा होता है अथवा प्रेस में भेजने के लिए कोई लेख लिखने बैठता है, तब उस समय वह कोई नया मनुष्य नहीं बन जाता। वह उसी छद्मवेशी की भांति है जो दिन में नवीन नैतिक वस्त्र को तीन बार बदला करता है। वह मनुष्य नैतिक तथा मानसिक शक्ति का एक खण्ड है; उसकी प्रकृति सर्वोच्च गुणों का सञ्चय नहीं, वरन् अनेक प्रकार की शक्तियों, विचारों, व्यसनों और स्वभावों तथा कार्यों की खिचड़ी है। यह बात विचार से बहिर्गत है कि जो मनुष्य अपने अप्रत्यक्ष जीवन में प्रतिष्ठा नहीं पाता वह सार्वजनिक जीवन में प्रतिष्ठित बन सकता है, क्योंकि प्रकृति ऐसी अस्वाभाविकता को सहन नहीं कर सकती। हम लोग ऐसे मनुष्य को, जो आचरणहीन है, प्रतिष्ठा का पात्र नहीं समझते। हम अपने बालकों को, ऐसा समझकर कि वह नेता है, नमस्कार करने अथवा उसके चरणों में बैठने की सम्मति नहीं दे सकते। हमारा प्रयत्न होगा कि हम भावी सन्तानों को उससे दूर रक्खें क्योंकि वह दुष्ट, कुटिल और झूठा है। साधारण जीवन चालाकी वा तीव्रता के प्रधान अंशों में मनुष्य के उद्गार तथा विचारों की ज्योति है। किसी समाज या समिति की भांति वे उद्गार और विचार, मानसिक और नैतिक बातों का निर्माण करते हैं। मनुष्य के लिए भिन्न २ अवसरों पर भिन्न २ विचारों और उद्गारों का रखना असम्भव है। इस प्रकार का मनुष्य अभिनेता वा नक़ाल बन सकता है, किन्तु वह युवकों का पथप्रदर्शक अथवा समाज-सुधारक नहीं बन सकता।

अप्रत्यक्ष आचरण में विचारों का होना अथवा आत्मसंयम-दोषों की स्थिति—समाज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के उत्तरदायित्व की कमी प्रकट करती है, क्योंकि अप्रत्यक्ष अपराध समाज के प्रति पाप हैं। वे सामाजिक नीति को बड़ी भारी हानि पहुंचाते हैं। वे पाप हमारे पड़ोसी को बड़ा भारी धक्का पहुंचाते हैं। फिर भला; वह मनुष्य जिसके हृदय में सामाजिक ज़िम्मेदारी का पूरा ज्ञान नहीं, किस प्रकार से नवयुवकों को राजनीति सिखाने का भार अपने ऊपर ले सकता है? राजनीतिज्ञ महापुरुष लाखों आत्माओं की शुभचिन्तना में निमग्न रहता है; उसके ऊपर उन सन्तानों की भलाई का भी भार रहता है जिनका अभी इस संसार में प्रादुर्भाव नहीं हुआ। इस दशा में, हम लोग राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्र ऐसे मनुष्य के हाथ में, जो सामाजिक ज़िम्मेदारियों से पूर्णतया अनभिज्ञ है, किस प्रकार दे सकते हैं? क्योंकि इसी पर समाज का ह्रास और जाति का पतन निर्भर है।

जब कोई राष्ट्र पतितावस्था से, दुर्बल और क्षीण शक्तियों से निवृत्त होकर अज्ञानान्धकार को दूर कर—शारीरिक, मानसिक और नैतिक शक्तियों से सुसज्जित होकर आलोकपूर्ण स्थल में प्रवेश करता है तब उसके मनुष्य बदल जाते हैं। वे नवीन सत्यता को समझने लगते हैं। वे शुद्ध लक्ष्य और विचारों की ओर अभिमुख होते हैं। उस जाति का हृदय पवित्र और उच्च जीवन को प्रदर्शित करता है। समस्त मानव समुदाय चैतन्यता के उच्च शिखर पर चढ़ जाता है। ऐसा कभी नहीं विश्वास किया जा सकता कि उसके जीवन के केवल एक भाग का, जो राजनैतिक बातों को सूचित करता है, सुधार हुआ है। यह बात प्रकृति के विरुद्ध है। जब हम कहते हैं कि अमुक जाति का पतन हो गया, तो हमारे कहने का भाव यह है कि जिन मनुष्यों से उसका सङ्गठन हुआ है वे स्वार्थी, भीरु और मूर्ख हैं। उन्नतिशील राष्ट्र में आगामिनी सन्तानें फिर नये सांचे में ढलती हैं—मुमूर्ष हृदयों में पुनर्जीवन का सञ्चार होता है, क्षीण हृदयों में नूतन शक्ति प्रस्फुटित हो उठती है, उन हाथों में, जिनमें निर्बल और पतितों के उद्धार करने की शक्ति का ह्रास हो गया है, फिर से नवीन पौरुष की ज्योति जगमगा उठती है और सामाजिक कार्यों की शक्ति फिर से आविर्भूत होती है। इसके विपरीत जो राष्ट्र अपने गृह जीवन में भ्रष्ट होकर व्यवसाय और राजनीति में श्रेष्ठ बनना चाहे, वस्तुतः जो मनुष्य आपस के कामों में एक दूसरे को धोखा देकर फिर भी सार्वजनिक कार्यों में सच्चाई और निर्भीकता पूर्वक काम करने का प्रयत्न करे, उसकी चेष्टा सफल नहीं हो सकती।

केवल राजनैतिक वादविवाद अथवा राजनैतिक सूत्र किसी राष्ट्र का उत्थान नहीं कर सकता, क्योंकि राजनीति सिर्फ़ राष्ट्रीय जीवन का एक अंश है। राजनैतिक दाँव-पेंच मनुष्य को पवित्र, सच्चा या उदार नहीं बना सकते, वे केवल जातीय इच्छा को सूचित करते हैं। वह इच्छा, अन्य शक्तियों—जैसे व्यापार, धर्म, शारीरिक विकाश आदि—के सांचे में ढली हुई है। राजनैतिक कार्य जीवन रूपी वृक्ष का फल है और सदाचार उसकी जड़ है। राजनैतिक कार्य जाति को सदाचार के महान् आदर्श की ओर ले जाने के लिए हमें बाध्य करता है, किन्तु वह नैतिक शक्ति अनेक भिन्न शक्तियों का समूह है। राजनैतिक विचारों का प्रसार सामाजिक तत्वों के शक्तिशाली एवं स्वस्थ होने का चिह्न है, परन्तु यह ध्यान रखने की बात है कि कार्य सदा कारण की स्थिति में नहीं रहता। राष्ट्रीय जीवन का स्रोत धर्म और विश्वास के स्रोत से विस्मृत किया जाता है। राजनैतिक उन्नति जल का केवल ऊपरी भाग है जो उसकी सतह पर लहराता हुआ झरने के बड़प्पन को दिखलाता है। राजनीति स्वयम्भूत शक्ति नहीं। राजनीति आचारनीति पर निर्भर रहती है, और आचार नीति की निपुणताएँ राष्ट्रीय जीवन की अन्य शाखाओं पर फैली हुई हैं। गृह आनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक शक्ति का एक अत्यन्त आवश्यकीय पदार्थ है। जिस जाति का गार्हस्थ्य-धर्म नष्ट हो गया है, वह संसार में कभी उच्चपद की अधिकारिणी नहीं हो सकती । झूठी, निन्दक तथा कुटिल जाति संसार की जातियों में उच्च स्थान कदापि नहीं पा सकती। आचार नीति ही जाति की आत्मा है; व्यवसाय, राजनीति, साहित्य और गृह-जीवन उसके अङ्ग हैं। आचारनीति राजनैतिक अङ्ग के संयुक्त विचारों को अनेक प्रकार से प्रकट करने की एकता एवं स्थिरता प्रदान करती है। यदि हम आचार-हीन राजनीति का अवलम्बन करेंगे तो हमारी दशा ठीक उसी कुत्ते की भांति होगी, जो जल में अपने ही मुंह के ग्रास का प्रतिबिम्ब देखकर उससे भी वञ्चित हुआ। आचार-हीन राजनीति खाली घड़े के समान है, और वे राजनीतिज्ञ, जिनकी जीवन-परिचर्या अपवित्र और कठोर है, केवल भमभमाते घड़े के तुल्य हैं। राजनीति राष्ट्रीय कार्य का एक भाग है परन्तु आचार-नीति उसका पूरा अंश है। तब ऐसा कौनसा मनुष्य है जो सारी छोड़ आधी के लिए दौड़ेगा? और यदि है भी, तो वह बड़ा भारी मूर्ख और दुर्बुद्धि है।

जीवन की प्रत्येक अप्रत्यक्ष निर्बलता मनुष्य की इच्छा में विकार बतलाती है । दुराचारी और झूठा मनुष्य अपने दुर्व्यसनों पर अधिकार नहीं कर सकता। वह अपने नीच स्वभाव का गुलाम है। यही दशा उन लोगों की भी है जो दोष और पाप में लिप्त हैं। उनकी इच्छा उनके कलुषित आत्मा के साथ युद्ध करने में समर्थ नहीं। तब भला, किस प्रकार एक निर्बल पुरुष राजनैतिक बातों में विश्वसनीय हो सकता है? राजनैतिक मैदान में दौड़नेवालों के लिए प्रबल इच्छा की अत्यन्त आवश्यकता है। क्लेश और कठिनाइयों की झड़ी और आँधी के समय हमारे कार्यकर्ताओं को चट्टान की भांति स्थिर रहना चाहिये। उन्हें अपनी उच्च प्रवृत्तियों की ओर अपनी इच्छाओं को मोड़ना चाहिये। हमारे राजनैतिक नेताओं को दृढ़, अटल, व्यवस्थित चित्त और चैतन्य होना चाहिये। उन्हें कच्चे धागे की तरह नहीं होना चाहिये जो ज़रा भी दबाव पड़ने पर खण्ड २ हो जाता है। वे अनन्त खण्ड २ हो जायँ, पर झुकें नहीं। देश को ऐसे ही मनुष्यों की आवश्यकता हुआ करती है जो समस्त कार्यों में ज्यों के त्यों डटे रहें। गुलाम प्रकृति के मनुष्यों के लिए यह बात कष्टसाध्य है। इसीलिए हम कहते हैं कि जो मनुष्य आचारनीति से विहित है, वह पवित्र एवम् महान् राजनैतिक आन्दोलन के झण्डे को वहन करने अथवा उसपर स्वत्व रखने के सर्वथा अयोग्य है। उदाहरण-स्वरूप यदि वह मद्यसेवी है तो नशे के फेर में उस विश्वास का परित्याग कर सकता है जिसका भार उसके ऊपर है। यदि वह दुराचारी है तो अपने पद को एक स्त्री के लिए छोड़ सकता है। यदि वह मिथ्याभाषी है तो किसी मुख्य बात में मिथ्या भाषण कर सकता है; और इस तरह आन्दोलन को बड़ा भारी धक्का पहुंचा सकता है । कोई भी गुप्त बात उसके अंदर गुप्त नहीं रह सकती । उसकी हानिकारक बातों का शत्रुओं द्वारा अनुकरण हो सकता है और इससे उसकी हानि हो सकती है। ऐसे आदमी का विश्वास नहीं करना चाहिये।

जिस मनुष्य का अप्रत्यक्ष जीवन पवित्र और प्रतिष्ठित नहीं, उसका प्रभाव दूसरों पर कदापि नहीं पड़ सकता। जिस भाँति गंगा-जल मोरी में पड़कर अपनी महिमा खो बैठता है, उसी प्रकार दुराचारी मनुष्य के मुंह से निकलने पर सत्य भी अपना महत्व खो देता है। कोई भी मनुष्य, उस आदमी से—जिसको वह हीन समझता हो अथवा निर्बलबन्धु समझकर उस पर दया करता हो—सच्चाई का पाठ नहीं पढ़ सकता। राजनैतिक शिक्षक को, उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य से जिसको वह शिक्षा देता हो, बहुत उच्च नैतिक स्थान पर रहना चाहिये। नैतिक स्थिति का अन्तर—जिस पर शिक्षक और शिष्य ठहरते हैं—शिक्षा का धर्म है। सदाचार-शून्य व्यक्ति कितना ही बड़ा लेखक अथवा वक्तृत्व शक्ति सम्पन्न ही क्यों न हो, प्रतिष्ठित एवम् विद्वान् नहीं हो सकता। उसके विचारों का प्रभाव मानव समाज पर नहीं पड़ सकता, क्योंकि उसमें शिक्षक का गुण नहीं। सर्व-साधारण उस मनुष्य पर इसलिए विश्वास नहीं कर सकते कि वह नैतिक क्षेत्र में उन्हें आगे बढ़ा नहीं सकता, वह व्यक्ति उन सामान्य गुणों से भी, जो दूसरों को प्राप्त हैं, सर्वांग वञ्चित है। उसकी नैतिक बातें लोगों को झूंठी और बनावटी प्रतीत होंगी, क्योंकि उसका समस्त आचरण राजनैतिक कौशल से पृथक् है। लोग उस पर सन्दिग्ध दृष्टि रखते हैं। उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं देता। लोग उससे असंतुष्ट रहते हैं और कहते हैं कि उसमें शिक्षक बनने की योग्यता नहीं, क्योंकि वह आत्मसंयम का अभ्यास नहीं कर सकता। अस्तु; कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य की अप्रत्यक्ष निर्बलता उसके राजनैतिक बातों में हानि पहुंचाने-वाली है। आचरणहीन मनुष्य कारणवश कुछ काल के लिए समाज का नेता बन सकता है, परन्तु स्थायी रूप से नहीं। यदि कोई काम करना हो अथवा दूसरों के उठाने का भार अपने ऊपर लेना हो तो व्यक्ति विशेष में अच्छे आचरणों का होना उचित है। टूटा हुआ हीरा मूल्यवान नहीं होता फिर तो आचरण उससे अधिक मूल्यवान वस्तु है।

लोग हमें कट्टर धार्मिक कह सकते हैं। वे हमारी नैतिक उत्सुकता पर ठट्टा मार सकते हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि संसार के इतिहास में जितने महान् कार्य हुए हैं, वे आत्मसंयमी, धार्मिक तथा ईश्वर से डरनेवालों ही द्वारा हुए हैं। क्रामवेल ने उन आदमियों को जो बात २ में शपथ करनेवाले तथा शराबी थे, अपनी सेना से निकाल बाहर किया। धार्मिकता तथा पवित्रता ही के कारण सिख जाति गौरव के उच्च शिखर पर आसीन थी। राष्ट्रीयता के लिए धार्मिक आराधना ही आभूषण है। राष्ट्रीयता को उच्च और स्नेहास्पद आचरण की सब से पहिले ज़रूरत है। इस वाक्य से हमारे कहने का यह मतलब नहीं है कि हमें पग २ में अनुसन्धान करना चाहिये अथवा मनुष्य जाति से घृणा करनी चाहिये, वरन् हमारा उद्देश्य यह है कि समस्त राष्ट्रीय पुरुषों को उत्सुक आत्मा की प्रेरणा करनी चाहिये, जो केवल राजनैतिक कामों में ही नहीं बल्कि प्रत्येक बातों में आत्मदर्शन करता है। एक अच्छे राष्ट्रीय पुरुष को कभी निकृष्ट-पिता, धूर्त-मित्र और बेईमान सौदागर नहीं बनना चाहिये। राष्ट्रीयता यदि बुरे नैतिक भावों से युक्त रहती है तो उसका अपमान होता है।

सारांश, राष्ट्र-मंदिर में माता की सच्ची अभ्यर्थना और उपासना करने के लिए ऐसे भक्तों की आवश्यकता है जो दृढ़-चित्त, आत्मसंयमी और सदाचारी हों, जो जीवन को पवित्र समझते हों, सुतरां; आनन्दमय जीवन-यात्रा करने के लिए प्रत्येक अवस्था में उद्योग-रत हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत की आर्थिक स्वाधीनता ।

[लेखक—अध्यापक वी० जी० काले, एम० ए० ।]

मांटेगू चेम्सफोर्ड-योजना में आवश्यक परिवर्तन करने और भिन्न भिन्न मांगों पर कितना ज़ोर दिया जाय, इसके संबंध में यद्यपि भारतीय राजनीतिज्ञों में मतभेद है; परन्तु सभी इस देश के लिए आर्थिक स्वाधीनता मांगने पर ज़ोर देने के सम्बन्ध में एकमत हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता मालूम होता है कि भारत का औद्योगिक और आर्थिक उद्धार देशी व्यापार और उद्योग-धन्धों को अपनी इच्छा और स्वार्थ के अनुसार चलाना हमारी शक्ति पर अवलम्बित है और कोई भी शासन-सुधार यदि वह भारत सरकार के हाथ में यह शक्ति नहीं देना चाहता है तो पूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह तो हमारी पुराना शिकायत है कि भारत सरकार को अपने सर्वोच्च हित की दृष्टि से अपनी व्यापारी और औद्योगिक नीति स्थिर करने का अधिकार दिया नहीं जाता और स्वयं भारत सरकार भी इस पुरानी शिकायत के विरुद्ध प्रजा के आन्दोलन में सम्मिलित हुई है। बम्बई की कांग्रेस ने, सन् १६१५ में, भारत के लिए आर्थिक स्वाधीनता के मांगने का प्रस्ताव पास किया जिसे मान० सर इब्राहीम रहीमतुल्ला सरीखे महानुभाव ने पूर्ण और प्रभावशाली भाषण के साथ पेश किया था। इस लेख के लेखक को उसके समर्थन का कार्य सौंपा गया था। उस समय उसने, एक देश पर दूसरे देशों के आर्थिक प्रभुत्व के कुटिल, यद्यपि अलक्षात, परिणामों के सम्बन्ध में परलोकवासी श्रीयुत रानडे की प्रसिद्ध सम्मति का उल्लेख किया था। मांटेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में भी यह दिखाने के लिए उसका अवतरण दिया गया है कि इस सर्व महत्वपूर्ण प्रश्न पर भारतवासियों का क्या विचार है? परन्तु, सुधार-योजना के प्रणेता इन विचारों की पूर्ति के लिए अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं, क्योंकि उनकी राय है कि २० अगस्त १६१७ की घोषणा में उन पर जो प्रतिबन्ध रक्खे गये हैं उनके अनुसार वे उस सम्बन्ध में सिफारिश करने से वंचित हैं।

यह आर्थिक स्वाधीनता, जिसको इतना अधिक महत्व दिया गया है, ऐसी क्या है? ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे आपने यह अनुमान तो किया ही होगा कि वह देश में आने और बाहर जाने वाले माल के करों का सूचीपत्र तैयार करने, आगत और निर्गत माल पर 'कर' लगाने, और उसको घटाने या बढ़ाने के सरकारी अधिकार को आर्थिक स्वाधीनता कहते हैं। प्रत्येक स्वतंत्र सर्वाधिपति सरकार (राज्य) को यह अधिकार है, क्योंकि इसके बिना उसका सर्वाधिपत्य अपूर्ण है। ग्रेट-बृटेन के समान ही ब्रिटिश साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों को यह अधिकार है, क्योंकि वे स्वाधीन राज्य हैं। शासन-संगठन के सिद्धान्त के अनुसार ग्रेट-बृटेन के राजा को उपनिवेशों की कौंसिलों (Assemblies) द्वारा निश्चित किये हुए नियमों को रद्द कर देने का अधिकार है, परन्तु वे शायद ही इसका उपयोग करते हैं। इङ्गलंड जानता है कि उसे १८वीं शताब्दी में एमेरिकन उपनिवेशों की इच्छाओं के विरुद्ध हठ करके अपने आधिपत्य का उपयोग करने के कारण उनसे हाथ धोना पड़ा और उसने वह शिक्षा हृदयङ्गम कर ली है। अतएव सभी कामों के लिए उपनिवेश स्वाधिपति हैं जो बंधन उन्हें आपस में और मातृभूमि के साथ बांधते हैं वे प्रीति और रक्त के बंधन हैं न कि राजनैतिक अधीनता के। गत चार वर्षों में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि ये बंधन इतने बड़े साम्राज्य को संगठित रखने के लिए काफ़ी नहीं हैं और इसीलिए व्यापार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की सुविधाओं के बंधन लगाकर उन्हें दृढ़ करना चाहिये। 'कर' सुधार का विचार (movement) इसी उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु किया गया था और इस युद्ध के अनुभव के कारण वह प्रस्ताव फिर सामने आरहा है। इस समय यह कहना कठिन है कि युद्ध समाप्ति पर ग्रेटब्रिटेन और उपनिवेशों का वर्तमान सम्बन्ध कहां तक और किस प्रकार बदले जायँगे। इस विषय पर अनेक प्रकार की योजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। पर यह इतना उलझा हुआ है और इतने महत्वपूर्ण परिणामों से भरा है कि यह सरलता से हल नहीं हो सकता। किन्तु साम्राज्य के संगठन को सुधारनेवाले प्रस्तावों में से कोई भी उपनिवेशों की वर्तमान स्वाधीनता के छीनने का विचार नहीं करता और स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों को साम्राज्य की सामान्य मंत्रणा में अपनी इच्छा प्रकट करने से रोकनेवाली योजना स्वीकार भी नहीं की जायगी। उपनिवेश अपनी स्वाधीनता के बारे में बहुत सचेत हैं और जब तक कि उनके काफ़ी प्रतिनिधियों को स्थान देनेवाली साम्राज्य कैबिनेट (मंत्रि-मंडल) की रक्षा और व्यापार-सम्बन्धी मामले तय करने का प्रस्ताव स्वीकार न किया जाय तब तक वे अपने वर्तमान अधिकारों को कभी भी त्यागना स्वीकार नहीं करेंगे।

अधीन राज्य होने के कारण साम्राज्य में भारत का बिलकुल ही भिन्न स्थान है। उपनिवेशों की सरकारों से भिन्न भारत सरकार पूर्ण रीति से बृटिश पार्लामेंट के आधीन है। वह जिस ढंग को उचित समझती है, उसके अनुसार वह अपनी आर्थिक नीति निश्चित नहीं कर सकती। पार्लामेंट भारत-मंत्री के ज़रिये भारत सरकार का प्रबन्ध करती है और भारत मंत्री पार्लामेंट का उत्तरदायी है। बृटिश कैबिनेट (मंत्रि-मंडल) हमारी सरकार को प्रत्येक मामले की भांति आर्थिक नीति में भी अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने में बाध्य करती है। वर्षों से इङ्गलैंड कर-रहित व्यापार करता रहा है और कर-रहित व्यापार भारतवर्ष की अवस्था के लिए योग्य हो या नहीं, तौ भी इसे इङ्गलैंड के मंदिर में पूजा करनी ही पड़ती है। जब दूसरे राष्ट्रों ने प्रतिबंध (Protector) की नीति से अपनी आर्थिक उन्नति की है, तब भारत को उस नीति का अनुसरण करने से रोका गया, क्योंकि बृटिश सरकार की आज्ञा है कि वह कर-रहित व्यापार का ही पालन करे। ग्रेट-बृटेन के कुछ राजनीतिज्ञ विश्वास करते हैं कि 'कर-रहित' व्यापार इङ्गलैंड के समान ही भारत के लिए भी लाभकारी है और प्रतिबंध का प्रयोग इस देश के सर्वोच्च हितों के लिए नाशकारी होगा। किन्तु; कुछ लोग ऐसे भी हैं जो कर-रहित व्यापार में विश्वास नहीं करते और वे इसे बड़ा भारी अन्याय समझते हैं कि बृटिश नीति का पालन करने के लिए भारतवर्ष को विवश किया जाता है। ये कृपालु सज्जन, भारत सरकार का लाभ किस बात में है इसके निश्चय करने का, और अपने विश्वास के अनुसार कार्य करने का, उसे अधिकार नहीं देना चाहते। इङ्गलैंड के भिन्न भिन्न दलों का आर्थिक सिद्धान्त चाहे जो हो किन्तु वे सब भारतवर्ष को एक सी नीति का पालन करने की आज्ञा देने में एक मत हैं और यह सोचा गया है कि बृटिश उद्योग-धंधों और व्यापार, उदाहरणार्थ लंकाशायर के सूत के कारखानों की उन्नति, बनाये रखने के लिए इस देश में कर-रहित व्यापार-पद्धति का होना अत्यन्त आवश्यक है। कर-रहित व्यापार के लाभों के दृढ़ विश्वास और इङ्गलैंड के स्वार्थी धनाढ्यों और व्यापारियों के दबाव के कारण बृटिश सरकार ने भारतवर्ष के अधिकारियों की इच्छाओं की बारबार अवहेलना की है और शासन संगठन में उनका नीचा दर्जा होने के कारण ऊपर से स्वीकृति पाये बिना वे किसी नीति का प्रचार नहीं कर सकते। यहां पर महत्व का प्रश्न यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं है कि कर रहित व्यापार या प्रतिबंध वाला व्यापार भारत के लिए लाभकारी है, यहां की सरकार ने किसी किसी मामले में इस देश के लिए प्रतिबंध की नीति का प्रस्ताव ही नहीं किया, इससे उसकी असहाय अवस्था साफ़ २ ज़ाहिर है। यदि कट्टर अनुदार (अप्रगतिशील) सरकार का वर्चस्व रहा हो तो वह साम्राज्य के राष्ट्रों की करों की सुविधा देने का पक्ष लेगी और भारत को कर रहित-व्यापार नीति के चंगुल से मुक्त होने का मौका मिलेगा। यहां पर साम्राज्यान्तर्गत देशों को कर की सुविधाएँ देने के सिद्धान्त पर सारे साम्राज्य को बांधने-वाली व्यापारी सुविधाओं (Preferential Trade) की योजना में भारत को कौनसा स्थान मिलेगा? इस प्रश्न पर विवाद करना संभव नहीं है। यहां पर तो यह विचार करना आवश्यक है कि चाहे साम्राज्यान्तर्गत देशों की व्यापारी सुविधाओं की योजना हो या न हो तब भी साम्राज्य के भीतर भारत सरकार की क्या स्थिति होगी? उपनिवेशों की सरकारों के कर निश्चित करने के जो अधिकार हैं वैसे ही अधिकार भारत सरकार को भी मिलेंगे, अथवा उसे नीचा स्थान मिलेगा और उसकी व्यापारी और आर्थिक नीति का संचालन ह्वाइट हाल से (भारत-मंत्री के द्वारा) हुआ करेगा? हमारे सामने यही प्रश्न है और भारत के लिए आर्थिक स्वाधीनता मांगना इस देश की सरकार के लिए कर निश्चित करने का अधिकार मांगना है।

मांटेगू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट का प्रस्ताव नहीं है कि भारत को आर्थिक स्वाधीनता मिले। वह कहती है :—"हम भारत सरकार में जिन परिवर्तनों का प्रस्ताव करते हैं उनके बाद भी भारत के व्यापारी कर का निश्चय पार्लामेंट और भारत-मंत्री के हाथ में रहेगा। इसका अर्थ यह है कि बृटिश पार्लामेंट आजकल की भांति आगे भी भारतीय कर पर अपना [illegible] और भारत को आर्थिक स्वाधीनता नहीं दी जायगी। इस प्रकार पार्लामेंट ने जो अधिकार उपनिवेश की सरकारों को पूर्ण रूप से दे रक्खे हैं उन्हें इस देश के सम्बन्ध में वह अपने अधिकार में रक्खेगी और स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेश और अधीन राज्य का वर्तमान भेद क़ायम रक्खा जायगा। सुधार रिपोर्ट के लेखक कहते हैं कि भारत-मंत्री का अधिकार कम कर दिया जायगा और जैसे जैसे भारत सरकार इस देश की व्यवस्थापक कौंसिलों की उत्तरदायी होती जायगी वैसे वैसे यह अधिकार उसे दिया जायगा। आजकल भारत सरकार देश की आन्तरिक शासन के लिए पार्लामेंट की उत्तरदायी है। 'कर' निश्चित करना शासन का मुख्य अर्थ है और उसका अधिकार तभी उसे मिल सकता है जब भारत सरकार इस देश की प्रजा की उत्तरदायी हो। परन्तु भारत सरकार को उत्तरदायी बनाने का कोई विचार नहीं है और उसके शासन में प्रजा का कोई अधिकार नहीं रहेगा तो जब तक भारत की केन्द्रिय सरकार (Central government) में उत्तरदायित्व की वृद्धि न हो तब तक आर्थिक अधिकार पार्लामेंट के ही हाथ में रहना चाहिये।

सुधार-योजना के रचयिताओं का कहना युक्तिपूर्ण है और जो लोग भारत के लिए आर्थिक स्वाधीनता मांगते हैं, वे या तो सिद्ध करें कि भारत सरकार आर्थिक मामलों में भारतीय व्यवस्थापक कौंसिलों की उत्तरदायी रहे या यह स्वीकार करें कि भारत सरकार आर्थिक मामलों में पूर्ण स्वच्छन्द रहे और पार्लामेंट अथवा भारतीय प्रजा की उत्तरदायी न रहे। यह दूसरा प्रस्ताव हमारे कुछ नेताओं को बहुत पसन्द है क्योंकि वे सोचते हैं कि आर्थिक मामलों में सदा भारत-मंत्री की आज्ञा के अनुसार चलने की अपेक्षा जब भारत सरकार पार्लामेंट और भारतीय प्रजा के उत्तरदायित्व से मुक्त हो जायगी तब वह कर निश्चित करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अधिकार का अधिक अच्छा उपयोग कर सकेगी । यह कहा जाता है कि प्रजा भारत सरकार पर कुछ न कुछ दबाव तो डाल सकेगी क्योंकि इस पर जनता का प्रभाव पड़ना बहुत संभव है और जब वह पार्लमेंट के अधिकार की बेड़ी से मुक्त हो जायगी; और भारत के हित के लिए जो कुछ उत्तम समझेगी वह करने में स्वाधीन हो जायगी, तब यह आशा की जा सकती है कि वह व्यवस्थापक कौंसिल की इच्छाओं को संतुष्ट करेगी । हमारा भूतकाल का अनुभव इस युक्ति का समर्थन करता है। यह अच्छी तरह ज़ाहिर है कि सूती माल के कर के सम्बन्ध में भारत सरकार प्रजा के पक्ष में थी और उसने कर का घोर विरोध किया था, परन्तु ऊपर से उसकी इच्छा रद्द कर दी गई और केवल भारत-मंत्री की दासी होने के कारण उसे झुकना पड़ा । भारत सरकार ने १५ वर्ष पहिले शिकायत की थी :—"भूतकाल का सभी अनुभव प्रकट करता है कि इस देश के आर्थिक मामलों के तय करने में इङ्गलैंड के प्रबल दल सदा यही कहते रहेंगे कि हमारे स्वार्थों का ख्याल रखना चाहिए, न कि केवल भारत के स्वार्थों का ध्यान रक्खा जाय" । जब कभी बृटिश स्वार्थों और भारतीय स्वार्थों का विरोध हुआ है तो भारतीय स्वार्थों की हत्या की गई है और भारतमंत्री पार्लमेंट का उत्तरदायी है और भारत सरकार भारत-मंत्री के आधीन है इसलिए इङ्गलैंड में जिस राजनैतिक दल का वर्चस्व रहता है उसी की इच्छा भारतीय नीति को निश्चित करती है ।

१९०८ में लार्ड कर्ज़न ने कहा था—"भारत के सर्वोच्च शासक की हैसियत से भारत-मंत्री के प्रभाव और अधिकार भारत की आर्थिक नीति के संचालन में किस ढंग से काम में लाये गये और इसका हमें भूतकाल में क्या अनुभव मिला है ? यही, कि आर्थिक मामलों में चाहे उसकी राय भारत-मंत्री से मिले या न मिले तो भी उनकी बात उसे माननी पड़ती है । और इस राय का बनना, केवल भारत की अपेक्षा इङ्गलैंड के हित की दृष्टि से अधिक संभव है" । इसलिए विश्वास किया जाता है कि यदि पार्लमेंट भारत सरकार को भारतीय प्रजा के सामने उत्तरदायी न बनावे और आर्थिक मामलों में उसपर से अपना अधिकार कुछ हटा ले, तो भी उन्नति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण कार्य होगा । क्योंकि इस देश के अधिकारी व्यवस्थापक कौंसिलों की इच्छा के अनुसार न चलने के बाहरी दबाव का बहाना न पेश कर सकेंगे ।

भारत के लिए जो आर्थिक स्वाधीनता मांगी जाय वह इस प्रकार की हो :—(१) भारतसरकार को इस देश के लिए विदेश से आने वाले माल पर कर लगाने की स्वाधीनता मिलनी चाहिये और उसमें भारत मंत्री किसी प्रकार की आज्ञा या बाधा न दे सकें, और (२) साथ ही सरकार पर भारतीय व्यवस्थापक सभा का अधिकार रहे । स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों को इसी प्रकार की आर्थिक स्वाधीनता प्राप्त है और भारत को भी इसीकी आवश्यकता है । मांटेगू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट भारत सरकार को प्रजा के सामने उत्तरदायी नहीं बनाना चाहती, इसलिए उसकी योजना में आर्थिक स्वाधीनता को स्थान नहीं दिया गया । हमारे अधिकतर नेता चाहते हैं कि केन्द्रित सरकार और प्रान्तीय सरकारों में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन का प्रारम्भ साथ ही साथ किया जाय और कोई कारण नहीं है कि हम यह क्यों न मांगें कि 'कर' नियुक्त करने के विषय में भी भारत सरकार बृटिश पार्लमेंट की अपेक्षा भारतीय व्यवस्थापक कौंसिलों के सामने उत्तरदायी हो । इस पर यह बाधा उपस्थित की जायगी कि यह मांग बहुत बड़ी है, इसके पाने की रंचमात्र भी आशा नहीं है । और, फिर यह कहा जायगा कि प्रजा को आर्थिक मामलों में अधिकार नहीं मिल सकता, इसलिए बुद्धिमानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी बात में है कि हमें दूसरी साल अनुत्तरदायी भारत सरकार के आर्थिक अधिकार से ही संतुष्ट होना चाहिये। इसका उत्तर यही है कि यह दूसरी बात पाना भी अधिक कठिन नहीं तो उतनी ही कठिन अवश्य है। लोग सुधार-योजना में उसके सिद्धान्तों से न मिलनेवाले परिवर्तन नहीं कराना चाहते हैं। विशेषकर ऐसे लोग तो यह प्रस्ताव ही नहीं करते। जैसा ऊपर कहा गया है, योजना के रचयिता जिन सिद्धान्तों पर आगे बढ़े हैं, वे ये हैं:—जैसे जैसे पार्लामेंट का उत्तरदायित्व बृटिश से हटकर भारतीय जनता पर क्रमशः आता जाय, वैसे ही वैसे भारतीय शासन पर पार्लामेंट का प्रभुत्व भी कम होता जाय। यदि भारत सरकार को किसी व्यवस्थापक सभा के अधिकार में न रखकर, एक महत्वपूर्ण विषय का अधिकार पार्लामेंट से लेकर उसे दिया जाय तो इस सिद्धान्त का पूर्ण रीति से भङ्ग होता है। यदि भारत को इस प्रकार की आर्थिक स्वाधीनता दी जायगी तो, फल यह होगा:—

(१) भारत सरकार प्रायः सभी महत्वपूर्ण मामलों के शासन में पार्लामेंट के सामने उत्तरदायी होगी।

(२) यदि इस देश में, जैसा सुधार-योजना के बहुत से समालोचक प्रस्ताव करते हैं कि भारत सरकार के कुछ विभाग प्रजा के अधिकार में रक्खे जायँ और यदि उसके अनुसार कार्य हुआ तो भारत सरकार थोड़े से कम महत्वपूर्ण विषयों में भारतीय व्यवस्थापक सभा के सामने शायद उत्तरदायी हो।

(३) आर्थिक मामलों में भारत सरकार अधर में लटकती रहेगी; वह न तो पार्लामेंट और न भारतीय प्रजा की उत्तरदायी रहेगी। उसे अनवरुद्ध स्वच्छन्दता मिल जायगी। हम सम्राट् की सरकार से यह आशा कैसे कर सकते हैं कि वह पार्लामेंट की ऐसी स्वच्छन्दता स्थापित करने की और उसे ऐसे अधिकार देने की सिफारिश करें जिसके अनुसार कार्य करने से इङ्गलैंड और साम्राज्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण स्वार्थों पर असर पहुंचता हो। यदि पार्लामेंट इस देश की सरकार के किसी भाग पर से अपना अधिकार कम करेगी तो वह केवल भारतीय व्यवस्थापक सभा को अधिकार देने की दृष्टि से ही करेगी। वह भारत में अपने नौकरों को किसी अन्य के अधिकार में रक्खे बिना अपनी ओर से क्यों स्वाधीन करे? ऊपर जैसा कहा गया है, रुक रुक कर भारत के लिए आर्थिक स्वाधीनता माँगना न तो सयुक्तिक है और न पर्याप्त ही है। उस प्रकार की आर्थिक स्वाधीनता भारत को उपनिवेशों की बराबरी का स्थान नहीं दे सकेगी और भारतवासियों को स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के नागरिक की प्रतिष्ठा के योग्य उन्नत नहीं बना सकेगी।

वास्तव में यह सन्तोष का विषय है कि प्रायः जिन व्यक्तियों और संस्थाओं ने सुधार-योजना में महत्वपूर्ण परिवर्तन की ओर संकेत किया है, उन सबों ने भारत को आर्थिक स्वाधीनता देने पर ज़ोर दिया है। किन्तु वह स्वाधीनता किस ढंग की हो इस सम्बन्ध की कुछ समालोचनाएँ और प्रस्ताव स्पष्ट हैं। उनसे यह प्रकट होता है कि वे भारत सरकार को भारतीय व्यवस्थापक सभा के बंधन से रहित आर्थिक स्वाधीनता नहीं देना चाहते। बड़े लाट की व्यवस्थापक कौंसिल के ग़ैर-सरकारी मेम्बरों की रिपोर्ट में निम्नलिखित सिफ़ारिशें की गई हैं:—

"साम्राज्य के सभी अंगों पर समानता और न्याय के भाव से जो साम्राज्य का कार्य-भार सौंपना निश्चित किया जाय, उसे मानते हुए भारत सरकार को भारतीय व्यवस्थापक सभा के अधिकार में रह कर भारत की आर्थिक नीति का संचालन करने के वैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही अधिकार मिलें जैसे स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों को अपनी आर्थिक नीति के सञ्चालन में प्राप्त हैं"।

यहां उपनिवेशों के आदर्श पर आर्थिक स्वाधीनता की मांग की गई है किन्तु ऊपर के प्रस्ताव में 'साम्राज्य के' से लगा कर 'मानते हुए' तक का वाक्य अनावश्यक है और उससे व्यर्थ शंका और अनिश्चितता उत्पन्न होती है। अतएव माननीय मालवीय जी ने अपनी अलग सम्मति देते हुए ठीक ही लोगों का ध्यान आकर्षित किया था और ऊपर लिखे हुए प्रस्ताव के स्थान पर निम्नलिखित प्रस्ताव रखने का निवेदन किया था:—"भारतीय व्यवस्थापक सभा के अधिकार में रह कर भारत सरकार को अपनी आर्थिक नीति के संचालन में वैसे ही अधिकार मिलने चाहिये जैसे स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों की सरकारों को हैं"। हम समझते हैं कि यह कहना स्पष्ट और विधेयात्मक है और भारतवर्ष को जिस प्रकार की आर्थिक स्वाधीनता की आवश्यकता है उसका साफ साफ वर्णन करता है। ऊपर कहे हुए सिद्धान्त को मालवीयजी ने इस सिफारिश से और भी स्पष्ट कर दिया है कि जिस परिमाण से भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारें व्यवस्थापक सभाओं के सामने उत्तरदायी बनती जायँ, उस परिमाण में भारत सरकार पर से पार्लामेंट और भारत सरकार का अधिकार कम होता जाय"। हम जैसी आर्थिक स्वाधीनता चाहते हैं वैसी चाहे पार्लामेंट हमें दे या न दे, परन्तु हमें वास्तविक वस्तु मांगनी चाहिये और उसके स्थान में झूठ से संतुष्ट नहीं होना चाहिये। सच्ची आर्थिक स्वाधीनता का अर्थ, जैसा ऊपर से दीखता है उससे कहीं अधिक है। उसका अर्थ भारत सरकार का अत्याधिक अधिकार, सरकारी औद्योगिक नीति का सञ्चालन और देश के आर्थिक लाभों की उन्नति है। उसका अर्थ सरकार के महत्वपूर्ण विभाग में भारत को स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों की प्रतिष्ठा पर पहुंचाना है। पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता से कुछ भी कम मांगा जाय तो वह अपर्याप्त कार्य के अयोग्य और शासन-संगठन के सिद्धान्तों से विरुद्ध होगा। संभव है कि अधिक मांगा जा रहा हो। इसलिए संतुष्ट करने के लिए पार्लामेंट किश्तबन्दी से रुक रुक कर हमारी मांग पूरी करना स्वीकार करे, परन्तु यह सोचना निरा भ्रम है कि स्वेच्छाचारी भारत सरकार को आर्थिक स्वाधीनता मिल जाने पर वह प्रजा के लिए हितकारिणी सिद्ध होगी। भारत सरकार महत्वपूर्ण मामलों में भारत-मंत्री के अधीन रहते हुए उन विषयों में भी उसकी इच्छा के विरुद्ध जाने का साहस नहीं करेगी जिनमें उसे नाममात्र की स्वाधीनता मिली है। भारत सरकार को उस अवस्था में रहना कठिन हो जायगा। भारतीय नेताओं को भी वैसी पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता मांगनी चाहिये जैसी उपनिवेशों को प्राप्त है। इस मामले में आधी दूर चलकर विश्राम लेना उचित नहीं और कोई भी अधूरा सुधार देश को संतुष्ट नहीं कर सकेगा।

"देश को इस समय सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि शासन का अन्तरङ्ग राष्ट्रीय हो, चाहे बाहर से वह विदेशी हो—ऐसा शासन जिससे हमें यह प्रतीत हो कि हमारी हितकामना उसके ध्यान में सबके ऊपर है और हमारी इच्छाएं और सम्मतियां उसके लिए कुछ मानी रखती हैं"। —गोखले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज़ का सस्ता होना भी उसके मांग को बहुत बढ़ा देता है। किन्तु; इसकी भी कोई नियमित स्थिर मात्रा नहीं रहती, क्योंकि यह ख़रीदारों की आय वृद्धि के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। यदि किसी के पास किसी चीज़ को ख़रीदने के लिए काफ़ी रुपया होता है और यदि वह चीज़ उसे बहुत ही पसन्द है तो वह चीज़ उसे सस्ती मालूम देती है, किन्तु यदि उसी चीज़ को ख़रीदने के लिए उसके पास काफी रुपया नहीं है तो प्रायः वह उस चीज़ को महँगी समझने लग जाता है। हम लोगों को सस्ती चीज़ों की ज़रूरत हो सकती है किन्तु हम उन्हें पसन्द ही नहीं करते हैं। यह हमारी आर्थिक कठिनाइयां हैं जो हमें सस्ती चीज़ों को ख़रीदने के लिए विवश करती हैं--हमें तो सस्ती चीज़ें पसन्द ही नहीं पड़तीं। कोई भी सस्ती और कम कीमत चीज़ असल में अच्छी नहीं निकल सकती है। सस्ती चीज़ों की मांग ही, बाजार में नकली और खराब चीज़ें लाती हैं। हममें से बहुतेरे ऐसे हैं जो रेशमी चीज़ें पसन्द करते हैं, किन्तु ऐसे बहुत कम होंगे जो उन्हें ख़रीद सकते हों। अन्त में आर्थिक परिणाम यह होता है कि कठिनता के कारण नकली चीज़ें बाज़ार में चमकने लग जाती हैं। थोड़े समय से यह देखने में आरहा है कि गर्मी में पहरने योग्य एक नये प्रकार का कपड़ा--जिसे काशी सिल्क कहते हैं--हिन्दुस्तानी बाज़ार में आपड़ा है। इस कपड़े में सिल्क या रेशम की एक धज्जी भी नहीं है। इसमें केवल एमेरिका या यूरोप से आया हुआ सूत भरा है किन्तु इसका चमक दमक रेशम का सा है। यह इतना सस्ता है कि यह रेशम हो ही नहीं सकता है और सूती कपड़े के लिए इतना दाम देना—जितना कि दिया जा रहा है—बहुत ही ज्यादा है। प्रत्येक मनुष्य जो इसे ख़रीदता है यह जानता है कि यह कपड़ा रेशमी नहीं है, तथापि वह इसे ख़रीदता है क्योंकि यह रेशम-सा मालूम पड़ता है। अस्तु; इस विषय में, यही मानना होगा कि ग्राहक चीज़ से आकर्षित नहीं होता, वरन उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है और यही उसे सन्तुष्ट भी करता है।

बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी चीज़ को ग्रहण करने के लिए तुला रहता है तो वह उस चीज़ के लिए कठिनाइयों का सामना करते हुए भी आवश्यक से अधिक रुपये व्यय करने में ज़रा भी नहीं संकोच करता। बङ्गाल में स्वदेशी आन्दोलन के समय (१९०६) में जब मिल की बनी हुई देशी धोतियां और साड़ियां पहले पहिल बाज़ार में आईं तो वे भद्दी थीं और उनमें वे दोष भरे थे, जिनके होने की प्रथम उद्योग में सम्भावना है। विदेशी कपड़ों के सामने उनके खड़े होने की आशा बहुत ही कम थी। किन्तु; अब वे शनैः २ उन्नति कर रहे हैं और उनकी मांग प्रति दिन बढ़ती जा रही है और कदाचित् कुछ समय में वे अपना सिक्का विदेशी कपड़ों पर जमा लेंगे। धोतियों की कीमतें बढ़ गई हैं। सन् १९०६ में मिल की बनी हुई स्वदेशी धोतियां, बंगाल में २) या २=) में मिलती थीं किन्तु अब वे ५॥) या ६॥=) में मिलती हैं (यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि कपड़ा अब पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा बनने लग गया है) किन्तु जनसमुदाय इसकी परवाह नहीं करता, वह देखता है कि उसके पसन्द के अनुकूल चीज़ है या नहीं? यदि है तो उसे दुकानदार के मुहमांगा दाम देने में उज्र नहीं होता। ऐसा होने का कारण केवल यह नहीं है कि चीज़ काम की होती हैं, वरन् उसका मुख्य कारण यह है कि उनमें कुछ सुन्दरता का भी विचार रक्खा गया है।

ठीक यही बात भारत के अन्य प्रान्तों—विशेषतः पंजाब—की बनी हुई ऊनी चीज़ों के विषय में कही जा सकती है। चरखे से बना हुआ बहुत देश की औद्योगिक उत्पत्ति का फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था परन्तु उसमें वैचित्र्यता बहुत कम पाई जाती थी और सुन्दरता का विचार तो और भी कम रक्खा जाता था। इसी कारण अब पट्टू का रोजगार लगभग मृतप्राय हो रहा है, क्योंकि बाज़ार के अन्य गर्म कपड़ों के सामने इसे खड़े होने का अवकाश नहीं दिया गया। इसका पैट्रन सुधारा नहीं गया और उसका बनाना उन रीतियों पर नहीं स्तम्भित था जिसके कारण यह जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने में उनकी प्रशंसा का पात्र बन गया होता। किन्तु यही चीज़ अब नये रूप में पैदा हुई है जिससे इसके सफल होने की अधिक संभावना है। वे ही चीज़ें जिनसे पट्टू बनाया जाता था, बड़ी सफलता के साथ यूरोपीय पैट्रन के अनुकूल अनेक प्रकार के कपड़े बनाने में लगाई जारही हैं। इसमें सफलता होने के केवल दो कारण हैं। पहिला कारण तो यह है कि वे लोगों की इच्छाओं के अनुकूल बनाये जा रहे हैं और दूसरा कारण यह है कि यद्यपि वे पुराने पट्टुओं की अपेक्षा महँगे हैं तथापि वे उसी प्रकार के अन्य यूरोपीय कपड़ों से सस्ते और अच्छे हैं।

इस छोटे से लेख में इससे अधिक उदाहरणों और दृष्टान्तों को लिखने के लिए स्थान नहीं है, किन्तु मैं आशा करता हूं कि यह बात अब स्पष्ट हो गई होगी कि प्रत्येक उद्योग-धंधे में उसकी उन्नति की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उसमें सुन्दरता का भी अंश अवश्य हो। उसमें कैसी कला और कौनसी कला हो? इसका विचार जहां तक संभव हो, ठीक ठीक रखना चाहिये। इसमें भूल होने से आत्मिक, सांसारिक और औद्योगिक दृष्टि से हानि होगी। भारतीय उद्योग में भारतीय कला का अंश अवश्य रहना चाहिये। भारतीय औद्योगिक कला ही में कला की उपयोगिता स्पष्ट तौर से ज्ञात हो सकती है। यदि भारतीय कला, भारतीय उद्योगों में स्थान नहीं पाती है तो 'कला' में अभ्यास सम्बन्धी उपयोगिता की नींव टूट जाती है और 'कला' के बिना उद्योग अपनी उन्नति नहीं करने पाता। प्रत्येक उद्योग में कला का अंश रहना बहुत आवश्यक है। यदि उद्योगों में भारतीय कला को पूरा पूरा स्थान नहीं दिया जायगा तो इसका परिणाम यह होगा कि भारतीय उद्योगों में विदेशी कला अपना स्थान कर लेगी। ऐसा होने से इन उद्योगों की ठीक वही दशा होगी जो कि अन्य उद्योगों की (कला के बिना) हो गई है। बनारस और मुर्शिदाबाद के बर्तन; काश्मीर, मिर्ज़ापुर और अमृतसर की दरी; देहली, आगरा और लखनऊ की ज़रदोज़ी वस्तुतः काश्मीर और पंजाब की लकड़ी की नक्काशी तथा अन्य स्थानों के उद्योग-धंधे बड़ी हीन दशा में हैं, क्योंकि उनमें ठीक २ कला का भाग नहीं था। मसल मशहूर है कि शारीरिक पतन की अपेक्षा आत्मिक पतन का प्रश्न बुरा और अत्यन्त बुरा होता है। इस बात से हमारे कहने का मतलब यह कि देश में कला के भाव और सत्कार को मार भगाने से बड़ी हानि होती है। कला की बेइज़्ज़ती नहीं होनी चाहिये। मैं शब्द द्वारा उस हृद्गत भाव को प्रकट नहीं कर सकता हूं जब मैंने काशी में महादेव की एक पीतल की मूर्ति को मोमबत्ती रक्खे जाने के काम में लाते हुए देखा, सुतरां ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी और हिन्दुओं के अन्यान्य देवताओं को चाय के प्याले, गुलदस्ता और बटुये में बना हुआ तथा काश्मीर में यूरोपीय पैट्रन की बनी हुई दरी, मुलतान में यूरोपीय जलपात्र की नक़ल जो अनेक चमकदार रंगों में रंगे थे, देहली में नकली ज़रदोज़ी, मथुरा में जर्मनी का बना हुआ कपड़ा, जिस पर राम, कृष्ण या हरि के नाम सर्वत्र अंकित थे और जगन्नाथ जी के मंदिर (पुरी) में जर्मनी की बनी हुई तस्वीर देखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी वस्तु का न होना उतना बुरा नहीं है जितना उसे जान बूझ कर त्याग देना। यदि हम लोग कला-सम्बन्धी बातों से अनभिज्ञ रहते तो अच्छा होता, किन्तु उस बड़े विख्यात कोष से—जिसके हम अधिकारी हैं—जान बूझ कर दृष्टि हटा लेना, उद्योग में उनका प्रयोग कर उनके पुनर्जीवित करने के प्रश्न को जान बूझ कर टाल देना, बुरी और झूठी नकल से कला के राष्ट्रीय भाव को चकनाचूर कर देना, पाप करने के बराबर है। भारतीय चित्र कला उतनी ही पूर्ण है जितनी वह हो सकती है। किसी अन्य देश को आविष्कृत सौंदर्य की अनेक भिन्नता का उतना अभिमान नहीं है जितना भारत को। यदि हम लोग इनमें से कुछ को भी लाभदायक वस्तुओं में स्थान देवें—यदि हम लोग भारतीय कला का संबन्ध भारतीय उद्योग के साथ जुड़ा सकें—तो 'कला' का सच्चा भाव स्वयम् जागृत हो उठेगा और इसकी बुरी और झूठी रुचि स्वयम् ही दूर हो जायगी। और तब औद्योगिक और कला-सम्बन्धी उन्नति का नवयुग आरम्भ हो सकेगा। ऐसा करने के लिए आशाओं और सम्भावनाओं से पूर्ण जीवन को जागृत करना होगा जो अभी तक अनिश्चय और स्थिरता की गोद में पड़ा हुआ है। हमारी कला और उद्योग को यह अधिक निश्चित और अटल नींव पर स्थापित करेगा, जिससे वह बहुत काल तक अपने पैरों खड़ा रह सकेगा।

बहुधा यह कहा जाता है कि कला सब मनुष्यों के लिए नहीं है और लोग इसकी उपयोगिता पर भी प्रश्न करने लग जाते हैं। आरंभ में तो 'कला' शिक्षित और बुद्धिमान मनुष्यों ही के लिए है किन्तु ऐसे मनुष्यों की संख्या अभी बहुत कम है जिसकी हमें वृद्धि करनी चाहिये, क्योंकि राष्ट्र की उन्नति और वृद्धि इसी पर अधिकतर निर्भर है। कला सब प्राणियों के लिये है यदि वे इसकी परवाह करें, यह कोई गुप्त जादू नहीं है।

इसकी पहेलियाँ अभी हल होने को बाक़ी हैं—इसके द्वार खुले हैं और वे सब तरह के लोगों का स्वागत करने के लिए तैयार हैं। किन्तु इनके मध्य होकर निकलना प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करता है, उसके मध्य होकर निकलने के लिए उद्यम की आवश्यकता है। किसी अनभिज्ञ के पैर द्वार ही पर उखड़ जा सकते हैं किन्तु इस पर भी यदि वह द्वार के अन्दर पांव रख लेवे तो वह एक ऐसे कमरे में पहुंच जायगा, जहां उसे असीम आनन्द, आराम और हर्ष प्राप्त होगा।

कला व्यर्थ नहीं है, मैं इस बात को पुनः कहता हूं कि यह लाभदायक वस्तु है और इसकी पूर्ण उपयोगिता व्यक्तिगत वा राष्ट्रीय जीवन में ज्ञात होती है। कला का सम्बन्ध सौंदर्य के साथ है। हम सुन्दर वस्तुओं और भावों को पसन्द करते हैं। पहिली वस्तु से प्रेम करना आर्थिक सिद्धान्तों पर निर्भर रहता है। दूसरी, जो हमारे व्यवहार में काम आती हैं, उसे उद्योग तैयार करता है और यदि इसमें कला का उचित स्थान रहा तो इसका उद्देश्य सफल हो जायगा। सच्चे उद्योग-धंधे कला से उसी प्रकार अलग नहीं रह सकते हैं जिस प्रकार कला जीवन से अलग नहीं रह सकती है। और सर्वोत्तम औद्योगिक वस्तुएँ वही हैं जो सौंदर्य और कला से परिपूर्ण हों, क्योंकि उनका उद्देश्य केवल उपयोगी वस्तुएँ ही बनाना नहीं है किन्तु; हमारे जीवन के साधारण उद्देश्यों को पूर्ण रूप से आभूषित करना है, जिसमें हमें आनन्द प्राप्त हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलित शिक्षाप्रणाली और हमारी आवश्यकता।

[लेखक—श्रीयुत पीताम्बरदत्त पाण्डेय, बी० ए० ।]

किसी भी देश या जाति की उन्नति, अवनति या पतन इस पर निर्भर है कि उसके नेताओं ने उसके आवश्यकीय प्रश्नों को ठीक २ समझा या नहीं; अथवा उन प्रश्नों के महत्व के अनुसार ही वे परिश्रम, दृढ़ता और आत्मबल को काम में लाये या नहीं; तथा जनता ने उनका ठीक २ साथ दिया या नहीं। विज्ञान की उन्नति के कारण हमारी शक्तियां भलाई तथा बुराई के लिए बहुत कुछ बढ़ गई हैं और सारा संसार एक ही कर्मक्षेत्र बन गया है। दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यता—रस्किन के कथनानुसार—सीधे खड़े हुए बाँस पर, ऊपर की ओर एक दौड़ के समान है; जिसमें साँस लेने को समय नहीं मिलता और रुकते ही आगे बढ़नेवाले का बोझा भी अपने सिर पर आ पड़ता है। ऐसी दशा में जो देश दूसरों के समान अग्रगामी नहीं हो सकते उनके अधिक समय तक जीवित रहने में भी संदेह है।

हमारे जातीय जीवन के लिए, कदाचित् शासन-सम्बन्धी सुधारों के बाद, सबसे महत्व का प्रश्न शिक्षाप्रणाली का ठीक करना है। क्योंकि भविष्य में हमारे देशवासियों के विचार और भाव क्या होंगे यह बहुत कुछ शिक्षापद्धति पर अवलम्बित है।

जीना के युद्ध में नेपोलियन से हारकर जर्मनी के कैसर को यह फ़िक्र पड़ी कि किस प्रकार जर्मनी एक बड़ा लड़ाका देश बन सकता है और क्या किया जावे कि वहां के आदमी शासकों के इशारे पर अपनी जान देने को तैयार हो जावें? बस, यही लक्ष्य है जिस पर वहां के स्कूल और कालेजों की शिक्षा इसी विचार के अनुसार चलने लगी; और चाहे यह बात अच्छी हो या बुरी इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्य में जर्मनी को बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई। इसी प्रकार यदि युद्ध आरम्भ होते ही इङ्गलैंड के विद्यार्थी और शिक्षित मनुष्यों ने अपूर्व देशभक्ति और स्वार्थत्याग दिखाया है तो इसका मुख्य कारण यही है कि वहां के स्कूलों और कालेजों का बाहरी और भीतरी जीवन इस ढाँचे पर ढला हुआ है कि वहां पढ़नेवालों में देशभक्ति कूट २ कर भर दी जाती है। यदि हम आज अपने युवकों को धनार्जन में अपाहिज, देश के कामों में उत्साहहीन और अपने बल तथा योग्यता से अपरिचित पाते हैं तो इसका बहुत कुछ दोष यहां की शिक्षाप्रणाली पर ही है।

जिस प्रणाली के जन्मदाता ऐसे दिग्गज थे कि उनके विचार में हिन्दुस्तान ही नहीं सारे पूर्व के देशों का साहित्य और ज्ञान मिलाकर भी यूरोप के एक तीसरे दर्जे के पुस्तकालय की एक अलमारी पुस्तकों के बराबर नहीं; जिसके संचालक ऐसे उदार हृदय सज्जन रहे कि वे १५० वर्ष के बाद भी हमसे उतनी ही दूर हैं जितनी पहिली बार यहां आने के समय; जिनको न तो यहां की सभ्यता का ठीक २ ज्ञान ही हुआ और न जिन्होंने उससे सहानुभूति ही दिखाई; और जिन्होंने हमारी जातीय आकांक्षाओं का सदा बहुत कुछ विरोध ही किया; तो यह सोचने की बात है कि भला ऐसी पद्धति से हमारे जातीय आदर्श कैसे पूरे हो सकते हैं? सच तो यह है कि उन्हें ऐसे लोगों की ज़रूरत थी जो 'जी हुजूर' (!) कहते हुए सारे जन्म क्लर्क बने रहें और इसमें उन्हें सफलता भी आशातीत हुई है। इन्हीं कारणों से जिन पचास, साठ वर्षों में अन्य देशों की शिक्षा में ज़मीन आसमान का फेरफार हो गया, इस देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज़ का सस्ता होना भी उसके मांग को बहुत बढ़ा देता है। किन्तु; इसकी भी कोई नियमित स्थिर मात्रा नहीं रहती, क्योंकि यह ख़रीदारों की आय वृद्धि के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। यदि किसी के पास किसी चीज़ को ख़रीदने के लिए काफ़ी रुपया होता है और यदि वह चीज़ उसे बहुत ही पसन्द है तो वह चीज़ उसे सस्ती मालूम देती है, किन्तु यदि उसी चीज़ को ख़रीदने के लिए उसके पास काफी रुपया नहीं है तो प्रायः वह उस चीज़ को महँगी समझने लग जाता है। हम लोगों को सस्ती चीज़ों की ज़रूरत हो सकती है किन्तु हम उन्हें पसन्द ही नहीं करते हैं यह हमारी आर्थिक कठिनाइयां हैं जो हमें सस्ती चीज़ों को ख़रीदने के लिए विवश करती हैं--हमें तो सस्ती चीज़ें पसन्द ही नहीं पड़तीं। कोई भी सस्ती और कम कीमत चीज़ असल में अच्छी नहीं निकल सकती है। सस्ती चीज़ों की मांग ही, बाज़ार में नकली और ख़राब चीज़ें लाती हैं। हममें से बहुतेरे ऐसे हैं जो रेशमी चीज़ें पसन्द करते हैं, किन्तु ऐसे बहुत कम होंगे जो उन्हें ख़रीद सकते हों। अन्त में आर्थिक परिणाम यह होता है कि कठिनता के कारण नकली चीज़ें बाज़ार में चमकने लग जाती हैं। थोड़े समय से यह देखने में आरहा है कि गर्मी में पहरने योग्य एक नये प्रकार का कपड़ा--जिसे काशी सिल्क कहते हैं--हिन्दुस्तानी बाज़ार में आपड़ा है। इस कपड़े में सिल्क या रेशम की एक धज्जी भी नहीं है। इसमें केवल एमेरिका या यूरोप से आया हुआ सूत भरा है किन्तु इसका चमक दमक रेशम कासा है। यह इतना सस्ता है कि यह रेशम हो ही नहीं सकता है और सूती कपड़े के लिए इतना दाम देना--जितना कि दिया जा रहा है--बहुत ही ज्यादा है। प्रत्येक मनुष्य जो इसे ख़रीदता है यह जानता है कि यह कपड़ा रेशमी नहीं है, तथापि वह इसे ख़रीदता है क्योंकि [illegible]

पड़ता है। अस्तु; इस विषय में, यही मानना होगा कि ग्राहक चीज़ से आकर्षित नहीं होता, वरन उसके रूप पर मुग्ध हो जाता है और यही उसे सन्तुष्ट भी करता है।

बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी चीज़ को ग्रहण करने के लिए तुला रहता है तो वह उस चीज़ के लिए कठिनाइयों का सामना करते हुए भी आवश्यक से अधिक रुपये व्यय करने में ज़रा भी नहीं संकोच करता। बङ्गाल में स्वदेशी आन्दोलन के समय (१९०६) में जब मिल की बनी हुई देशी धोतियां और साड़ियां पहले पहिल बाज़ार में आईं तो वे भद्दी थीं और उनमें वे दोष भरे थे, जिनके होने की प्रथम उद्योग में सम्भावना है। विदेशी कपड़ों के सामने उनके खड़े होने की आशा बहुत ही कम थी। किन्तु; अब वे शनैः २ उन्नति कर रहे हैं और उनकी मांग प्रति दिन बढ़ती जा रही है और कदाचित् कुछ समय में वे अपना सिक्का विदेशी कपड़ों पर जमा लेंगे। धोतियों की कीमतें बढ़ गई हैं। सन् १९०६ में मिल की बनी हुई स्वदेशी धोतियां, बंगाल में २) या २=) में मिलती थीं किन्तु अब वे ५॥) या ६॥=) में मिलती हैं (यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि कपड़ा अब पहले की अपेक्षा बहुत अच्छा बनने लग गया है) किन्तु जनसमुदाय इसकी परवाह नहीं करता, वह देखता है कि उसके पसन्द के अनुकूल चीज़ है या नहीं? यदि है तो उसे दुकानदार के मुंहमांगा दाम देने में उज्र नहीं होता। ऐसा होने का कारण केवल यह नहीं है कि चीज़ काम की होती हैं, वरन् उसका मुख्य कारण यह है कि उनमें कुछ सुन्दरता का भी विचार रक्खा गया है।

ठीक यही बात भारत के अन्य प्रान्तों--विशेषतः पंजाब--की बनी हुई ऊनी चीज़ों के विषय में कही जा सकती है। चरखे से बना [illegible] औद्योगिक उत्पत्ति का फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था परन्तु उसमें वैचित्र्य बहुत कम पाई जाती थी और सुन्दरता का विचार तो और भी कम रक्खा जाता था। इसी कारण अब पट्टू का रोजगार लगभग मृतप्राय हो रहा है, क्योंकि बाज़ार के अन्य गर्म कपड़ों के सामने इसे खड़े होने का अवकाश नहीं दिया गया। इसका पैट्रन सुधारा नहीं गया और उसका बनाना उन रीतियों पर नहीं स्तम्भित था जिसके कारण यह जनता की आवश्यकताओं को पूरा करने में उनकी प्रशंसा का पात्र बन गया होता। किन्तु यही चीज़ अब नये रूप में पैदा हुई है जिससे इसके सफल होने की अधिक संभावना है। वे ही चीज़ें जिनसे पट्टू बनाया जाता था, बड़ी सफलता के साथ यूरोपीय पैट्रन के अनुकूल अनेक प्रकार के कपड़े बनाने में लगाई जारही हैं। इसमें सफलता होने के केवल दो कारण हैं। पहिला कारण तो यह है कि वे लोगों की इच्छाओं के अनुकूल बनाये जा रहे हैं और दूसरा कारण यह है कि यद्यपि वे पुराने पट्टुओं की अपेक्षा महँगे हैं तथापि वे उसी प्रकार के अन्य यूरोपीय कपड़ों से सस्ते और अच्छे हैं।

इस छोटे से लेख में इससे अधिक उदाहरणों और दृष्टान्तों को लिखने के लिए स्थान नहीं है, किन्तु मैं आशा करता हूं कि यह बात अब स्पष्ट हो गई होगी कि प्रत्येक उद्योग-धंधे में उसकी उन्नति की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उसमें सुन्दरता का भी अंश अवश्य हो। उसमें कैसी कला और कौनसी कला हो? इसका विचार जहां तक संभव हो, ठीक ठीक रखना चाहिये। इसमें भूल होने से आत्मिक, सांसारिक और औद्योगिक दृष्टि से हानि होगी। भारतीय उद्योग में भारतीय कला का अंश अवश्य रहना चाहिये। भारतीय औद्योगिक कला ही में कला की उपयोगिता स्पष्ट तौर से ज्ञात हो सकती है। यदि भारतीय कला भारतीय उद्योगों में स्थान नहीं पाती है तो 'कला' में अभ्यास सम्बन्धी उपयोगिता की नीव टूट जाती है और 'कला' के बिना उद्योग अपनी उन्नति नहीं करने पाता। प्रत्येक उद्योग में कला का अंश रहना बहुत आवश्यक है। यदि उद्योगों में भारतीय कला को पूरा पूरा स्थान नहीं दिया जायगा तो इसका परिणाम यह होगा कि भारतीय उद्योगों में विदेशी कला अपना स्थान कर लेगी। ऐसा होने से इन उद्योगों की ठीक वही दशा होगी जो कि अन्य उद्योगों की (कला के बिना) हो गई है। बनारस और मुर्शिदाबाद के बर्तन; काश्मीर, मिर्ज़ापुर और अमृतसर की दरी; देहली, आगरा और लखनऊ की ज़रदोज़ी वस्तुतः काश्मीर और पंजाब की लकड़ी की नक्काशी तथा अन्य स्थानों के उद्योग-धंधे बड़ी हीन दशा में हैं, क्योंकि उनमें ठीक २ कला का भाग नहीं था। मसल मशहूर है कि शारीरिक पतन की अपेक्षा आत्मिक पतन का प्रश्न बुरा और अत्यन्त बुरा होता है। इस बात से हमारे कहने का मतलब यह कि देश में कला के भाव और सत्कार को मार भगाने से बड़ी हानि होती है। कला की बेइज़्ज़ती नहीं होनी चाहिये। मैं शब्द द्वारा उस हृद्गत भाव को प्रकट नहीं कर सकता हूं जब मैंने काशी में महादेव की एक पीतल की मूर्ति को मोमबत्ती रक्खे जाने के काम में लाते हुए देखा, सुतरां ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी और हिन्दुओं के अन्यान्य देवताओं को चाय के प्याले, गुलदस्ता और बटुये में बना हुआ तथा काश्मीर में यूरोपीय पैट्रन की बनी हुई दरी, मुल्तान में यूरोपीय जलपात्र की नकल जो अनेक चमकदार रंगों में रंगे थे, देहली में नकली ज़रदोज़ी, मथुरा में जर्मनी का बना हुआ कपड़ा, जिस पर राम, कृष्ण या हरि के नाम सर्वत्र अंकित थे और जगन्नाथ जी के मंदिर (पुरी) में जर्मनी की बनी हुई तस्वीर देखी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी वस्तु का न होना उतना बुरा नहीं है जितना उसे जान बूझ कर त्याग देना । यदि हम लोग कला-सम्बन्धी बातों से अनभिज्ञ रहते तो अच्छा होता, किन्तु उस बड़े विख्यात कोष से—जिसके हम अधिकारी हैं—जान बूझ कर दृष्टि हटा लेना, उद्योग में उनका प्रयोग कर उनके पुनर्जीवित करने के प्रश्न को जान बूझ कर टाल देना, बुरी और झूठी नकल से कला के राष्ट्रीय भाव को चकनाचूर कर देना, पाप करने के बराबर है । भारतीय चित्र कला उतनी ही पूर्ण है जितनी वह हो सकती है । किसी अन्य देश को आविष्कृत सौंदर्य की अनेक भिन्नता का उतना अभिमान नहीं है जितना भारत को । यदि हम लोग इनमें से कुछ को भी लाभदायक वस्तुओं में स्थान देवें—यदि हम लोग भारतीय कला का संबन्ध भारतीय उद्योग के साथ जुड़ा सकें—तो 'कला' का सच्चा भाव स्वयम् जागृत हो उठेगा और इसकी बुरी और झूठी रुचि स्वयम् ही दूर हो जायगी । और तब औद्योगिक और कला-सम्बन्धी उन्नति का नवयुग आरम्भ हो सकेगा । ऐसा करने के लिए आशाओं और सम्भावनाओं से पूर्ण जीवन को जागृत करना होगा जो अभी तक अनिश्चय और स्थिरता की गोद में पड़ा हुआ है । हमारी कला और उद्योग को यह अधिक निश्चित और अटल नीव पर स्थापित करेगा, जिससे वह बहुत काल तक अपने पैरों खड़ा रह सकेगा ।

बहुधा यह कहा जाता है कि कला सब मनुष्यों के लिए नहीं है और लोग इसको उपयोगिता पर भी प्रश्न करने लग जाते हैं । आरंभ में तो 'कला' शिक्षित और बुद्धिमान मनुष्यों ही के लिए है किन्तु ऐसे मनुष्यों की संख्या अभी बहुत कम है जिसकी हमें वृद्धि करनी चाहिये, क्योंकि राष्ट्र की उन्नति और वृद्धि इसी पर अधिकतर निर्भर है । कला सब प्राणियों के लिये है यदि वे इसकी परवाह करें, यह कोई गुप्त जादू नहीं है ।

इसकी पहेलियाँ अभी हल होने को बाक़ी हैं—इसके द्वार खुले हैं और वे सब तरह के लोगों का स्वागत करने के लिए तैयार हैं । किन्तु इनके मध्य होकर निकलना प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करता है, इसके मध्य होकर निकलने के लिए उद्यम की आवश्यकता है । किसी अनभिज्ञ के पैर द्वार ही पर उखड़ जा सकते हैं किन्तु इस पर भी यदि वह द्वार के अन्दर पांव रख लेवे तो वह एक ऐसे कमरे में पहुंच जायगा, जहां उसे असीम आनन्द, आराम और हर्ष प्राप्त होगा ।

कला व्यर्थ नहीं है, मैं इस बात को पुनः कहता हूं कि यह लाभदायक वस्तु है और इसकी पूर्ण उपयोगिता व्यक्तिगत वा राष्ट्रीय जीवन में ज्ञात होती है । कला का सम्बन्ध सौंदर्य के साथ है । हम सुन्दर वस्तुओं और भावों को पसन्द करते हैं । पहिली वस्तु से प्रेम करना आर्थिक सिद्धान्तों पर निर्भर रहता है । दूसरी, जो हमारे व्यवहार में काम आती हैं, उसे उद्योग तैयार करता है और यदि इसमें कला का उचित स्थान रहा तो इसका उद्देश्य सफल हो जायगा । सच्चे उद्योग-धंधे कला से उसी प्रकार अलग नहीं रह सकते हैं जिस प्रकार कला जीवन से अलग नहीं रह सकती है । और सर्वोत्तम औद्योगिक वस्तुएँ वही हैं जो सौंदर्य और कला से परिपूर्ण हों, क्योंकि उनका उद्देश्य केवल उपयोगी वस्तुएँ ही बनाना नहीं है किन्तु; हमारे जीवन के साधारण उद्देश्यों को पूर्ण रूप से आभूषित करना है, जिसमें हमें आनन्द प्राप्त हो ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलित शिक्षाप्रणाली और हमारी आवश्यकता।

[लेखक—श्रीयुत पीताम्बरदत्त पाण्डेय, बी० ए० ।]

किसी भी देश या जाति की उन्नति, अवनति या पतन इस पर निर्भर है कि उसके नेताओं ने उसके आवश्यकीय प्रश्नों को ठीक २ समझा या नहीं; अथवा उन प्रश्नों के महत्व के अनुसार ही वे परिश्रम, दृढ़ता और आत्मबल को काम में लाये या नहीं; तथा जनता ने उनका ठीक २ साथ दिया या नहीं। विज्ञान की उन्नति के कारण हमारी शक्तियां भलाई तथा बुराई के लिए बहुत कुछ बढ़ गई हैं और सारा संसार एक ही कर्मक्षेत्र बन गया है। दूसरी ओर पश्चिमी सभ्यता—रस्किन के कथनानुसार—सीधे खड़े हुए बाँस पर, ऊपर की ओर एक दौड़ के समान है; जिसमें साँस लेने को समय नहीं मिलता और रुकते ही आगे बढ़नेवाले का बोझा भी अपने सिर पर आ पड़ता है। ऐसी दशा में जो देश दूसरों के समान अग्रगामी नहीं हो सकते उनके अधिक समय तक जीवित रहने में भी संदेह है।

हमारे जातीय जीवन के लिए, कदाचित् शासन-सम्बन्धी सुधारों के बाद, सबसे महत्व का प्रश्न शिक्षाप्रणाली का ठीक करना है। क्योंकि भविष्य में हमारे देशवासियों के विचार और भाव क्या होंगे यह बहुत कुछ शिक्षापद्धति पर अवलम्बित है।

जीना के युद्ध में नेपोलियन से हारकर जर्मनी के कैसर को यह फ़िक्र पड़ी कि किस प्रकार जर्मनी एक बड़ा लड़ाका देश बन सकता है और क्या किया जावे कि वहां के आदमी शासकों के इशारे पर अपनी जान देने को तैयार हो जावें? बस, यही लक्ष्य है जिस पर वहाँ के स्कूल और कालेजों की शिक्षा इसी विचार के अनुसार ढलने लगी; और चाहे वह बात अच्छी हो या बुरी इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्य में जर्मनी को बहुत कुछ सफलता प्राप्त हुई। इसी प्रकार यदि युद्ध आरम्भ होते ही इङ्गलैंड के विद्यार्थी और शिक्षित मनुष्यों ने अपूर्व देशभक्ति और स्वार्थत्याग दिखाया है तो इसका मुख्य कारण यही है कि वहां के स्कूलों और कालेजों का बाहरी और भीतरी जीवन इस ढाँचे पर ढला हुआ है कि वहां पढ़नेवालों में देशभक्ति कूट २ कर भर दी जाती है। यदि हम आज अपने युवकों को धनार्जन में अपाहिज, देश के कामों में उत्साहहीन और अपने बल तथा योग्यता से अपरिचित पाते हैं तो इसका बहुत कुछ दोष यहां की शिक्षाप्रणाली पर ही है।

जिस प्रणाली के जन्मदाता ऐसे दिग्गज थे कि उनके विचार में हिन्दुस्तान ही नहीं सारे पूर्व के देशों का साहित्य और ज्ञान मिलाकर भी यूरोप के एक तीसरे दर्जे के पुस्तकालय की एक अलमारी पुस्तकों के बराबर नहीं; जिसके संचालक ऐसे उदार हृदय सज्जन रहे कि वे १५० वर्ष के बाद भी हमसे उतनी ही दूर हैं जितनी पहिली बार यहां आने के समय; जिनको न तो यहां की सभ्यता का ठीक २ ज्ञान ही हुआ और न जिन्होंने उससे सहानुभूति ही दिखाई; और जिन्होंने हमारी जातीय आकांक्षाओं का सदा बहुत कुछ विरोध ही किया; तो यह सोचने की बात है कि भला ऐसी पद्धति से हमारे जातीय आदर्श कैसे पूरे हो सकते हैं? सच तो यह है कि उन्हें ऐसे लोगों की ज़रूरत थी जो 'जी हुजूर' (!) कहते हुए सारे जन्म क्लर्क बने रहें और इसमें उन्हें सफलता भी आशातीत हुई है। इन्हीं कारणों से जिन पचास, साठ वर्षों में अन्य देशों की शिक्षा में जमीन आसमान का फेरफार हो गया, इस देश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वह भद्दी और अधूरी प्रणाली और भी जकड़ दी गई।

मैकाले के समय में इङ्गलैंड में भले ही इसी प्रकार की पद्धति जारी रही हो पर यह न भूलना चाहिये कि समय की गति के साथ वहां के विश्वविद्यालयों का जीवन बदलता रहा है। स्कूलों का जीवन शिक्षकों के भावों पर निर्भर है। क्योंकि इङ्गलैंड में शिक्षकों का दर्जा ऊंचा है; वहां की जनता और सरकार उनकी बहुत इज़्ज़त करती है; वहां देश के अच्छे २ विद्वान् शिक्षा-विभाग में काम करते हैं और उनको पूरा २ कार्यक्षेत्र भी दिया जाता है। क्योंकि इङ्गलैंड स्वाधीन देश है वहां कोई ऐसे सक्यु- लर नहीं हैं जो विद्यार्थियों के जीवन को संकुचित बना दें। नहीं! नहीं! सारे संसार में इङ्गलैंड इस बात के लिए मशहूर है कि वहां के स्कूलों का जीवन इस प्रकार से बना होता है कि वहां के विद्यार्थी शरीर में हृष्टपुष्ट, काम करने में चतुर और अनुभवी, साहसी, स्वाधीन विचारवाले और पक्के देशभक्त तथा देश के सब प्रकार के राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नों से भलीभांति परिचित होते हैं।

वर्तमान प्रणाली का सबसे बड़ा दोष उसका एकदेशीय और अधूरा होना है। यदि मनुष्य अपने शरीर को बहुत दिन तक भूला रह सकता; यदि वह केवल ज्ञानतन्तुओं का एक गट्ठरमात्र होता; यदि उसका काम स्वयं लिखनेवाली मैशीन की तरह बाहर की बातों को भीतर भर देना होता या दिन रात केवल विचार करते रहने में ही उसके कर्तव्यों और सुखों का अन्त हो जाता तो हम उन लोगों की बुद्धि को कुछ समझ सकते जिन्हें एक बढ़ती हुई और जीवन से फड़कती हुई आत्मा की उन्नति के लिए केवल ज्ञानार्जनी वृत्तियों के अनुशीलन के अतिरिक्त और किसी बात की ज़रूरत न मालूम हुई। बढ़ते हुए विज्ञान से प्रकृति की शक्तियों को [illegible] मदान्ध यूरोप की कदाचित् सब से बड़ी भूल यही रही है कि ज्यों २ विज्ञान की उन्नति होती गई त्यों २ उसने धार्मिक जागृति से अपना मुंह फेर लिया। कुछ भी हो, जब हम यह विचार करते हैं कि मनुष्य के जीवन में उसके कामों पर बुद्धि से दया, प्रेम, क्रोध, घृणा आदि का अधिक प्रभाव पड़ता है, जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है और उसकी बड़ाई और सभ्यता इसी में है कि उसने मनुष्य संसार को समाज रूपी ऐसा संगठन बनाया है कि उसके कारण उनकी स्वार्थी वृत्तियों के कुछ बुरे फल रुक गये हैं, जब उसकी जानवरों से इसी बात में विशेषता है कि "जिओ और लूटो" वाले सिद्धान्त को सामने न रख उसने "जिओ और जीने दो" के सिद्धान्त को फैलाने की चेष्टा की है; तब उस प्रणाली के तरफ़दारों की बुद्धि पर, जिसमें (प्रेम, दया, भक्ति आदि) ऊँची वृत्तियों के अनु- शीलन के लिए कुछ भी परवा न की गई हो, हमें तरस आता है।

यदि ज्ञानार्ज्जनी वृत्तियों के अनुशीलन में भी यह प्रणाली दूषित न होती तो हम जीवन के एक अंग की पूर्ति के लिए उसके कृतज्ञ हो सकते। किन्तु; उस विभाग में भी शिशु-विज्ञान (Child psychology) की उन्नति और आगे बढ़नेवाले देशों के अनुभव से हमें कोई लाभ न पहुंचा। यहां के अधिकारी लोग अपने बनाये हुए खिलौनों से इतने मुग्ध रहे कि उनमें कभी परिवर्तन भी करना होगा इस बात का उन्हें ध्यान भी न हुआ। शिक्षा के ज्ञान विभाग का उद्देश्य आध्यात्मिक दृष्टि से मनुष्य की ज्ञानार्जनी वृत्तियों का विकाश और सामाजिक दृष्टि से उसको उसकी अवस्था के अनुसार बाह्य संसार का परिचय दिलाना है।

इस विषय में सब से अधिक हानि एक बिलकुल विदेशी भाषा के माध्यम बना देने से हुई है। हिन्दुस्तानी बच्चे अंग्रेज़ी खूबी के साथ [illegible] बस; इसी बात पर इतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान दिया जाता है कि एक रूप में इस प्रणाली का यही प्रधान लक्ष्य कहा जा सकता है। अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा के लिए अन्य सभी बातों की आहुति दे दी जाती है। चाहे सरल विषय भले ही पहाड़ हो जायँ, चाहे डेलाफास साहब के इतिहास के कठिन वाक्य रटने और उगलने के हठयोग से कोमल बच्चों के दिमागों के पुर्जे हिल उठें और इस असामयिक आघात से वे सदा के लिए बहुत कुछ नाकामयाब हो जावें; इन लोहे के चने चबाने से उनकी ज्ञानपिपासा चाहे भले ही बुझ जावे और वे उस दिन के लिए उत्सुक हो जावें जब वे परीक्षा पास करके सदा के लिए पुस्तकों को लात मार सकें; पर सभी विषय—भूगोल, इतिहास, संस्कृत और हिन्दी —का माध्यम अंग्रेज़ी ही होना चाहिये ताकि लड़के विदेशी भाषा को खूब सीख लें? चाहे विदेशी भाषा के विदेशी संसार में रहने से शिक्षित और अर्द्ध-शिक्षित लोग अपने ही देश में विदेशी हो जायँ पर इस भ्रम के कारण कि अंग्रेज़ी के द्वारा हम कैनाडावालों से बोल सकेंगे —जिनकी आंखों में भारतीयों का काला रंग मिरच की भांति लगता है—हमारी शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी ही होना चाहिये। धन्य है इन महार्णवों की बुद्धि को, और शोक है उन लोगों की कायरता पर जो इस अस्वाभाविकता की पराकाष्ठा के विरोध में एक स्वर तक नहीं उठा सकते!

बाह्य ज्ञान की शिक्षा के विषय में तो इतना कहना ही काफी होगा कि जो अधिकारी न तो हमारी आकांक्षाओं से सहानुभूति रखते थे और न जिनको हमारी आवश्यकताओं का ठीक ज्ञान था, उनके लिए देश और समाज को ठीक २ ज्ञान देने का प्रबन्ध करना असम्भव था।

अब देखना यह चाहिये कि यह प्रणाली पढ़नेवालों की ज्ञानार्जनी वृत्तियों और मानसिक शक्तियों के विकाश में कहां तक सहायक होती है। यहां पर यह न भूलना चाहिये कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को विश्वकोष बनाना नहीं है और किसी न किसी प्रकार थोड़ी सी रूखी सूखी बातों को रटाना कोई महत्व का काम नहीं। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिये कि विद्यार्थी की सब मानसिक शक्तियां जागृत हो उठें! उसमें ज्ञान की इच्छा उत्पन्न हो जाय; वह स्वयम् ज्ञान इकट्ठा करने के योग्य बन जाय; और उसमें स्वाधीन विचार की योग्यता आ जाय। शरीर की तरह मन के अवयवों के वृद्धि के लिये भी व्यायाम तभी तक अधिक लाभकर होता है जब तक वह रुचिकर बना रहे। इससे यह स्पष्ट हो जायगा कि छोटी उम्र के बालकों को, जो स्वभाव से चञ्चल और क्रियाशील होते हैं, भोजन के बाद पांच घंटे तक हाथ पर हाथ धरे, मुंह लिये बैठे रहना बहुत कुछ अस्वाभाविक और उनकी मानसिक शक्तियों के विकाश के लिये हानिकर है। यदि हम ज्ञान के उपार्जन को स्वाभाविक बनाना चाहते हैं तो प्रत्येक अवस्था में शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिसका विद्यार्थी के जीवन से समता का सम्बन्ध हो और जिसका अध्ययन वह रुचिपूर्वक कर सके। मन के उकताने पर भी अपने ज्ञान के टुकड़ों को बेंत के भय द्वारा भीतर ठूंसने से सब से बड़ी हानि यह होती है कि विद्यार्थियों की ज्ञान-पिपासा बुझने लगती है जिसका ठीक दशा में रहना ज्ञानार्जनी वृत्तियों की उन्नति के लिए परमावश्यक है। दूसरे देशों की ओर देखने से भी यही जान पड़ता है कि हमारे देश के प्रारंभिक स्कूल बाबा आदम के ज़माने के नमूने हैं। कहां तो स्विट्ज़रलैंड, एमेरिका आदि देशों के वे स्कूल जो तस्वीर, खिलौने, मैशीन और औज़ारों से सुसज्जित होने के कारण अजायब घर से जान पड़ते हैं; जहां बालकों का खेलाने, बहलाने और साथ ही साथ अनायास ही पढ़ाने का काम इतनी सरलता से होता है कि उनके मा बाप दंगा करने पर उन्हें स्कूल न भेजने की धमकी देते हैं और कहां हमारे देश के वे स्कूल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और टीचर जिनका नाम लेते ही बालकों के होश उड़ जाते हैं, ज्ञानपिपासा अपने घर को भाग जाती है और उनका सिर चक्कर खाने लगता है। क्या यही वह दशा है जिसमें ज्ञानार्जनी वृत्तियों की सरल और स्वाभाविक उन्नति होती है? यथार्थ में इन रण-पण्डित शिक्षकों का उपर्युक्त स्थान स्कूल नहीं कसाईखाना है।

माध्यमिक शिक्षा के प्रारम्भिक दर्जों के लिए भी ठीक यही बातें कही जा सकती हैं। इन दर्जों में अंग्रेज़ी को माध्यम बनाने में तो मानों अस्वाभाविकता की चरमसीमा हो गई है। स्कूल में किसी को इतना ज्ञान नहीं होता कि अंग्रेज़ी के द्वारा सरलता या स्वाधीनता से इतिहास या भूगोल को लिख या पढ़ सकें। फल यह होता है कि विद्यार्थी सारी शक्ति को एक ही दी हुई पुस्तक के रटने में लगा देते हैं। दूसरे इन विषयों के पढ़ाने का ढंग इतना भद्दा और उनका चुनाव इतना खराब है कि वे बिलकुल ही नीरस और रूखे हो जाते हैं। फिर ऊपर से परीक्षा-पद्धति इस प्रकार की है कि उसमें विषय ज्ञान के बदले रटाई अधिक काम आती है।

इन सब बातों पर ध्यान देने से हमें आश्चर्य न होना चाहिये कि स्कूल छोड़ते २ अधिकांश युवकों की ज्ञान पिपासा इतनी मन्द हो जाती है कि क्लर्क बनते ही वे पुस्तकों से सदा के लिये बिदा हो जाते हैं। यही कारण है कि यद्यपि पढ़े लिखे लोगों की कुल संख्या भारत में उतनी ही है जितनी इङ्गलैंड में पिछले ५० वर्ष का इतिहास यह बता रहा है कि हमारा मानसिक जीवन इङ्गलैंड की कुछ भी समता नहीं कर सकता। यह इसी प्रणाली की खूबी है कि इतने पढ़े लिखे होने पर भी साहित्य-सेवी इतने कम हुए हैं।

एक तो यह शिक्षाप्रणाली इतनी अधूरी है कि जीवनयात्रा में काम आनेवाले हृदय, मन और आचरण के बहुत से गुणों पर उसमें ध्यान तक नहीं दिया जाता; दूसरे उसकी एकतरफ़ी शिक्षा भी इस बुरे ढंग से दी जाती है कि वह दिमाग़ की स्वाभाविक उन्नति में भी बहुत बाधा डालती है; स्मरण शक्ति पर अधिक ज़ोर देकर वह ज्ञान की शक्तियों को शिथिल कर देती है; और शारीरिक और मानसिक अजीर्ण पैदा कर विद्यार्थियों को बहुत कुछ अपाहिज बना देती है। क्या अब भी समय नहीं आया कि हम उसके सुधार की ओर ध्यान दें?

अच्छा; तो

हमारी आवश्यकता क्या है?

इसका ज्ञान हमें स्पष्ट होना चाहिये। हमारे देश के उत्साही युवकों को एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली की ज़रूरत है जो सर्वांगीन हो, जिसमें मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और धार्मिक आवश्यकताओं पर पूरा ध्यान दिया गया हो, जिसमें जीवन में काम आनेवाले सब आचरण-सम्बन्धी गुणों के विकाश के लिए पूरा कार्य-क्षेत्र लक्ष्य हो, जिसमें जीवननिर्वाह के लिए व्यापारिक और औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध हो और जिस प्रणाली का संगठन ऐसा हो कि प्रत्येक मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार आगे बढ़ सके और अपनी स्वाभाविक रुचि के अनुकूल विषय या कला में पूर्णता पा सके।

शारीरिक शिक्षा।

यह कहना ठीक न होगा कि हर एक आदमी अपने शरीर का ध्यान स्वयम् रक्खेगा। इस लिए स्कूल का इन बातों से कोई काम नहीं। यदि 'शरीर माद्यम् खलु धर्मसाधनम्' का सिद्धांत सच है; यदि शरीर ही इस मृत्युलोक की यात्रा में आत्मा का वाहन है, यदि शारीरिक अनुशीलन ठीक न होने से ही हमारे देश के बहुत से नेताओं की देश-सेवा असमय में ही समाप्त हो जाती है तो हम अमेरिका के उन स्कूलों की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते जहां माध्यमिक शिक्षा के तीन प्रधान विभाग हैं जिनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक शारीरिक अनुशीलन, दूसरा मानसिक अनुशीलन और तीसरा व्यापार आदि से संबंध रखता है, जहां शारीरिक अवस्था की जाँच के लिए एक पूरा स्टाफ रहता है; जहां एक अच्छे खिलाड़ी और बलवान् लड़के को उतना ही उत्साहित किया जाता है जितना क्लास में पहले आनेवाले को। इङ्गलैंड में भी ऐसा क़ानून बन गया है जिसके अनुसार सब विद्यार्थियों की शारीरिक दशा की सामयिक परीक्षा होती रहती है और आवश्यकता होने पर ग़रीब लड़कों के भोजन आदि में भी सरकार की ओर से सहायता दी जाती है। किसी देश को इतना मूर्ख न होना चाहिये कि थोड़े से भोजन या निरीक्षण की कमी के कारण आनेवाले देश की पीढ़ी को क्षमता हीन बनने दे।

इसमें सन्देह नहीं कि देश के प्रत्येक स्कूल को मेडिकल स्कूल बनाने की ज़रूरत नहीं है। इस विभाग में ध्यान इस बात पर रहना चाहिये कि विद्यार्थियों को उन सब शारीरिक नियमों का ज्ञान हो जाय जिनके पालन करने पर साधारणतः स्वास्थ्य निर्भर रहता है। ख़ासकर १६ वर्ष के पूर्व ही स्त्री पुरुष संबंध का उचित ज्ञान भी इसमें आजाना चाहिये। व्यवहारिक दृष्टि से सब प्रकार के व्यायाम, ड्रिल, फ़ुटबौल आदि खेलों का पूरा प्रबन्ध रहना चाहिये और हर एक लड़के को अपनी शक्ति के अनुसार इनमें भाग लेने को बाध्य करना चाहिये। फ़ुटबौल आदि खेल तो जिनमें सहयोगिता, धैर्य और साहस आदि की बहुत ज़रूरत पड़ती है, आचरण के विकाश के लिए भी बहुत महत्व के हैं।

ज्ञानार्जनी वृत्तियां।

इस सम्बन्ध में बहुत कुछ ऊपर लिखा जा चुका है। पिछले समय से जो कुछ उन्नति इस विषय में दूसरे देशों में हुई है उसके अनुरूप यहां बहुत कम सुधार हुए हैं। इस विभाग में यह कहना अनुचित न होगा कि मानसिक विकास

दृष्टि से सब मानसिक शक्तियों का विकाश ज़रूरी है तो सामाजिक कल्याण की दृष्टि से यह ज़रूरी है कि हर एक विद्यार्थी को इस बात का अच्छा ज्ञान हो जाना चाहिये कि समाज का विकाश होते २ वह इस दशा को कैसे पहुंचा है और भिन्न २ देशों में उसकी आगामी आवश्यकताएँ क्या हैं?

इस दूसरी बात पर आजकल बहुत कम ध्यान दिया जाता है और यह काम उन शिक्षकों के हाथ से हो भी नहीं सकता जो हमारी जातीय आकांक्षाओं से सहानुभूति न रखते हों।

जैसा ऊपर कहा जा चुका है, प्रत्येक विषय ऐसे ढंग से सिखाया जाना चाहिये जिसका विद्यार्थी के जीवन से सम्रता का इतना संबन्ध हो कि वह रुचि पूर्वक सीखा जा सके। उदाहरण के लिए भूगोल को लीजिए; यह भिन्न २ देशों की भिन्न २ बातों के मनोहर चित्र और कथात्मक वर्णन के द्वारा छोटे विद्यार्थियों के लिए भी रोचक बनाया जा सकता है। इसमें यात्रा सम्बन्धी वर्णन भी बहुत उपयोगी हो सकते हैं। इतिहास की शिक्षा में तारीख़ और निरर्थक बातों की रटाई को छोड़ महत्वपूर्ण घटनाओं और महात्माओं के कामों के रोचक वृत्तान्तों से उस विषय का ज़रूरी परिचय सरलता से कराया जा सकता है। प्रथम तो इतिहास वह विस्तृत क्षेत्र है, जहां मनुष्य के अच्छे और बुरे स्वभाव का परिचय मिलता है; और जहां उसके प्रभाव के फल के उदाहरण भरे पड़े हैं। यदि कपोल कल्पित उपन्यास और नाटक मनुष्य स्वभाव की शिक्षा देने में समर्थ हैं तो समझ में नहीं आता कि ठीक तरह लिखा हुआ इतिहास इस काम को करने में क्यों असमर्थ है? दूसरे, इतिहास के द्वारा ही हम उन बड़े २ विचारों और सिद्धान्तों को समझ सकते हैं जिनका विकाश मनुष्य के सदियों के अनुभव से हुआ है। बिना इस प्रकार के दिग्दर्शन के मनुष्य जाति के अभिनय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के वर्तमान अंक को समझना असम्भव है जिस स्कूल के विद्यार्थियों को, तीन घंटे में छ प्रश्न एक विदेशी भाषा में शीघ्रता से उगलने की चिन्ता ने व्यग्र कर रक्खा है, उन बेचारों को भाषा के जटिल वाक्यों को स्मरण करने के भव्य युद्ध से इतनी फुरसत कहां कि वे इन विचारों की ओर ध्यान दें ? जो पुस्तक में लिखा है वही सिद्ध है:—शिवाजी लुटेरा, राणा-प्रताप सिंह मूर्ख और हिन्दू लोग सदा हारने-वाले ठहरे तो वही सही। सारांश, इतना अव-काश और इतनी स्वाधीनता नहीं है कि इनकी आलोचना की जाय।

आर्थिक शिक्षा।

इस प्रश्न पर कभी २ बहुत विवाद हो जाता है। कोई तो चिल्ला उठते हैं कि स्कूल में दुनियां भर की बातें कहां तक सिखा सकते हैं? पर शान्ति से विचार करने पर यह प्रश्न इतना उपद्रवकारी नहीं है। और हमारे लिए तो उन देशों पर आंख उठाकर देखना ही काफ़ी होगा जिन्होंने इसको अच्छी तरह हल कर लिया है। यह ठीक है कि प्रत्येक आदमी सब कलाएं नहीं सीख सकता? हर एक लड़के को बढ़ई, लुहार, चमार आदि का काम—इञ्जीनियरी, व्यापार, कृषि आदि—सीखना सम्भव नहीं।

एमेरिका के कुछ विद्यालयों में इस विषय की व्यवस्था इस प्रकार की गई है। प्रारम्भिक कक्षाओं में विद्यार्थियों को ड्रौइङ्ग, मट्टी के खिलौने बनाना, तस्वीरों को कैंची से काटना, गत्ते की बक्स आदि छोटी २ चीज़ें बनाने आदि का खूब अभ्यास कराया जाता है। एक ओर तो इनसे शिक्षा का क्रम बालकों को रुचिकर हो जाता है और दूसरी ओर ये बातें ही शिल्प-शिक्षा और कलाकौशल की नींव बन जाती हैं। इनके द्वारा विद्यार्थियों को आंख और हाथ के उपयोग में दक्षता प्राप्त हो जाती है, और भिन्न २ कलाओं में उनकी रुचि होने लगती है। माध्य-मिक कक्षाओं में बहुत से रोज़गारों की (जैसे दर्जी, बढ़ई, लुहार आदि के काम) और अनेक कलाओं और व्यापारों की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध रहता है। हर एक विद्यार्थी को अपनी रुचि के अनुसार दो तीन चीज़ें लेना अनिवार्य होता है।

इन स्कूलों से निकलने पर भी विद्यार्थी थोड़ा बहुत जीवन-निर्वाह कर सकते हैं। पर सब से महत्व की बात तो यह है कि इन स्कूलों में यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि विद्यार्थी की व्यक्तिगत रुचि और शक्तियां कैसी हैं? वह बड़ा कवि, साहित्यकार, चित्रकार, शिल्पकार, वैज्ञा-निक अथवा इञ्जीनियर हो सकता या नहीं है? इसके बाद प्रत्येक विद्यार्थी को मनुष्य जाति की विशाल उपयोगशाला में अपना स्थान निश्चित करना सरल हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य को उसके उपर्युक्त कार्यक्षेत्र की ओर लेजाना किसी भी शिक्षाप्रणाली के लिए बड़े महत्व की बात है। इन स्कूलों के बाद जिस विभाग को विद्यार्थी पसन्द करें उसी को विशेष कालेजों में जाकर अपनी शिक्षा पूरी कर लेते हैं।

इस दिग्दर्शन से इस शिक्षा का महत्व स्पष्ट हो गया होगा। यद्यपि किसी खास विश्व-विद्यालय की नकल करना ज़रूरी नहीं, तो भी इस शिक्षा के मूल तत्व हमारे लिए कम आव-श्यकीय या कम महत्व के नहीं है। इस निर्धन देश के लिए जहां पेट के लिए लोगों को इतने कष्ट उठाने पड़ते हैं कि विरले महात्माओं को छोड़ सब अपने ऊँचे विचारों को तिलाञ्जलि देकर सदा को छोड़ देते हैं, यह शिक्षाक्रम बहुत ही उपयुक्त है। इस समय जैसा कालेज, राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद् द्वारा, मद्रास में खुला है यदि वैसा एक २ कालेज भी भिन्न २ प्रान्तों के नेताओं के परिश्रम से प्रत्येक प्रान्त में खुल जाय तो थोड़े ही वर्षों में इस देश के जीवन सागर में एक नई आशाजनक लहर दिखाई पड़ने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्मिक और सदाचार शिक्षा ।

जिस देश का खाना, पीना, सोना सभी कुछ धर्म में था, जिस देश ने ऐहिक वैभव से सन्तुष्ट न हो हज़ारों वर्षों के परिश्रम से उन आध्यात्मिक रत्नों को ढूंढ निकाला था जिनकी संभावना तक भी आजकल के वैज्ञानिकों के समझ में नहीं आती; जहां ऐसे २ हजारों धर्मवीरों ने जन्म लिया है; जहां ऐसे २ योगी हुए जिन्होंने इस शरीर से ही ब्रह्म की प्राप्ति करके मृत्यु के उस पार की बातों को मालूम कर लिया; वहां कौन जानता था कि एक ऐसा समय आवेगा जब धर्म शिक्षा की आवश्यकता पर तर्क करना होगा। पर युद्ध ने तो पाश्चात्य देशों के कुछ विद्वानों की भी दृष्टि धर्म की ओर फेर दी है। वे भी कहते हैं कि यूरोप धर्म से विमुख होने के कारण विज्ञान से प्राप्त बड़ी २ शक्तियों का ठीक २ उपयोग न कर सका । अच्छा होता; यदि उस परिश्रम और विचार का जिससे विज्ञान की उन्नति हुई है, कुछ अंश धार्मिक चर्चा में व्यय किया जाता । ऐसी अवस्था में ज़रा ही आंख खोलने पर हमें धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता दीखने लगेगी। बिना धार्मिक शिक्षा के, बिना आध्यात्मिक ऐक्य के भाव को हृदयस्थ किये, बिना यह दिखाये कि व्यक्तिगत दृष्टि से भी सब से परम आनन्द इस एकता के अनुभव में है, मनुष्य प्रेम, विश्व प्रेम आदि ऊँचे भाव, जो समाज रक्षा के मूलमंत्र समझे जाते हैं, सब व्यर्थ के ढोंग ही रहेंगे । सच्चे सदाचार की नींव ही आध्यात्मिक एकता है।

थियोसोफी के परिश्रम से यह बात स्पष्ट हो गई है कि भिन्न २ धर्मावलम्बी अपना धर्म न छोड़ते हुए भी किस प्रकार दूसरे धर्मवालों से सहानुभूति का व्यवहार रख सकते हैं। उसने यह प्रत्यक्ष कर दिया है कि प्रत्येक बड़े धर्म में इतनी उदारता है कि २०वीं शताब्दी में बिना परस्पर धार्मिक झगड़े के भय के उन सब का अध्ययन किया जा सकता है।

सदाचार शिक्षा ।

धार्मिक शिक्षा का सबसे बड़ा काम सदाचार शिक्षा का मार्ग सुगम कर देना है। व्यक्तिगत दृष्टि से इसका उद्देश्य सदाचार में मनुष्य की रुचि उत्पन्न करना है। अथवा उसकी अच्छी कार्यकारिणी वृत्तियों (दया, सहृदयता, प्रेम, भक्ति आदि) का अनुशीलन करना है, जिसके कारण मनुष्य के सुख में सरसता आजावे।

शिक्षा के इस विभाग में एक ओर तो प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति की दृष्टि से सदाचार के सिद्धान्तों का यथेष्ट ज्ञान कराना है। दूसरी ओर व्यवहारिक शिक्षा से सदाचार के भावों को हृदयस्थ कराना है। आजकल की सभ्यता (Civics) भी इसीके अन्तर्गत है। इस विभाग में छोटी उम्र के विद्यार्थियों को बड़े २ महात्माओं की जीवन-कथाएँ पढ़ाना यथेष्ट है, बड़ी २ घटनाओं का वृत्तान्त हृदयग्राही रूप में सुनाने का बहुत प्रभाव पड़ सकता है। माध्यमिक कक्षाओं में धर्म और सदाचार के सिद्धान्तों का साधारण दिग्दर्शन और ऊँची कक्षाओं में पूर्ण परिचय हो जाना चाहिये।

इस विभाग में पूरी सफलता तभी हो सकती है जब शिक्षक स्वयं इन सिद्धान्तों का उदाहरण अपने आचरण से दें और जब सारा स्कूल-जीवन उन भावों से, जिनको हम विद्यार्थियों में लाना चाहते हैं, उमड़ रहा हो । समय २ पर शिक्षक अपने व्यवहार से लड़कों में दया, बन्धुत्व आदि ऊंचे भावों को सरलता से उत्पन्न कर सकते हैं।

साहस, धैर्य, दृढ़ता, सहयोगिता और एकता की व्यवहारिक शिक्षा के लिए तो फुटबौल, हौकी आदि खेल बड़े उपयोगी हैं । इनमें वे गुण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसानी से सीखे जा सकते हैं जो जीवन में सफलता के लिए बहुत ज़रूरी हैं ।

मन में देशभक्ति आदि ऊँचे भावों को उत्पन्न करने के लिए इतिहास की शिक्षा बहुत सहायक है । यदि ठीक तरह पढ़ाया जाय तो भारतवर्ष का इतिहास इतने महत्व का है कि उसके द्वारा बहुत ऊँचे २ भाव विद्यार्थियों के हृदय में बैठाये जा सकते हैं । पर जिनके लिए शिवाजी तक लुटेरा है; महाराणा प्रताप राजद्रोही है, वस्तुतः इसी तरह जिनमें हमारे महात्माओं के लिए कुछ भी सहानुभूति नहीं, और जिनके हृदय उनके कामों की स्मृति से उमड़ नहीं पड़ते उनके लिए यह शिक्षा देना असम्भव है ।

इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे छोटे २ काम ढूंढ़े जा सकते हैं जिनमें विद्यार्थियों को सहयोगिता का अभ्यास हो जाय और जिससे वे परोपकार का आध्यात्मिक सुख अनुभव करलें । रात्रि स्कूलों में तो इसके लिए बड़ा अच्छा कार्यक्षेत्र मिल सकता है ।

शिक्षक और स्कूल जीवन ।

एक तत्ववेत्ता का कथन है कि शिक्षक पर ही विद्यालय का जीवन निर्भर है और इसमें सन्देह नहीं कि जब तक देश के अच्छे २ विद्वान् इस ओर न बढ़ें तब तक स्कूल जीवन में विशेष परिवर्तन होना सम्भव नहीं । जब तक स्कूल विद्यार्थियों के घर के समान न बन जायँ, जब तक स्कूल का वायुमंडल स्नेह और सुख के सौरभ से परिपूरित न हो जाय, जब तक विद्यार्थियों और शिक्षकों में मैजिस्ट्रेट और चपरासी के समान अन्तर न होकर प्राचीन भारत और वर्तमान स्वाधीन देशों की तरह यहां के विद्यार्थी शिक्षकों को देख कर प्रफुल्लित न हो सकें; जब तक टीचर और इन्सपेक्टर लोग हमारे नेताओं से इतने भिन्न हैं कि पूज्य से पूज्य नेता के पास जाना भी उनके लिए हानिकर समझा जाता है, जब तक ऐसे विद्वान् 'टीचर' का काम न लें जो उसमें धनोपार्जन के लिए नहीं, किन्तु; मनुष्य-सेवा के ध्यान से वहां जाते हों, तब तक ढेर के ढेर रेगुलेशन और ट्रेनिङ्ग कालेज भी बहुत सुधार नहीं कर सकते । कहां प्राचीन भारत के वे शिक्षक जो अपने खर्च पर विद्यार्थियों को पुत्र के समान रखकर उनकी सर्वांगीन उन्नति का भार अपने ऊपर लेते थे, और कहां वे लोग जो पाँच घंटे से एक मिनट भी अधिक लगाने को महान् आपत्ति समझ बैठते हैं !

सारांश ।

हमारे देश में शिक्षा की वर्तमान अवस्था बड़ी शोचनीय है । हमारे चारो ओर ऐसी शक्तियां कार्य कर रही हैं जो हम सब से यही कहती हैं कि अब नतो चुपचाप पड़े रहने का, और न खड़े रहने का, किन्तु; गम्भीरता के साथ क्षेत्र में आगे बढ़ने का समय है । जिस युग में हम जीवित हैं वह स्वयम् परिवर्त्तनशील दिखलाई पड़ रहा है । पुरानी बातें एक एक कर के विदा होती जाती हैं और उनके स्थान में नवीन बातें पैदा हो रही हैं । परिस्थिति का यह रूप—जिसे हम नवयुग के नाम से ठीक ही सम्बोधित करते हैं—जब एक ओर हमारी तमाम क्रियात्मक शक्तियों को नये सिरे से विकसित करने के लिए हमें विवश कर रहा है, तब यह आशा ही नहीं की जा सकती कि इस विभाग में हमें प्रतिक्रिया-प्रेमी बना रहने पर कुछ लाभ पहुंचा सकें ।

आदर्श—शिक्षा के बिना कोई राष्ट्र अपनी स्वाधीनता की रक्षा नहीं कर सकता ।

—श्रीमती एनीबीसेंट ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आन्तर्जातिक विधान।*

[लेखक-श्रीयुत जगमोहन 'विकसित।]

आपस में स्वेच्छाचारिता का व्यवहार अनुचित है-यह सोचकर सभ्य राजाओं ने कुछ नियम बना लिये हैं, जिन पर चलना सन्धि के समय और युद्ध के समय प्रत्येक रीति से आवश्यक रक्खा गया है। इन्हीं नियमों का नाम आन्तर्जातिक विधान है। यह निर्धारित किया गया है कि प्रत्येक राजा के लिए आन्तर्जातिक विधान का मानना वैसेही उचित और आवश्यक है जैसे कि स्वदेश के राज विधान का मानना प्रत्येक व्यक्ति के लिए है। विवेकसम्पन्न मनुष्य जाति का प्रत्येक कार्य्य किसी न किसी नियम पर अवलम्बित है। यदि राजाओं के बीच में कोई विधान न रहता तो पद पद पर युद्ध और मनुष्य-संहार होता।

आन्तर्जातिक-विधान की सृष्टि यद्यपि बहुत पहिले हुई थी, परन्तु कोई तीन सौ वर्ष हुए—जब से इसमें क्रमशः पुष्टता आ रही है। प्राचीन काल के राजाओं में भी आन्तर्जातिक विधान था। यूरोप में जब रोम साम्राज्य स्थापित हुआ, उस समय ही नहीं—उससे भी पहिले—यूरोप के राजाओं में एक प्रकार का आन्तर्जातिक विधान पाया जाता है। जिस प्रकार एक वंश से उत्पन्न लोग भिन्न २ देशों में रहते हुए भी, एक दूसरे के सम्मान का ध्यान रखते थे, उसी प्रकार राजा भी बन्धुत्व सूत्र में बँधे रहते थे। प्राचीन ग्रीस के इतिहास से पता चलता है कि उस समय दूतों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जाती थी। भारतवर्ष में भी दूत अवध्य था। ईसा के जन्म के पीछे कई सौ वर्ष तक, यूरोप में यह विश्वास रहा कि राज्य-परिचालन के लिए एक प्रधान शक्ति है, जो उन दिनों रोम-सम्राट् में है। रोम सम्राट् उस समय यूरोप के सम्पूर्ण राजाओं में शक्तिशाली था, रोम-सम्राट् द्वारा ही आन्तर्जातिक विधान निर्धारित होता था। जब रोमन सम्राट की क्षमता नष्ट हुई और पोप के प्रभाव का भी पतन हुआ तब यूरोप के राजाओं में स्वेच्छाचारिता का दौरदौड़ा हुआ और आन्तर्जातिक विधान लुप्तप्राय हो पड़ा। अनेक प्रकार की गड़बड़ियां उत्पन्न हुईं। सभ्यता का प्रकाश अंधकार में विलीन होने लगा। युद्ध के समय किसी नियम का पालन करना आवश्यक न रह गया। व्यापार की बड़ी दुर्दशा हुई। समुद्र मार्ग में जल डाकू बेतरह व्यवसायियों को लूटने लगे। यह विश्रृङ्खला सम्वत् १६८२ तक चली गई। विश्व शान्ति के इतिहास में ह्यूगो-ग्रोसस का विशेष स्थान है। ग्रोसस् के ही उद्योग से राजाओं तथा साधारण लोगों को सुमति प्राप्त हुई और यूरोप के बड़े २ देशों का यथेष्ट उपकार हुआ। एक मनुष्य के प्रयत्न से इतना भारी परिवर्त्तन हो जाना कम आश्चर्य की बात नहीं है।

सं० १६४० में हालैंड देश में हेगहेनग्रेट ने जन्म लिया। यही हेगहेनग्रेट, भविष्य में ह्यूगो ग्रोसस् के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिस समय देशवासी धर्म और स्वाधीनता की रक्षा के के लिए स्पेन से युद्ध कर रहे थे, उस समय इसने देश की उस बड़ी क्षति का अनुभव किया जो आन्तर्जातिक विधान न रहने से हो रही थी। थोड़ी ही अवस्था में यह अपनी विद्वता और विधानज्ञता का परिचय दे चुका था। इतिहास, साहित्य, विधान और धर्मशास्त्र आदि कई विषयों

* 'भारतवर्ष' के एक लेख के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इसकी प्रतिभा ने विकास पाया। कविता में भी इसे प्रेम था, ग्रन्थरचना से इसकी बड़ी ख्याति हुई। ग्रोसस् विद्वान था, विवेचक था और प्रतिभा-सम्पन्न था। परन्तु उसका जीवन दरिद्रता और आपत्तियों का जीवन था। सं० १६७५ में देश के गृह-विवाद में योग देने के कारण यह कैद किया गया, यावज्जीवन कारावासका इसे आदेश मिला। अन्त में इस विपत्ति से अपनी पत्नी के बुद्धि-कौशल द्वारा छुटकारा पाया। एक बक्स में बन्द करके चुपचाप कारावास से बाहर निकाला गया। पहरेदारों को विश्वास दिलाया गया कि बक्स में वे पुस्तकें भरकर लौटाई जा रही हैं जो पढ़ने के लिए ग्रोसस् अपने साथ लाया था। इस तरह, अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ यह पेरिस पहुंचा और वहां अत्यन्त दरिद्रता से दिन काटने लगा। सं० १६८२ में इसकी वह पुस्तक प्रकाशित हुई, जिससे मानव जाति का बड़ा उपकार हुआ। इस पुस्तक ने बड़ी शीघ्रता से विद्वानों के हृदय को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। चिन्ताशील राजनीतिज्ञों का मनोभाव परिवर्तित हुआ, उन्होंने उस अनिष्ट का अनुभव किया जो आन्तर्जातिक विधान के अभाव से हो रहा था। जो हो, ग्रोसस् की पुस्तक ने निश्चय करा दिया कि प्रत्येक राजा अपने विषय में स्वाधीन है, प्रत्येक राजा को समान अधिकार है—कोई किसी के अधीन नहीं है। सं० १७०५ में जब वेष्टफालिया की सन्धि हुई तो प्रधान प्रधान राजशक्तियों ने स्वीकार किया कि सम्पूर्ण ईसाई राजा ग्रोसस् के मतानुसार चलने पर बाध्य रहेंगे। आगे चलकर अनेक विचारशील लेखकों ने ग्रोसस् के दिखलाये हुए मार्ग का आश्रय लिया और पुस्तकें रचीं। जापान में भी इस विषय की पुस्तक रची गई। जापान भी उन देशों में से एक देश है जो आन्तर्जातिक विधान स्वीकार कर चुके हैं।

आन्तर्जातिक विधान स्वाधीन राजाओं के लिये है। स्वाधीन राजा कौन हैं? प्रथम जिनके राज्य के प्रत्येक विभाग में स्थायी प्रबन्ध है। दूसरे, जिनको प्रत्येक विषय में स्वाधीनता है। तीसरे, जिनके अधिकार में निर्दिष्ट राज्य हैं, परन्तु; कुछ राज्य ऐसे भी हैं जो सम्पूर्ण स्वाधीन नहीं हैं और आन्तर्जातिक विधान में योग देकर आर्थिक लाभ उठा रहे हैं।

जिन राज्यों को यूरोपीय सभ्यता से सम्बन्ध है उन सभी राज्यों में आन्तर्जातिक विधान का हाथ है। आन्तर्जातिक विधान के नियमानुसार योग दिये हुए राजा अलग हो सकते हैं और नये राजा योग दे सकते हैं। कई ऐसे राज्यों को भी आन्तर्जातिक विधान के अधिकार दिये गये हैं जिनमें यूरोपीय सभ्यता नहीं है। सं० १९१३ की पैरी नगर की सन्धि से टर्की के सुलतान ने आन्तर्जातिक विधान स्वीकार किया है। जापान, चीन और ईरान भी इसी प्रकार इस विधान में आ चुके हैं। किन्तु इनमें चीन को प्रत्येक विषय में सभ्य राजाओं के समान व्यवहार करने की क्षमता नहीं है। इसका प्रमाण वह आक्रमण है जो सं० १९५७ में चीन राज्य की ओर से पेकिन नगर-स्थित राजदूतों पर हुआ था। आन्तर्जातिक विधान में केवल राजाओं के लिए नियम हैं, किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं। पर, यदि कोई व्यक्ति अपने ऊपर दायित्व लेकर युद्ध छेड़ दे अर्थात् राजा से आज्ञा न लेकर स्वयं ही युद्ध में प्रवृत्त हो जाय अथवा जलदस्युता करने लगे तो प्रत्येक दशा में आन्तर्जातिक विधान संघटित हो सकेगा। हां, यदि किसी राज्य के भाग-विशेष में क्रान्ति हो जाय तो इससे आन्तर्जातिक विधान का कोई सम्बन्ध नहीं। इस क्रान्ति और विवाद से जब किसी दूसरे राज्य को क्षति पहुंचेगी, तब निस्सन्देह आन्तर्जातिक विधान संघटित हो जायगा। सम्वत् १९१८ में अमेरिका के गृह-विवाद में इसी प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना हुई। संयुक्त राज्य में दक्षिण भाग के सात राज्य इस उद्देश्य से आपस में मिल गये कि अपना सम्बन्ध संयुक्त राज्य से तोड़ लें और स्वतन्त्र हो जांय। परन्तु उत्तर भाग के राज्यों ने निश्चय किया कि बलपूर्वक इनको अपने साथ रहने के लिए बाध्य किया जाय। फल यह हुआ कि संयुक्त राज्य में दो दल हो गये और इन दोनों दलों में युद्ध आरम्भ हो गया। अमेरिका दूर स्थित राज्य था, इसलिए अमेरिका के इस स्थल युद्ध में दूसरे राष्ट्रों को हानिलाभ-कुछ न जान पड़ा। पर जब जल-युद्ध आरम्भ हुआ तो दूसरे देशों को हानि पहुंचने लगी। विशेष कर इंगलैण्ड क्षति-ग्रस्त होने लगा। इङ्गलैण्ड ने अमेरिका के इस गृह-विवाद को युद्ध के नाम से पुकारा। संयुक्त राज्य ने इस पर आपत्ति की। यहां प्रश्न यह होता है कि इस प्रकार के विद्रोह को किस किस अवसर पर युद्ध कहना चाहिये? विद्रोह को जब तक युद्ध का नाम नहीं दिया जाता तब तक उस पर आन्तर्जातिक विधान नहीं लगता। इसलिए दूसरे राज्य क्षति पहुंचने वाले विद्रोह को 'युद्ध' का नाम देने के लिए बाध्य हैं। हां, यदि दूसरे राज्यों को किसी प्रकार की हानि न पहुंच रही हो तो विद्रोह को युद्ध कहना अन्याय है। इस प्रकार के विद्रोह को यदि कोई राजा युद्ध मान भी ले तो इससे क्या? जिस राज्य की प्रजा विद्रोही हुई है, उस राज्य का राजा विद्रोहियों को कारारुद्ध कर सकता है, तलवार के घाट उतार सकता है अथवा किसी दूसरे प्रकार से शासित कर सकता है। उसके इन कामों में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ सकती, किन्तु प्रति- पक्ष में, यदि अन्य राज्य, विद्रोह को 'युद्ध' नहीं मानते तो आन्तर्जातिक विधान के अनुसार विद्रोहियों का विचार नहीं होता। एक बात और है, विद्रोही राज्य का राजा ही दूसरे राजाओं के निकट विद्रोही दल के उत्पात का उत्तरदायी है। इसलिए ऐसे विद्रोह को जिससे दूसरे राज्यों को क्षतिग्रस्त होना पड़ रहा है, युद्ध कहना एक प्रकार से विद्रोही राज्य के राजा को उपकृत होने का भी अवसर देना है। यह ध्यान रहे कि किसी विद्रोह को 'युद्ध' कह देने का यह अर्थ नहीं है कि विद्रोहियों की स्वाधीनता स्वीकार कर ली गई।

अब हम यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि आन्तर्जातिक विधान धीरे धीरे किस प्रकार परिपुष्ट हो रहा है। पहिले ही कहा जा चुका है कि ह्यूगो ग्रोसस् ने आन्तर्जातिक विधान का बीज बोया और प्रधान प्रधान राज्यों ने सब के उपकार और सुविधा के लिए नियम निर्दिष्ट किये। बीच, बीच में इसी ढंग का बराबर अनुसरण किया जा रहा है। सं० १९१३ में पेरिस की सन्धि से क्रीमिया का युद्ध समाप्त हुआ। पेरिस की उस महासभा में, जो राज प्रतिनिधि थे, उन्होंने, जलयुद्ध के सम्बन्ध में चार नियम निर्धारित किये। सं० १९२१ में स्थल-युद्ध के पीड़ित और आहत व्यक्तियों की सुविधा के लिये, जेनोवा नगर की सम्मिलित सभा ने नियमावली रची। सं० १९२५ में, बारूद की गोलियों का विषय लेकर, सेन्टपीटर्सबर्ग में अठारह राज्यों के राज-प्रतिनिधि एकत्र हुए। फिर सं० १९६३ में जेनोवा में जो सभा आहूत की गई, उसमें उपरोक्त नियमों का फिर से विचार किया गया। इस प्रकार प्रधान प्रधान राज्यों के शासकों द्वारा निर्धारित होकर, यह आन्तर्जातिक विधान सार्वजनिक हुआ। स्वेज नहर के सम्बन्ध में जो नियम निरूपित हुए थे, वे भी अब सार्वजनिक रूप पा चुके हैं। सं० १९५६ और १९६४ की हेग समिति द्वारा जो नियम निर्दिष्ट हुये, उनसे संसार का बड़ा कल्याण हुआ है। हेग समिति का जन्म आन्तर्जातिक कल्याण के लिये ही हुआ था। इस समिति की स्थापना में रूस सम्राट निकोलस (द्वितीय) का भरपूर हाथ था। उनका राज्य काल प्रारम्भ ही हुआ था कि समराग्नि भीषण रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भभक उठी, भयानक जन-संहार देखकर उनके हृदय में करुणा का सञ्चार हुआ। उन्होंने प्रस्ताव किया कि आन्तर्जातिक समिति की स्थापना बड़ी आवश्यक बात है। उससे लोक-हित होगा, संसार में स्थायी शान्ति रहने के उपाय निरूपित होंगे, अस्त्र-शस्त्र की बाढ़ रोकने की व्यवस्था की जा सकेगी। इस प्रकार संसार में शान्ति स्थापन करना, गोला-गोली, अस्त्र-शस्त्र की वृद्धि रोकना—यही सब उद्देश्य लेकर यह हेग समिति अवतीर्ण हुई। किन्तु राज प्रतिनिधियों के विचार वितंडा ने विकट रूप धारण किया। युद्ध को सम्पूर्ण रूप से उठा देने की चेष्टा में तो विफलता रही, पर युद्ध के सम्बन्ध में कई प्रयोजनीय नियम गढ़े जा सके। सं० १९५६ में भिन्न भिन्न राजों के राज प्रतिनिधि एकत्र हुए। इसमें इसके लिए नियम बनाये गये कि आन्तर्जातिक विवादग्रन्थियां बिना युद्ध के सुलझाई जा सकें, साथ ही स्थल-युद्ध और जल युद्ध की कुप्रथाओं को भी दूर करने की चेष्टा की गई। इसके अतिरिक्त तीन और हितकर विधान निश्चित किये गये:—

१—पांच वर्ष तक बेलून द्वारा गोले न बरसाये जावें।

२—ऐसे गोले, जिनसे दूषित गैस फेंक कर सैनिकों का संहार हो, अथवा उनको घायल करें, व्यवहार में न लाये जावें।

३—ऐसी गोलियां, जो शरीर में प्रविष्ट होकर, फूटकर फैल जायँ और शरीर को विध्वंस कर दें, काम में न लाई जावें।

समिति में छब्बीस राज्यों के राज्य प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। प्रायः सबने इन बातों को स्वीकार किया। सं० १९६४ में समिति का दूसरा अधिवेशन हुआ। इसमें जो बातें स्वीकार की गईं, उनमें एक यह थी कि जब कोई राजा युद्ध में प्रवृत्त हो तो यदि वह आवश्यक समझे तो शत्रु-पक्ष के अतिरिक्त किसी निरपेक्ष राज्य का भी जहाज़ पकड़ सकेगा और उस जहाज़ का विचार अपने विचारालय में कर सकेगा। इस दशा में राजा स्वयं अपने काम का विचारक हुआ। पर, ऐसे अवसरों पर प्रत्येक दशा में न्याय होगा—यह नहीं कहा जा सकता। इस लिए इङ्गलैंड और जर्मनी की ओर से एक आन्तर्जातिक विचारालय के स्थापित होने की बात उठाई गई और आये हुए राजप्रतिनिधियों में से ६ वर्ष के लिए १५ विचारक निर्वाचित किये गये। सं० १९६५ और १९६६ में जो नौ-व्यापार संबन्धी समिति संगठित हुई, उससे भी बड़ा लाभ हुआ। अनेक क्षमतावान् लेखकों ने गवेषणापूर्ण पुस्तकें लिखीं, उन सबसे भी शासकों का हृदय संसार के कल्याण की ओर आकर्षित हुआ। ऊपर की समितियों में, इन लेखकों के विचारों की भी भरपूर आलोचना होती रही।

आन्तर्जातिक विधान के अनुसार पृथ्वी के जिस भाग पर जो राज्य स्थापित है, उस भाग के सम्पूर्ण स्थल और जलखंड उसी राज्य के अधिकार में हैं। जो नदी या झील पूर्णतः किसी राज्य में है उस नदी या झील पर उसी राज्य का पूरा अधिकार है, परन्तु, यदि कोई नदी कई राज्यों में होकर बही है तो नदी का जितना भाग जिस राज्य में है, उतने ही भाग का वह राज्य अधिकारी है। किनारे से—जल की धार से—लेकर, तीन मील तक समुद्र का भाग उस राजा के अधिकार में है, जो किनारे के भूभाग का अधिपति है। यह नियम जिस समय बनाया गया था, उस समय तोप का गोला तीन मील से अधिक दूर न जा सकता था। जो उपसागर ६ मील से अधिक चौड़े नहीं हैं और जिनके दोनों किनारे एक ही राज्य में हैं, वे उसी राज्य के अन्तर्गत हैं। पूर्वकाल में ससागरा धरणी के अधीश्वर विशाल समुद्र को भी अपने राज्य में समझते थे। वेनिस का राजा भूमध्यसागर पर अपना वैसा ही अधिकार मानता था जैसा कि ब्रिटिश राज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इङ्गलिश चैनल तथा उत्तर सागर पर मान रहा है। समुद्रतट के प्रायः सभी राजा समुद्र के ऊपर अपना प्रभुत्व जमाये हुए थे, जो दूसरे राजाओं से उस समुद्र के व्यवहार करने पर शुल्क लेते थे और जल डाकुओं की देखरेख रखते थे। सोलहवीं शताब्दी में जब स्पेन के राजा ने प्रशान्त महासागर पर और पोर्तगाल नृपति ने भारत महासागर तथा आटलांटिक महासागर के कितने ही भागों पर अपने अधिकार की बात प्रकट की, तब बहुतों को, ऐसे विशाल समुद्रों पर अधिकार की बात न्याय-संगत न जँची। इङ्गलैंड की रानी एलिजबेथ ने घोषणा की कि समुद्र और आकाश पर सब का समान अधिकार है। वर्तमान आन्तर्जातीय विधान के प्रवर्त्तक ग्रोसल् का भी यही मत था कि समुद्र के ऊपर अधिकार की बात ठीक नहीं। किन्तु; अठारहवीं शताब्दी में सफेन्डर्फ ने सम्मति दी कि समुद्र के तट भाग पर, निरापद रहने के लिए, तटवर्त्ती राज्य का अधिकार रहना उचित है। जो हो, वर्तमान युग में कोई राजा समुद्र के ऊपर अपना अधिकार नहीं समझता। तीन मील तक जो अधिकार निर्दिष्ट हुआ था, वह भी आजकल पर्याप्त नहीं है क्योंकि; इस समय तोप के गोले तीन मील से कहीं दूर जाते हैं। आकाश के ऊपर अधिकार की मुहर कैसे लगाई जावे—इस प्रश्न की भी विवेचना हो रही है। सं० १९६७ में इसी बात को लेकर पैरी नगर में आन्तर्जातिक विधान समिति का अधिवेशन हुआ था। इस युग में अनेक प्रकार के व्योमयानों की सृष्टि के कारण इस प्रश्न की मीमांसा होनी भी आवश्यक हो उठी है।

अब स्वेज और पनामा नहर प्रणाली के नियमों का उल्लेख किया जाता है। स्वेज नहर में अनेक राजाओं का स्वार्थ लगा हुआ है। इस प्रकार की यह पहिली नहर है। सं० १९२६ में फरासीसियों के द्वारा यह नहर खोदी गई। टर्की के सुलतान के आदेशानुसार मिश्र के खदीव ने नहर खोदने की आज्ञा दी थी। नहर खोदी जाने के समय अंग्रेज़ों ने भी इसके कई (Share) हिस्से मोल लिये थे। स्वेज़ नहर वाणिज्य तथा जलयुद्ध के लिए सुभीते का मार्ग है, इसलिए सभी राजाओं ने इसके व्यवहार-नियम बनाने की आवश्यकता समझी। सं० १९४५ में ६ प्रधान राजशक्तियों ने तथा टर्की, स्पेन और हालैंड ने मिलकर निश्चय किया कि प्रत्येक समय नहर खुली रहेगी—युद्ध के समय भी बन्द न होगी। नहर के भीतर तथा इसके तट से तीन मील दूर स्थान तक संग्राम आदि न किये जा सकेंगे। समरलिप्त नृपतियों के जहाज़ नहर के किसी बन्दर पर २४ घंटे से अधिक न रह सकेंगे। नहर और नहर के किसी बन्दर से सेना या दूसरी युद्धसामग्री न लेजाई जा सकेगी। किसी राज्य के हठकारिता-प्रकाशन पर मिश्र के खदीव अथवा टर्की के सुलतान उसके प्रतिकार का यत्न करेंगे। बृटिश और संयुक्त राज्य की सं० १९५८ की सन्धि के अनुसार पनामा नहर भी समान भाव से प्रत्येक राज्य के लिए खुली हुई है। इससे वाणिज्य और युद्ध—सभी प्रकार के जहाज़ आ जा सकते हैं।

राज्यस्थिति प्रत्येक व्यक्ति पर राजा का अधिकार है। यदि वह उस राजा की प्रजा है, तब तो कोई बात ही नहीं। यदि विदेशी है, तो जब तक उस राज्य में रहेगा तब तक उस राज्य के शासनाधीन रहेगा। यूरोप के सभ्य देशों में, तथा उन सब देशों में, जहां यूरोपीय सभ्यता प्रवेश कर चुकी है, विदेशियों के साथ भी न्याय की आशा की जा सकती है। परन्तु; टर्की आदि देशों में, जहां राजविधान, धर्म के बन्धनों में जकड़ा हुआ है, अनेक अवसरों पर विदेशियों के लिए सुविचार की आशा नहीं की जा सकती। इसलिए टर्की, मिश्र आदि देशों में विदेशियों के विचार के लिए, विदेशी विचारक रहते हैं। जापान में भी यह रीति प्रचलित थी, किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं० १६५६ से उठा दी गई। चीन में यह प्रणाली आज भी जारी है। प्रजा-स्वत्व दो प्रकार के हैं:—एक तो स्वाभाविक और दूसरे—कृत्रिम उपाय द्वारा-प्राप्त। प्रजा स्वत्व के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न नियम हैं। इङ्गलैंड और संयुक्त राज्य में यह नियम है कि यदि वहां विदेशियों के सन्तान हो तो वह सन्तान उसी देश की प्रजा समझी जावेगी और अंग्रेज़ तथा एमेरिकनों की सन्तान दूसरे देश में हो तो वे अंग्रेज़ और एमेरिकन गिने जावेंगे। कृत्रिम उपाय से प्रजा स्वत्व प्राप्त करने के विषय में इङ्गलैंड में, सं० १६२७ में एक विधान निर्मित हुआ था। इसके अनुसार इङ्गलैंड में पांच वर्ष रहने के पीछे कोई भी विदेशी मनुष्य प्रजा स्वत्व प्राप्ति का सार्टीफिकेट ले सकता है। इस विधान में यह भी निर्णय हुआ है कि यदि कोई बृटिश प्रजा दूसरे देश में अपनी इच्छा से प्रजा स्वत्व ग्रहण कर ले, तो फिर वह बृटिश प्रजा नहीं गिनी जावेगी। किसी देश के जहाज़ यदि समुद्र में हैं तो उन जहाज़ों पर उसी देश के राजा का अधिकार है। समुद्र में डाका डालनेवालों का जहाज़ जो राज्य पकड़े, वही उस जहाज़ का स्वामी है। सभ्य राजाओं ने—सब ने—एकमत से स्वीकार किया है कि सामुद्रिक लूटमार आन्तर्जातिक विधान के अनुसार अत्यन्त गर्हित कार्य है।

आन्तर्जातिक विधान के निकट अत्यन्त पराक्रमशाली, विशाल राज्य के अधिपति का जितना मान है, उतना ही मान अत्यन्त छोटे, परंतु स्वाधीन राज्य के नृपति का भी है। किन्तु वर्तमान काल के आन्तर्जातिक इतिहास की आलोचना करने से देखा जाता है कि पूर्वकाल के स्वाधीन राजाओं में जितना समानता का आदर था, उतना आजकल नहीं है। जिन राज्यों ने मिलकर नैपोलियन बोनापार्ट को पराजित किया था, वे राज्य यूरोप के प्रधान राज्य थे। इन्हीं की चेष्टा से ग्रीस राज्य का पुनर्संगठन हुआ था, उन सब ने ग्रीस की विपत्ति से रक्षा भी की। इङ्गलैंड, फ्रांस, आस्ट्रिया, जर्मनी, रूस और इटली आदि कई राज्य उस समय मित्र-राज्य थे। यद्यपि नेपोलियन के समय अंत में फरासीसी परास्त हुए थे फिर भी उनका राज्य दूसरे प्रधान राज्यों के बराबर का माना गया। सं० १६१३ में जब टर्की ने आन्तर्जातिक विधान स्वीकार किया तो टर्की को भी उच्चस्थान मिला। वर्त्तमान काल में जापान की अवस्था अत्यन्त उन्नत है। नैपोलियन के पतन के पश्चात् रूस, आस्ट्रिया और जर्मनी एक हो गये, फ्रांस ने भी उनका साथ दिया। सं० १८७२ में इन सम्मिलित राज्यों ने घोषणा की कि वे एक दूसरे के सहायक रहेंगे और प्रत्येक दशा में एक मत होकर चलेंगे। फिर सं० १८७७ में ट्रोपान की कांग्रेस में यह निश्चित किया गया कि जब किसी राज्य में विद्रोह की आग फैलेगी तो संसार की शान्ति-रक्षा के नाम पर सब मिलकर उसे बुझायेंगे। आन्तर्जातिक विधान के अनुसार उन लोगों का यह संकल्प न्याय संगत न था, इसलिए इङ्गलैण्ड ने इनका साथ न दिया। दक्षिण एमेरिका में अंग्रेज़ व्यापारियों को क्षति पहुंचने की सम्भावना होने पर इङ्गलैण्ड के वैदेशिक मंत्री मि० केनिंग ने, लंदन में रहनेवाले अमेरिका के राजदूत मि० रास को सूचना दी। उस समय अमेरिका के प्रेसीडेण्ट मि० मनरो थे। मि० रास ने सब बातें उनको लिखीं। इस सम्बन्ध में मि० मनरो ने जो घोषणा की वही मनरो-डाकट्रिन है। उन्होंने घोषणा की कि संयुक्त राज्य ने यूरोप के युद्ध आदि किसी व्यापार में कभी हस्तक्षेप नहीं किया, हस्तक्षेप करने की इच्छा तक नहीं की, इसलिए वह भी आशा करता है कि यूरोप की राजशक्तियाँ उसकी किसी बात में हाथ न डालेंगी। यह भी घोषणा की गई कि अमेरिका के वर्त्तमान राज्यों में, अब फिर से कोई नया राज्य-उपनिवेश-न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थापित हो सकेगा। मनरो के पीछे अन्य प्रेसीडेण्टों ने मनरो के इस मत का समर्थन किया। इस प्रकार यह मनरो-डाक्ट्रिन धीरे धीरे परिपुष्ट हुआ और समूचे अमेरिका महादेश की प्रधानता की बागडोर संयुक्त राज्य के हाथ में आई।

हिन्दुस्थान !

[लेखक—'राष्ट्रीय पथिक'।]

यही था प्यारा 'हिन्दुस्थान',
कहाता जो वीरों की 'खान'।
देख कर जिसकी 'शक्ति' महान्,
सदा शंकित रहता 'अभिमान'।
'प्रकृति' की छटा घटा कमनीय,
भुलाती थी शिव को 'कैलास'।
'निर्झरों' की शोभा रमणीय,
'हिमालय' का करती उपहास।
'दुर्ग' चित्तौर सदृश उत्तुंग,
उठाकर सीस गर्व के साथ।
"तुच्छ हैं स्वर्ण मेरु के शृङ्ग",
कहा करते इठला कर हाथ ॥ १ ॥

मिले 'तैंतीस-कोटि' सप्रेम,
लगाते 'प्रलय-घनों' से होड़।
देख कर 'असि-सञ्चालन-कला',
'चला' चञ्चलता देती छोड़।
'समर-विज्ञानोद्यान' अनूप,
'जर्मनी' की है ही क्या बात ?
कला कौशल का था वह रूप,
जोड़ती जिसे 'लक्ष्मी' हाथ।
'ज्ञान-शासन' में सब उन्मुक्त,
'नर्कपति' सोता चादर तान।
अल्प हो चली स्वर्ग में 'भुक्ति',
'मृत्यु' के विंधे नासिका कान ॥२॥

श्रवण कर 'परवशता' का नाम,
खड़खड़ा उठती स्वयम् 'कृपाण'।
निकल तरकश से अपने आप,
दृष्टि रौंदे पर आते 'बाण'।
शून्य में तने 'शरासन-शेष',
"काल के बनकर कुटिलकटाक्ष"।
'शत्रु-शिर' को 'शर' से निर्देश,
दिखाने लगते गगन 'गवाक्ष'।
देश-हित बढ़ी 'प्रेम' की चाह,
मिटाती 'भेद-भाव' के दोष !
तीव्र हो हिन्दू रक्त-प्रवाह,
'जोश' को कर देता 'मदहोश' ! ३॥

नहीं हैं पर अब वे 'सामान'
आज वह 'स्वर्ग' बना है 'ख़ाक'।
'ख़ाक' भी रखती है कुछ 'मान',
किन्तु वह है इससे 'ग़मनाक'।
उजड़ कर सूखे यों 'उद्यान',
देखकर होता हृदय विदीर्ण।
पुष्प की मालाओं के 'स्थान',
लिए हैं शैल कण्टकाकीर्ण।
अजय 'गिरि'-'दुर्ग' झुकाये सीस,
बहाते 'झर्झर अश्रु प्रवाह' !
याद कर अपना 'पूर्वोत्कर्ष',
सदा भरते हैं ठण्डी आह' ! ४॥

पतन के दुख से हो 'बेज़ार',
बने हैं वे ऐसे 'विक्षिप्त'।
कहो जो तुम उनसे, हरबार,
उसी को रटते हैं प्रतिप्त।
हो चुके भङ्ग, अङ्ग-प्रत्यङ्ग,
नहीं है, किन्तु उन्हें कुछ ध्यान।
कहो, तो कहते हैं, वह रङ्ग,
ही नहीं, तो इनसे क्या काम ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूंछ उठता है 'चातक' कभी,
कहां वह 'सौख्य' कहां 'स्वातंत्र्य' ?
'विकल', कह उठते हैं उन्मत्त,
कहां वह 'सौख्य' कहां 'स्वातंत्र्य'?५॥
मान की टूटी वह ज़ंजीर,
ऐक्य की थी जिसमें तासीर।
बना विद्वेष द्रौपदी-चीर,
करेगा क्या तबीब तदबीर ?
शक्ति नख-दन्त हीन बनराज,
बने हैं मनरञ्जन के साज।
गिरी है वैभव पर वह गाज़,
करोड़ों मरते भूखों आज।
हृदय में है वह दुख की दाह,
शुद्ध रस भी बन जाता रक्त!
रक्त भी बनकर करुणा-सलिल,
चक्षु-द्वारा होता परित्यक्त!६॥
वर्ष भर करते श्रम दिन रैन,
शीत, उत्ताप, वृष्टि को झेल।
न फिर भी वसन, न भोजन, चैन,
बढ़ायें क्यों कर जीवन-बेल ?

पीठ औ पेट हुए हैं एक,
शक्ति पर लगा शून्य का चिन्ह।
रही है अस्थि-मात्र की टेक,
सभ्यता का उत्कर्ष विचित्र।
करोड़ों कहते हैं, अब हमें,
न जीवन-चाह, उठा ले मौत।
किन्तु है कहां, मौत भी उन्हें ?
भूल ही गई, हाय क्या मौत ?७॥
स्वत्व पर शासन का अधिकार,
रुदन पर अर्थ-दण्ड की मार।
कर्म का प्रतिफल कारागार,
निरापद मूक, पंगु-संसार।
हो गया महासमर का अन्त,
हमारे भी थे उसमें हाथ।
किन्तु प्रतिफल मिलने के समय,
बिठाए हम न जायँगे साथ।
विश्व को मन चाहा निर्णय,
हमें बस छूछी मौखिक दुआ।
देख ले विश्व खोलकर हृदय,
अहा क्या अच्छा निर्णय हुआ!

सेवा-सदन।

[समालोचना।]

[लेखक—पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक'।]

प्रेमचंद जी हिन्दी तथा उर्दू संसार के प्रसिद्ध गल्प लेखक हैं। आपने गल्प-लेखन कला में जो जान डाली है, उससे विज्ञ पाठक भली भांति परिचित हैं। आज उन्हीं प्रेमचंद जी का पहला उपन्यास सेवा-सदन मेरे सामने है। इसे कलकत्ता की हिन्दी-पुस्तक एजेन्सी ने प्रकाशित किया है। पुस्तक में अच्छा कागज़ लगाया गया है। छपाई भी सुन्दर है, और जिल्द का तो कहना ही क्या है। यह तो हुई पुस्तक के रंग रूप की बात। अब मैं पुस्तक के विषय पर अपने कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूं।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में अपने ढंग का यह पहला उपन्यास है। लेखक ने इसमें नवीनता लाने की अच्छी चेष्टा की है। इसमें वर्तमान सामाजिक प्रश्नों पर विचार किया गया है। भाषा लिखने में तो प्रेमचंद जी सिद्धहस्त हैं ही, उसके विषय में कहने की क्या आवश्यकता है? किन्तु; तो भी इस उपन्यास की कुछ बातें मुझे खटकी हैं और कुछ बहुत पसंद आई, उनको मैं यथाशक्ति संक्षेप में कहता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में केवल उपन्यास की नायका "सुमन" के चरित्र-चित्रण पर अपने विचार लिखता हूं, क्योंकि सब पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विचार करने की मुझे आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती।

पहली बात यह है कि उपन्यास का उठान अच्छा नहीं हुआ। एक ऐसे थानेदार; जिन्होंने कभी रिशवत नहीं ली; उन्हें रिशवत दिलाई गई है। इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने बहुत विवश होकर ऐसा काम किया। लड़की का विवाह करना आवश्यक, पास पल्ले टका नहीं—विवाह हो तो कैसे हो? ऐसे अवसर पर रिशवत ले लेना सम्भव हो सकता है। किन्तु, तो भी पाठकों के हृदय में दो प्रश्न उठ सकते हैं। पहला तो यह कि थानेदारों में कितने ऐसे होते हैं जो रिशवत नहीं लेते? दूसरा प्रश्न यह कि जो रिशवत के पैसे को काला नाग समझते हैं, जिनकी आयु का अधिक भाग इसी विचार में बीत चुका है, उनमें कितने ऐसे हैं जो अधिक आवश्यकता पड़ने पर रिशवत ले लेते हैं? एक थानेदार का, समस्त आयु भर में, रिशवत न लेना यह बात कुछ खटकती है और आवश्यकता पड़ने पर ले लेना यह बात उससे अधिक खटकती है। रिशवत का भंडा-फोड़ भी अच्छे ढंग से नहीं दिखाया गया।" थानेदार साहब कभी रिशवत नहीं लेते, यह बात उनके मातहतों तथा सहकारियों को अवश्य मालूम रही होगी। ऐसी दशा में उन लोगों ने केवल मुख़ार के कहने पर शीघ्र ही विश्वास कर लिया और साथ ही इतने नाराज़ भी हो गये कि भंडाफोड़ कर दिया। एक थानेदार का कभी रिशवत न लेना, आवश्यकता पड़ने पर ले लेना और पहली बेर लेते ही फँस जाना इन तीनों घटनाओं में बहुत कुछ विचित्रता है।

मैं यह नहीं कहता कि ऐसी घटनाएँ होना असम्भव है। सम्भव अवश्य है; किन्तु ऐसी घटनाएँ बहुत कम होती हैं, और कम होनेवाली घटनाओं में अस्वाभाविकता का रंग आजाता है। सामाजिक उपन्यासों में अस्वाभाविकता जहां तक बचाई जा सके, अच्छा है। हां, यदि आश्चर्यजनक उपन्यास (Romance) हो, तो उसमें अस्वाभाविकता लाने में कोई हानि नहीं है।

अब मैं सुमन के चरित्र-चित्रण पर विचार करता हूं। मेरी समझ में सुमन का चरित्र-चित्रण अपूर्ण है और कहीं कहीं भद्दा भी है। सुमन का चरित्र पढ़ने में कहीं कहीं पाठक को यह मालूम होता है कि घटनाएँ ज़बरदस्ती खींच खांच कर लाई गई हैं। उसमें स्वाभाविक बहाव की कमी है। स्वाभाविक बहाव होने से पाठक को कहीं भी यह गुमान ही नहीं होता कि कोई घटना फ़ज़ूल लाई गई है। सुमन का पतन करने में कुछ ज़बरदस्ती की गई। कहीं तो ऐसा मालूम होने लगता है कि लेखक ने सुमन का पतन केवल इसलिए किया है कि अंत में उसका लक्ष्य उसका सुधार करना था। इस बात का पता दो बातों से लगता है। एक तो सुमन के पतन में शीघ्रता की गई और दूसरे, पतन से अधिक शीघ्रता उसके सुधार में की गई है। तीसरे, उसके पतन के अच्छे तथा स्वाभाविक कारण कम हैं।

सुमन ने एक ईसाई लेडी से दो वर्ष शिक्षा पाई थी, इसीसे उसका हृदय विलासिता तथा दुष्कामना पूर्ण हो गया था। उसका लक्ष्य केवल इन्द्रियों का सुखभोग हो गया था। यह उसके पतन का पहला कारण कहा जा सकता है। दूसरा कारण उसके पिता थानेदार का रिशवत ले लेना। यदि थानेदार साहब रिशवत लेकर फँस न जाते, तो सम्भव है उसका विवाह कहीं अच्छी जगह होता जहां उसे सुख मिलता, इस प्रकार उसकी आकांक्षाएँ कुछ पूरी हो जातीं और उसका इतना बुरा पतन न होता। किन्तु यह बात थानेदार साहब को ईमानदार रखने से भी हो सकती थी। ईमानदार बने रहने और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुपया न होने से किसी ग़रीब ही से विवाह करते जैसा कि उनके फँस जाने के पश्चात् हुआ। तीसरा कारण उसके पति की दरिद्रता है। चौथा कारण भोली वेश्या के मकान के पास ही सुमन के मकान का होना है। क्योंकि भोली ही के ठाट बाट देखकर सुमन के हृदय की वासनाएँ बढ़ गईं। पांचवा कारण पद्मसिंह के यहां सुमन का आना जाना कहा जा सकता है। क्योंकि यदि वह उनके यहां सच में न जाती तो कदाचित् घर से न निकाली जाती और यदि घर से न निकाली जाती तो कदाचित् वेश्या न होती। इतने कारण सुमन के पतन का हेतु हो सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि एक मनुष्य का पतन अनेक कारणों से होता है, किन्तु उनमें एक आध कारण तो ऐसा होता ही है जो सब से प्रबल होता है और वही कारण मुख्य कारण कहा जा सकता है। लेखक ने कहीं स्पष्ट रूप से यह नहीं दिखाया कि सुमन के पतन का प्रबल कारण क्या था? मेरी समझ में प्रबल कारण यदि कोई हो सकता है तो वह केवल सुमन की विलास प्रियता और इन्द्रिय सुख की कामना ही है। किन्तु; सुमन में विलासप्रियता इत्यादि उत्पन्न कैसे हुई? क्या ईसाई लेडी की शिक्षा के प्रभाव से? प्रथम तो ईसाई लेडी द्वारा सुमन को शिक्षा दिया जाना ही कुछ भद्दा है। आजकल साधारणतः हिन्दू घरों में और विशेषतः ब्राह्मणों में ईसाई लेडी द्वारा शिक्षा देने का बहुत कम रिवाज है। यदि यह मान भी लिया जाय कि ऐसा हो सकता है, तो कम से कम लेखक को कुछ पृष्ठों में यह दिखा देना था कि ईसाई लेडी की शिक्षा का कौनसा ढंग ऐसा था, जिससे सुमन में विलासप्रियता उत्पन्न हो गई थी। इससे पाठकों को यह मालूम हो जाता कि अमुक ढंग से शिक्षा दिये जाने से लड़कियों में विलासप्रियता उत्पन्न हो सकती है। केवल ईसाई लेडी द्वारा शिक्षा का दिया जाना ही विलासप्रियता और दुष्कामनाएँ उत्पन्न कर देता है, यह बात कुछ कम समझ में आती है।

आगे चलकर सुमन का विवाह एक ग़रीब ब्राह्मण के साथ होता है। इधर सुमन भोली वेश्या के ठाटबाट देखकर उसकी ओर आकर्षित होती है। सुमन का पति गजाधर उसे भोली के साथ उठने बैठने से रोकता है। सुमन ताक झांक खूब करती थी, गुंडों और बदमाशों को अपनी ओर आकर्षित करने की चेष्टा करती थी, किन्तु; उसकी ताक झांक में कुवासना नहीं थी। यह बात भी कुछ विचित्र है। विलास-प्रिय, इन्द्रियों का सुख चाहने वाला और जिसका हृदय दुष्कामनाओं से भरा हुआ हो (पृ० ६७) वह ताक झांक करे—राह चलते हुए लोगों को अपनी ओर आकर्षित करे, परन्तु, शुद्ध हृदय से करे, कुवासना का कुछ भी लगाव न हो, यह बात अस्वाभाविक तथा अति-शयोक्ति पूर्ण मालूम होती है।

सुमन पब्लिक बाग़ में जाती है। वहां के रक्षक से उसका झगड़ा होता है और यहाँ तक नौबत पहुंच जाती है कि रक्षक उससे हाथा-बांही करने लगता है (पृ० ४७)। बाग़ के रक्षक से एक स्त्री की हाथाबाँही कुछ अधिक सुन्दर नहीं मालूम होती। बाग़ के रक्षक का एक अपरिचित भले घर की स्त्री के साथ हाथा-बाँही करने का साहस कहां तक हो सकता है? यह सोचने की बात है। पद्मसिंह रक्षक को उसके इस कार्य पर डांटते हैं। रक्षक छूटते ही उनसे प्रश्न करता है—"सरकार क्या यह आपके घर की हैं?" (पृ० ४९)। कितना गर्मागर्म फ़िक़रा है? यह फ़िक़रा हँसी के चुटकलों की पुस्तक में अधिक शोभा देता। ऐसे गम्भीर अवसर पर माली का पद्मसिंह से ऐसी बेत-कल्लुफ़ी से पेश आना कहां तक अच्छा समझा जा सकता है? यह पाठक स्वयं सोच लें। क्या माली और पद्मसिंह में मज़ाक भी होता था। यहां "घर की" से पता का भाव टपकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके पश्चात् पद्मसिंह की स्त्री सुभद्रा से सुमन की घनिष्ठता बढ़ती है और सुमन सुभद्रा के पास आने जाने लगती है। सुमन के इस आने जाने पर पद्मसिंह के मित्र उनके चरित्र पर संदेह करते हैं। इसके पश्चात् सुमन का घर से निकाला जाना सामने आता है। सुमन पति से आज्ञा लिये बिना ही पद्मसिंह के यहाँ नाच देखने गई और नाच देखकर रात को एक बजे लौटी। गजाधर पाँडे बारह बजे तक उसकी प्रतीक्षा करके सो गये। सुमन के घर लौटने पर उसके पति ने उसके बाहर रहने का कारण पूछा। सुमन ने पहले ही से झूठ बोलना आरम्भ किया। कहा—मैं दस बजे ही आ गई थी और द्वार पर बैठी रही। गजाधर स्वयं बारह का घंटा सुनकर सोये थे, अतएव उन्हें सुमन के झूठ बोलने पर अधिक संदेह हुआ और ऐसा होना भी ठीक ही है। झूठ बोलने वाले पर संदेह होता ही है। इसी पर बात बढ़ जाती है और गजाधर सुमन को घर से निकाल देता है और साथ ही उसे उसके गहनों का बक्स भी दे देता है। गजाधर बड़ा कृपण था, (पृ० २६) क्रोध में भरा हुआ मनुष्य इतना उदार नहीं होता कि जिसे घर से निकाले, उसे ज़ेवरों का बक्स देकर निकाले और विशेषतः जब कि वह कृपण है। इस स्थान पर लेखक ने यह भी दिखाया है कि सुमन ने गजाधर से बिनती की, खुशामद की, राई चिल्लाई! खुशामद करने की पहली बानगी देखिये:— नींद में सिर पैर की ख़बर ही नहीं रहती। घंटे गिनने बैठे थे। जो गहने गढ़ाते हो, मत गढ़ाना, रानी रूठेगी अपना सुहाग लेंगी (पृ० ६२)। क्या यही शब्द खुशामद करना, विनती करना समझे जा सकते हैं? अंत तक सुमन की बातें इसी ढंग की रहीं। एक दोबेर उसने कुछ नम्र होकर केवल इतना कहा:—यदि तुम मना करते हो तो अब न जाऊंगी। किन्तु; केवल इतने शब्दों से खुशामद इत्यादि का काम पूरा नहीं समझा जा सकता। सुमन घर से निकल कर पद्मसिंह के यहां पहुंचती है और दो दिन उनके यहां रहती है। सुमन को घर में रखने से पद्मसिंह के चरित्र पर सन्देह किया जाता है और वह उसे अपने घर से निकाल देते हैं। यहाँ पर पद्मसिंह के चरित्र पर उनके मित्रों का सन्देह करना कुछ खटकता है। पद्मसिंह कुछ दुराचारी न थे और न पूर्व ही में उनका चरित्र ख़राब रह चुका था, ऐसी दशा में उनके पढ़े-लिखे तथा समझदार मित्रों का गजाधर की बात पर एक दम विश्वास कर लेना और पद्मसिंह के चरित्र पर सन्देह करना ठीक नहीं मालूम पड़ता। यदि यह कहा जाय कि सन्देह तो उसी समय से था, जब कि सुमन पद्मसिंह के यहां आती जाती थी। इस पर मेरा यह कथन है कि सुमन सुभद्रा के पास आती जाती थी और स्त्रियों के पास प्रायः अड़ोस पड़ोस की तथा अन्य स्त्रियां आया जाया ही करती हैं, पर इससे लोग यह सन्देह नहीं करते कि उस घर के किसी पुरुष से बुरा सम्बन्ध होने ही के कारण कोई स्त्री आती जाती है। सुमन पद्मसिंह के यहाँ से निकल कर सीधी भोली वेश्या के यहां पहुंच जाती है। इसके पश्चात् सुमन के चरित्र पर कुछ देर के लिए परदा डाल दिया गया और पीछे उसे एक दम दालमंडी में वेश्या की हैसियत से बैठा हुआ दिखाया गया है। यह अंधकार कुछ खटकता है। इससे ज्ञात होता है कि लेखक ने सुमन का पतन करने में जल्दी की है। यहां तक तो पतन की बात हुई। अब यहां से सुधार आरम्भ होता है और बड़े ज़ोरों के साथ।

विट्ठलदास (पद्मसिंह के मित्र) को पता लगता है कि सुमन वेश्या हो गई। वह उसके पास जाकर उसे धिक्कारते हैं। सुमन उनसे पहले वकीलों की तरह बहस करती है और पीछे अपनी इस स्थिति को त्याग देने का वचन देती है। यहां पर सुमन के सुधार में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल्दी की गई है। विलासप्रिय, इन्द्रियों का सुख चाहनेवाले दुष्कामनापूर्ण आदमी का पतन चाहे शीघ्र हो भी जाय, किन्तु; उसका सुधार शीघ्र नहीं होता। वेश्यामार्ग एक ऐसा मार्ग है कि इस मार्ग पर पहुंचकर स्त्रियां इस पर से शीघ्र नहीं लौटतीं और बहुत कम लौटती हैं। यहां पर सुमन ने विट्ठलदास से कहा है:-"मैं गाऊंगी, नाचूंगी, पर अपने को भ्रष्ट न होने दूंगी। आगे चलकर वही सुमन कहती है—"मेरे चले जाने से उनकी (सेठों की) काम-तृप्ति में विघ्न पड़ेगा।" जिस स्थान पर सुमन घर से निकाली गई है, उस स्थान पर लेखक ने लिखा है:—अब सुमन उन दुष्कामनाओं को पूर्ण कर सकती थी, जिसके लिए उसका हृदय लालायित हो रहा था। जो स्त्री विलासप्रिय हो, जिसका लक्ष्य केवल इन्द्रियों का सुख भोगना हो, जो अपनी दुष्कामनाएँ पूरी करने के लिए लालायित हो, वह स्त्री वेश्या हो जाने पर भी भ्रष्ट न हो- यह बात कुछ खटकती है। लेखक ने सुमन को शुद्ध रखने की व्यर्थ चेष्टा की है। इसके पश्चात् सुमन विधवा आश्रम में चली जाती है और इस स्थान से सुमन के सम्बन्ध की बातों में कुछ उदासीनता सी आ गई है।

अब मैं संक्षेप में उन बातों का उल्लेख करता हूँ जो मुझे पसन्द आईं।

पद्मसिंह की कमज़ोरियां अच्छे ढंग से दिखाई गई है।

सदनसिंह के साथ पद्मसिंह के प्रेम और सुभद्रा की प्रेमहीनता में अच्छी स्वाभाविकता है।

पद्मसिंह के यहां नाच का दृश्य अच्छे ढंग से लिखा गया है। मेरी समझ में लेखक मदनसिंह का चरित्रचित्रण करने में अधिक सफल हुआ है। वह पुराने विचारों के आदमी थे और उनका यह पुरानापन अंत तक निबाहा गया है। विशेषतः—उस स्थान पर तो लेखक ने कमाल किया है, जहां पौत्र के जन्म का समाचार सुनकर सदनसिंह के प्रति मदनसिंह का सारा क्रोध काफ़ूर हो जाता है और वे पुत्र से मिलने तथा पौत्र का मुख देखने के लिए अधीर हो जाते हैं। पौत्र का जन्म सुनकर सदनसिंह की माता का ढोलक बजाना माता के हृदय का सच्चा चित्र है। इसके अतिरिक्त और भी अनेक भाव अच्छे हैं। शांता के गर्भवती होने पर सदनसिंह का कामलोलुप होना स्वाभाविक है, किन्तु; उपन्यासों में ऐसे चित्र जहां तक कम दिखाये जाँय, अधिक अच्छा है। क्योंकि यह बात दुर्बल-स्वभाव पाठकों के लिए हानिकर है।

लेखक ने विचार-सम्बन्धी भूलें भी की हैं। वेश्या के घर की तुलना मंदिर से करते हुए लिखा है:—जिस प्रकार मंदिर में सच्ची उपासना करने कोई नहीं आता, उसी प्रकार वेश्या के यहां सच्चा प्रेम करने कोई नहीं आता। यहां दोनों ओर से भूल हुई है। वेश्यागामी मनुष्यों में ऐसे व्यक्ति देखे गये हैं, जिन्हें वेश्या से सच्चा प्रेम होता है और वे उसके लिए प्राण दे सकते हैं। ऐसी बहुत सी घटनाएं देखी गई हैं। अब मंदिर को लीजिये। "मंदिर में सच्ची उपासना करने कोई नहीं आता"। मैं नहीं समझता कि लेखक के मस्तिष्क में सच्ची उपासना का क्या आदर्श है? सम्भव है, अपने किसी विशेष आदर्श पर लेखक ने ऐसा लिखा हो, किन्तु; मेरी समझ में सच्ची उपासना केवल इतनी ही है कि उपास्य पर विश्वास तथा उसके प्रति भक्ति होना। एक बेपढ़े लिखे आदमी की सच्ची उपासना यही है कि वह उपास्य को देखकर कुछ क्षण के लिए भक्ति से भर जावे। क्या मंदिर में ऐसा कोई व्यक्ति आता ही नहीं, जिसे मंदिर की मूर्ति पर विश्वास न हो और उसके प्रति भक्ति न हो? मेरी समझ में पुरुषों में चाहे ऐसों की संख्या बहुत कम मिले, किन्तु; स्त्रियों में अधिक मिलेंगी। सच्ची उपासना के अर्थ केवल यही नहीं हो सकते कि योगाभ्यास करे। और, अपने उपास्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में लीन हो जाने की चेष्टा करे। एक साधारण व्यक्ति अपने उपास्य पर एक लोटा जल चढ़ाकर भक्तिपूर्वक उसे प्रणाम करता है और कुछ क्षण के लिए गद्गद हो जाता है—तो क्या यह उसकी सच्ची उपासना नहीं कही जा सकती? यदि यह सच्ची उपासना कही जा सकती है, तो ऐसे मनुष्यों की संख्या मंदिरों में बहुत मिलेगी।

एक स्थान पर लेखक ने लिखा है:—"हमारा चरित्र कितना ही दृढ़ हो किन्तु उस पर संगति का असर अवश्य होता है।" (पृ० २९) इसमें "कितना ही" और "अवश्य" शब्द खटकते हैं। मेरी समझ में केवल दृढ़ चरित्र ही पर संगति का असर नहीं हो सकता "कितना ही" की तो दूसरी बात है। पहले यह सोचने की बात है कि दृढ़ चरित्र किसे कहते हैं? चरित्र के दृढ़ता की परख कब होती है? चरित्र की दृढ़ता तभी समझी जा सकती है, जब उसके प्रतिकूल भावों का उस पर कुछ भी असर न हो। प्रतिकूल भावों का असर तभी हो सकता है, जब मनुष्य उन भावों के संसर्ग में आवेगा। यदि मनुष्य अपने चरित्र के प्रतिकूल संगति में बैठकर उसके बहाव में बह गया, तो चरित्र की दृढ़ता स्थिर नहीं रह सकती। चरित्र की दृढ़ता का पता तभी लगता है जब मनुष्य प्रतिकूल संगति में पड़कर भी अछूता निकल आवे। यदि चरित्र की दृढ़ता में इतना भी नहीं हो सकता तो चरित्र की दृढ़ता का कोई अर्थ ही नहीं रहता। एक विरक्त, जिसने शुद्ध हृदय से सांसारिक झगड़ों से मुंह मोड़ लिया है, जिसके हृदय में वैराग्य का स्रोत बह रहा है, यदि वह कुछ दिनों शराबियों की संगति में पड़ जाय, तो क्या वह शराब पीने लगेगा? जुआरियों की संगति में रहकर जुआ खेलने लगेगा? और यदि वह ऐसा करने लगे तो क्या तब भी कोई समझदार आदमी यह कह सकता है कि उसका वैराग्य दृढ़ हो चुका था? सच तो यह है कि दृढ़-चरित्र आदमी अपने चरित्र के प्रतिकूल संगति में रहेगा ही नहीं, और यदि किसी अवसर पर विवश होकर ऐसा करना भी पड़े, तो यथा शीघ्र इससे अछूता ही निकल आवेगा।

सुमन के मुंह से एक स्थान पर लेखक ने कहलवाया है:—"सुंदर स्त्रियों को चंचल पाया"। सब सुंदर स्त्रियां चंचल नहीं होतीं। उर्दू कवियों ने शोख़ी (चंचलता) को हुस्न (सौंदर्य) का अलंकार माना है; किन्तु; हया (लज्जा) को भी हुस्न का अलंकार माना है। कुछ कवियों ने तो लज्जा को चंचलता से अधिक सम्मति है। हुस्न के साथ शोख़ी होने का भाव कदाचित् लेखक ने उर्दू ही से लिया हो। किन्तु; उर्दू में भी यह भाव नहीं है कि सब हसीन शोख़ ही होते हैं। हुस्न के साथ शोख़ी होना आवश्यक नहीं है। सुंदर स्त्रियों में कभी चंचलता का नाम नहीं होता, वरन; उसके स्थान में लज्जा पाई जाती है। कुछ लोगों का तो कथन यह है कि सौंदर्य के साथ लज्जा का होना सौंदर्य को बढ़ा देने का हेतु होता है।

एक स्थान पर एक पात्र ने कहा है:—अब यह मुंहास कीसी सूरत लेकर मैं किसे मुंह दिखाऊँगा (पृष्ठ १९०)। मुंहास शब्द कर्णकटु है, और कहीं कहीं अश्लील समझा जाता है। अंत में मुझे केवल इतना कहना है कि मेरी तुच्छ सम्मति में साधारणतः दो तीन पात्रों का और विशेषतः सुमन का चरित्रचित्रण करने में लेखक कुछ अधिक सफल नहीं हुआ। किन्तु; इन बातों से पुस्तक की रोचकता और नवीनता को विशेष धक्का नहीं लगा। पुस्तक अच्छी निकली है। उसमें बहुत सी बातें स्वभावानुकूल हैं। भाव भी अनेक स्थानों पर बड़े सुंदर हैं। उदाहरणार्थ २७१ पृष्ठ में साधु की बातें। १७० पृष्ठ में पद्मसिंह के हृदयगत भाव.........इत्यादि इत्यादि।

हिन्दी संसार प्रेमचंदजी से बहुत कुछ आशा रखता है और ईश्वर करे, यह आशा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय टिप्पणियां ।

पश्चिमीय स्थिति

तनिक भी कम चिन्ताजनक नहीं है। रूस में इस समय में भी कोई दायित्वपूर्ण गवर्नमेंट स्थापित नहीं हुई है। यह सच है कि बोलशेविकों की प्रधानता कुछ कम हो रही है, किन्तु; यही सब कुछ नहीं है। रूस में बोलशेविज़्म चाहे कम ही होता हो, किन्तु; इसका साम्राज्य विस्तृत होता जा रहा है। आस्ट्रिया-हंगरी में इस समय बोलशेविक शासन का दौर दौरा है।

हंगरी की दशा

यों ही ख़राब थी। महँगी, अन्न-कष्ट, स्थायी शासन का न होना, कुप्रबन्ध के कारण जनता त्राहि त्राहि कर रही थी कि यह ख़बर मिली कि मित्र दल के राष्ट्र हंगरी के बहुत बड़े भाग पर कब्ज़ा जमाना चाहते हैं। मित्रदल का कहना था कि बालशेविज़्म को हंगरी के शासक रोक नहीं सकते। बोलशेविज़्म का प्रचार रोकने के लिए तथा इसलिए भी कि मित्रदल बोलशेविकों की सेना के मार्ग को बन्द करें, हंगरी के कुछ प्रदेश मित्रराष्ट्र रोमानिया, जचोस्लावों आदि को देना चाहते थे। इससे हंगरी में और भी गड़बड़ मची। कौन्ट केरोली ने इस्तीफा दे दिया और प्रजातंत्र के स्थान पर सोवाइट शासन स्थापित होगया। इसने रूसी सरकार से सन्धि स्थापित करली है और इस प्रकार सशक्त होगया है।

जर्मनी

की दशा और भी शोचनीय है। बोलशेविज़्म का प्रभाव खूब बढ़ रहा है। यह तो नहीं मालूम पड़ता कि ऊंट किस करवट बैठेगा, किन्तु; यह डर ज़रूर है कि यदि जर्मनी में भी बोलशेविज़्म का ज़ोर हुआ, सोवाइट सरकार स्थापित होगई तो सन्धि कौन और किससे करेगा? जर्मनी, रूस और आस्ट्रिया हंगरी का योग भी चिन्ताजनक होगा।

टर्की

हर तरह से त्रस्त है, किन्तु; टर्की साम्राज्य रूपी ज्वालामुखी पहाड़ के फटने से जो अग्नि-स्फुलिङ्ग और लावे बह निकले हैं उसके कारण जनता अन्न बिना मर रही है। ऐसी स्थिति में बोलशेविज़्म ज़ोर पकड़ता, इसको रोकने के लिए मित्रदल ने यह निश्चय किया कि जर्मनी में अन्न न भेजा जाय। जर्मनी के साथ सन्धि की जो शर्तें हो रही हैं वे भी बहुत कड़ी हैं। नतीजा यह है कि जनता जर्मन फौज़ीपन से नाराज़ होते हुए भी मित्र दल से प्रसन्न नहीं है। इस समय जर्मनी वाले, सन्धि की शर्तों के अनुसार जो जहाज़ उनको देने चाहियें, उन्हें देने से इन्कार कर रहे हैं। यह कहना असम्भव है कि वे संसार को हिलाए दे रहे हैं। संसार के मुसलमान कभी इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि उनके ख़लीफ़ा सुल्तान टर्की का मक्का, मदीना, पेलस्टाइन आदि पर अधिकार न रहे। एक ओर यह है, दूसरी ओर मित्र-राष्ट्र इनको स्वतंत्र राष्ट्र बनाने पर कटिबद्ध हैं। पेलस्टाइन पर यहूदियों का झंडा शीघ्र ही फहरायगा, आरमीनिया भी एक छोटे राष्ट्र का रूप धारण करेगा। इन सब पर राष्ट्र-संघ के किसी सदस्य की देख रेख रहेगी। यह असम्भव नहीं कि टर्की को ये सब प्रदेश किसी भविष्य में अलसेस-लोरेन का काम दें।

मिस्र

भी करवट बदल रहा है। मिस्र का राष्ट्रीय दल सन्धि-परिषद के इजलास में अपना मामला उपस्थित करना चाहता था। नर्म दल शक्ति पर था। उसके नेता मिस्र के प्रधान सचिव ही थे। वे और उनके साथियों ने मुल-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तान को राज़ी कर लिया था कि मिस्र की दशा में सुधार होना आवश्यक है। प्रधान सचिव एक डेपूटेशन लेकर लन्दन जाना चाहते थे। वे ब्रिटिश मंत्रिमंडल के सदस्यों को समझा बुझाकर राज़ी करना चाहते थे। सुलतान से उन्होंने लंदन जाने की आज्ञा लेली थी। ब्रिटिश मंत्रिमंडल से उन्होंने लिखापढ़ी की, किन्तु; उत्तर मिला कि इस समय नहीं। फिर पत्र भेजा गया, किन्तु; उत्तर वही मिला कि मन्त्रिमंडल को इस समय बहुत से आवश्यक काम हैं, इसलिए इस समय डेपूटेशन से मिलना असंभव होगा। इस पर प्रधान सचिव ने इस्तीफा दे दिया। इस्तीफा वापस लेने के लिए बहुत दबाव डाला गया, किन्तु; अन्त में सचिव ने इस्तीफा देही दिया। कौम में हरारत फैल गई, उपद्रव हो गया और

वायुयान की सहायता

से शान्ति स्थापित की गई। इस समस्त

झगड़े का कारण

यह है कि पश्चिमीय संसार और विशेषकर इङ्गलैंड कभी मिस्र को स्वतन्त्रता देने को राज़ी नहीं। मिस्र की स्वतंत्रता के विरुद्ध तीन दलीलें पेश की जा रही हैं। एक तो यह है कि मिस्र की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह स्वतंत्र रह कर स्वयम् अपनी रक्षा नहीं कर सकता, कोई न कोई विदेशी आक्रमण कर कब्ज़ा कर ही लेगा। दूसरा कारण यह है कि बहुत सी संख्या में गोरी जाति के मनुष्य वहां बस गये हैं, कितने ही नित सैर करने आया करते हैं, उनकी जान माल की रक्षा के हेतु यह आवश्यक है कि गोरी जाति का अधिकार मिस्र में रहे। तीसरा कारण यह बतलाया जाता है कि मिस्र में गोरे व्यापारियों और धनिकों का करोड़ों रुपया लगा हुआ है, उस धन की रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि गोरी जाति की देखरेख में मिस्र रहे। स्वार्थ और अन्धार्थ की पराकाष्ठा का चित्र इससे बढ़िया और कहीं नहीं दिखाई देगा। मिस्र के नेता निर्वासित कर दिये गये हैं। इधर मिस्र में यह हो रहा है, उधर ट्यूनिस (ट्रिपली) और मोरको ने भी स्वराज्य का मंत्र जपना आरम्भ कर दिया है।

इंगलैंड

की परिस्थिति अच्छी नहीं है। हड़तालों की विभीषिका से वह त्रस्त है। पार्लमैंट के चुनाव के फल से भी लोग असन्तुष्ट हैं। मज़दूर और मालिकों में हाय हाय मची हुई है। मुनाफे का अधिक अंश मज़दूर चाहते हैं, क्योंकि वे कहते हैं कि काम वे करते हैं, रुपया लगाने वाले अपने रुपये का ब्याज ले लें या और कुछ अधिक, किन्तु;

मुनाफे का लाभ

उनको नहीं दिया सकता। खींचतान ज़बर्दस्त है। लोग बोलशेविज़्म का भी स्वप्न देखने लगे हैं। बोलशेविकों की एक सभा भी अभी लंदन में हुई थी। बाहर के झगड़े तो दूर रहे, इस समय घर के झगड़ों से इङ्गलैंड की जान भारी है। सुनते हैं, वेल्स भी स्वराज्य चाहता है।

आयर्लैंड की समस्या

ज्यों की त्यों है। अमेरिकावाले आयर्लैंड की सहायता के लिए कटिबद्ध दिखाई देते हैं।

अमेरिकन सिनेट में आयर्लैंड की स्वतंत्रता का प्रस्ताव अधिक संख्या से पास हो चुका है, राष्ट्रपति विल्सन से यह भी प्रार्थना की गई है कि वे सन्धि-परिषद् में आयर्लैंड के मामले को पेश करें। अभी फिलेडेलफिया में भी आयर्लैंड की स्वतंत्रता के पक्षपातियों की एक सभा हुई थी। तीस लाख का चन्दा भी उस सभा में हुआ है। यह रुपया आयर्लैंड को दिया जायगा। यह भी प्रस्ताव पास हुआ है कि इङ्गलैंड और आयर्लैंड युद्ध की स्थिति में हैं।

एमेरिका

में भी मतभेद है। सब से पहिले तो राष्ट्रपति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विल्सन ने रङ्ग बदला है । पुरानी बातें वे भूल गये हैं । पहिले वे कहा करते थे, कि बली और प्रभावक्षेत्र आदि के सिद्धान्तों को नहीं मानते, राष्ट्रों को---जातियों को---वे स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार देना चाहते थे, वे राष्ट्र-संघ स्थापित करना चाहते थे, जिसकी नींव इस प्रस्ताव पर स्तंभित थी कि राष्ट्रों की सेना, नौ-सेना और उनका सामान कम किया जाय, किन्तु; अब यह सब बातें उनकी हवा हो गई हैं । एमेरिका में सेना और नौ-सेना की वे स्वयम् भीषण वृद्धि कर रहे हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि उन बातों का तब तक कुछ मूल्य नहीं है, जब तक कि बातों के पीछे पीछे उनकी सेना और नौ-सेना का महत्व न जुड़ा हो । स्वभाग्य-निर्णय का सिद्धान्त भी केवल उन जातियों के लिए रह गया है जो शत्रुदल के अधीन थीं । बली और प्रभावक्षेत्र आदि का सिद्धान्त भी अब 'मान्डेटरी पावर्स' के नाम से बना रहेगा । राष्ट्रपति विल्सन के सम्बन्ध में यही कहना काफी होगा कि वे

हो बीते ।

सिनेट में भी रिपब्लिकन पार्टी का ज़ोर है । सेनेटर-लाज के साथी अधिक संख्या में हैं और वे राष्ट्र-संघ का विरोध कर रहे हैं ।

चीन की परिस्थिति

अच्छी है और वह ज़ोरों पर है । जापान उसको निगल जाने को मुंह बाये बैठा है, वह इस समय चीन से बहुत चिढ़ा हुआ है । चीन ने जापान की गुप्त सन्धियों का भंडा फोड़ दिया है । इसके साथ ही साथ चीन ने सन्धि-परिषद् में साफ साफ कह दिया है कि वह बली और प्रभावक्षेत्र आदि के सिद्धान्तों को नहीं मानता, और चीन में वह किसी का प्रभावक्षेत्र न मानेगा । वह जापान से कियाचो आदि भी वापस माँगता है ।

जापान

सब तरह से तैयार है । पुराने अस्त्र-शस्त्र, गोला-बारूद को मित्र-राष्ट्रों के हाथ उसने बेंच दिया था और नया सामान तैयार कर लिया है । वह अपना साम्राज्य भी बढ़ाना चाहता है, इङ्गलैंड जापान की हां में हां मिलावेगा । जापान बाज़ारों पर भी ज़ोरों से कब्ज़ा कर रहा है ।

ब्रिटिश उपनिवेश

मदान्ध हो रहे हैं । काले और गोरे का भेद वे फिर देखने लगे हैं । जिस समय कि जर्मन सेना द्वारा द० एफ्रिका पर आक्रमण किया गया, उस समय भारतीय सेना और भारतीय कुली ही उस प्रदेश की रक्षा करते हुए सुनाई पड़ते थे, किन्तु, काम निकल जाने पर फिर वही अन्याय, अनुदारता और काले गोरे का राज्य वहां जम गया ।

दक्षिण एफ्रिका

में फिर अन्याय आरम्भ हो गया है । सत्याग्रह की गूँज भी अभी कानों में सुनाई दी थी । भारतीय महिलाओं की परीक्षा वहां मर्द डाक्टर करते हैं, भारत वासियों को व्यापार के लिए लाइसेन्स नहीं मिल रहे हैं, न्यायालयों में भी रङ्गभेद दिखाई देता है, कई स्थानों में भारतवासी ज़मीन मोल नहीं ले सकते । प्रवासियों का कानून भी सख़्ती के साथ प्रयोग में लाया जा रहा है । अभी हालही में एक मोहम्मद इशहाक नामक भारतवासी का वहां देहान्त हुआ । वह ६ लाख की सम्पत्ति छोड़ कर मरा । इसका एक भाई मोरिशस में है । उसने दक्षिण एफ्रिका की सरकार से प्रार्थना की, कि उसे भाई की जायदाद को लेने के लिए कुछ समय के लिए द० एफ्रिका में घुसने का हुक्म दिया जाय, किन्तु; उसको हुक्म नहीं मिला । एक ओर भारतवासियों के साथ यह जुल्म हो रहा है--इसी जुल्म की दोहाई देकर बोअर युद्ध छेड़ा गया था--दूसरी ओर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द० एफ्रिका के राष्ट्रीय दलवाले स्वाधीन प्रजातंत्र राज्य स्थापित करना चाहते हैं। वे इङ्गलैंड से सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं। एमेरिका की सेनेट ने यह प्रस्ताव भी पास किया था कि द० एफ्रिका का स्वाधीन प्रजातंत्र स्थापित होना चाहिये ;

भारत

की दशा हीन है। नौकरशाही एक सूत्र में बंध कर काम कर रही है। भारत के सुपूत

फूट का फाग

खेल रहे हैं। नर्म और गर्म दल में, उदार और अनुदार में मातृ-सेवा की प्रतियोगिता नहीं है, उनमें परस्पर होड़ है कि कौन किसको अधिक गाली दे सकता है। कोई किसी को जयचन्द और अमीचन्द का सन्तान कह कर उनके नाम नर्क से चिट्ठी लाता है, किसी को इसका उलहना है कि हम पर प्रेस एक्ट की तलवार चलती है, किन्तु; फलां को कोई कुछ नहीं कहता। गोरे पत्र सब एक हैं, किन्तु; भारतीय पत्र, जिनके हृदय में दाग हैं, जल रहे हैं, और जुदा जुदा हैं। सरकार दमन-नीति का ऋण खाये बैठी है, वह भारतीय प्रतिनिधियों के मतों को पैरों के नीचे रौंदकर रौलट बिलों को कानून का जामा पहनाती है। हमारे नेता इसकी स्पर्धा में मौजें मार रहे हैं कि हम होश में हैं, हम विचलित नहीं होते, राजनैतिक तूफान की गर्द आंखों को बन्द नहीं किये दे रही है और हम

अचल और अटल

हैं। लंदन डेपूटेशन जा रहे हैं। माडरेट, राष्ट्रीय, होमरूल लीगवाले, और लो० तिलक के मतानुयायी सभी जायेंगे। भिन्न २ प्रान्तों के लिबरल एसोसियेशन्स भी डेपूटेशन भेजेंगे। यह सब आकर लंदन में भारतीय फूट का नमूना दिखावेंगे।

देश में हाहाकार

मचा हुआ है। अकाल मेहमान घर में आ धमका है। पिछली फसल खराब गई थी, आज कल की फसल भी अच्छी नहीं हो पाई। दो बार बूंदा बूंदी हो जाने से तथा ओलों के पड़ने से आम जो बौर पर थे, ठंडे पड़ गये। अब मनुष्यों को अन्न की कमी है और जानवरों को घास और भूसे की। इन्फ्लुएंजा में अभी ६०,००,००० मनुष्य मर चुके हैं, अब देखें अकाल के कितने भेंट होते हैं ?

मँहगी की मार

भी कम नहीं है। मिट्टी भी महँगी बिक रही है, और क्या कहें। यह सब तन, मन को जलाने के लिए मानो काफ़ी न था, इसी लिए इसी समय में रौलट कानून पास हुआ। सौभाग्य से

महात्मा गांधी

ने भी अपना सत्याग्रह का अस्त्र उठा लिया है, इससे देश की दशा या तो इस पार होगी या उस पार होगी। यद्यपि इस आन्दोलन से खून और गहरे घावों से सम्बन्ध न था, किन्तु; सत्याग्रह के प्रथम दिवस को ही मदान्ध नौकरशाही ने

खूने नाहक

किया। दिल्ली में गोलियां चल गईं। इधर कई वर्षों से हम देख रहे हैं कि गोली चलाने की आज्ञा का देना वैसाही उत्तरदायित्वहीन हो गया है जैसे कि एक चिट्ठी (डी० ओ०) का लिख देना। गोली चलाना संसार में अन्तिम प्रयत्न होता है, किन्तु; भारत में दिखाई देता है कि यहां से श्रीगणेश होता है। निरंकुश शासन की इससे अच्छी बानगी और क्या हो सकती है कि शासन का कार्य अब सेना की सहायता से हो रहा है, थोड़े में अफसर घबरा जाते हैं, और निःशस्त्र मनुष्यों पर गोलियां चल जाती हैं। मानव समाज चाहे इसका सहन भी करले, किन्तु हमको इसके कहने में संकोच

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कि परम पिता को अपने बच्चों का इस प्रकार खून सहन नहीं होगा। सत्याग्रह का आन्दोलन भी ज़ोरों पर है। ग्रामग्राम में लोग सत्याग्रह की सभाएँ कर शपथ ले रहे हैं कि वे अन्यायी कानूनों का जीवनपर्यन्त विरोध करेंगे।

जीवन की बाजी

लगी हुई है, देखें जीत किसकी होती है। हम इतना ही जानते हैं कि यदि इस बार भारत हारा तो सहस्रों वर्ष तक वह उभर भी न सकेगा, किन्तु इसके साथ ही साथ सत्य बात यह है कि संसार में

सत्याग्रह की हार

सुनी नहीं गई। यह बात दूसरी है कि विजय तत्काल ही दिखाई न दे, किन्तु; अन्त में सत्याग्रह का बोलबाला ही होगा।

स्वभाग्य-निर्णय का स्वप्न।

दुःख की बात है कि भारतवर्ष के लिए स्वभाग्य-निर्णय का सिद्धान्त स्वप्नवत् मालूम पड़ता है। हाउस आव् कामन्स में मिस्टर वाटर्सन ने पूछा:—

क्या, भारतमंत्री, (प्रस्तावित) भारतीय शासन सुधार करते समय उसके सम्बन्ध में स्वभाग्य-निर्णय का प्रयोग करेंगे?

उत्तर में मिस्टर मांटेगू ने कहा:—

सुधार २०वीं अगस्त (सन् १९१७) की घोषणा के आधार पर ही किये जा सकेंगे।

क्यों न हो, आखिर बृटिश नीति ही तो ठहरी। किसी ने ठीक कहा है:—

मतलब है साफ यह कि तेरा खूं करेंगे हम।
भेजा है पान जो उन्होंने ख़त के जवाब में॥

शिक्षा-विभाग की रिपोर्ट।

गवर्नमेंट आव् इंडिया ने, अभी हाल में, सन् १९१७ की शिक्षा-विषयक रिपोर्ट प्रकाशित की है। इसके देखने से पता चलता है कि इस वर्ष शिक्षा पर १२ करोड़ रुपया खर्च किया गया। स्कूलों की संख्या ४१६७ बढ़ी, वर्ष के अन्त में कुल संख्या १,६६,९१९ थी। प्राइवेट स्कूलों की संख्या ३९४ से घट कर ४७४०१ रह गई! विद्यार्थियों की संख्या ६६००० बढ़ जाने से ८०:०००० लाख हो गई। शिक्षकों की संख्या २,९२,७३९ है, गत वर्ष यह संख्या ८८,१६६ थी। दो नये विश्वविद्यालय—पटना और काशी में—खुले। स्वास्थ्य-रक्षा की दृष्टि से डाक्टरों के मिलने में जो कठिनाइयां पहिले थीं, वे प्रायः अब भी वैसी ही बनी हैं, इसके अतिरिक्त कला-कौशल सम्बन्धी शिक्षा में कोई ख़ास उन्नति नहीं हुई। इञ्जिनियरिङ्ग कालेजों का भी बहुत कुछ ऐसा ही हाल है।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि भारतवर्ष जैसे बड़ी आबादीवाले देश के लिए यह अवस्था सन्तोषजनक नहीं।

भारतवर्ष में मुक़दमेबाजी।

देश की दरिद्रता और पतन के अन्यान्य कारणों में एक बहुत बड़ा कारण मुक़दमेबाज़ी है। दुर्भाग्य का चिह्न है कि यह कारण दिन दूना रात चौगुना वृद्धि करता जा रहा है। सरकारी रिपोर्ट कहती है कि जहां १९१४ ई० में २०,५५,२७२ और सन् १९१५ में २२,२६,४६८ दीवानी (Civil) मुक़दमे हुए, सन् १९१६ में वे २,३२९,००० की संख्या में पहुंच गये। अर्थात् पहिले की अपेक्षा गत ५ वर्षों में यह औसत २,१५३,००० हो गया। इसी तरह जन-संख्या की दृष्टि से सन् १८८९ में जहां प्रति १०,००० पीछे ३८ फौजदारी मामले उपस्थित हुए थे, सन् १९१६ ई० में वह संख्या बढ़कर ४२ हो गई।

लोगों को चाहिये कि वे उपर्युक्त अङ्कों पर गम्भीरता के साथ विचार करें। हमारी समझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तो यह शासन दोष का फल है कि इस तरह लोग अदालत के कीड़े बनते जा रहे हैं।

अधिकारी-तंत्र की निरंकुशता ।

अन्धेर और बहुत बड़ा अन्धेर! बड़े लाट की कौंसिल में रौलट-बिल का प्रथम भाग पास हो गया। एक स्वर से हमारे प्रतिनिधियों ने विरोध किया, और ऐसे २ उपप्रस्ताव उपस्थित किये जिससे अधिक नहीं तो कम से कम कुछ समय के लिए बिल के पास होने में देर हो, किन्तु नौकरशाही ने एक न मानी। वह अपनी स्वेच्छाचारिता पर कुछ ऐसी अड़ गई कि उसने डेढ़ २ बजे रात तक बैठकर बिल को अन्त में पास ही कर डाला।

वे मनुष्य, जो पग २ पर बृटिश राज्य की न्यायशीलता की दुहाई दिया करते हैं, और वे लोग, जो बृटिश-शासन को इस देश के लिए हितकर समझते हैं, इस समय की सरकारी नीति। (Policy of administration) को देखकर दङ्ग रह गये। उन्होंने समझ लिया—और, अच्छी तरह समझ लिया—कि कौंसिल का अभिनय वास्तव में लड़कों का खेल है। वहां प्रजा-पक्ष के प्रतिनिधियों की कोई सुनवाई नहीं, जो मन में आया, कर डाला जाता है।

इस दशा में देशवासियों का क्या कर्तव्य है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय संग्राम का शङ्ख फूंक दिया है, और युद्ध में सम्मिलित होनेवालों को उन्होंने 'सत्याग्रह' नामक अस्त्र को उपयोग में लाने की शिक्षा दी है।

हर्ष का विषय है कि देश के अनेक स्थानों में इसका 'श्रीगणेश' हो चुका, और भारत की राजधानी दिल्ली ने वह काम कर दिखाया जो उसके योग्य था। गत रविवार (ता० ३० मार्च) को नगर में सब कारोबार—यहां तक कि ट्राम-गाड़ियाँ और तांगे भी—बन्द थे। चारों ओर सन्नाटा था, लोगों ने व्रत किया। जो लोग सत्याग्रही नहीं थे, वे भी उस दिन अपना कार्य स्थगित रख परमेश्वर की प्रार्थना करने के लिए राजी किये गये थे। दोपहर के समय सड़कों पर लोगों के बड़े २ झुण्ड इधर उधर घूमते हुए उदासीन दिखाई पड़ते थे। जब लोगों के ये झुण्ड घूमते फिर रहे थे, इसी बीच रेलवे स्टेशन से खबर आई कि स्टेशन पर मिठाई बेचनेवालों को दुकानें बन्द करने का उपदेश देने के कारण दो स्वयम्-सेवक कैद कर लिये गये हैं। इस पर लगभग एक हज़ार मनुष्य स्टेशन पर पहुंचे, और उनमें से कुछ लोगों ने रेलवे कर्मचारियों के पास पहुंचकर पकड़े गये लोगों को छोड़ देने को कहा, किन्तु कहते हैं कि वादा करने पर भी वे छोड़े नहीं गये। इतने ही में एक गोरे सर्जेंट और झुंड के एक दो आदमियों से झगड़ा होने लगा, अधिकारी कहते हैं कि ईंटें आईं जिस पर अधिकारियों की ओर से गोलियां चलीं और फिर दूसरी बार जब कि लोग घंटाघर के पास पहुंच रहे थे, उन पर मशीनगन की तीन बाढ़ें दागी गईं। फल यह हुआ कि लगभग ६० मनुष्य मरे और घायल हुये। किन्तु इससे लोगों का उत्साह भङ्ग नहीं हुआ। वे बराबर अपने व्रत पर शान्तिपूर्वक दृढ़ रहे, और उन्होंने बड़ी धीरता के साथ सन्ध्या समय अपनी सभा की।

जैसा कर्म, वैसा फल।

हमारे पाठक जानते ही हैं कि बोलशेविज़्म क्या चीज़ है? वास्तव में देखा जावे तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलशेविज़्म की जन्मदात्री पाश्चात्य सभ्यता है। इसी सभ्यता का फल यह विश्वव्यापी संग्राम हुआ, जिसमें एक जाति ने—बिना किसी धर्म या नीति का विचार किये हुए--दूसरी जाति को मटियामेट कर डाला। यदि यूरोपीय विज्ञान तथा कला-कौशल का मुख्य लक्ष्य यही होना चाहिये था, तो इसमें क्या आश्चर्य है कि बोलशेविक सम्प्रदाय, मनुष्य समाज में लोलड़ो आने परिवर्त्तन चाहता हुआ, यह सूचित करे कि राष्ट्र की सम्पत्ति—रुपया—पैसा—एवम् स्त्रियों पर सर्वसाधारण का अधिकार होना आवश्यकीय है!

❋

अस्त्र-आईन का सुधार।

यह चर्चा बहुत दिनों से चली आरही थी कि लार्ड चेम्सफ़ोर्ड की सरकार शीघ्र ही ऐसी व्यवस्था करनेवाली है जिससे अस्त्र-आईन की कठोरता जाती रहेगी। शोक के साथ लिखना पड़ता है कि लोगों की यह आशा दुराशामात्र निकली। सुधार कमेटी ने इस सम्बन्ध में अपना जो मन्तव्य प्रकाशित किया है, उसका सारांश इस प्रकार है:--(१) ब्रह्म देश, पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के सिवा और किसी स्थान में आग्नेय अस्त्र के अतिरिक्त दूसरा अस्त्र तथा प्राचीन ढङ्ग के आग्नेय अस्त्रों के व्यवहार में कोई बाधा न रहेगी। अवश्य किसी विशेष स्थान में प्रादेशिक सरकार शान्ति और शृङ्खला की रक्षा के लिए, इन सब हथियारों का व्यवहार रोक सकती है। (२) काले-गोरे का भेद उठा दिया जायगा, अर्थात् सब को लाइसेंस लेना होगा किन्तु; जिन जिन पर यह कानून अमल में लाया नहीं जा सकेगा, उनकी सूची अलग रहेगी। (३) इन लोगों को अपने अस्त्रों की रजिस्ट्री करानी नहीं होगी, किन्तु; भारत सरकार और प्रादेशिक सरकारों को यह अधिकार होगा कि यदि वे चाहें तो उन्हें भी राइफल, रिवाल्वर और तमंचों की रजिस्ट्री कराने को बाध्य कर सकते हैं। (४) जो ज़मींदार अपने नौकरों के लिए हथियार रखते हैं, तथा उन पर कानून लागू नहीं होता, वे भविष्य में निर्दिष्ट संख्यक नौकरों के लिए हथियार रख सकेंगे, किन्तु; प्रति वर्ष उनको रजिस्ट्री करानी होगी तथा अस्त्रों की सूची पेश करनी होगी। निम्नलिखित व्यक्ति राइफल और बंदूक रखने के लिए लाइसेंस पा सकेंगे। (क) जिन्होंने सरकारी उपाधि, और 'कैसरे-हिन्द' पदक या सम्मान सूचक सार्टीफिकेट पाया है, (ख) व्यवस्थापिका सभा के भूतपूर्व और वर्तमान सदस्यगण तथा जिन्हें दरबार में सम्मिलित होने का निमंत्रण होता है, (ग) जो लोग एक हज़ार रुपये मालगुज़ारी देते हैं, अथवा २५०) पथ-कर या पब्लिक वर्क्स का टैक्स देते हैं, (घ) जो कम से कम तीन वर्ष से ३०००) आय पर इन्कमटैक्स दे रहे हैं, (च) जो अढ़ाई सौ रुपये के ऊपर के वेतन के सरकारी कर्मचारी हैं, (छ) जल-स्थल सेना के उच्च-पदस्थ राजकर्मचारी अथवा देशी राज्य के ऐसे ही भारतीय सैनिक जो पल्टन में भर्ती हैं, (ज) जो सरकारी नौकरी के समय (च) और (छ) दफा में वर्णित पदों पर नियुक्त थे, वे पेंशन पाने पर भी उक्त अधिकार को प्राप्त कर सकेंगे।

कहना नहीं होगा कि इस मसविदे का रूप रङ्ग प्रायः वैसा ही है, जैसा अन्य सभी सरकारी कामों का हुआ करता है, और इससे देश को कुछ भी लाभ नहीं हुआ। उलटे, हमारी पराधीनता का क्षेत्र कहीं और विस्तृत हो गया।

❋

फिलीपाइन्स में राजनैतिक कैदियों का अभाव।

हमारे भूतपूर्व अर्थ-सचिव सर विलियम मेयर इस समय फिलीपाइन्स में हैं। आपकी इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य द्वीप-पुंज की राज-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैतिक, आर्थिक और अन्यान्य अवस्था का ज्ञान प्राप्त करना है। आपने वहां जाकर जेलों का जो निरीक्षण किया है, उससे आप चकित और स्तम्भित हो गये हैं। कारण यह है कि आपको वहां एक भी राजनैतिक कैदी नहीं दिखाई पड़ा।

हज़रत, अब तो शायद बतलाने की ज़रूरत नहीं रही कि एमेरिकन और बृटिश शासकों में कितना अन्तर है?

शासननीति में वर्णभेद।

ग्रेट बृटेन में सरकार ने उन समस्त सिनफिनरों को छोड़ देने की कृपा की है, जिन्होंने खुल्लमखुल्ला आयर्लैंड में बगावत का झण्डा खड़ा किया और राज्य को अनेक तरह की हानि पहुंचाई। किन्तु; भारतवर्ष में ऐसी कितनी ही आत्मायें—जो केवल किसी अपराध के कारण नहीं, वरन, इसलिए कि अधिकारियों ने उन पर सन्देह किया है—इस समय नज़र बन्दी और निर्वासन की कठिन यातनाओं को भोग रही हैं। उदाहरण के लिए हम अपने प्रियमित्र—हिन्दी संसार के सुपरिचित—पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर का नाम लेते हैं। पराड़कर जी बड़े ही सौम्य-प्रकृति और अध्ययनशील व्यक्ति हैं, वस्तुतः जहां तक हम जानते हैं उनका राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन बड़ा ही शुद्ध और निर्मल रहा है—वे कभी भूलकर भी अराजकों की पंक्ति में जाने वाले नहीं। परन्तु यह केवल सन्देह ही का कारण मालूम पड़ता है, जिससे वे बेचारे इस समय बङ्गाल के किसी छोटे गांव में पड़े कष्ट भोग रहे हैं।

एक ही देश की छत्रच्छाया में रहते हुए भारतवर्ष और आयर्लैंड के निवासियों के साथ भिन्न २ बर्ताव का होना एकमात्र वर्णभेद के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता।

बम्बई का सम्मेलन।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का नवां अधिवेशन बम्बई में ता० १९, २० और २१ एप्रेल तदनुसार वैशाख कृ० ४, ५, ६ को माननीय मालवीय जी के सभापतित्व में होना निश्चित हुआ है। हमारी कामना है कि मातृभाषा के प्रेमी बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित होकर इस अवसर पर अपनी क्रियाशीलता का परिचय दें।

स्वदेश का दर्शन।

कई महीने से हम जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, जिसके मार्ग की कठिनाइयां हमें अधिक चिन्तित कर रही थीं, गत सप्ताह में उस 'स्वदेश' ने हमें अपने दर्शन से प्रफुल्लित कर दिया। हम इसके आगमन का हृदय से अभिनन्दन करते हैं। सहयोगी अपने क्षेत्र में बड़ी आन-बान से निकला है। उसका आदर्श देशहित-गर्भित बातों से राजा और प्रजा के बीच मैत्र-भाव उत्पन्न करना है, जो सर्वतोभावेन प्रशंसनीय है। पत्र का मूल्य ३) वार्षिक है। मिलने का पता:—मैनेजर 'स्वदेश', गोरखपुर।

एक आवश्यकीय निवेदन।

बहुधा यह बात देखने में आती है कि हिन्दी के कुछ लेखक किसी पत्र में अपना लेख भेज कर उसीकी प्रतिलिपि दूसरे पत्र को दे बैठते हैं। इसका फल यह होता है कि एक ही चीज़ दो भिन्न २ पत्रों में देखकर पाठकों को एक दूसरे की नकल करने का भ्रम हो जाता है, और वे इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगते हैं। इससे लेखकों का तो कुछ नहीं बिगड़ता, किन्तु पत्र को जो धक्का लगता है, उसे पत्र संचालक ही जानते हैं। हमें दुःख है कि इस अङ्क में प्रकाशित 'संवत्सर का स्वागत' शीर्षक कविता की लेखिका ने इसी प्रकार की भूल की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वीय एफ्रिका में हम पर अत्याचार।

"इक जफ़ा तेरी जो कुछ भी नहीं
तो सब कुछ है।
इक वफ़ा मेरी कि सब कुछ है
मगर कुछ भी नहीं॥"

ब्रिटिश पूर्वीय एफ्रिका में हमारे भाइयों के साथ घोर अन्याय हो रहा है। वे कुछ कर नहीं सकते, हम भी किसी योग्य नहीं और हमारी सरकार चुप है। लार्ड हार्डिञ्ज ने बदले की नीति का सहारा लिया था, किन्तु लार्ड चेम्सफ़ोर्ड "टुक टुक दीदम" का सहारा ले रहे हैं। गोरे निवासियों के जुल्मों से तङ्ग आकर हमारे भाइयों का एक डेपुटेशन अपनी दुःख की कहानी सुनाने को भारत आया था। वह लार्ड चेम्सफ़ोर्ड से अपनी बीती सुनाना चाहता था, किन्तु उसको यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

"कौन सुनता है कहानी मेरी।
और फिर वह भी ज़ुबानी मेरी॥"

डेपुटेशन को सर टामस हालैण्ड की सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा मिली। उन लोगों ने उपस्थित हो कर जो कहानी सुनाई है उससे खून उबल पड़ता है। न्याय का तो कहना ही क्या, कृतज्ञता और वफ़ादारी पर भी गोरों ने हड़ताल फेर दी है। भारतवासियों ने ब्रिटिश पूर्वीय एफ्रिका को जन्म दिया, उन्होंने ही उसे आबाद किया, मनुष्यों के रहने के योग्य उसे बनाया, उन्होंने ही वहां रेल बनाई और सब कुछ किया। आदि काल में खून बहाकर भारतवासियों ने उस प्रदेश की रक्षा की, और इस यूरोपीय महाभारत में भी भारतवासियों ने जर्मनों से इस प्रदेश की रक्षा करने के कार्य में अच्छा भाग लिया। सरकार से निमंत्रित होने पर, अपने मन से नहीं, भारतवासी वहां गये थे। १८८८ में जो चार्टर ब्रिटिश पूर्वीय एफ्रिका कम्पनी को मिला था, उसमें भी साफ़ साफ़ लिखा था कि भारतवासियों के व्यापारिक तथा अन्य हितों की रक्षा होगी। इस समय भी उस प्रदेश में २५,००० भारतवासी और ५,६५० गोरे अधिवासी हैं। भारतवासी २,२५,०००) पोल टैक्स देते हैं और म्युनिसिपल टैक्स में १०० पीछे ६६) भारतवासी देते हैं। एक ओर यह सब है, दूसरी ओर व्यवस्थापक सभा में २० में से एक भी भारतवासी सदस्य नहीं है। कौंसिल ने एक कानून बना दिया है जो हिन्दू या मुस्लिम वैवाहिक संस्कार को स्वीकार नहीं करता। हाय हाय मचने पर एक कमेटी बनी थी, जिसने तय किया था कि व्यवस्थापक सभा में दो भारतवासी नियुक्त हुआ करें, किन्तु आज तक कुछ हुआ नहीं। म्युनिसिपैलटियों में भी भारतवासियों के काफ़ी प्रतिनिधि नहीं हैं। नैरोबी की म्युनिसिपैलिटी के १८ सदस्यों में दो निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधि घुसने पाते थे, किन्तु १९१८ से सरकार ने दो प्रतिनिधि नियुक्त करना शुरू किया। निर्वाचन की प्रथा उठ गई। नतीजा यह हुआ है कि भारतवासियों ने म्युनिसिपैलिटी से मुहँ मोड़ लिया और वे म्युनिसिपैलिटी में नहीं जाते। सुनते हैं, उन लोगों ने निश्चय किया है कि यदि उनको प्रतिनिधि निर्वाचन का स्वत्व न मिलेगा तो वे

टैक्स न देंगे

ज़मीन का जो बटवारा हुआ है, उसमें ऊंची ज़मीन जो स्वास्थ्यकर है, गोरों को मिली है।

जो नीचे है वह

भारतवासियों को। इसपर भी तुर्रा यह है कि इधर कई वर्षों से सरकार ने नीची भूमि भी भारतवासियों के हाथ नहीं बेची, इसे भी वह गोरों के हाथ बेच रही है। नतीजा यह है कि भारतवासियों को बहुत दाम देकर गोरों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज़मीन मोल लेनी पड़ रही है। १९१५ तक का हिसाब देखने से पता चलता है कि ५ करोड़ से कुछ अधिक एकड़ भूमि में से, जो सरकार ने अधिवासियों को दी है, केवल १३०५ एकड़ भारतवासियों को मिली है! बाकी सब ज़मीन गोरों को मिली है जिनमें आस्ट्रियन और जर्मन भी सम्मिलित हैं। अब सुनते हैं घोर अन्याय यह होनेवाला है कि गोरे सैनिकों को देने के लिए करोड़ों एकड़ ज़मीन की नाप जोख हो गई है, किन्तु भारतीय सैनिकों के लिए, जिन्होंने गोरों के साथ खून बहाया है, एक बीता भूमि का भी प्रबन्ध नहीं हुआ है!

शिक्षा का कुप्रबन्ध

भी असहनीय है। प्रत्येक गोरे युवक की शिक्षा के लिए सरकार ३१३) खर्च करती है, किन्तु भारतीय के लिए ६६)। यह सब तो था ही, अब भारतवासियों को

देश से निकाल देने

का भी भीषण प्रयत्न शुरू हो गया है। लार्ड डेलामीर, मेजर ग्रोगन आदि गोरे अधिवासियों से एक प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर करा रहे हैं। प्रार्थना-पत्र सरकार से कहता है कि भारतवासियों को शासन में बोलने का अधिकार न दिया जाय और ऐसा प्रबन्ध किया जाय कि उपनिवेश से समस्त एशियावासी निकाल बाहर किये जायँ। निस्सन्देह जर्मनों से प्रदेश की रक्षा करने के लिए इससे अच्छा पारितोषिक और नहीं दिया जा सकता था। युद्ध के अन्त होते ही यह प्रयत्न शुरू किया गया है। आये हुए हमारे भाइयों ने सर टामस हालैण्ड को यही कहानी सुनाई है। हमको इस सम्बन्ध में कुछ टीका टिप्पणी नहीं करनी है। हम तो सोते हुए नसीब के ऊषःकाल की बाट जोह रहे हैं, देखिये कब नसीब होता है।

महात्मा गांधी का संदेश

पाठक अन्यत्र पढ़ेंगे। शासक के सुशिक्षितों को यह बात सदा ध्यान में रखनी होगी कि असत्य का, शक्ति का, उद्दंडता या बर्बरपन का प्रयोग न हो, नहीं तो सब सत्यानाश हो जायगा। आप शक्ति के सहारे कुछ सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। थोड़ी सी बन्दूकें, तोपें या एक हवाई जहाज के बमों से शहर का शहर नष्ट किया जा सकता है, आप कुछ कर नहीं सकते। तनिक भी गड़बड़ करने से आप दूसरों की जानों को जोखिम में डाल देंगे और व्यर्थ में, साथ ही महात्मा गांधी तथा उनके अनुयायी सत्याग्रहियों के समस्त परिश्रम को आप धो बहावेंगे। सरकार और सत्याग्रहियों में, दमननीति और सत्य का

भीषण महाभारत

छिड़ गया है, सत्य की जय होगी और हो सकती है यदि आप सत्य का पक्ष ग्रहण करें और अन्याय या बर्बरपन या शक्ति से काम न लें। सावधानी से काम करने की ज़रूरत है, घबराने से या जोश में आकर किसी प्रकार की गड़बड़ करने से भीषण फल भोगना पड़ेगा और प्रजा पक्ष की हार हो जायगी। सावधान!

"अन्त का आरम्भ"

नहीं तो यह क्या है? क्या कोई ६ अप्रैल के पहिले यह कह सकता था कि भारतमें—जो फूट के मेवे के लिए प्रसिद्ध है, जो अनैक्य का भंडार है, जहां भेदभाव का साम्राज्य है—यह जो दिखाई दिया, संभव था? क्या किसी ने यह स्वप्न में भी देखा था कि देश के एक कोने से दूसरे कोने तक, शिमले-शैल से मद्रास तक और करांची से बङ्गाल तक बड़े बड़े नगरों में, कसबों और ग्रामों में सत्याग्रह का, ऐक्य का यह दृश्य दिखाई देगा? बाज़ारें बन्द, एक्के गाड़ी बन्द, कामकाज बन्द, हिन्दू मुसलमानों का मिलकर व्रत, सन्ध्या समय सहस्रों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की संख्या में उनका एक स्थान पर एकत्रित होना यह सब क्या है ? कसाइयों का एक दिन के लिए कसाई वृत्ति का बहिष्कार, गोश्त का, अंडों का न बिकना, शहर के एक छोर से दूसरे छोर तक सभी व्यापार का बन्द होना क्या साबित करता है ? प्रयाग में मल्लाहों ने उस दिन नाव नहीं चलाई, आठ आना सवारी मिलने पर भी वे नाव खोलने पर तैयार नहीं हुए, रुपया सेर दाम देने पर भी आलू नहीं मिला, प्रान्त के एक बड़े अफ़सर को बीमारी की दशा में सन्तरों की ज़रूरत थी, किन्तु अनुनय-विनय करने पर भी कोई कुंजड़ा बेचने को तयार न हुआ, लाहौर से आये हुए एक यात्री को जो उसी रात्रि की गाड़ी से जानेवाला था, ८) देने को तैयार होने पर भी ४ अमरूद न मिले। यह किस मंत्र का बल था ? उस दिन

कफन का कपड़ा

भी सत्याग्रह सभा के सदस्यों की अनुमति पाये बिना नहीं मिल सका। एक अर्थी के लिए बासों की ज़रूरत थी। लोग टाल पर गये, जो गये थे ईश्वर की दया से वे सम्पन्न हैं, एक गिनी फी बाँस वे देने को तैयार थे, किन्तु बाँसवाले ने यही कहा:—"आज हम बेचेंगे नहीं, ज़रूरत आपको ऐसी है कि आपको हम लौटा नहीं सकते, किन्तु न हम दाम लेंगे और न अपने हाथ से बाँस उठाकर देंगे, टाल खुली है आप आवश्यक बाँस अपने हाथ से उठा लीजिये"। कोई आध घंटे की बहस के बाद भद्र मनुष्य को विवश होकर बिना दाम दिये अपने हाथ से बाँस उठा कर ले जाना पड़ा। उपर्युक्त व्यापारी भाइयों के हृदय में यह

सत्याग्रह,

सत्य का प्रेम, यह कर्तव्य निष्ठा, यह प्रणपाल और त्याग किसने भर दिया ? चाँदी और सोने की चमक से भी उनकी आँखों का चौंधियाँ न जाना क्या साबित करता है ? क्या यह महात्मा गांधी का बल है, क्या यह उनकी आत्मा के विकाश का प्रकाश है जो भारतवासियों की आत्माओं में प्रवेश कर रहा है और इस प्रकार की अभूतपूर्व लीलाएँ जो कभी देखी या सुनी नहीं गईं, दिखा रहा है। सम्भवतः यही हो, किन्तु महात्मा जी के तेज-किरण की आभा को कलुषित करने की इच्छा न रखते हुए हम यह कह देना चाहते हैं कि "कोई माशूक है इस पर्दये ज़िंगारी में"

कोई प्रधान शक्ति

इस समय काम कर रही है। भारत में एक दिन में, एक घड़ी में बिना किसी आयोजन के जो हो गया वह मनुष्य कृत नहीं है उसमें ईश्वर का हाथ है। भारत में शिक्षा का अभाव है, लोग स्वार्थ से अन्धे हैं, अपने तक उनकी दृष्टि परिमित है ऐसी अवस्था में, समस्त देश में इस प्रकार का एक मत का होना साफ साफ कह रहा है कि

हम कुछ और हैं

हम राई को पर्वत करनेवाले हैं, अनैक्य को ऐक्य में परिणत करने- वाले हैं, राजा और रङ्क को एक सूत्र में ग्रथित करनेवाले हैं, जागो, तैयार हो जाओ, हमारे जन्म दिवस ने ही भारत का रूप और रङ्ग बदल दिया है, देखो ! हम आ गये हैं और हम अब क्या करते हैं ?

सत्याग्रह दिवस

ईश्वरीय शक्ति के इसी संदेश का वाहक बनकर ६ अप्रैल को उदय हुआ था। अकबर ने कोशिश की, शाहेजहाँ ने कोशिश की, किन्तु

हिन्दू और मुसलमान

न मिले, हिन्दू मुसलमानों के विरोध के कारण ही भारत का भव्य भविष्य कभी कभी अन्धकार मय दिखाई देता था, आशान्वित होते हुए भी आपस के विरोध के कारण कलेजा सदा काँपा करता था और ईश्वर का नाम लेकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्ति मिलती थी। कौन कह सकता था,—यदि कोई कहता भी तो लोग उसे पागल कहते—कि एक हिन्दू, वह भी आर्यसमाज का स्तम्भ—जामे मस्जिद के मिम्बार मंच पर जहां किसी हिन्दू की छाया पड़ना भी असम्भव था ,कुतबे के बाद खड़ा होकर ईश्वर की प्रार्थना करेगा, हिन्दू और मुसलमानों को उपदेश देगा और शान्ति पाठ पढ़ेगा ? हम,तो यही कहेंगे कि—

"ख़्वाब था जो कुछ कि देखा
जो सुना अफ़साना था।"

भारत को उबारने का, उसके उद्धार का बीड़ा अब ईश्वर ने उठा लिया है और अनियंत्रित, निरंकुश, उत्तरदायित्व-हीन शासन के अन्त का आरम्भ शुरू हो गया।

हिन्दू मुसलमान

अब एक हैं। ब्राह्मण, सैयद, शेख, क्षत्रिय, वश्य, कुंजड़े, कसाई, शूद्र भंगी, चमार सब की रगों में एक ही खून बह रहा है। दिल्ली की सड़कों पर बहने के समय खून ने अपने भाई के खून को पहचान लिया और वे एक हो गये। देखनेवाले हिन्दू और मुसलमानों ने भी ग़ौर किया तो उनको दिखाई दिया कि खून एक है, किसी क़िस्म का उसमें अन्तर या फ़र्क नहीं और वे एक हो गये हैं। खून का खून से मेल हो गया। स्वयम् ईश्वर ने उनको एक किया है और संसार में कोई भी शक्ति अब हिन्दू मुसलमानों के ऐक्य को भंग नहीं कर सकती। जिस ऐक्य के लिए हम लालायित थे, जिसपर हमारी सभी भविष्य की आशाएँ अवलम्बित थीं, वह एका हो गया और—हम आशा करते हैं—सदा के लिए हो गया है। अब फिर भारत स्वर्ण भारत होगा, अब फिर राम और कृष्ण, अशोक और चन्द्रगुप्त, गौतम और कपिल, विक्रमादित्य और शिवाजी, हज़रत मोहम्मद और अली, बाबर और हुमायूं, अकबर और औरङ्गज़ेब की सन्तान संसार में अपना मुंह दिखलाने लायक हो सकेंगी। अब फिर वे अपने पूर्वजों का नाम संसार में मान सहित ले सकेंगी और संसार की जातियों में अपना सिक्का जमा सकेंगी। हिन्दू मुसलमानों का एका इस बात की घोषणा कर रहा है कि हम अपने को पहचान गये और अब जो कुछ होगा, हमारी राय से होगा। क़ानून हमारी मर्जी से बनेंगे और उनका उपयोग या प्रयोग हमारी इच्छा से होगा।

सत्याग्रहकी लड़ाईआरम्भ हो गई

महात्मा गान्धी ने कानून भङ्ग किया।

ज़ब्त किये गये साहित्य और अखबारों के रजिस्ट्री सम्बन्धी कानून तोड़े जायँ।
पर्चे और किताबें बेचनेवालों में महात्मा गांधी।

सत्याग्रह कमेटी ने जब्त किये गये साहित्य और अखबारों की रजिस्ट्री सम्बन्धी कानूनों को तोड़ने की सलाह दी है। उसके अनुसार 'हिन्द स्वराज्य', 'सर्वोदय', 'एक सत्याग्रही की कथा' और "मुस्तफ़ा कमली पाशा की जीवनी और व्याख्यान" ७ एप्रिल की संध्या को बम्बई में खुल्लमखुल्ला बेचे गये।

महात्मा गांधी गिरफ्तार।

दिल्ली जाते हुए पालवाल स्टेशन पर महात्मा गांधी रोके गये। वहां से वे मथुरा लाये गये। मथुरा में सुबह तक वे रोके गये। सबेरे बी. बी. सी. आई. रेलवे की एक स्पेशल द्वारा वे बम्बई पहुंचाये गये हैं। महात्मा गांधी का स्वास्थ्य इस समय बहुत ही ख़राब है और उनका शरीर क्षीण है, हृदय की धड़कन से भी, जो उनकी पुरानी बीमारी है—वे इस समय पीड़ित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महात्मा गांधी के सेक्रेटरी मि० देसाई ने तार द्वारा सूचित किया है कि दिल्ली जाते हुए कोसी के स्टेशन पर महात्मा गांधी को सरकारी आज्ञा मिली कि वे पंजाब प्रान्त या दिल्ली में न जायँ और केवल बंबई में रहें। जिस अफसर ने यह हुक्मनामा उपस्थित किया था, बड़ी ही सहूलियत और मुलायमियत से महात्मा जी से कहा कि यदि महात्मा जी हुक्म को न मानने का निश्चय करेंगे तो उसे उनको गिरफ़ार करने में बहुत दुःख होगा, किन्तु आपस में किसी प्रकार वैमनस्य न होगा। महात्मा गांधी ने मुसकुराते हुए कहा—मैं हुक्म नहीं मानूंगा आप अपना कर्त्तव्य पूरा कीजिये।

गांधी जी का सन्देश।

"प्यारे देशवासियो ! बिरादराने-वतन ! यह मेरे लिए तथा आपके लिए भी परम सन्तोष की बात है कि मुझको पंजाब सरकार और दिल्ली सरकार के आज्ञा-पत्र मिले हैं कि मैं पंजाब और दिल्ली में न जाऊं। इसके साथ ही साथ मुझको भारत सरकार का तीसरा आज्ञा-पत्र मिला है कि मैं बम्बई छोड़कर कहीं न जाऊँ। जिस अफ़सर ने मुझे ये सब हुक्मनामे दिये, उससे मुझको यह कहने में तनिक भी संकोच न हुआ कि मैं शपथ ले चुका हूं कि मैं कानूनों का भङ्ग करूंगा। मैंने आज्ञा की अवहेलना की और मैं तुरन्त स्वतन्त्र मनुष्य हो जाऊंगा। मेरे शरीर को यह लोग कैद रक्खेंगे। रौलट कानून के पास हो जाने पर मुझको स्वतन्त्र रहना बहुत दुखदायी प्रतीत होता था, किन्तु मेरी गिरफ़ारी ने मुझको स्वतन्त्र कर दिया है। अब कर्तव्य का पालन

आप लोगों के हाथ है

सत्याग्रह की शपथ आप ले चुके हैं। अपना कर्त्तव्य पालन करिये। आप की शपथ आपके लिए कामधेनु होगी। मैं आशा करता हूं कि मेरी गिरफ़ारी से आप लोग क्रोधित न होंगे। मैं जो चाहता था, वह मुझे मिल गया। मैं चाहता था कि या तो रौलट कानून रद्द किये जायँ या मैं क़ैद किया जाऊं। मुझको मेरा इच्छित वर मिल गया। बाल बराबर भी सत्य से अलग होना या दूर होना या किसी अंगरेज़ या भारतवासी के साथ कठोरता, निर्दयता, या बर्बरपन का व्यवहार करना सत्याग्रह के व्रत को भङ्ग कर देगा। मुझको विश्वास है कि यदि मेरी बातें, जो समय समय पर मैं कहता आया हूं, मानी जायँगी।

हिन्दू मुस्लिम ऐक्य

जो कि अच्छी तरह स्थापित हो गया है, सच्चा उतरेगा। इस मामले में हिन्दू भाइयों का उत्तरदायित्व मुसलमान भाइयों की अपेक्षा विशेष है, क्योंकि मुसलमान भाइयों की संख्या कम है। मैं आशा करता हूं कि हमारे हिन्दू भाई अपना कर्त्तव्य

देश की लाज

रखने के योग्य रीति से पालन करेंगे। मैंने स्वदेशी की शपथ के सम्बन्ध में भी अपने विचार प्रकट किये हैं। आशा है कि ध्यानपूर्वक आप लोग उनपर विचार करेंगे। आप लोगों में जैसे ही जैसे सत्याग्रह का विचार दृढ़ होगा, वैसे ही वैसे यह प्रकट होगा कि हिन्दू मुसलमानों का एका सत्याग्रह का एक अङ्ग मात्र है।

अन्तिम निवेदन

मेरा यह है कि यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम लोगों को मुक्ति या स्वतन्त्रता केवल कष्ट सहने से न कि इङ्गलैण्ड से भेजे हुए सुधारों के द्वारा—कैसी ही कंजूसी से ही वे क्यों न किये जायँ—प्राप्त होगी। अङ्गरेज एक बड़ी जाति है, किन्तु यदि कमज़ोर का उनसे सामना हो जाय तो कमज़ोरों को हानि उठानी पड़ेगी। अङ्गरेज बहादुर हैं उन्होंने बड़ी बड़ी कठिनाइयां झेली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं और वीरता और कष्ट सहन की पराकाष्ठा को देख कर ही उनका कलेजा पसीजता है। उनके साथ भाईचारा तभी सम्भव है, जब आप में भी वीरता और कष्ट सहने की असीम शक्ति हो। उनकी सभ्यता और हमारी सभ्यता में ज़मीन आसमान का फ़र्क है। वे शक्ति और ज़बरदस्ती को प्रधान समझते हैं। भारतीय सभ्यता आत्मबल, सत्याग्रह और सत्य-बल को प्रधान समझती है। हम लोग कठिनाइयों से कराह रहे हैं क्योंकि हम लोग अपने बड़ों के बताये हुए रास्ते से अलग होगये हैं। मैं आशा करता हूं कि हिन्दू मुसलमान, सिक्ख, पारसी, ईसाई और यहूदी जो कि इस देश में पैदा हुए हैं या जिन्होंने इसे अपना देश बना लिया है, राष्ट्रीय कर्तव्यों के पालन से मुंह न मोड़ेंगे। मैं आशा करता हूं कि भारतीय स्त्रियां भी इस कर्तव्य के पालन में पुरुषों की अपेक्षा पीछे न हटेंगी।"

(गिरफ़ारी के समय उपर्युक्त सन्देश महात्मा गांधी ने अपने देशवासियों के लिए मुझको लिखाया था। इसबात पर उन्होंने बहुत ज़ोर डाला था, मुझसे ज़बानी भी कहा था कि भारतवासी उनकी गिरफ़ारी से क्रोधित न हों, न असत्य से कामलें और न उद्दण्डता या बर्बरपन का व्यवहार करें क्योंकि इससे सत्याग्रह के आन्दोलन को हानि पहुंचेगी।

(ह०) म०देसाई, सेक्रेटरी महात्मा गांधी।)

नम्र निवेदन।

"जान तुमपै निसार करता हूं।
नहीं जानता हुआ क्या है॥"

इशरते क़तरा है दर्या में फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना।*

बादलों की गड़गड़ाहट दूर से सुनाई दे रही है, भारत का राजनैतिक आकाश मेघाच्छन्न है, स्वतंत्रता और समता के समुद्र की लहरें टक्करें मार रही हैं और इसी दुर्घट के समय में मोहन की भुवन मनमोहिनी बंशी की तान कानों में, पहुंच कर ज़ोरदार शब्दों में कुछ कह रही है। वह कह रही है:-आओ, आगे बढ़ो, देश की सेवा का व्रत जो तुमने लिया था उसे सार्थक करो। विमोहित की भांति किन्तु सब कुछ समझते हुए, सब प्रकार से होश में हम आगे बढ़ रहे हैं, हम सब कुछ सहन करने को तैयार हैं, कष्ट की कथाएं और जेल की यातनाओं की गाथाएँ मुझको अपने निश्चय से हटा नहीं सकतीं। सेवक को, सैनिक को प्रश्न करने का स्वत्व नहीं, अन्तरात्मा साथ हो उसके लिए यही काफ़ी है। भारतमाता पुकार रही है; हमारे जेनरल महात्मा गांधी ने घोषणा कर दी है, सेना में भर्ती शुरू होगई है, माता की सेना हमारी बाट जोह रही है, माता सपूतों को अपने कष्ट निवारण के हेतु आह्वान कर रही हैं। माता ने हमको जीवन दिया है, उन्होंने प्रेम से मुझको पाला है, उनके अन्न से हम बलिष्ट हुए हैं, उनका खून हमारी रगों में बह रहा है, आज उसके नाम पर अपने गाढ़े समय में माता ने मुझको याद किया है, और मैं जाता हूं, माता के ऋण से मुक्त होने ही के लिए नहीं, वरन इसलिए कि फिर फिर पैदा होऊं और माता की सेवा करूँ, माता के दुःखों को दूर करने के लिए प्रसन्नता से कष्टों को सहूं और अपनी आत्मा को पवित्र करूँ। प्रेमी पाठको! आज आप से मैं

विदा होना चाहता हूं,

ज़िन्दा रहा तो फिर मिलूंगा, और भी अच्छा हो कर मिलूंगा किन्तु कब मिलूंगा यह मैं नहीं कह सकता। जब माता छुट्टी देंगी, जब सैनिकों को

* जल की बूंदों का सब से अच्छा सौभाग्य समुद्र में मिलकर नष्ट हो जाना है। दर्द भी जब हद से बढ़ जाता है तो दवा हो जाता है, इसका अनुभव नहीं होता और अनुभव न होना ही दर्द की दवा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घर जाने की आज्ञा माता से मिलेगी, मैं फिर आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगा और आपकी सेवा करूंगा। माता की सेवा इस समय भी कर रहा था किन्तु इस सेवा को और लोग भी कर सकते हैं। दूसरी सेवा जो मैं करने जा रहा हूं उसे सभी नहीं कर सकते, साथ ही उस सेवा के कर लेने पर ही जो सेवा मैं इस समय कर रहा था, स्थायी हो सकती है। इसलिए माता के मंदिर में जाता हूं, माता के पुजारी एकत्रित हो रहे हैं अब विलम्ब का अवसर नहीं। आपसे

प्रार्थना

इतनी ही है कि जब तक मैं न आ जाऊँ मेरी 'मर्यादा' की रक्षा कीजिएगा। उसको अपनी आंखों से ओझल न करियेगा, संभव है वह आपको प्रसन्न न कर सके, संभव है कभी कभी वह आपको रुष्ट भी कर दे, किन्तु इससे रुष्ट न होइयेगा, अपना समझ कर 'मर्यादा' को और भी अपनाइयेगा, यदि ऐसा न करियेगा तो मैं दोषी ठहराया जाऊँगा। कहनेवाले कहेंगे कि मेरे समय में 'मर्यादा' को क्षति पहुंची, ग्राहकों ने उससे मुंह मोड़ लिया। ऐसी कृपा करियेगा कि मुझको यह न सुनना पड़े, आने पर थोड़े ही समय में जी जान से फिर मैं आपकी सेवा करने की चेष्टा करूंगा। इस समय आपसे प्रार्थना यही है कि 'मर्यादा' को अपनाइये, स्वयम् ग्राहक रहिये और यदि सहज संभव हो तो एक एक दो दो ग्राहक बढ़ा दीजिये। इससे अधिक मुझको कुछ नहीं कहना है। अब मैं बिदा होता हूं, किन्तु जाते जाते आपसे मैं यह कह देना चाहता हूं कि

हताश मत होइयेगा,

माता की विजय निश्चित है। धर्म की जय होगी, "यतो धर्मस्ततो कृष्णः यतो कृष्णस्ततो जयः।" माता के सुपूतों का कष्ट सहन व्यर्थ नहीं जा सकता। हम विश्वात्मा को, विश्वशक्ति को जगाने जा रहे हैं। सन्धि-परिषद् में एकत्रित सदस्यों ही के सामने नहीं, वरन् संसार की समस्त प्रजा के इजलास में हम अपना मुकदमा उपस्थित कर रहे हैं, हमारे मार्ग में अनेकों कठिनाइयां हैं, किन्तु उनसे विचलित होने की आवश्यकता नहीं। यदि मार्ग की ठोकरों से हमारा ख़ून निकलेगा तो उस ख़ून की एक एक बूँद से सहस्रों हमारे समान आत्माएँ पैदा होंगी, पसीने की एक एक बूंद अनेक जीवों को संसार में पैदा करेंगी। ये सब

माता की सेना

के सैनिकों की संख्या की वृद्धि में सहायक होंगे और इस प्रकार माता की सेना दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती रहेगी। हमको तलवार नहीं चलानी है, हम वार नहीं करेंगे, हम सत्य के बल से हीन आत्माओं पर विजय प्राप्त करेंगे। जो दूसरों को आज़ाद नहीं कर सकते, दूसरों की रक्षा नहीं कर सकते वह स्वयम् कष्ट सह कर, अपनी जान खोकर अपने आपको ज़रूर आज़ाद, स्वतंत्र कर सकते हैं। उनका कष्ट सहना व्यर्थ नहीं जाता। वे संसार को दिखाते हैं कि वे सरकार को कानून पास न करने पर बाध्य नहीं कर सके, मगर सरकार भी उनको अपना गुलाम न बना सकी। मेरा यही कहना है कि—

"पाते नहीं जब राह तो चढ़ जाते हैं नाले।
रुकती है मेरी तबा (१) तो, होती है रवां (२) और॥
मरता हूं इस आवाज़ पै, हरचन्द सर उड़ जाय।
जल्लाद से लेकिन वो, कहे जांय की हां और।"
"नुकसाँ नहीं जुनू में बला से हो घर खराब।
सौगज ज़मी के बदले बयाँबा गराँ नहीं।"

विनीतः—कृष्णकांत मालवीय।

(१) तबियत (२) मार्ग अवलम्बन।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में कृष्णराम पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्याग्रह ।

रौलट बिलों के प्रतिवाद में अनेक भारतनिवासियों ने सत्याग्रह का बीड़ा उठाया है । महात्मा गांधी के नेतृत्व में यह आन्दोलन आरम्भ हुआ है । सत्याग्रह क्या है, वह अमोघ अस्त्र क्यों है, वह सदा सफल क्यों होगा यह सब जानना हो तो

गांधी ग्रन्थमाला

के पैम्फलेटों को मँगाकर पढ़िये । बहुत लाभ होगा :—

सत्याग्रह	–)	साधन मौजूद नहीं	=)
समय नहीं है	=)	निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं सत्याग्रह	–)

मैनेजर मर्यादा, प्रयाग ।

सुप्रसिद्ध डोंगरे का बालामृत पीने से

छोटे बच्चे ताकतवान् होके उनका वज़न बढ़ जाता है] और [वह मधुर होने के कारण बच्चे बहुत खुशी से पीते हैं ।

शीशी का दाम १२ आना, डाक म० ६ आना ।

इलाहाबाद एजेन्ट:—बलदेवप्रसाद एन्ड ब्रदर्स ।

के० टी० डोंगरे कं०, गिरगांव–बम्बई ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाग १७ संख्या ४

मर्यादा ।

मासिक पत्रिका ।

अप्रैल १९१९

उत्तेजना ।

उठो, बढ़ो हे भारत-वीर !
इष्ट-प्राप्ति का यही समीर ।
चमके वेष, प्रकट-दिनेश
दिन दिन दूना रात चौगुना उज्ज्वल हो सविशेष
अनुपमेय है,
विधि-विधेय स्वच्छन्द वायु का गेय है ।
बहुत दिनों से मनमें, थी, पर हृदय-भुवन में ।
पड़ी पड़ी मुरझानी, किन्तु मिला जब पानी ॥
फिर क्या है? कुसुमित हो पुष्प खिले ।
उत्कट श्रम का पक्का सुफल मिले ॥
सुबको काम करो बढ़करके, तभी मिलेगा अमृतनीर ।
उठो बढ़ो हे भारत-वीर ॥ १ ॥

प्रभुसन्देश, शुभ आदेश,
विश्व-विहार-भवन के सभी बंधु हैं, फिर क्यों क्लेश ?
"स्वार्थ-पूर्ण हैं ।"
कुचल कुचल कर न्याय चाहते चूर्ण हैं ।
अधःपतित की चाहें, दुखी जगत की आहें ।
सब स्वर एक उठावें, जड़ को भी पिघलावें ॥
सत्य, न्याय ही बीज-विजय बोवे ।
स्वतन्त्रता का नाद सफल होवे ॥
ऐक्य सूत्र में गुंथकर भाई सब मिलि लहहु सुधामय नीर
उठो, बढ़ो हे भारत-वीर ॥ २ ॥

—"व्यक्ति-विशेष" ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक विज्ञान और प्रजातंत्रवाद।

[लेखक—पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, बी० ए०।]

राजनैतिक विचार एवम् कार्य के मौलिक तत्त्वों का सर्व प्रथम निश्चयात्मक ज्ञान मानवजीवन के आदर्श किम्वा साधारण अवस्थाओं से नहीं होता है। भावों का साम्य तथा चित्त की पूर्ण शान्ति किसी जनसमुदाय में विचार और कार्य के मिश्रण को उन्नत नहीं करती है। महाभारत के पाठकों को विदित है कि शान्तिपर्व में राजत्व की कल्पना पर विवेचना की गई है। युधिष्ठिर के प्रश्न करने पर आर्य भीष्म ने उत्तर दिया कि आदि काल में कोई राजा नहीं था, क्योंकि उस समय सभी लोग अपने २ कर्तव्यों का पालन तथा स्वत्वों का उपभोग करते हुए एकतामय-जीवन व्यतीत किया करते थे। किन्तु परवर्ती-काल में जब उनके चित्तों पर काम क्रोधादि दुर्गुणों ने अपना अधिकार जमा लिया और इस प्रकार जीवन के उलझन में पड़ जाने से कलह और प्रतिद्वन्दिता उत्पन्न हुई, तब ब्रह्मदेव ने इन आर्तजनों को वरदान के रूप में एक राजा दिया; और उनके सांसारिक जीवन के कलहपूर्ण व्यवहारों में पथप्रदर्शन के लिए दण्ड-नीतिशास्त्र की रचना की। इस कथा से हम लोगों को यही शिक्षा मिलती है कि प्रथम इसके कि मनुष्यों में राजनीति के उच्च एवं सूक्ष्म कल्पनाओं का उदय हो, तथा उनके अनुशासन के लिए नियमों का निर्माण हो, उनका विरोधी उद्देश्यों से प्रवर्तित होना एवं विवश अवस्था में प्राप्त होना आवश्यक है।

मेरे बाल्यकाल में मेरे कतिपय शिक्षकों तथा सहयोगियों का यह एक साधारण सिद्धान्त था कि विजित राष्ट्र में राजनीति का अभाव रहता है। वस्तुतः यह सिद्धान्त उस श्रेणी के मिथ्या विचार करनेवाले लेखकों और नेताओं का है, जिन्होंने संसार को ज़ोरदार शब्दों में धोखा देने के लिए जन्म ग्रहण कर अनुद्योग के निमित्त कारण का प्रतिपादन, अकर्मण्यता की कामना का शिक्षण एवं कलुषित विचार और व्यवहार के राज्य को चिरस्थायी कर दिया है। इन कृत्रिम ज्ञान के महन्तों और तत्वज्ञानियों ने हमारे सामने दुर्बलों का दर्शनशास्त्र ला रक्खा है। अन्धपरम्परा Conservatism के विपरीत पक्ष का चित्र अंकित करके मनुष्य जीवन से संस्कार तथा उद्योग के तत्वों का अपहरण करने में सहायता पहुँचाई है। क्या वे लोग जो इस विश्वास को प्रचारित करने का प्रयत्न करते हैं; राजनीति का अर्थ राजनैतिक जीवन और राजनैतिक विचार नहीं मानते? मैं नहीं समझता कि वे लोग इस शब्द का किस अर्थ में उपयोग करना चाहते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र का जीवन—चाहे वह स्वतन्त्र हो या परतंत्र—राजनीति से व्याप्त रहता है। यदि उस राष्ट्र के जनसमूह की प्रवृत्ति इन विषयों की ओर हो तो प्रत्येक राष्ट्र के लिए राजनैतिक जीवन तथा राजनैतिक विचार का होना आवश्यक है। किसी प्रकार के शासन द्वारा संगठित की हुई जाति क्यों न हो, किन्तु उसमें राजनैतिक जीवन अवश्य वर्तमान रहता है और उसमें राजनैतिक विचारों की जागृति तभी होती है, जब वह उस राज्यप्रणाली की रचना से या शासनपद्धतियों से असन्तुष्ट हो जाती है। जब कोई जाति अपने शासकों द्वारा शासित अथवा विदेशियों के शासनाधीन होकर उस शासन के अत्याचारों का अनुभव करती है, और देखती है कि पारस्परिक स्वार्थों का सामञ्जस्य नहीं हो सकता, और विश्वास करती है कि यदि नवीन प्रकार से शासन की रचना हो या उसकी पद्धतियों अथवा नियमों में परिवर्तन हो तो उत्तम सामा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिक जीवन और आदर्श की प्राप्ति हो सकती है, तभी हमको उस जाति में राजनैतिक विचारों के उद्गम का पता चलता है। जब कोई जाति चाहे अपने शासकों का निर्वाचन उसने स्वयं किया हो अथवा वर्तमान शासनपद्धति को स्वीकार कर लिया हो और बाद में यदि उसे इस बात का अनुभव होने लगे कि राज्यप्रणाली में कुछ सुधार किम्वा उसकी रचना, नीति तथा पद्धतियों में सर्वाङ्गीन उत्क्रान्ति आवश्यकीय है, तो उसी समय हमको राजनीति की आकांक्षा और कार्य दृष्टिगोचर होते हैं। कभी कोई राष्ट्र या जाति विदेशी विजेताओं द्वारा शासित होकर, जिनके स्वार्थ एवं आदर्श उससे भिन्न हैं; असन्तुष्ट होकर शासनपद्धति की रचना, नीति अथवा व्यवस्था में परिवर्तन कराने की इच्छा या यत्न न करे तो यह एक ऐसी समस्या है जिसका समझना तो दूर रहा, ध्यान में भी आना अत्यन्त कठिन है। यदि कोई जाति चाहे वह स्वतंत्र हो अथवा परतंत्र, अपने उन्नत विचारों द्वारा यह समझ लेने में समर्थ हो कि किन २ सुधारों से वह सुखी, उन्नतिशील, और आत्म सम्मानित (Self-respceting) तथा आत्मपोषित (Self-sufficieut) हो सकती है, तो यह समझना कठिन है कि उस जाति को अपने निज के राजनैतिक जीवन तथा विचार में क्या रुकावट हो सकती है। स्वतंत्र तथा विजित दोनों प्रकार के राष्ट्रों के लिए राजनैतिक जीवन और राजनैतिक विचार का होना और उनका अनुगमन करना आवश्यकीय है। क्योंकि विजित राष्ट्र होने का यह अर्थ नहीं है कि उस राष्ट्र के विचार, भाषण तथा कार्यकारिणी शक्तियों का सर्वथा अपहरण हो जाय। प्रत्येक विजित राष्ट्र जिसके अन्दर आत्म-सम्मान, स्वतन्त्रता तथा उन्नति के स्वाभाविक ज्ञान का विनाश नहीं हुआ है, स्वतंत्र होने की इच्छा करता है, और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुकूल विकास के प्रयत्नों में ही उसके राजनैतिक जीवन एवं विचार का क्रमशः विकास होता है। निस्सन्देह, उसे ऐसे प्रतिबन्धकों का सामना करना पड़ता है, जिसका निर्माण उसने स्वयम् नहीं किया है। किन्तु, इस संघर्षण में ही उसके राजनैतिक जीवन और विचार की रचना होती है और इस प्रकार से राजकीय शास्त्रों की कल्पनाओं के निर्माण में प्रकृत बातों की उद्भावना होती है। यह सच है कि राष्ट्र के इस राजनैतिक जीवन और विचार का एकीकरण कभी नहीं हो सकता। इसमें परिस्थिति की शक्तियों एवं आदर्श के अनुकूल अवश्य परिवर्तन होना चाहिये।

पाश्चात्य राजनीति-विशारदों ने बड़े गौरव के साथ इस विषय का वर्णन किया है कि गंभीर राजनैतिक जीवन तथा विचार का आदि स्थान ग्रीस ही है। परन्तु हम लोगों को यह साफ २ समझ लेना चाहिये कि यहां ग्रीस से मतलब एक संयुक्त किम्वा एक प्रकार के शासनाधीन देश से नहीं है। बल्कि एक ऐसा देश, जिसमें अनेक छोटे २ नागरिक राज्यों का समावेश था और प्रत्येक का शासन, वंश, उपनिवेश-स्थापन, परम्परागत कथाएँ, गृहविवाद, आदर्श तथा आकांक्षाएँ एक दूसरे से भिन्न थी। ग्रीस के गंभीर राजनैतिक-जीवन और विचार के व्याप्त होने का प्रधान कारण यही था। इन दिनों ग्रीस का नाम केवल एक भौगोलिक परिभाषा के अन्तर्गत था। इसमें राजनैतिक ऐक्य का अभाव था। जिन नागरिक राज्यों से ग्रीस बना था, वे सदैव स्वतंत्र नहीं थे। एक राज्य दूसरे राज्य द्वारा प्रायः विजित होते थे। उदाहरणार्थ हम एथेन्स और स्पार्टा का नाम लेते हैं। इनमें कुछ का शासन अपने शासकों द्वारा होता था और कुछ ऐसे भी थे जो विदेशियों के शासनाधीन होकर उनमें सर्वथा लिप्त हो गये थे। उनकी राज्यप्रणालियों में भी अन्तर था। कुछ में एकतंत्र राज्य और कुछ में सत्ता स्वामितंत्र (Aiistociacy) अथवा प्रजातंत्र राज्य स्थापित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। कुछ अपनी राज्यपद्धति से असन्तुष्ट थे और दूसरे नये प्रकार के शासन की स्थापना कर रहे थे। नागरिक राज्यों की लघुता, शासन-पद्धतियों में अनियमित परिवर्तन, एक के द्वारा दूसरे का अपहरण, अविराम-आन्तरिक तथा वाह्य-युद्ध आदि कारणों ने उनको अपने संकीर्ण राजनैतिक जीवन की कमजोरियों एवं गौरव की तुलना करने का अवसर देकर उनकी विचार शक्तियों को उत्तेजित कर दिया। इस निमित्त नहीं कि बिना अवस्था-सम्बन्ध के वे किसी प्रकार भी इसके योग्य थे, वरन् उनमें प्रयोजनानुसार ही राजनैतिक विचार का उद्गम हुआ था। सच तो यह है कि इतिहास-वर्णित उपर्युक्त ढङ्ग से ग्रीस में अनेक शताब्दियों के व्यतीत होने के पहिले राजनैतिक विचार वर्तमान नहीं था।

इन नागरिक राज्यों के राजनैतिक जीवन के संबन्ध में एक बात और स्मरण रखने योग्य है। शासकवर्ग नागरिकों के प्रत्येक कार्य विभाग में हस्तक्षेप किया करते थे। इसका कारण उन राज्यों की लघुता ही थी। जब किसी जाति की सरकार केवल आन्तरिक शान्ति तथा विदेशी आक्रमण का निवारण करने में सेना और पुलीस आदि का काम करके ही शासन करती है, और अपनी प्रजा के कार्यों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती, तो ऐसी अवस्था में राजनैतिक जीवन और उसका फल स्वरूप राजनैतिक विचारों की गंभीरता स्वल्प हो जाती है। बड़े २ देशों में, जो एक सरकार के अधीन हैं, यह घटना बराबर हुआ करती है। अतएव, ग्रीस देश का इतिहास अध्ययन करते समय वहां के छोटे २ नागरिक राज्यों के जीवन में तथा अन्य बड़े २ साम्राज्यों में जो महत्वपूर्ण भेद पाये जाते हैं, उनका सर्व प्रथम बोध होना आवश्यक है। तभी हम समझ सकेंगे कि ग्रीस में राजनैतिक जीवन और राजनैतिक विचार ने क्यों उग्र रूप धारण किया।

नियमशील (Systematic) राजनैतिक विचारों का आदि जन्मदाता प्लेटो और एरिस्टाटेल (अरस्तू) का जन्म भी इन्हीं नागरिक राज्यों में हुआ था। ये दोनों राजनैतिक विचारों के प्रवर्तक कहे जाते हैं। कारण यह है कि इन्हें उन राज्यों के जीवन का अनुभव था, उनके अतीत इतिहास का ज्ञान था, और तुलना करने एवं वास्तविकता जानने की उनमें सद्बुद्धि थी। ऐसे लोगों में इनका जन्म हुआ था, जिनमें प्रयोजनानुसार राजनैतिक विचार प्रथम से ही प्रवाहित हो रहे थे। इन लोगों ने केवल अपने अनुभव, ज्ञान और बुद्धि द्वारा संचित की हुई प्रकृत बातों की व्यवस्था की, और भविष्य में अनुशासन के लिए कुछ सिद्धान्तों की कार्यपद्धति निश्चित कर दी। किसी राज्य के आदर्श की रक्षा तथा उच्चतमध्येय की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, इसी बात का अनुसन्धान करने के लिए इन्होंने भिन्न २ प्रकार की राज्यप्रणालियों के गुण दोषों का सापेक्षपूर्वक अध्ययन किया। ये अपने राज्यों के राजनैतिक जीवन से असन्तुष्ट हुए, इन्होंने ग्रीस देश के विचारकों को सन्तुष्ट करने के लिए राजनैतिक जीवन की नवीन पद्धतियों एवं प्रणालियों का प्रतिपादन करके इस उद्देश्य की पूर्ति की। इन लोगों के लिए नागरिक राज्य ही सब कुछ था। इन लोगों ने मध्यकालीन प्रभुत्व विषयक एवं ज़मींदारी राज्यों (Feudal state) का तथा आधुनिक काल के विशाल राज्यों के संबन्ध में नहीं सोचा था। फिलिप और सिकन्दर के आगन्तुक साम्राज्य, वर्तमान परशियन साम्राज्य एवं मिश्र, असीरिया और वेबलीन के अतीत साम्राज्यों के विषय में इन्हें बहुत कम ज्ञान था। उन देशों के नागरिक राज्यों की परिस्थिति से, आन्तरिक प्रतिद्वन्द्विताओं और वाह्य भयों से, तथा बहुसंख्यक पराधीन विदेशी दासों से ही इनके विचारों की पुष्टि होती थी, और इन्हींकी सहा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता से इन्होंने अपने लिए ऐसे राजनैतिक शास्त्र की रचना की, जिसके द्वारा वे नागरिक राज्य शान्ति और उन्नति, निःशङ्कता और स्थिरता, समृद्धि एवं सभ्यता की पराकाष्ठा को प्राप्त हों।

यदि हम इस सिद्धान्त को मान लें कि विजित राष्ट्र में राजनीति का अभाव रहता है, तो यूरोपीय इतिहास के प्रकृत बातों का पठन-पाठन किस प्रकार हो सकता है? अपने इतिहास के किसी न किसी काल में यूरोप के प्रत्येक देश और राष्ट्र विजित हुए थे। किन्तु उस पराधीनावस्था में रहकर भी उन्होंने राजनैतिक जीवन व्यतीत किया था, और राजनैतिक कल्पनाओं की उद्भावना की थी। जब कभी वे राजनैतिक कूटनीतियों, सामाजिक अत्याचारों तथा विदेशी युद्धों और शृङ्खलाओं के चंगुल में फंस जाते थे, तभी उनकी राजनैतिक कार्यवाहियों और विचारों ने सङ्कीर्ण, गंभीर एवम् सांकेतिक रूप धारण किये हैं। राजनैतिक शास्त्र तथा यूरोप के राजनैतिक आन्दोलन के उत्थान और पतन के लिखनेवाले इतिहासकारों से यह साफ २ विदित होता है कि विजित राष्ट्र में राजनीति के अभाव रहने का कोई कारण नहीं है। अतएव उपर्युक्त सिद्धान्त मिथ्या है और इसकी असत्यता यूरोपीय इतिहासों के प्रकृत बातों से सिद्ध होती है। भिन्न २ प्रकार की शासनपद्धतियों तथा स्वतंत्र विचारों एवं उन्नति और उद्योगपूर्ण जीवन का उपभोग करते हुए परिस्थिति के स्वतंत्र राष्ट्रों को देख कर अपने विजेताओं के शासन भार का अनुभव करनेवाले विजित राष्ट्र यदि नवीन राजनैतिक पुनरुज्जीवन प्राप्त करने का प्रयत्न करें अथवा अपने विकासानुरूप नवीन आदर्श और नवीन शास्त्र का ग्रहण करें तो यह स्वाभाविक ही है। इसमें कुछ भी दोष और असम्भव नहीं है। जिस समय वे नवीन विचारों का प्रतिपादन करके अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति और आकांक्षाओं के अनुसार अपने जीवन की उन्नति करने का प्रयत्न करते हैं, उसी समय उनमें राजनैतिक विचार और कार्य का प्रादुर्भाव होता है। संभव है कि यह जीवन और विचार संकीर्ण तथा सीमाबद्ध हो, अन्य स्वतंत्र राष्ट्रों के समान विस्तृत, विकसित तथा उन्नतिशील न हो, तथापि वह राजनैतिक जीवन और राजनैतिक विचार ही कहा जायगा। मानव-जीवन से राजनीति शास्त्र का संबन्ध अवश्यम्भावी है। इसका आविर्भाव तभी होता है, जब कोई राष्ट्र उत्तम आदर्श एवं राज्यप्रणाली के लिए प्रयत्न करता है और विजित राष्ट्र इसके लिए तीव्र उद्योग अवश्य करते हैं। अनुसन्धान के सभी विभागों में अदृश्य विषयों के प्रभेदों से ही कल्पना करने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है, सादृश्यों से नहीं। जब तक कि दृश्य विषयों (Observed phenomena) में परिवर्तन और आन्दोलन, विभिन्नता एवं वैचित्रता नहीं होगी, तब तक कल्पना शक्ति को किसी प्रकार की उत्तेजना मिलनी दुर्लभ है।

एक और मिथ्या भावना के दूर होने की आवश्यकता है। प्रायः ऐसा लोगों का विश्वास था कि भारतीय राजनीति सम्बन्धी विषयों की विवेचना नहीं किया करते थे। किन्तु जहां तक देखा गया, वस्तुतः यह एक निर्मूल धारणा है। अतीत काल में जब भारतीय विशेष प्रकार की राज्यप्रणालियों के अधीन रह कर युद्ध किया करते थे, अपने धर्मों का पालन तथा स्वत्वों की वृद्धि करते थे, उस समय भारत में राजनैतिक जीवन ही नहीं, प्रत्युत सामाजिक अनुभवों और आदर्शों, नियमों और आचारों के आधार पर रचित राजनीति शास्त्र भी वर्तमान था। महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ का लूटा जाना, क्लाइव द्वारा अमीचंद का लोभ वंचित होना, वारेन हेस्टिंग्स द्वारा अन्यायपूर्वक बेगमों का धन-अपहरण तथा वेलसली द्वारा पृथक् सन्धि वाली नीति के उद्घोषित होने के बहुत पहिले ही भारतीय इतिहास का प्रारम्भ होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। बृहस्पति, शंकराचार्य और चाणक्य प्रभृति असंख्य राजनीति-विशारदों द्वारा रचित राजनैतिक सिद्धान्तों, शासनपद्धतियों और युद्ध के कठिन नियम-उपनियमों तथा विजित राष्ट्रों के प्रति व्यवहारों से एवम् चन्द्रगुप्त, अशोक और अन्यान्य सम्राटों के समय की राजनैतिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं से सिद्ध होता है कि उस समय भारतीय केवल सारगर्भित राजनैतिक जीवन ही व्यतीत नहीं करते थे; बल्कि राजनीति-सम्बन्धी विषयों की मीमांसा भी किया करते थे।

सब से पहिले हमको यह मान लेना चाहिये कि आदिकालिक प्राचीन समितियों में राजनैतिक चैतन्यता बहुत स्वल्प मात्रा में वर्तमान थी। सार्वदेशिक सम्बन्धों पर ध्यान रखते हुये स्वतंत्र रूप से मानवीय कार्यवाहियों का एक निश्चित सीमा तक पृथक्करण तथा अध्ययन, और उन्नत मानसिक क्रियाओं की साधना ही है। मानवी कार्यवाहियों का अध्ययन समष्टि (Synthetic) एवम् व्यष्टि (Analytic) दोनों प्रकार होना चाहिये।

मनुष्य के अनुभव को मौलिक नियमों के निश्चित आधारों पर अवलम्बित करने के लिए, उसके जीवन का साङ्गोपाङ्ग आकलन होना चाहिये। जब समाज की प्राकृत अवस्था में मनुष्य वर्तमान रहता है, उस दशा में उसको इस बात का यथार्थ ज्ञान होना सम्भव नहीं कि उसकी कार्यवाहियों का वर्गीकरण भिन्न २ दृष्टियों से हो सकता है। पुरातन समाजों में अन्यान्य मानवी चैतन्यताओं की अपेक्षा राजनैतिक चैतन्यता का पता लगाना कठिन है। उनमें जितने मानुषिक सम्बन्ध तथा कार्यवाहियां पाई जाती हैं, वे सब बिलकुल सामाजिक एवम् मिश्रित हैं। अनस्थिरता, सान्दिग्धात्मिकता तथा अनिश्चितता से वे इस प्रकार परिवेष्टित हैं कि उनमें मनुष्य की बुद्धि अपने संबन्धों का भी विशिष्ट विभेद नहीं कर सकती है।

राजनैतिक चैतन्यता की जागृति तभी होती है, जब मनुष्य अपने परिवार या कुटुम्ब को सरकार अथवा राज्य से भिन्न समझने लगता है। परिवार और वंश से भिन्न इस शासनशक्ति की भावना—जिसके द्वारा मानव-जीवन की गति का अनुशासन तथा मानवीय संबन्धों का नियंत्रण होता है—शनैः शनैः मनुष्य की कार्यवाहियों के राजनैतिक पक्ष को प्रकाशित कर देती है और राष्ट्र के राजनैतिक जीवन के व्यवहारार्थ शास्त्र एवम् कल्पना का प्रतिपादन करती है। अन्य दशाओं में किसी राष्ट्र की विशिष्ट राजनैतिक चैतन्यता और राजनैतिक कल्पना के उदित होने के पहले ही हम प्राकृत समाजों के इतिहास में राजनीति, कर्तव्य, व्यवस्था, धर्म और अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों का संमिश्रण पाते हैं। प्लेटो ने भी नीतिशास्त्र एवं मानसशास्त्र के प्रसङ्ग में ही राजनीति की मीमांसा की है। अरिस्टाटिल का राजनीति-संबन्धी निबंध उसके नीतिशास्त्र के निबंध से स्वतंत्र नहीं है। प्लेटो के राजनीति-संबन्धी विचार स्वतंत्र तथा नियमशील विज्ञान के रूप को नहीं पहुंच सके हैं।

राजनैतिक विज्ञान का संबन्ध मानव जीवन और कार्य के एक निर्दिष्ट विभाग से, मनुष्य के अपने स्वजनों के बाह्य संबन्ध की एक निश्चित शाखा से तथा सामाजिक जीव के रूप में मनुष्य के त्रिकालकालिक कतिपय विशिष्ट स्वरूपों से है। विशेषतया इसका सम्पर्क सामाजिक सम्बन्धों की किसी निर्दिष्ट अवस्था से है। इसी में हमको सामाजिक संबन्धों की साधारण समस्याओं का अध्ययन निश्चित दृष्टि से करने को मिलता है। यह विज्ञान इस अनुमान पर अवलम्बित है कि मानव-जीवन का वर्गीकरण भिन्न २ विभागों, स्वरूपों एवम् प्रवृत्तियों में संभव है और यद्यपि राजनैतिक तथा अन्यान्य सामाजिक संबन्धों के मध्य कोई निश्चित विभागात्मक रेखा नहीं खींची जा सकती है, तथापि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये भिन्न २ वर्गों में पृथक् किये जा सकते हैं। साथ ही हमको इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिये कि इस राजनैतिक शास्त्र तथा अन्यान्य मानवशास्त्रों में एक प्रकार का अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

मनुष्य का सामाजिक जीवन अनेक रूपों में व्यक्त होता है, जिनमें शासन का रूप परमावश्यक है। मनुष्य अपनी प्राकृतिक अवस्थाओं तथा परिस्थिति के प्रभाव से किसी ऐसे समाज का सभ्य अवश्य है, जिस समाज के प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का नियन्त्रण एवम् अनुशासन जनसमूह के रूप में उस संस्था-द्वारा होता है। समाज में मनुष्य का एकान्त अस्तित्व भी संभव है। समाज कहने से एक व्यक्ति का भी समाज बोध होता है। इसका कारण यह है कि वह जीवन का सर्वोत्तम विधान माना गया है। समाज का उद्गम नगर की रक्षा के लिए और राज्य अथवा सरकार का प्रादुर्भाव जीवन को संभव तथा उत्तम बनाने के लिए होता है। अतएव मनुष्य को राज्य की आवश्यकता है। मनुष्य से राज्य के विरोध का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। राज्य का कर्तव्य मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों का नियन्त्रण करना तथा वैदेशिक शत्रुओं से रक्षा करना है, जिसमें वे आपस में मिलजुल कर उन्नतिपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।

राजनैतिक विज्ञान की समस्याओं पर वाद-विवाद करते समय उस विज्ञान के सीमा-प्रदेश का विचार तथा समान रूप के मानवीय ज्ञान के अन्य विभागों से इसके संबन्ध की परिभाषा करना आवश्यक है। राजनैतिक विज्ञान का प्रयोग भिन्न २ लेखकों ने भिन्न २ अर्थों में किया है। उत्तम निबन्धों में तथा वार्तालाप में उससे भी बढ़ कर इसका अनिश्चित एवम् सन्दिग्ध प्रयोग हुआ है। सामाजिक विज्ञान उन नियमों का अन्वेषण करता है, जिनके द्वारा मनुष्य के कार्य इस अवस्था में जब कि वह किसी जनसमूह के सभ्य के समान आचरण करता है, प्रवर्तित होते हैं। इसके अतिरिक्त राजनैतिक विज्ञान उस विशेष विज्ञान का नाम है जिसका संबंध राज्य से है और जिसमें एकाधिपत्य शासन का समावेश रहता है। राज्य के एक सभ्य की हैसियत से मनुष्य के साधारण जीवन से इसका सरोकार है। निस्सन्देह, इस प्रकार के राज्य या जनसमुदाय में राजनैतिक स्वरूपों (Aspects) के अतिरिक्त अन्यान्य स्वरूप भी अवश्यमेव रहेंगे। संभवतः, यह एक धार्मिक परिषद् के रूप में परिणत हो जायगा। निश्चय ही यदि राज्य रक्षणशील हो, तो यह एक आत्मावलम्बिनी (Self-Contained) आर्थिक सभा हो जायगी, अन्यथा, यदि राज्य की नीति मुक्त-वाणिज्य की होगी तो वह परावलम्बी होगा। परन्तु राजनैतिक विज्ञान-समाज के राजनैतिक स्वरूपों को पृथक् कर देता है और अन्यान्य स्वरूपों का विचार भी वहां तक करता है, जहां तक उनका सम्बन्ध राज्य से है।

अब हमको राजनीति के व्यवहार से कल्पना का जो सम्बन्ध है उस विषय का वर्णन करना चाहिये। कल्पना एकरूपता के अर्थ में उन नियमों के आविष्कार का प्रयत्न करती है जो किसी निर्दिष्ट और वर्तमान वस्तु के कार्यों में दृष्टिगोचर होते हैं। इस प्रकार के नियमों तथा ऐक्यों के अन्वेषण का अभिप्राय यह है कि वे यदि नियामक (Mandatory) न हों तो केवल प्रामाणिक ही नहीं, बल्कि प्रवर्तक (Directive) हों। उनका काम उस पदार्थ का नियन्त्रण तथा अनुशासन करना है जो परिवर्तनशील एवम् नियन्त्रणशील हो। राजनैतिक कल्पना अपने उपादान (Material) के सम्बन्ध में भी यह कार्य करती है।

जिस प्रकार तर्कशास्त्र (Logic) उन नियमों के आविष्कार का प्रयत्न करता है जिनके अनुसार मनुष्य तर्क वितर्क करता है, उसी प्रकार राजनैतिक कल्पना भी इन्हीं नियमों की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्भावना करती है, जो मनुष्य के राजनैतिक जीवन की संस्थाओं तथा अवस्थाओं में दृष्टिगोचर होते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हीं नियमों के आधार पर उसके आगे के प्रयत्न हों। जिस प्रकार तर्कशास्त्र के पूर्व तर्कयुक्त विचार है, उसी प्रकार राजकीय शास्त्र के प्रथम उत्तम राज्य अथवा राजनैतिक व्यवस्थाएँ वर्तमान थीं। जिस प्रकार तर्कशास्त्र का काम केवल क्रमानुसार व्याख्या करना है, उसी प्रकार राजनीति भी उत्तम राजनैतिक जीवन की क्रमिक व्याख्या करती है, और उनसे अनुमान और नियमों को विलग करती है। इस प्रकार की व्याख्या से यह लाभ होता है कि यह केवल व्यक्तियों के लिए राज्य की नीतियों का समर्थन करती है। जिस प्रकार तर्क शास्त्र शुद्ध तर्क-वितर्क के लिए नियमों का अनुसन्धान करता है, उसी प्रकार राजनैतिक कल्पना भी उन्हीं नियमों का अन्वेषण करती है जो किसी उन्नतिशाली समाज के पथप्रदर्शक हों। उदाहरणार्थ, प्लेटो और अरिस्टाटेल ने ईसा से ४०० वर्ष पहले ग्रीक राज्यों के सुधार के लिए अनेक व्यवस्थाएँ उद्घोषित की थीं। आधुनिक काल में भी राजनैतिक जीवन के जटिल प्रश्नों तथा मनुष्य के अन्यान्य कार्यवाइयों पर इसके सम्बन्धों एवं प्रभावों को हल करने के लिए ही राजनैतिक कल्पना की पुनः २ उद्भावना हुई है। मध्य युगों में १८वीं शताब्दी तक धर्म का राज्य के साथ एवं राज्य का कानून के साथ क्या सम्बन्ध होना चाहिये, ये ही विषय राजनैतिक चिन्तना के मुख्य उद्गम स्थान थे। जिस प्रकार अर्वाचीन काल में प्रजा द्वारा शासन का नियन्त्रण अथवा राज्य के प्रबन्धों में प्रजा का सर्वोत्तम रीति से हस्तक्षेप तथा राज्य का प्राकृत ध्येय है, उसी प्रकार उस समय में वे नियम आदर्श रूप माने जाते थे। आजकल व्यापार का श्रमजीवियों के सम्बन्ध में राजनैतिक एवम् आर्थिक साम्यवाद का जन्म हुआ है। एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ सम्बन्ध अथवा एक राज्य का दूसरे राज्य पर बलपूर्वक आधिपत्य से बीसवीं शताब्दी में एक नूतन प्रकार की राजनैतिक भावना और कार्य की उत्पत्ति हुई है। अतएव, यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक कल्पना इस प्रकार के आदर्श को सामने रखने का प्रयास करती है, जिसके द्वारा पदार्थों की दूषित अथवा अपूर्ण राजनैतिक दशा का सुधार हो। यहां इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि राजनैतिक कल्पना नवीन विचारकों के विचार का एकमात्र परिणाम है। अनुदार विचारकगण नवीन कल्पनाओं को केवल असत्य सिद्ध करने के लिए विचार किया करते हैं।

किसी देश के लोगों के चरित्र पर ही राजनैतिक व्यवहार अवस्थित रहता है। जो राष्ट्र परम्पराभक्त हैं, जो अंग्रेजों के समान कानूनी मिसालों को अपना पथप्रदर्शक समझते हैं, तथा जो अपने जीवन को प्राचीन नियमों, गलों अथवा सिद्धान्तों का नवीन अर्थ लेकर सांचे में ढालते हैं, उनको राजनैतिक कल्पना के प्रतिपादन का सुयोग नहीं मिलता है। वे प्राचीन बातों का नवीन ढङ्ग से अर्थ लगाने का प्रयास करते हैं, और अपने व्यवहार की शक्तिशाली वाह्य दशाओं तथा आन्तरिक उत्थान और पतन से बाध्य होकर सुधार करते हैं। उन्नति की ओर से वे अग्रसर नहीं होते, तथा राजनैतिक कल्पनाओं की सृष्टि नहीं करते। असल में अंग्रेजों ने एक भी राजनैतिक कल्पना की सृष्टि नहीं की है। इन लोगों ने फ्रांस, जर्मनी या हालैन्ड से इन्हें अपने देश में लाये हैं। किन्तु फ्रेंचों के समान आदर्शवादी राष्ट्र नवीन समस्याओं को तर्कपूर्वक हल करने का प्रयत्न करते हैं और उन्हें कार्य में परिणत करने तथा प्रचार करने का प्रयास करते हैं। अंग्रेजों के समान राष्ट्रीय जीवन एक विशेष प्रकार का जीवन है जो निरन्तर एकसा रहता है। किन्तु फ्रेंचों की दृष्टि से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रों के इतिहास में इसमें अनेक परिवर्तन पाये जाते हैं। उनके जीवन में उल्लेखनीय घटनाओं एवं विभिन्न समयों का समावेश रहता है। नवीन कल्पनायें उनके राजनैतिक व्यवहारों को एक नवीन सांचे में ढाल देती हैं। प्रथम श्रेणी राष्ट्रों की जागृति के लिए कुछ कठिन है। और द्वितीय श्रेणी का उत्तेजित होना सहज है। प्रथम, सर्वदा टालने की चेष्टा करती है, द्वितीय, निरन्तर परीक्षा करती हुई अग्रसर होती है।

यात्री।

[लेखक--श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त।]

मैं निहत्था जा रहा हूं इस अँधेरी रात में।
हिंस्र जन्तु लगे हुए हैं प्राणियों की घात में॥

गूंजती गिरि-गह्वरों में गर्जना है।
विकट बीहड़ मार्ग में आवर्जना है॥

किन्तु डरूं मैं क्यों हे प्यारे, तेरे पीछे जाता हूं।
माना तुझे नहीं पर तेरी उज्वल आभा पाता हूं॥

विमुख करने की मुझे क्या शक्ति है उत्पात में।
मैं निहत्था जा रहा हूं इस अँधेरी रात में॥

चाहते हैं सरल कण्टक दान थोड़ा।
क्यों न दूं इनको पदों में स्थान थोड़ा॥

हिंसक पशु ये मेरे आगे मुंह बाबा कर आते हैं।
इन पर मुझे दया आती है दीन दांत दिखलाते हैं॥

भक्ष्य आख़िर है इन्हीं का मांस मेरे गात में।
मैं निहत्था जा रहा हूं इस अँधेरी रात में॥

मरण मेरे शरण आया है, न लूँ क्या?
और यह तनु-दान भी इसको न दूं क्या?

इस प्रकार मैं हलका होकर सहज पार हो जाऊंगा।
देह नहीं हूं मैं देही हूं तुझे शीघ्र ही पाऊंगा॥

बस मुझे विश्वास दे विश्वेश, तू इस बात में।
मैं निहत्था जा रहा हूं इस अँधेरी रात में॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतवर्ष में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न।

[लेखक—लाला लाजपतराय।]

कुछ ऐसे सिद्धान्त और आवश्यक बातें हैं जिन्हें उन लोगों को पूरी तौर से ध्यान में रखना चाहिये जो राष्ट्रीय शिक्षा का क्रम बनाने में लगे हुये हैं। उनमें से कुछ बातों की ओर मैं उनका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। पहली बात जिस पर हमें विचार करना चाहिये, वह यह है कि शिक्षा का प्रश्न एक आवश्यक और मूल प्रश्न है। यह एक अनावश्यक प्रश्न नहीं। वह हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का बुनियादी पत्थर है। यदि वैज्ञानिक रीति से देखा जाय तो समस्त जीवन एक सामाजिक जीवन है और शिक्षा भी उसी में शामिल है, क्योंकि शिक्षा या ज्ञान दूसरों ही की सहायता से प्राप्त हो सकता है। जिस ओर से हम शिक्षा के प्रश्न पर दृष्टि डालते हैं—चाहे हम उसे व्यक्तिगत सम्बन्ध से देखें या सामाजिक सम्बन्ध से—उसी ओर से शिक्षा की पद्धति, उसका उद्देश्य और उसका मूलमंत्र सामाजिक मालूम देता है। शिक्षा सामाजिक कार्य है। व्यक्ति और समाज एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। जो बात एक व्यक्ति के लिए उपयोगी है, उससे दूसरे की भी भलाई होगी।

शिक्षा एक उद्देश्य का साधन है। और उद्देश्य है जीवन और उन्नति, और उन्नति भी ऐसी जो सदा होती रहे, उसमें कोई रोक टोक न हो और वह अनन्त हो। जिस प्रकार जीवन के भाग नहीं हो सकते, उसी प्रकार उन्नति भी वास्तव में विभाजित नहीं हो सकती। व्यवहारिक रीति से हम जीवन को शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक भागों में बांट सकते हैं, परन्तु सिद्धान्तरूप से ये स्पष्ट भ्रम में डालनेवाले हैं। जीवन-स्वस्थमय और उन्नतिशील जीवन (वास्तव में यही सच्चा जीवन है) के लिए परमावश्यक है कि हमारी सारी शक्तियां मिलकर एक उद्देश्य से काम करें और वह उद्देश्य उन्नति है।

जीवन के साथ परिवर्तन मिला हुआ है। अच्छाई के लिए परिवर्तन होना ही उन्नति है। मानवीय प्रकृति स्वभावतः उन्नतिशील है। वह कोई जड़—अपरिवर्तनशील—पदार्थ नहीं है, किन्तु उसमें अपरिमित परिवर्तन हो सकता है, यद्यपि परिवर्तन की चाल चाहे बहुत ही धीमी हो। कर्म का कानून सदा कार्य करता रहता है और वह मनुष्य की प्रकृति को बदलता रहता है। व्यक्तिगत कर्मों का प्रभाव सामाजिक कर्मों पर होता है और सामाजिक कर्म व्यक्तिगत कर्मों पर अपना प्रभाव डालते हैं।

सामाजिक उन्नति भिन्न भिन्न कारणों के कार्य का परिणाम है। यद्यपि ये कारण एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते, क्योंकि वे एक पूर्ण वस्तु के अंग हैं, परन्तु विस्तार के अभिप्राय से वे निम्नलिखित भागों में बांटे जा सकते हैं:—जैसे प्राकृतिक स्थिति, कलाओं की उन्नति, सामाजिक चरित्र अथवा मानसिक पूंजी की पूर्ति इत्यादि २। यदि इन सब को एक ही शब्द में रक्खा जाय तो वह शब्द "मन" है, जिसमें वासना और विवेक का भाग बहुत प्रत्यक्ष और बलवान हो जाता है। यह बात सत्य नहीं है कि मनुष्य अपनी स्थिति का पूरा पूरा दास है।

स्वतंत्रता की वृद्धि ही उन्नति की कसौटी है। अपने पुरुषार्थ द्वारा अपनी स्थिति पर विजय प्राप्त करने ही का नाम स्वतन्त्रता है। स्वतंत्रता की वृद्धि एक ऐसा परिवर्तन है, जिसमें प्रकृति की अनुकूलता और व्यक्ति की समाज के प्रति स्वाभाविक पराधीनता बढ़ती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर प्रकृति पर विजय प्राप्त करती है और वही आगे चलकर मनुष्य की स्वाधीनता हो जाती है। इसके पश्चात् मनुष्य अपना और अपने समाज का अस्तित्व स्थापित कर सकता है।

बिना स्वतंत्रता के कोई आनन्द नहीं (जो मनुष्य स्वतंत्र नहीं है, उसके लिए कोई आनन्द नहीं)। यहां पर स्वतंत्रता का यह अर्थ नहीं है कि हम शारीरिक बन्धन से मुक्त हों, किन्तु जहां तक सम्भव हो, हम अपनी ज़बरदस्त वासनाओं और अपने इर्द गिर्द की स्थिति से भी छुटकारा पा सकें। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की वृद्धि का अर्थ यह है कि हममें अपने ऊपर प्रत्येक ढङ्ग अधिकार प्राप्त करने की उन्नति हो, किन्तु इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि हम समाज से पृथक हो जायँ। इस सम्बन्ध में जो बात किसी व्यक्ति के लिए ठीक है, वही बात किसी सामाजिक सम्प्रदाय अथवा जाति के लिए भी ठीक है। किसी जाति की उन्नति उसके आकार पर निर्भर नहीं है। बड़ी जनसंख्या ही उन्नति का चिह्न नहीं है, किन्तु वेही लोग वास्तविक उन्नति कर सकते हैं, जो स्वस्थ, योग्य और अखंडित अथवा सम्पूर्ण हों। सम्पूर्णता का अर्थ एक रूपता अथवा सून-समानता नहीं है। किन्तु सम्पूर्णता का अभिप्राय यह है कि हमारा उद्देश्य और तात्पर्य एक है, अर्थात्:—हम राष्ट्रीय जीवन और जातीय कार्यों में एक दूसरे से मिल कर और सहानुभूति के साथ काम कर सकें।

इसलिए उचित पूर्ण शिक्षा का पहला उद्देश्य यह होना चाहिये कि जिससे मनुष्य को यह बात मालूम हो जाय कि स्वतंत्रता की वृद्धि ही का नाम उन्नति है, और प्रत्येक मनुष्य अपने भाग्य का विधाता है। साथ ही भाग्य और कर्म उसके अधिकार से दूर नहीं हैं। वही मनुष्य उन्नति के मार्ग पर चल सकता है जो अपने व्यक्तित्व को समाज के अस्तित्व में मिला देता है। राष्ट्र ही एक ऐसा समाज है, जिसमें प्रत्येक पुरुष और स्त्री को अपना अस्तित्व सम्मिलित कर देना चाहिये, क्योंकि इस सम्मिलन के बिना उन्नति या स्वतंत्रता की वृद्धि यदि असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है।

भारतवर्ष के जनसाधारण का विश्वास, उनके रिवाज और उनके आचरण उनको इस ओर आकर्षित करते हैं कि वे भाग्य और कर्म की महिमा पर अनुचित जोर देते हैं। हमारे देशवासियों को बड़े जोर से लगातार इस बात की शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता है कि भाग्य कोई वस्तु नहीं और कर्म स्वयम् मनुष्य के पुरुषार्थ के आधीन है, वस्तुतः उसकी सामाजिक स्थिति के बदलते ही उसका कर्म भी बदल जाता है। हिन्दू धर्म भाग्य पर विश्वास की शिक्षा नहीं देता, परन्तु कर्म की प्रधानता पर उसका हठ लोगों को थोड़ा बहुत पुरुषार्थ-हीन और साहसहीन अवश्य बना देता है। अब इस बात पर अधिक जोर देना चाहिये कि हम अपनी योग्यता से अपने कर्म को बदल सकते हैं, और उसपर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। हम अपने इसी जीवन में अपनी स्थिति की सहायता से अपने विचारों और कार्यों द्वारा अपने कर्म को अपने आधीन कर सकते हैं।

मुसलमान धर्म भी भाग्य पर विश्वास करने की शिक्षा नहीं देता। परन्तु इस बात से भी वह इन्कार नहीं कर सकता कि मुसलमानों में भी इस समय भाग्य पर अनुचित विश्वास किया जाता है।

इस समय सामाजिक स्थिति के महत्त्व पर विशेष जोर देने की आवश्यकता है। साथ ही इस बात के प्रचार की भी आवश्यकता है कि हमें अपनी सामाजिक स्थिति को भी बदलना चाहिये।

इस पुराने विचार का अच्छी तरह से खंडन हो रहा है कि किसी जाति के सामाजिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यवहारों पर उसकी भौगोलिक स्थिति और उसके रुधिर का अधिक प्रभाव पड़ता है। भारतीय जनता के हृदय से इस ढकोसले को दूर करने के लिए कोई उपाय उठा न रखना चाहिये, क्योंकि वाग्वीर दार्शनिक और इतिहासज्ञ इस पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दे रहे हैं। किसी जाति का चरित्र निर्माण करने में उसके जल वायु का प्रभाव अवश्य पड़ता है। परन्तु यदि वह प्रभाव उन्नति के विरुद्ध है, तो वह सबल प्रयत्नों से दूर और ठीक किया जा सकता है।

इस तरह जातीय (Racial) रुधिर और पैत्रिकता पर भी अधिक महत्व दिया जाता है। हमसे बारम्बार यही कहा जाता है कि न केवल हमारी भौगोलिक स्थिति, किन्तु हमारा पैतृक चरित्र भी हमको प्रजातंत्र मार्ग पर राजनैतिक उन्नति करने के अयोग्य सिद्ध करता है।

प्रोफ़ेसर टाड कहते हैं कि यद्यपि जातीय जीवन में पैतृक विभिन्नताओं पर अधिक ज़ोर दिया जाता है, परन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। मस्तिष्क की गुरुता और समझदारी की मात्रा में कोई मेलजोल नहीं। जातीय विभिन्नता को निर्धारित करने में मस्तिष्क विद्या से कोई उपकार नहीं होता। मनुष्य जाति के वर्णों या रंगों का अध्ययन करनेवालों ने हाल ही में यह प्रमाणित कर दिया है कि किसी जाति के सामाजिक चरित्र पर उसके रंग का विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। रँगा हुआ चमड़ा तेज धूप से रक्षा करता है और धूप की अधिकता या कमी पर उसका रंग भी निर्भर होता है।

कुछ शताब्दियों से भारतीय मन एक प्रकार की पराधीनता में रहा है। भारतवर्ष में जीवन को उन्नति करने की अपेक्षा अवनति के मार्ग पर ले जाने में निम्नलिखित कारणों ने मिल-कर कार्य किया है:—जीवन व्यवहार में शास्त्रों या शरा की कड़ी पाबन्दी, पुरोहितों की प्रभुता, शिक्षा के अवकाशों की कमी, देश की लगातार गड़बड़ी, सिद्धान्तों की दार्शनिक निराशा के दिन और मठों तथा साधुओं के महत्व के भावों द्वारा सांसारिक जीवन की हीनता। इसमें सन्देह नहीं कि निकृष्ट प्रकार की पूजा और लोगों की कुरीतियों के विरुद्ध कभी कभी आवाजें उठाई गई थीं, परन्तु उनमें इतना बल नहीं था कि वे मूर्खता का संहार कर के कुछ अपना प्रभाव उत्पन्न करतीं। इसका परिणाम यह हुआ कि पिछले एक हज़ार वर्ष में भारतवर्ष ने उन्नति करने की अपेक्षा अवनति ही की है, बहुधा वह पीछे ही हटा है, आगे उसने एक भी कदम नहीं बढ़ाया।

जहां तक भूतकाल से सम्बन्ध है, हमारे प्रश्न के दो अंग हैं। हमारे समालोचक और दोषदर्शक हमें विश्वास दिलाते हैं कि हम सदा जंगली रहे हैं और अब भी वैसे ही हैं। वस्तुतः भारतवर्ष में कभी कोई सभ्यता नहीं थी। हमारी दशा उन्नतिहीन (Arrested progfess) देशों कीसी है, और हमने विचारों, आविष्कारों और कर्मक्षेत्र में प्रशंसा के योग्य कभी कोई सफलता नहीं प्राप्त की; अर्थात् हम सदा दूसरों ही के भरोसे रहे हैं। हाल ही में एक कड़े समालोचक ने अपनी पुस्तक में हमारी जातीय पूर्णता की बुरी तरह ख़बर ली है। अंग्रेज़ी राज्य के आरम्भ काल में भी जेम्स मिल सरीखे विद्वानों और अंग्रेज़ी सुधारक और ईसाई पादरियों ने भी ऐसा ही किया था।

जब संस्कृत साहित्य की महिमा बढ़ी और यूरोपीय भाषाओं में उस साहित्य के कुछ अंशों का अनुवाद हुआ (यद्यपि वह भद्दा और अशुद्ध था) और थोड़ा थोड़ा करके भारतीय इतिहास बनने लगा, तब एक परिवर्तन का युग आरम्भ हुआ। प्राचीन भारतवासियों ने विचार और ज्ञान में जो सफलता प्राप्त की थी, उसे यूरोपीय संसार प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगा। और, भारतवासी भी यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझने लगे कि अब तो हमें संसार के विद्वान लोग इन आदमियों की सन्तान मानते हैं जो हर प्रकार की मानसिक शक्तियों में उनके बराबर थे। इससे उनकी आत्मप्रतिष्ठा बहुत कुछ बढ़ गई और वे अपनी प्राचीन प्रतिष्ठा को भावी उन्नति का अंकुश बनाने लगे। इस कार्य में उन्हें काफी सफलता हुई और भारत की वर्तमान आकृति उसी का परिणाम है।

किन्तु इस कार्य में हममें से कुछ लोगों ने सम्भव-असम्भव के विचार को त्याग दिया और ऊटपटांग बातें करना आरम्भ कर दिया, वस्तुतः अपने समालोचकों को तुकी-बेतुकी या ईंट के बदले पत्थर का जवाब देने में हमने अपने पूर्वजों के मत्थे असम्भव बातें भी मढ़ना आरम्भ कर दिया, और हम कहने लगे कि संसार में जो कुछ भलाई, सच्चाई और सुन्दरता है, वह भारतवर्ष ही से निकली है। इससे भी कुछ हर्ज न हुआ होता, यदि हमने आधुनिक सभ्यता के विरुद्ध ऊटपटांग आक्षेप करना न आरम्भ किया होता। इन आक्षेपों से हमने यह सिद्ध करना चाहा कि संसार की सारी बुद्धि, सच्चाई और विद्या के ठेकेदार केवल हम ही लोग हैं। हमारे जवाब में विलियम आर्कर ने 'भारत और भविष्य' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस सम्बन्ध में विचार करते हुए हम लोगों को यह बात याद रखनी चाहिए कि अपनी सभ्यता और जीवन व्यवहार का ठीक ठीक मान करने का प्रश्न राजनीति से सम्बन्ध रखने के कारण और भी जटिल हो जाता है। हमारी शंका स्वाभाविक है और ठीक भी है, जब कि हम सोचते हैं कि हमें बदनाम करनेवाले हमको इसलिए बदनाम करते हैं कि हमारी जाति में ऐसा मानसिक विकार पैदा हो जाय कि हम हुकूमत करनेवाली जाति से बराबरी का दावा करना छोड़ दें।

अमेरिका के विसकानसिन स्थान के अध्यापक रास ने रूस के विषय में एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने इस बात को बहुत अच्छी तरह से समझाया है। मैं उनके कुछ वाक्य यहां उद्धृत करता हूं। इन वाक्यों की योग्यता इसलिए और भी बढ़ जाती है, क्योंकि वे जर्मनी के विरुद्ध कहे गये हैं। अध्यापक महाशय ने रूसियों के चरित्र में कुछ ऐसे उत्तम गुणों का ज़िक्र किया है, जिनको जर्मनी के बहकानेवालों ने या तो बिलकुल नाम ही नहीं लिया है, या उन्हें निरा महत्वहीन बतलाया है। आप कहते हैं:—

रूसियों के इन उत्तम गुणों को देखकर जो अमेरिकन उन्हें अच्छी तरह जानते हैं, वे यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि यदि रूसी अपने आपे में आ जायँ, तो उनका भविष्य बड़ा ही महान होगा। हम इस बात को मानते हैं कि कई बातों में हम लोगों से ज्यादा रूसियों में मिलकर काम करने और प्रजातंत्र की विशेष स्वाभाविक योग्यता है। ठीक, इसी बात पर रूस के विषय में जर्मन और अमेरिकन निरीक्षकों में बड़ा ही मतभेद है। मैं जर्मनी के जितने विद्वानों से मिला—कोर्टलैंड के ज़िमींदारों से लेकर वालगा के लूथरन सम्प्रदाय के पादरियों तक—सब ने यही कहा कि रूस की जनता में सभ्यता की बड़ी हीनावस्था है और उनमें अराजकता के भाव बहुत प्रबल हैं। इसलिए आवश्यकता है कि उनको ठिकाने से रखने के लिए दमननीति से काम लिया जाय। पाश्चात्य यूरोप के लोगों की तरह स्वभाग्यनिर्णय, चरित्रबल और उद्देश की दृढ़ता आदि गुणों को प्राप्त करने के लिए उन्हें युगों की आवश्यकता है। जर्मनों का ख्याल है कि दो या तीन शताब्दियों तक वहां रक्षण नीति काम में लानी चाहिये। किन्तु इसके विरुद्ध जो अमेरिकन वहां के लोगों का पूरा पूरा ज्ञान रखते हैं, उनका कहना है कि वर्तमान युग में रूसियों के पिछड़ने के कारण विशेष हैं, अर्थात्—उनका संसार से अलग रहना, राजा की निरंकुशता, दासत्व, मूर्खता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जातीय दल आदि। उनका विचार है कि यदि स्थिति अनुकूल हो तो जनता की मानसिक अवस्था बहुत शीघ्र उन्नत हो सकती है। ये लोग रूसियों के उत्थान के समय को इस शताब्दी के अन्त से अधिक दूर नहीं समझते।

ये विचार विज्ञान से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। बीस में से उन्नीस फरासीसी या एमेरिकन समाज-शास्त्र-वेत्ता—जो इस शाखा के माने हुए नेता हैं—वे इस बात पर सहमत होंगे कि यदि रूसियों को शान्ति के साथ और प्रजा सत्तात्मक रीति से उन्नति करने का मौका मिले और वे शीघ्र ही वृहत रूप से अपना उत्तरदायित्व, स्वाधीन संस्थाएँ, स्कूल, पुस्तकालय आदि स्थापित कर दें, तो उनके प्रपौत्र संसार की किसी भी वर्तमान सभ्यता को प्राप्तकर सकते हैं। तो फिर क्या कारण है कि केवल जर्मन लोग ही इस बात पर ज़ोर देते हैं कि रूसियों की उन्नति होने में शताब्दियां बीत जायँगी। इसका साफ साफ कारण यह है कि जर्मनी के राज सत्ताधिकारियों की अब तक यह नीति रही है कि वे इस प्रकार के समाज विज्ञान का प्रचार करें जिससे पिछड़े हुए लोग न तो स्वयम् अपने में विश्वास करें और न संसार ही उनका विश्वास करे।

रूस जर्मनी का क्षेत्र रहा है। वह सदा वहां की जनता के उद्धार के विरुद्ध रहा है, क्योंकि वह चाहता है कि रूस में जर्मन व्यापारियों, कारीगरों, पेनकवालों, दवावालों, मैनेजरों और इंजीनियरों को काम करने का वृहतक्षेत्र मिले। वह यह भी चाहता है कि रूस में जर्मनी के माल की खपत हो, और वहां जर्मन पूंजी से काम हो। जितना ही वह रूसियों की हिम्मत तोड़ेगा और उन्हें ऐसी संस्थाएँ स्थापित करने से रोकेगा जिनसे गिरे हुए लोग शीघ्र उठते हैं, उतने ही दिनों तक वह उन्हें चूस सकेगा। सारांश यह है कि जर्मनी के अध्यापकों और सामाजिक नेताओं ने विज्ञान के नाम पर जिस सभ्य सिद्धान्त का प्रचार किया है, वह और कुछ नहीं है, वरन् एक विशेष ज़हरीली वायु है।

जो लोग सदैव विदेशियों और स्वयम् अपने नेताओं से हीन बतलाये जाते हैं; उनमें आत्म-सम्मान और आत्म विश्वास आदि आवश्यक गुण कभी नहीं उत्पन्न हो सकते। और जिन लोगों में ये गुण नहीं होते, वे अवश्यमेव पतन और नाश की ओर जाते हैं। इसीलिए इस बात की बड़ी भारी आवश्यकता है कि हमारी सारी संस्थाओं पर जो लांछन लगाये जाते हैं हमें उनके दुष्परिणामों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। हमारे समालोचक समय-असमय पर हमें पिछड़ी हुई जाति कहा करते हैं। वे हमारी जाति, धर्म और भाषा की भिन्नता के राग अलापा करते हैं, और बड़े ज़ोर से कहा करते हैं कि हम लोग प्रजा-सत्तात्मक रीति पर उन्नति करने में सर्वथा अयोग्य हैं। यदि हम उन्नति कर सकते हैं तो वह बहुत ही धीमी चाल से हो सकती है और धीमी भी इतनी कि उन्हें वह भविष्य दिखाई तक नहीं देता, जब कि भारतवर्ष के लोग अधिकारयुक्त-शासन पाने के योग्य हो जायँगे। कहना नहीं होगा कि ये ही हमारे शुभचिन्तक हैं जिन्होंने हमारी जनता में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करने में अब तक टालमटोल की है, और हमारे बच्चों को उद्योग-धन्धों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध करने में हठधर्मी के साथ इन्कार किया है। ये ही लोग हैं, जो चाहते हैं कि हम अत्याचारी शासन के मिथ्या विश्वास में फँसे पड़े रहें। इसलिए हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम इन लांछनों और आक्षेपों के दुष्परिणामों को दूर करें और अपने भाइयों को अपने पूर्वजों की कीर्ति बतलायें और अपनी संस्थाओं के गुण दिखलायें। परन्तु अपने पूर्वजों के गुणगान और आत्म-प्रशंसा के मार्ग में एक भयंकर अंश भी है। इससे यह भी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है कि हम आगे की अपेक्षा पीछे की ओर अधिक दृष्टिपात करें और उस उन्नति से आंख बन्द कर लें, जो संसार ने प्राचीन आर्यों के समय के पश्चात् की है।

यदि आधुनिक सत्य (यद्यपि 'सत्य' सत्य है न वह प्राचीन है और न आधुनिक) की जांच प्राचीन समय की आज्ञाओं से होगी और उसका प्रचार केवल तभी होगा जब कि वह ऋषियों के उपदेश के अनुकूल हो, तब तो भारत के लिए शोक और महानशोक का विषय है। यह बात दूसरी है कि आधुनिक उन्नतियों के प्रमाण प्राचीन पुस्तकों में भी मिल जायँ और इन प्रमाणों के द्वारा उनके प्रचार और उनकी स्वीकृति में अधिक सहायता मिले। किन्तु उन्हें इसलिए व्यर्थ समझ कर छोड़ देना कि वे प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्त के विरुद्ध हैं और उनके मत से नहीं मिलतीं, उन्नति के वृद्धि मार्ग को बन्द करना है। हमें उस समय तक उन्नति करने का विचार छोड़ देना चाहिये, जब तक कि हम अपने मन को निष्पक्ष न कर लें और इस मिथ्या विश्वास को छोड़ न दें कि संसार के आरम्भ में हम पर सारी सत्यता प्रगट हो चुकी है, और जो कुछ जानने योग्य था, वह हमारे पूर्वजों ने जान लिया था और सारे धर्म-शास्त्र, समाज-शास्त्र, राजनीति, अर्थ-शास्त्र ललित-कला और विज्ञान के प्रश्नों पर जो कुछ कहा जा सकता है वह भी पूर्वजों ने कह डाला है, और उनके वाक्य अन्तिम वाक्य थे, अब आगे उन प्रश्नों पर कुछ नहीं कहा जा सकता। अस्तु; यह आवश्यक है कि हम इस बात को अच्छी तरह से जान लें कि हम एक नवीन संसार में रहते हैं—जिस प्राचीन संसार में हमारे पूर्वज रहते थे, उससे यह संसार बिलकुल भिन्न है। सम्भव है कि यद्यपि यह किसी किसी बात में उतना आगे न बढ़ा हो, तथापि अनेक बातों में उससे बहुत ही आगे बढ़ा हुआ है।

हमारी उन्नति का दारमदार इसी पर है कि हम बीच का सुन्दर मार्ग ग्रहण करें और भूत तथा वर्तमान के प्रति अच्छी तरह से जँचा हुआ भाव स्थापित रक्खें, वस्तुतः अपने भूतकाल से अपने भविष्य को अधिक महान बनाने का पक्का इरादा कर लें। वर्तमान अवस्था में हमें इस बात का बहुत कम डर है कि हमारे शत्रु हमें इस बात का विश्वास दिलाने में सफल-मनोर्थ होंगे कि हम लोग निम्न जाति के हैं, या हमारे भूतकाल में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसका हमें घमण्ड हो अथवा हममें उन आवश्यक गुणों की कमी है, जिनके द्वारा हम अपने को वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल बनालें, किन्तु इसकी अपेक्षा इस बात का डर थोड़ा बहुत अवश्य है कि हम वर्तमान सभ्यता का निरादर करके और अपनी सभ्यता के गुणों का उचित से अधिक अनुमान करके अपने आप को बहुत कुछ समझने लगें। इस जोखिम से बचने के लिए हम जितना ही सचेष्ट रहें, उतना ही थोड़ा है। मैं इन बातों को मानते हुए मिसेज़ बीसेंट से पूर्णतया सहमत हूं कि "राष्ट्रीय शिक्षा, सगर्व और प्रकाशमान देशभक्ति के जल-वायु में जीवन व्यतीत करे। भारतीय इतिहास और भारतीय साहित्य के अध्ययन द्वारा इस जल-वायु को ठंढा, प्रिय और अनुकूल बनाये रखना चाहिये"। इसलिए यह परमावश्यक है कि हम इस बात का विचार करें कि हम इस उद्देश्य को किस प्रकार प्राप्त करें और उसके हानिकारक प्रभावों से बचते रहें।

मैंने पहले भी कहा है और अब फिर भी कहता हूं कि हमारे प्रश्न के दो अंग हैं। हमें उन कारणों को दूर करना है और उन प्रभावों का नाश करना है जिन्होंने ऐसी कायरता के जलवायु, और निराशावाद को उत्पन्न कर दिया, जिसमें ठीक उस समय सारा देश डूबा हुआ था, जब कि नवीन राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म हुआ था। इस काम के लिए हमें अपने भूतकाल का इतिहास बनाना पड़ेगा और उच्च प्रकार के लिपिबद्ध प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना होगा कि हमारी मीरास या बपौती में कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो हमें स्वाभाविक रीति से उसे उच्च भविष्य के अयोग्य बनाती हो, जिसकी हम आशा करते हैं । जो प्रमाण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं, उनसे हम अपने भूतकाल के पक्ष को भली प्रकार समर्थन कर सकते हैं और उन लांछनों का उत्तर दे सकते हैं, जो हमें स्वाभाविक रीति से बड़े कामों और बड़े विचारों के अयोग्य सिद्ध करने के लिए प्रचलित की जाती हैं । इस काम के लिए हमें इस बात की आवश्यकता नहीं है कि हम इस बात का दावा करें कि हमारी सभ्यता वर्तमान सभ्यता से हर प्रकार अच्छी थी, और न यह कहने की आवश्यकता है कि हमारे पूर्वज आत्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक विवेक के ठेकेदार थे । केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि पिछले दो सौ वर्षों को छोड़ कर हम अपने इतिहास के प्रत्येक समय में संसार के किसी भी देश से, जैसे कि वे उस समय थे, सभ्यता में अथवा और किसी प्रकार कम न थे । जो सभ्यता हमने प्राप्त की थी, वह प्रतिष्ठा के योग्य, महान् और उच्चतम थी । धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, कानूनशास्त्र, विज्ञान और कलाओं में जो उन्नति हमने की थी, वह प्राचीन संसार के उत्तमोत्तम उन्नति का मुकाबिला करने योग्य है । यदि उसका मुकाबिला वर्तमान संसार की उन्नति से किया जाय, तो भी वह निरी निकम्मी नहीं प्रमाणित होती । इसलिए हमें अपने प्राचीन काल पर लज्जित होने का कोई कारण नहीं है, बल्कि उस पर गर्व करने का पूर्ण अधिकार है । किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हमारे पूर्वजों ने प्रत्येक विचारणीय विषय पर—जो कुछ कहा जा सकता था—अन्तिम शब्द कह डाला है, अब उन विषयों पर कुछ नहीं कहा जा सकता ।

मनुष्य जाति उन्नति कर रही है । मानवीय ज्ञान की वृद्धि हो रही है । प्रकृति पर मनुष्य का अधिकार बढ़ता जा रहा है । सभ्यता पर हमारी बड़ी कृतज्ञता है, क्योंकि हमने उसके लिए मज़बूत बुनियाद बना दी है और उसके महल के नीचे के खण्ड तैयार कर दिये हैं । हमारे लोग मानसिक या शारीरिक शक्तियों में किसी से भी कम नहीं हैं, यदि हमको अवकाश और अनुकूल स्थिति मिले तो हम पृथ्वी की किसी जाति के लोगों से मुकाबिला कर सकते हैं । मिलकर काम करने से हम मनुष्य जाति की उन्नति में अच्छी सहायता कर सकते हैं । उन विदेशियों को जो हमारा हाल अच्छी तरह नहीं जानते और अपने उन देशभाइयों को—जो वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ हैं—ये सब बातें भली प्रकार से बतलाने के लिए हमें कोई मौका हाथ से न खोना चाहिये ।

किसी अवस्था में हम अपने देशवासियों को इस बात की आज्ञा न देंगे कि वे अपने सम्बन्ध में तुच्छ विचार रक्खें और न विदेशियों को इस बात का मौक़ा देंगे कि वे जातीय कारणों से हमारी बुराई करें अथवा हमें नीची सभ्यता के मनुष्य समझ बैठें । हमें सदा अपना सिर ऊँचा रखना चाहिये और अपने आत्मप्रतिष्ठा एवम् आत्म-विश्वास के भाव को जागृत रखना चाहिये, वस्तुतः अपने लड़के लड़कियों में ये भाव भर देना चाहिये । जो मनुष्य अपने विषय में तुच्छ विचार करने लगता है, वह सचमुच नीचे आनेवाले मार्ग पर चला जाता है । हमारे शुभचिन्तक साम्राज्य के पत्रों में इस प्रकार का खेल लगातार खेलते रहे हैं । इस सम्बन्ध में, मैं मिसेज़ बीसेंट के इस कथन का हृदय से अनुमोदन करता हूं, जिसमें वे कहती हैं कि भारतवर्ष के लिए, उसके धर्मों के लिए, उसके रीति रिवाज़ के लिए, उसकी संस्थाओं के लिए, क्षमा प्रार्थना करने और सफाई देने के भाव को बिलकुल दूर कर देना चाहिये । हमें किसी से क्षमाप्रार्थना करने और अपनी सफाई देने की आवश्यकता नहीं है । हम सच्चे मित्रों की समालोचना का स्वागत करते हैं, उससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाभ उठाने में प्रसन्न हैं । लेकिन अन्धाधुन्ध आक्षेप—जिसकी नींव जातीय अहम्मन्यता अथवा जातीय पक्षपात पर है—हमें बुरा मालूम पड़ता है और इससे चिढ़ना भी स्वाभाविक है ।

किन्तु जैसा मैं पहले कह चुका हूं, हमें इस बात से खूब सावधान रहना चाहिये कि हम सब कुछ जानते हैं, हमारे बराबर कोई नहीं है और हमारी संस्थाएं और विचार पूर्णता को प्राप्त कर चुके हैं । यदि हम अपनी कमजोरियों को नहीं जानते, अपने सामाजिक आदर्श की बुराइयों को नहीं पहचानते, अपनी धार्मिक बातों के मूल्य की गिरी हुई अवस्था पर ध्यान नहीं देते, और अपनी अनेक रीति रस्मों के जंगलीपन पर विचार नहीं करते, तो हम उन्नति भी कदापि नहीं कर सकते । हमें मूल कारणों का विचार करके उनका ठीक ठीक इलाज करना चाहिये, यदि हम आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमें बहुत कुछ संहार करना होगा । संसार की जातियों के कुटुम्ब में अपना योग्य स्थान प्राप्त करने के लिए और अपनी उन्नति के लिए आवश्यक ढांचा बनाने के पहले हमें बहुत कुछ काट-छांट करनी होगी । हम यह बात नहीं मान सकते कि प्राचीन काल से चली आनेवाली प्रत्येक बात पूर्ण और आदर्श रूप है । कुछ विचार ऐसे हैं जिन्हें हमारे पूर्वज मानते थे, परन्तु अब वे भ्रमपूर्ण सिद्ध हुए हैं । उन्हें हमको छोड़ देना पड़ेगा, उनके कुछ ढंग दूषित थे, हमको उन्हें ठीक करना पड़ेगा । उनकी कुछ संस्थाएं ऐसी हैं जो उस समय और अवस्था के अनुसार बहुत ठीक थीं, परन्तु जीवन की वर्तमान अवस्थाओं के अनुसार बिलकुल अयोग्य हैं, अतएव हमें उनकी जगह दूसरी संस्थाएं स्थापित करनी होंगी । हम अपने पूर्वजों की केवल नकल या तसवीर नहीं बनना चाहते । हम उनसे अच्छे होना चाहते हैं ।

इस उद्देश को सामने रख कर हमें अपने आदर्शों की जांच पड़ताल करनी होगी । इस काम में हमारे सारे साहस और मर्दानगी की आवश्यकता है । इसमें ऐक्यता, सहकारिता और उद्योगशीलता की आवश्यकता है । सर्वोपरि बात यह है कि इसमें व्यक्तिगत और जातीय आत्म विश्वास और आत्म-अनुभव की आवश्यकता है । हम सब प्रकार की सहायता का स्वागत करेंगे, परन्तु हम केवल अपना भरोसा ही करेंगे । इस भाव को लेकर हमें राष्ट्रीय शिक्षा के प्रश्न पर विचार करना चाहिए । किसी बात को चुपचाप मान लेना ठीक नहीं वरन, प्रत्येक विचार की छानबीन करना उचित है । दिन के प्रकाश में—वैज्ञानिक सत्यता के दीपक के प्रकाश में—प्रत्येक विधान या उद्योग की जांच पड़ताल करना चाहिए । हमारे सारे उद्योग समय की कड़ी कसौटी से परखे जावें, दूसरे देशों के लोग क्या सोच रहे हैं, क्या कह रहे हैं और क्या कर रहे हैं, इन से हमारे उद्योगों का मुकाबिला होना चाहिए । जब ये सब बातें हो जायँ, तब हमें आपस में एक दूसरे से सलाह करनी चाहिए और अपने भविष्य का मार्ग निश्चित करना चाहिए । यह बात सत्य है कि हम अंग्रेज़, या जर्मन या एमेरिकन या जापानी नहीं बनना चाहते, वरन हम हिन्दुस्तानी ही रहना चाहते हैं । परन्तु यह स्मरण रखने की बात है कि हम आधुनिक, समयानुकूल और उन्नतिशील हिन्दुस्तानी बनना चाहते हैं । हमें अपने पूर्वकाल का गौरव होना चाहिए, साथ ही हमें लोगों में अपने भविष्य को अधिक महान और उच्चतम बनाने की इच्छा होनी चाहिये ।

राष्ट्रीय शिक्षा से हमारा तात्पर्य क्या है ? क्या हम उसे स्थानीय और प्रान्तिक शिक्षा से पृथक करना चाहते हैं ? या हम उसे साम्प्रदायिक शिक्षा से अलग करना चाहते हैं ? शिक्षा किस प्रकार राष्ट्रीय होती है ? भाषा शिक्षा का माध्यम है, क्या भाषा ही से शिक्षा राष्ट्रीय हो जाती है ? या जिन लोगों द्वारा शिक्षा दी न है, उनसे वह राष्ट्रीय हो जाती है ? या जिन लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उस पर अधिकार है और जो उसका संगठन करते हैं, उनसे वह राष्ट्रीय हो जाती है। अथवा जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं उनसे शिक्षा राष्ट्रीय हो जाती है ? या उसमें उपस्थित रीति आदर्शों से शिक्षा राष्ट्रीय हो जाती है ?

वास्तव में 'सत्य' न तो स्थानीय है, न राष्ट्रीय और न अन्तरराष्ट्रीय है। वह केवल सत्य है।

विज्ञान और दर्शन शास्त्र ही सत्य का प्रसार करते हैं। क्या हम पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिकों और दार्शनिकों के विज्ञान और दर्शन शास्त्र को केवल इस कारण से छोड़ देंगे कि इन विज्ञानों के आविष्कारकर्त्ता और दर्शन शास्त्रों की पुस्तकें लिखनेवाले, हिन्दुस्तानी नहीं थे। क्या हम शेक्सपीयर, वेकन, गेटी, शिलर इमरसन और हिटमेन को इसी लिए छोड़ देंगे कि वे भारतीय नहीं थे ? यदि यूरोपियन लोग समस्त हिन्दुस्तानी चीजों को छोड़ दें तो हम लोगों में कैसे भाव उत्पन्न होंगे। क्या हम वर्तमान वैद्यक शास्त्र शल्य-चिकित्सा, निदान, आरोग्य शास्त्र यंत्र विद्या या इन्जीनीयरी (शिल्प सम्बन्धी, कल सम्बन्धी, विजली सम्बन्धी, खेती सम्बन्धी और खान सम्बन्धी विद्या) बनस्पति शास्त्र, भूगर्भ विद्या, और प्राणि विद्या आदि का पढ़ना केवल इसलिए छोड़ देंगे कि ये विद्यायें जो कुछ हमारे साहित्य में हैं, उससे बहुत कुछ बढ़ी चढ़ी हैं ? यदि यही बात हुई तो मांझीगिरी, समुद्र यात्रा की विद्या, व्यापार विद्या, वेंकिंग या कोठीवाली, बीमे की विद्या आदि आधुनिक विद्याओं के विषय में हम क्या करेंगे। क्या हम फिर से पुरानी परिपाटी को पकड़ेंगे ? क्या हम वर्तमान उन्नति को छोड़ देंगे ?

राजनीति, नागरिक-विद्या और समाज-शास्त्र आदि महत्वपूर्ण विषयों के बारे में हम क्या करेंगे ? हमारा राष्ट्रीय—राजनैतिक—विधान क्या है ? इस विषय में बारम्बार न कह कर मैं एक बार अस्तु से साफ साफ कहे देता हूं कि, केवल ऐतिहासिक बातों को छोड़ कर, उन सिद्धान्तों के प्रचार पर जोर देना व्यर्थ और अन्याययुक्त समय नष्ट करना है जिन को लोगों ने रद्दी समझ कर छोड़ दिया है, क्योंकि हमें पूर्वजों से अधिक अच्छे और सच्चे सिद्धान्त मालूम हो गये हैं। उदाहरणार्थः—गणित शास्त्र, रेखागणित, बीजगणित त्रिकोणमिति और इस से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर आधुनिक पुस्तकों को हटा कर उनके बदले में लीलावती और ऐसी ही अन्यान्य संस्कृत भाषा की पुस्तकों को रखना निरी मूर्खता है। सम्भवतः प्राचीन समय में हमारा अर्थ शास्त्र बहुत अच्छा रहा हो। और तुलनात्मक दृष्टि से उसे पढ़ने से हमें लाभ हो सके, इसलिए यदि उसमें कोई ऐसी बात है जो अब भी उपयोगी है तो हमें उसे मानना आवश्यकीय है, परन्तु यदि हम उस आधुनिक अर्थशास्त्र की शिक्षा देने पर जोर नहीं देते (जिसके वश में संसार का साम्पत्तिक जीवन है) तो हम अपने मुंह से बदला लेने में अपनी नाक भी काटे डालते हैं। हाल ही में हमने आयुर्वैदिक और यूनानी वैद्यविद्याओं की पुनर्जागृति के विषय में बहुत कुछ सुना है और इस आन्दोलन से मेरी कुछ थोड़ी बहुत सहानुभूति भी है। परन्तु यदि भारतवर्ष में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो वर्तमान-वैद्यक कालेजों और आधुनिक शल्यचिकित्सा को हटा कर वही पुरानी जर्राही प्रचलित करना चाहते हैं, तो मैं यही कह सकता हूं कि परमात्मा भारतवर्ष की रक्षा करते हुए उसकी सहायता करे। सन्तान-पालन और मातृत्व के आधुनिक तरीकों के भली भांति न जानने के कारण ही हमारे देश के लाखों बहु-मूल्य प्राणी मुख्य-तया स्त्रियां और बच्चे-नष्ट हो जाते हैं। सच तो यह है कि इस समय इन बातों के अधिक प्रचार की आवश्यकता है। अब हम अपने को अधिक सच्चे राष्ट्रवादी सिद्ध करने के लिए संसार में अगणित स्त्री पुरुषों के पैदा करने और उन्हें सैकड़ों की संख्या में मरने देनेवाले पुराने तरीकों को कदापि नहीं ग्रहण कर सकते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही धर्म शास्त्रों की बात, उसके विषय में मैं यह कह देना चाहता हूं कि अपने कानून और समाज विज्ञान को जानना हमारे लिए चाहे जितना आवश्यक हो, किन्तु वर्तमान पुस्तकों में ऐसे विचार और सिद्धान्त भरे हुए हैं जो भद्दे, अस्वाभाविक, असंगत और एक दूसरे के घोर विरोध रखनेवाले हैं। जब तक उनकी अच्छी तरह काट-छांट न हो जावे, तब तक मनु, नारद और आपस्तम्ब के वर्तमान संस्करणों को हम अपने बच्चों के हाथ में रख कर उनके दिमाग को सड़ाना नहीं चाहते। यह ठीक है कि उच्च शिक्षा के पाठ्य-विषय में इनको एक स्थान मिलना चाहिए। इनका सारांश निकाल लेना चाहिए और बड़ी होशियारी से इनका अध्ययन करना चाहिए। अन्यथा; नया समाज-दर्शन, जिसकी हमें बड़ी आवश्यकता है, हम बना नहीं सकेंगे। इस बात के कहने से हमारा यह मतलब नहीं है कि हम वर्तमान भारत के कानूनों और अन्य देशों के कानूनों को न पढ़ें और हमारा नुकसान हो। ठीक मार्ग पर भावी उन्नति के लिए हमें आधुनिक कानूनों, वर्तमान संसार का नागरिक शास्त्र और दूसरे देशों में प्रचलित शासनप्रणाली तथा उनकी राजनीति और अर्थशास्त्र के अध्ययन की परमावश्यकता है। प्रारम्भिक स्कूलों के भी प्रत्येक बालक और बालिका को ये बातें अवश्य पढ़ा देनी चाहिए। इन्हीं बातों का खूब प्रचार करने से हमारी राजनैतिक आत्मा जागृत हो सकेगी और वह हमें अच्छी तरह सतर्क कर देगी। इससे हमारी राजनैतिक आकांक्षाओं की पुष्टि होगी, हम भ्रम में पड़ने से बचेंगे, हमारी आर्थिक दशा सजीव होगी और हमारी सामरिक स्थिति के सुधार में हमको सहायता मिलेगी। अच्छा; अब बतलाइए, आधुनिक समर विज्ञान और विज्ञान शास्त्र के विषय में आपके क्या विचार हैं? क्या हम फिर धनुष बाण धारण करेंगे या तोड़ेदार बन्दूकें चलायेंगे, अथवा तलवार और भाला लेकर लड़ेंगे? अगर ऐसा ही हुआ तो हमारे लिए बड़े शोक की बात होगी।

ये सब बातें मैंने इसलिए नहीं कही हैं कि मिसेज बीसेन्ट ने कोई ऐसी बात कही है, किन्तु इसलिए कि हमारे देश में कुछ ऐसे सज्जन हैं, जो कभी कभी यह कहा करते हैं कि हमारे देश को संसार से अलग, विरक्त और आत्मप्रतिबंध जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता है। ये लोग प्राचीन काल के लिए चिन्तित होकर दुबले हुए जाते हैं और उसे लौटा लाना चाहते हैं। ये ऐसी पुस्तकें बेंचते हैं जिनमें इस प्रकार का खुराफात भरा होता है। ये इस प्रकार की कविता और गीत रचते हैं जिनमें केवल भावुकता भरी होती है। मैं नहीं जानता कि ये सिड़ी हैं या कपटी! मैं अपने देशवासियों को बड़ी गम्भीरता और सत्यनिष्ठा के साथ सावधान करता हूं कि वे ऐसे लोगों और इस प्रकार के साहित्य से बचे रहें। हमें यह बात अच्छी तरह से सदा के लिए अनुभव कर लेनी चाहिए कि वर्तमान अवस्था में संसार का कोई भी देश विरक्त और आत्मविस्मृत जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखते हुए भी ऐसा नहीं कर सकता। यदि हम अकेले रहना चाहें तो भी संसार हमें अकेले नहीं रहने देगा। जिस देश में बीस लाख वर्ग मील भूमि हो और जिसमें संसार के पंचमाँश मनुष्य रहते हों, वह न तो अकेला रह सकता है और न अकेला छोड़ा जायगा। यदि देश की सन्तान उसके साधनों की वृद्धि नहीं करती तो दूसरे लोग करेंगे। यदि हम अपने देश को विदेशी लुटेरों (exploiter) से बचाकर अपने लिए और अपनी सन्तान के लिए रखना चाहते हैं, तो हमें अपने देश को संसार के सब से आधुनिक देशों के बराबर न केवल राजनीति और सम्पत्ति शास्त्र में, किन्तु जीवन के व्यवहारों और विचारों तक में लाना होगा। यह बात सत्य है कि हम भारत को इंगलैंड या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्राँस या जापान या एमेरिका नहीं बनाना चाहते । हम चाहते हैं कि भारत, भारत ही बना रहे । अगर हम हिन्दुस्तानी बने रहना न चाहते तो हम हिन्दुस्तानी ही न रहते । किन्तु हमें यह बात सदा के लिए याद रखनी चाहिए कि जीवन की वर्तमान स्थिति में इस देश और अन्य देशों में जो भेद है, वह—उन दिनों की अपेक्षा जब कि संसार में भाफ और बिजली का आविर्भाव नहीं हुआ था—बहुत कम होता जायगा । जल-वायु सम्बन्धी, स्थिति सम्बन्धी, जाति सम्बन्धी, भाषा सम्बन्धी, समाज संबंधी, रिवाज सम्बन्धी और इतिहास सम्बन्धी भेद बिलकुल उड़ नहीं जायँगे । परन्तु, आकार और प्रकार में वे बहुत कुछ कम हो जायँगे । संसार धीरे धीरे एक कुटुम्ब बनता जाता है । जो मनुष्य इस उन्नति के क्रम में बाधा डालता है, वह अपने देश के प्रति और सारे संसार के प्रति विश्वासघात करता है । जो लोग बलवान, बुद्धिमान, शक्तिशाली और उद्योगी हैं, उन्हें इस क्रम से डरने का कोई कारण नहीं है । परन्तु दुर्बल, पिछड़े हुए, शक्तिहीन, सुकुमार और अवस्था के अनुकूल न बननेवाले लोग या तो अन्त में संसार से बिलकुल मिट ही जायँगे या दूसरों से लुटते रहेंगे ।

वास्तव में मानुषिक प्रकृति संसार भर में एक ही ढङ्ग की है । यदि कुछ भेद है तो वे अधिकतर सामाजिक, भाषा सम्बन्धी और जल वायु सम्बन्धी ही है । यह बात बहुत सन्देहजनक मालूम देती है कि जातीय भेद इतने अधिक और इतने प्रत्यक्ष हैं कि वे कभी कभी प्रयुक्त होते रहते हैं । भाषा और जल-वायु सम्बन्धी भेद बने रहेंगे । परन्तु सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक भेद या तो बिलकुल गायब ही हो जायँगे या कम से कम बहुत कुछ घट जायँगे । लोगों को एमेरिका के संयुक्त राज्यों में आना चाहिए और मनुष्य जाति के भेद-भावों को दूर करनेवाले इस महान् देश में आकर इस प्रश्न का अध्ययन करना चाहिये । इस विश्वव्यापी संग्राम ने वर्तमान जातीय भेदों की अधिकता को प्रमाणित कर दिया है । परन्तु मेरी समझ में इस युद्ध ने मनुष्य जाति की एकता को भी प्रमाणित कर दिया है और सम्भव है कि शीघ्र ही भविष्य में संसार एक हो जाय और सारे संसार की एक ही सभ्यता हो । मुझे मालूम पड़ता है कि सारा संसार एक ही भट्ठी में पिघल रहा है । जिन्हें इस बात में शक है, उन्हें चाहिए कि वे संसार की यात्रा करें और देखें कि न्यूयार्क, पेरिस, लंदन, बर्लिन और टोकियो की गलियों में एक जाति के मनुष्यों को दूसरी जाति के मनुष्यों से पृथक् करना कितना कठिन है । न्यूयार्क, चिकागो, वाशिङ्गटन और सेनफ्रेनसिस्को आदि स्वयम् छोटी छोटी दुनियां हैं । यहां सब प्रकार की जातियां, राष्ट्र भाषाएँ और सभ्यताएँ उपस्थित हैं । सब जातियों के साथ रंगवाले लोग एक ही तरह से रहते हैं, एक ही भाषा बोलते हैं और एकसा मालूम देते हैं ।

न्यूयार्क की गलियों में घूमने से कभी कभी ऐसा मालूम होता है कि प्रत्येक दूसरा आदमी अँगरेज़ी के सिवा कोई दूसरी भाषा बोलता है । परन्तु, चूंकि हम संसार की सारी भाषाएँ नहीं जानते, इसीसे हमें यह पता नहीं लगता कि बोलनेवाले किस जाति के हैं । लोग कहते हैं कि भिन्न भिन्न देश के लोगों की नाक, उनका सिर, उनका रंग और उनके बाल आदि जुदा जुदा होते हैं । परन्तु इन भेद-सूचक चिह्नों पर विश्वास करना बहुधा भ्रममूलक होता है । न्यूयार्क के पूर्वीय सिरे के कुओं में एक बार घुस जाइये, तो आप एक आरमीनियन, एक परशीयन, एक सीरीयन, एक साफ़ रङ्ग के अरेबियन, एक रूमी, एक तुर्क, एक रेड इन्डियन, एक श्वेतवर्ण हिन्दू, एक मिस्री, एक जर्मन, एक इटेलियन, एक पोल, एक स्वीड, एक स्वेड, एक नार्वेजियन, एक फिन, एक हंगेरियन, एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलगेरियन, एक डेन, एक स्पेनिश, एक पुर्त-गाली और एक हलके रंगवाले हब्शी में फर्क नहीं कर सकते। बहुत होगा तो आप एक चीनी या जापानी को बता सकते हैं, परन्तु कभी-कभी आप इस सम्बन्ध में भी भूल कर जायँगे। मैंने एमेरिका और जापान में बहुत से चीनियों और जापानियों को यूरोपियन पोशाक पहने हुए देखा है और इस तरह उनको यूरोपियनों से अलग पहचानना असम्भव सिद्ध हुआ। सच बात यह है कि आप सोच नहीं सकते कि जापान कितनी शीघ्रता से यूरोपियन ढंग अख़्तियार करता जाता है। चाहे आप इस बात पर दुःख प्रकट करें और जापानियों को यूरोपियन तरीके ग्रहण करने के लिए बुरा भला कहें। परन्तु तथ्य यह है कि जापानी न इसको रोक सके और न रोक सकते हैं। यह क्रम करीब करीब विश्वव्यापी और अटल है। भिन्न भिन्न जातियों और भिन्न भिन्न राष्ट्रों के लोग जो इस समय संयुक्त राज्य एमेरिका में रहते हैं, जिस प्रकार मिल कर सफलता के साथ जर्मनों से लड़े हैं, उससे उन पुराने सिद्धान्तों का सदा के लिए खण्डन हो गया है जो यह कहते थे कि मनुष्य का चरित्र उसकी सामाजिक और राष्ट्रीय नातेदारी पर अवलम्बित है। वे एमेरिकन जो जर्मनी में पैदा हुए हैं या जर्मनी लोगों से उत्पन्न एमेरिकन भी जर्मनी के विरुद्ध एमेरिका के राष्ट्रीय झंडे के नीचे लड़े हैं। उन्होंने नये सम्बन्ध के सामने अपने पुराने सम्बन्ध को भुला दिया।

यह बात सत्य है कि इकरंगी दुनियां बड़ी भयंकर हो जायगी। वह अपनी भिन्नता के कारण ही बड़ी सुन्दर और मनोहर है। परन्तु चाहे हमारी इच्छा हो और चाहे न हो, यह भिन्नता गायब हो जायगी—कम से कम ऊपरी बातों में तो अवश्य मिट जायगी। नहीं, शायद मेरा कहना ठीक नहीं है। वह बिलकुल गायब नहीं होगी, । किन्तु आनेवाली दो शताब्दियों में यह बहुत कुछ घट जायगी। विचार और जीवन व्यवहार के भेदभावों में भी वास्तविक हेरफेर होगा। मेरी समझ में मनुष्य जाति का कल्याण इसी में है कि हमारे भेदभाव दूर हों और जिन बातों में हम एक दूसरे से सहमत हों, उन पर अधिक ज़ोर दिया जाय। एँग्लो सेक्सन लोगों की सभ्यता, ट्युटन लोगों की सभ्यता और लेटिन लोगों की सभ्यता अब एक दूसरे से हाथ मिलावेगी। उनका सार एक ही होगा। चाहे इनके अध्यापकों, पंडितों और राजनीतिज्ञों की अभिलाषाएं एक दूसरे से टक्कर खाजायँ, परन्तु उनका साधारण जीवन एक ही सा होगा।

यही बात एशिया के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। वह समय समीप आरहा है जब कि अरब, फारसी, हिन्दू, चीनी और जापानी अधिकतर उन बातों का ज़िक्र करेंगे जो उन सब में मिलती हैं, न कि उन बातों का, जिनमें वे एक दूसरे से भिन्न हैं, । यह बात चाहे आश्चर्य जनक प्रतीत होती हो और चाहे क्षुद्र मालूम होती हो, परन्तु यूरोप और यूरोपियन विचारों के भय से एशिया की ऐक्यता अवश्य होगी। यूरोप के डर से एशियावाले मिल जायँगे और एशिया के डर के कारण यूरोप और एशिया का मेल हो जायगा। जब यूरोप और एशिया मिल गये तो संसार एक हो गया। एमेरिका यूरोप का बच्चा है और आदिम एफ्रिका किसी न किसी रूप में एशिया का बच्चा है, और ये दोनों इस मेल मिलाप और ऐक्यता के क्रम को अपने तरीकों पर सहायता करेंगे। इस विश्वव्यापी युद्ध से (या युद्धों से) संसार की ऐक्यता प्रकट होगी।

भारतवर्ष में यूरोपियन भाषाओं, यूरोपियन साहित्यों और यूरोपियन विज्ञानों का अध्ययन और प्रचार रोकने की कोशिश करना मेरी समझ में बड़ी मूर्खता और पागलपन है। असल बात यह है कि अभी उनका हमारे यहां काफी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचार हुआ ही नहीं है। अब तक हमारी अवस्था ऐसी रही है कि हम उनसे बहुत दूर रहे हैं। उनका प्रचार और प्रसार करने के लिए हमें अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिए, यहां तक कि प्रत्येक भारतवासी कम से कम एक यूरोपियन भाषा सीख जाय और उसके हाथ में यूरोप के औज़ार हों और वह यूरोपियन मशीनों को सुगमता के साथ हाथ में ले सके। यूरोप और संसार ने हम से बहुत कुछ सीखा है, इसलिए उनसे कोई बात सीखने में शर्म करने का हमें कोई कारण नहीं है। साथ ही साथ हमारी यह भी इच्छा होनी चाहिए कि हम उनका भी ज्ञान विस्तृत करें और अपनी ओर से उन्हें कुछ शिक्षा दें।*

सत्याग्रह।

[लेखक—श्रीयुत भगवन्नारायण भार्गव, बी० ए०, एल० एल० बी०।]

(१)

जो कुछ है सत्य उसको हम न त्यागेंगे न त्यागेंगे।
नहीं परवाह कष्टों की उसी पर हम तुले होंगे॥
चहे पृथ्वी भी फट जावे चाहे आकाश गिर जावे।
चहे नक्षत्र घबराकर मही पर क्यों न आजावें॥

(२)

सहेंगे पर न हम अन्याय नहिं हम सत्य छोड़ेंगे।
उचित समझेंगे जो मनमें करेंगे वह हठी बनकर॥
किसी का भय न जग में माननेवाले हैं हम क्षणभर।
हमारा आतमा जो कुछ कहेगा वह करेंगे हम॥

(३)

निछावर देह मन धन क्या न है परवाह प्राणों की।
ज़ँज़ीरें बेड़ियां मानों ज़रोबख़र हमारे हैं॥
दरोग़ा सन्तरी स्वातन्त्र्य प्रेमी सब बनेंगे अब।
सभी होमरूल पावेंगे सभी मिल सौख्य भोगेंगे॥

(४)

नियम अन्यायमय तोड़ो यही बस न्याय है सच्चा।
महात्मा गांधी का पीछा करो कटिबद्ध हो मित्रो!
ज़रा प्रह्लाद ध्रुव की जीवनी से भी तो लो शिक्षा।
करो सब प्राप्त स्वत्वों को पवित्रात्मा बनो सच्चे॥

(५)

पड़ेंगे मार्ग में कण्टक बड़े पत्थर नुकीले भी।
कभी तो खून भी निकलेगा पर हटना न तुम पीछे॥
महाऋषियों की हो संतान निज कर्तव्य मत तजना।
सुसाहसयुक्त रहना तुम सदा ईश्वर सहायक है॥

---

* माडर्न रिव्यू से अनुवादित—अनुवादक, बाबू नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी शिल्प-कला का ह्रास ।

[लेखक—पं० श्यामसुन्दर पाण्डेय ।]

जीवन निर्वाह करने के लिए संसार के सभी राष्ट्रों को सर्व प्रधान दो उपायों का अवलम्बन करना होता है । उन दोनों में से पहला उपाय कृषिकार्य और दूसरा शिल्पकला है। यदि किसी राष्ट्र के इन दो उपायों में से एक भी न हो, तो उस जाति का बड़ा दुर्भाग्य समझना चाहिये। जिस राष्ट्र में शिल्पकला नहीं है और जो जीविका उपार्जन करने के लिए केवल कृषिकार्य पर अवलम्बित रहता है, उसकी आमदनी का आधा भाग तो बंद है और यदि जीवन के लिए एकमात्र उपाय अनाज का पैदा होना ही हो, तो जिस साल अनाज की पैदावारी कम होगी उस साल अकाल अवश्यम्भावी है। भारतवर्ष की ठीक ऐसी ही अवस्था है। गत ५० वर्षों में यहां ग्यारह बार अकाल पड़ा है, और खाद्यपदार्थ न मिलने के कारण डेढ़ करोड़ से अधिक मनुष्यों ने प्राण त्याग किये हैं।

हमारी शिल्प-कला की अवनति का कारण क्या है? उत्तर में हमें दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इसका कारण विलायत की संकीर्ण शासन-नीति है। अंग्रेज़ जाति शिल्पकला पर अवलम्बन करती है, हमारे शिल्प-वाणिज्य की जितनी अवनति हो, उसके लिए उतनी ही सुविधा है और उसके माल की उतनी ही खपत भी है। कितनी ही शताब्दियों से भारतवर्ष अपने सूती और रेशमी कपड़ों के लिए संसार में प्रधान स्थान पाता रहा है। अठारहवीं सदी के अन्त तक भारत के न केवल सूती और रेशमी कपड़े ही, बल्कि जितनी शिल्पकला की वस्तुएँ हैं, सभी एशिया और यूरोप के प्रधान नगरों में बिकती थीं। किन्तु, भारत के शासन की बागडोर ज्योंही अंग्रेज़ों के हाथ में आई, त्योंही ये लोग भारतीय शिल्पकला की अवनति करने के लिए कमर कस कर खड़े हुए।

सन् १७६५ ई० में बंगाल का राजस्व विभाग अंग्रेज़ों के हाथ लगा और १७६९ ई० में ईस्ट इंडिया कम्पनी के डिरेक्टरों ने १७ मार्च की चिट्ठी में अपने कर्मचारियों को लिखाः—"बंगाल में रेशम पैदा करने के कार्य को प्रोत्साहन देना, किन्तु रेशमी वस्त्र बनाने के काम को निरुत्साहित करना......जो रेशम काटते हैं उन्हें कम्पनी के कारखानों में काम करने के लिए बाध्य किया जाय। यदि कोई आज्ञा न माने और दूसरी जगह काम करे तो उसे कड़ा दंड दिया जाय"।

कामन्स सभा के निर्वाचित सदस्यों के मत से इस आज्ञा के परिणाम स्वरूप शिल्पजीवी भारत की कायापलट हो गई। भारत ग्रेट बृटेन के कुल कारखानों के लिए कच्चा माल पैदा करने का क्षेत्र हो गया। (Ninth Report. P. 64)

सूती और रेशमी कपड़े बनाने की कला भारत से अन्तर्हित होगई। जो जाति पहले दूसरी जातियों को कपड़े पहनाती थी, आज वह अपनी लाज रखने के लिए विलायत का मुंह देखती है। सन् १७९४ ई० में विलायत से १५६०) का कपड़ा भारत आया था, पर बीस वर्ष बाद सन् १८१३ में बढ़ कर, १०८८२४०) का कपड़ा आया।

"इण्डियन ब्लू बुक" देखने से जाना जाता है कि १८१३ ई० में कामन्स सभा की विशेष बैठक हुई। सभा में वारेन हेस्टिंग्स, सर जान मेलकम, सर टामस मनरो आदि की गवाहियां हुईं।

Ninth Report of the select committee of House of commons, on the Administration of Justice in India 1783.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके ५० वर्ष पहले भारत में लगातार दुर्भिक्ष पड़ चुका था और इस साल भी बम्बई में अकाल था। सभा की जांच का विषय यह था कि "भारत की उन्नति कैसे होगी? भारत की शिल्प कलाएं कैसे हरी भरी हो सकेंगी? किस उपाय से अकाल रोका जा सकता है? प्रजा के प्राणों की रक्षा कैसे हो सकती है?" पर हुआ क्या? ठीक इसका उलटा। प्रत्येक साक्षी से पूछा गया कि किन उपायों का अवलम्बन करने से भारतवासी स्वदेशी वस्तुएं छोड़ विदेशी वस्तुएं ग्रहण करेंगे? वारेन हेस्टिंग्स से पूछा गया:—"आप तो भारतवासियों के चरित्र और अभ्यास को जानते हैं। क्या आप यह समझते हैं कि भारतवासी अपने व्यवहार के लिए विलायती वस्तुएं खरीदेंगे?

वारेन् हेस्टिंग्स ने उत्तर दिया:—"आवश्यकता होने पर और विलासिता के लिए मनुष्य व्यापारी वस्तुएं खरीदते हैं। भारतवासियों को घर, भोजन और थोड़े से कपड़ों की आवश्यकता हुआ करती है और यह सब वस्तुएं उनके पैरों के नीचे की मिट्टी भी दे सकती है। भला इन सब वस्तुओं के लिए भारतवासी विलायत का आश्रय क्यों लेंगे"।

सर जान भारत वासियों के विषय में बहुत कुछ जानते थे। भारतवासियों का जितना ज्ञान उन्हें था, उतना आज तक बहुत थोड़े अंग्रेज़ों को हो सका है। उन्होंने कहा:—"उत्तर भारतवासी यूरोपनिवासियों से कुछ ऊंचे हैं। वे शारीरिक गठन के लिए विख्यात हैं। केवल यही नहीं, उनके मानसिक गुण उच्च हैं। वे साहसी और उदार हैं। उनका साहस जितना समुन्नत है, उतनी ही उनकी सत्यनिष्ठा भी है"। भारतवासियों के विलायती वस्तुओं के व्यवहार करने के उत्तर में उन्होंने कहा:—"यह संभव नहीं कि वे विलायती वस्तुएं खरीदें। एक तो वे बहुत सीधी साधी चाल, ढाल के हैं, पर यदि उनको सब वस्तुओं की आवश्यकता होती, तो भी वे विलायती वस्तुएं मोल नहीं ले सकते, उनमें खरीदने की सामर्थ्य नहीं है।"

इन सब गवाहियों से कर्नल मनरो की गवाही बड़े मार्के की हुई। कुछ समय बाद ये कर्नल मनरो मद्रास के शासक बनाये जा कर 'सर' की उपाधि से विभूषित किये गये थे। इनकी भारतवासियों के प्रति जैसी सहानुभूति थी, वैसी और किसी अंग्रेज़ की नहीं थी। इस समय भारतवासियों के विषय में अंग्रेज़ों के मन में एक प्रकार का कुसंस्कार भरा हुआ था। कामन्स सभा के सदस्य भी इससे मुक्त नहीं थे। उन्होंने मनरो से पूछा:—"क्या भारत की स्त्रियां स्वामी की दासी के समान नहीं?" मनरो ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा:—नहीं; उनकी अवस्था स्वामी की दासी के समान नहीं है। कुटुम्ब में इस देश की स्त्रियों के जो कुछ अधिकार हैं, भारतीय रमणियों के उन से कम नहीं।" इसके बाद बड़ी बुद्धिमानी का प्रश्न पूछा गया। प्रश्न हुआ:—"क्या भारतवासियों का सभ्य बनाना सम्भव है?" मनरो ने कहा:—"यदि अच्छी कार्यपद्धति; शिल्पकार्य में निपुणता; सुख स्वच्छन्दता के उपाय ठीक करने की शक्ति; लिखने, पढ़ने और हिसाब सीखने के लिए गांव में स्कूल बनवाना; अतिथि सत्कार; दया, धर्म; स्त्रियों पर सब से अधिक विश्वास करना और उनसे सम्मान का बर्ताव करना—ये ही सभ्यता के चिन्ह हों, तो हिन्दू यूरोप निवासियों से कम सभ्य नहीं। यदि दोनों देशों में सभ्यता की आमदनी और रफ्तनी की आवश्यकता हो, तो मेरे मत से यह देश आमदनी से ही लाभ उठायेगा।

वाणिज्य-विस्तार के प्रश्न पर मनरो ने उत्तर दिया:—'मेरे विचार से भारत में विलायती वस्तुओं के बिकने में मूल्य की अधिकता के सिवा और भी विघ्न-बाधाएं हैं। इन कारणों में जल-वायु का प्रभाव, धार्मिक तथा जातीय अभ्यास में विभिन्नता और जो सबसे बड़ी अड़चन है, वह शिल्पकला के विषय में भारतवासियों की प्रधानता है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब बातों से अंगरेज़ हताश नहीं हुए। वे विलायती वस्तुओं को भारत में प्रचलित करने की यथासाध्य चेष्टा करने लगे। जो वस्तुएं विलायत से यहां आने लगीं, उन पर कम 'कर' लगाया जाने लगा। भारत से जिन वस्तुओं की रफ्तनी होने लगी, उन पर अधिक 'कर' लगाया गया। मिल के इतिहास को समाप्त करते समय अध्यापक, एच० एच० विलसन ने लिखा है:—"गवाही में कहा गया था कि सन १८१३ तक भारत के बने सूती और रेशमी कपड़े विलायती बाजारों में फायदे से बेचे जा सकते थे। भारत के बने कपड़े विलायती कपड़ों से ५०) से ६०) प्रति सैकड़ा कम दर पर बेचे जा सकते थे। इससे यह आवश्यकता हुई कि विलायती माल की रक्षा के लिए भारतीय माल के मूल्य पर ७०) से ८०) प्रति सैकड़ा 'कर' लगाया जाय। यदि ऐसा न किया गया होता तो पेंजल और मैन्चेस्टर की मिलें आरम्भ में ही बंद हो गई होतीं और भाप-शक्ति के द्वारा परिचालित होने पर भी न चलतीं। भारतीय उद्योग-धन्धों का गला घोंटकर ये स्थापित हुईं। यदि भारत स्वतंत्र रहा होता तो वह बदला लेता। उसे आत्मरक्षा का भार नहीं मिला, भारतीय बाजारों में बलपूर्वक विलायती माल का प्रसार किया गया और उसे 'कर' भी न दिया गया। जो विदेशी वाणिज्य इस देश के व्यवसाय से समान शर्तों पर प्रतिद्वन्दिता नहीं कर सकता था, उसने उसे शासनरूपी हथियार का अवलम्बन कर नीचा दिखाया और अन्त में उसका गला घोंट दिया।

सन १८२३ ई० में कम्पनी के डिरेक्टर हेनरी सर जार्ज टकर ने कहा था:—"बहुत दिनों तक भारत के सूती कपड़े प्रधान शिल्प समझे जाते थे। हमने उनपर ६७ प्रति सैकड़ा 'कर' लगा दिया और उनका इस देश में न केवल आना ही बंद कर दिया, बल्कि हम अच्छी कलों की सहायता से समस्त माल बनाकर भारत में भेजने लगे। इस भांति जो भारतवासी पहले शिल्पजीवी थे, वे कृषिजीवी हो गये। क्या हम इतने ही से सन्तुष्ट हुए? क्या अनाज के बदले उन्हें अपने देश का बना माल देकर ही शांत हुए? जो चीनी भारत में बनती थी, उसकी लागत पर हमने प्रति सैकड़ा २००) कर लगा दिया...... मानो हम स्पष्ट भाव से अपनी एशियावासी प्रजा को कहते हैं कि हम तुम्हें जो कुछ भेजें, उसे खरीदने और व्यवहार में लाने के लिए तुम बाध्य हो, पर हम तुम्हारी इनीगिनी वस्तुएं छोड़ और कुछ न खरीदेंगे। यदि हम भारत के राजा न होते, यदि हमारा केवल व्यवसाय का ही संबन्ध रहा होता तो भी यह व्यवहार अद्भुत समझा जाता, पर जब हम राजा हो कर ऐसा करते हैं तब आश्चर्य की सीमा ही कहां है?

प्राचीन भारतीय शिल्प की अधिकांश अवनति १८वीं शताब्दी के बीच में हुई। इसके बाद रेलें खुलीं। इनसे जिस प्रकार संसार के सभी अंशों में लाभ हुआ, वैसे ही भारत में भी बहुत उपकार हुए हैं। दूरी की झंझट मिटी और यात्रा सहज, सुलभ और शीघ्र हो गई। किन्तु यह सब होने पर भी इन रेलों से हमारा बड़ा अनिष्ट हुआ है। बहुधा रेल बनाने के लिए सरकारी खजाने से धन खर्च किया जाता है और संयुक्त कम्पनियों की रेलों में आय कम होने से उसकी पूर्ति सरकारी खज़ाने से होती है। इस कार्यपद्धति से जो आर्थिक हानि हुई है, उस पर बिना ध्यान दिये रहा नहीं जाता। पहले तो रेलों को सरकारी खज़ाने से ५० करोड़ हानि पूरी करने के लिए देने पड़े हैं और अब भी प्रति वर्ष हानि होती ही रहती है। दूसरे, जो पहिले लाखों बैल-गाड़ियां और नावें

*Selections of the papers from Henry St. George Tuckers London, 1853 P. 494.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माल ढोने के काम में लाई जाती थीं—जिससे लाखों मनुष्यों की जीविका चलती थी, उन बेचारों की रोटी मारी गई और रेलों से विलायत में रहनेवाले मालिकों की आमदनी बढ़ने लगी। तीसरे, इन रेलों की सहायता से एक नगर से दूसरे नगर तक, एक गांव से दूसरे गांव तक, जहां देखिये, विलायती माल दिखाई पड़ता है। बस कहना व्यर्थ है कि इस तरह देशी शिल्प की अवनति का मार्ग साफ होता जाता है।

सन १८६८ ई० में दुर्भिक्ष कमीशन की रिपोर्ट के ३३०वें पन्ने में लिखा है:—'दुर्भिक्ष मिटाने के लिए जितनी रेलों की आवश्यकता है, उतनी खोली जा चुकी हैं'। तो भी भारत सरकार शांत नहीं है। वह लाभ हानि पर बिना विचार किये ही नयी नयी रेलें खोलती चली जाती है। ऐसा क्यों? इसका कारण अनुसन्धान करने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं। विलायत के धनी और सौदागर पार्ला-मेंट में वोट देने के अधिकारी हैं। ब्रिटिश सर-कार के कर्मचारियों के बनाने बिगाड़नेवाले हैं और ब्रिटिश सरकार भारत सचिव के द्वारा भारत-सरकार पर दबाव डालती है। इससे यदि यह ऐसा करती है तो उसमें आश्चर्य ही क्या है!

उदाहरणार्थ पृथ्वी के चाहे जिस कोने को लीजिए, प्रत्येक जाति—जिस की औद्योगिक उन्नति नहीं हुई, वह—अपनी उन्नति के लिए जीतोड़ परिश्रम कर रही है। किन्तु यहां भारत के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना तो दूर रहा, उनकी रक्षा का उपाय भी नहीं किया गया। विलायती पूंजी के लाभ की ओर सर्वदा ध्यान दिया गया है। इस देश में असंख्य कमीशन बैठे; किन्तु उनमें से किसी से कुछ लाभ न हुआ। उन्होंने रुई, नील, काफी, चाय और चीनी आदि के विषय में जो रिपोर्टें प्रकाशित कीं, उनमें यही लिखा कि किस तरह से इनमें विलायती पूंजी लगायी जा सकती है। सच तो यह है कि भारत-वासी प्रतिकूल अवस्था के साथ युद्ध कर रहे हैं। गत ५० वर्षों से भाप की कलों की सहा-यता से अपने उद्योग-धन्धों की उन्नति के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। बम्बई, बंगाल तथा संयुक्त-प्रान्त के कानपुर में रुई के पुतली घर खुले हैं। इन कलों का बना हुआ माल भारत में तथा विदेशों में भी थोड़ा बहुत बिकता है। इस उद्योग की उन्नति पार्लमेंट के किसी कमीशन के द्वारा नहीं हुई; कमीशन बैठा भी नहीं। यदि किसी मंत्रिमंडल के समय कमीशन बैठाया गया होता तो वोट की सहायता से उसका पुनः संगठन होता। मंत्रियों को अपने पदों से हाथ धोने पड़ते। सारांश लङ्काशायर के वोट (Vote) देने वाले भारत सरकार को प्रत्येक रीति से अपने अनुकूल कार्य करने के लिए बाध्य करते हैं।

अस्तु, कहने का अभिप्राय यह है कि भार-तीय उद्योग-धन्धे विपन्न हैं। अधिक से अधिक संख्या में मनुष्य बाध्य होकर कृषिकार्य का अवलम्बन करते जाते हैं। लण्डनस्थित इण्डिया आफिस का खर्च चलाने के लिए, भारत से अवसरप्राप्त कर्मचारियों को पेंशन देने के लिए और विलायती महाजनों के मूल-धन का व्याज देने के लिए हमें बहुत सा कच्चामाल विलायत भेजना पड़ता है।

भारत से विलायत के लिए नगद और व्यापारिक वस्तुएं कितने मूल्य की भेजी जाती हैं तथा विलायत से कितने मूल्य की वस्तुएं यहां आती हैं, इसकी सूची नीचे लिखी जाती है:—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विलायत के साथ भारत की वार्षिक आमदनी और रफ़नी का औसत

भारत की वार्षिक औसत आमद—माल और सोना चांदी	भारत से रफ्तनी माल और सोना चांदी	भारत की वार्षिक हानि।
१८५९—१८६३......४१ करोड़ रु०	४३ करोड़ रु०	२ करोड़ रु०
१८६४—१८६८......४९ " "	५७ " "	८ " "
१८६९—१८७३......४१ " "	५७ " "	१६ " "
१८७४—१८७८......४८ " "	६३ " "	१५ " "
१८७९—१८८३......६१ " "	८० " "	१९ " "
१८८४—१८८८......७५ " "	९० " "	१५ " "
१८८९—१८९३......८८ " "	१०८ " "	२० " "
१८९४—१८९८......८८ " "	११३ " "	२५ " "

इससे जाना जाता है कि भारत की वार्षिक हानि (Drain) ४० वर्षों में २ करोड़ से बढ़कर २५ करोड़ होगयी। इस धन का अधिकांश कृषकों और मजूदूरों के कठिन परिश्रम से आता है पर यह किसी भी मार्ग से उनके व्यवसाय या वेतन के बढ़ाने के लिए नहीं लौटता, वरन प्रति वर्ष विलायत की आमदनी और पूंजी को बढ़ाता है।

इङ्गलैएड और भारतवर्ष दोनों देश एक ही राजा के शासनाधीन हैं, किन्तु पक्षपात पूर्ण शासन के कारणवश एक देश की प्रजा इस चिन्ता में व्यस्त है कि अपनी असंख्य पूंजी को पृथ्वी के किस कोने में लगावें और दूसरे देश की प्रजा दिन प्रति दिन दरिद्र और उपायहीन होती जाती हैं। और तो क्या, चार वर्षों में एक बार अकाल के प्रकोप से वह असमय ही मृत्यु-मुख में पतित होती है, इससे अधिक दुःख की ऊंची सीमा और क्या हो सकती है?

भारत के राजस्व का आधा हिस्सा हर साल चूस लिया जाता है, और उसे बदले में एक कौड़ी भी नहीं मिलती। इन रुपयों से हमारे देश के करोड़ों मनुष्य एक वर्ष तक सांसारिक खर्च चला सकते हैं। जिस देश से इतना अधिक रुपया चूसा जाता है, क्या वह ५० वर्षों में दरिद्र न होगा? क्या उसे दुर्भिक्ष का दुःख न सहना होगा? हृदयतंत्री उत्तर देती है:—"क्यों नहीं"

इङ्गलैएड के अधीन होने के कारण भारतवर्ष को २० करोड़ प्रति वर्ष दण्ड देना पड़ता है, और बाकी दस करोड़ की हानि विलायती उद्योग और शिल्प की श्रेष्ठता के कारण उठानी पड़ती है। इस तरह प्रतिवर्ष हमारा रक्त चूसा जाता है। आर्थिक दृष्टि से यह बड़ा एक संकट है और जब तक यह भली भांति दूर न किया जाय, तब तक सन्तोष-जनक स्थिति नहीं हो सकती।

—गोखले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महारानी लक्ष्मीबाई ।

[लेखक—श्रीयुत दीपचन्द गोयलीय ।]

अंग्रेज़ी इतिहासज्ञों का यह स्वभाव है कि वे जहां तक हो सकता है, हिन्दुस्तानी मनुष्यों के चरित्र का वर्णन बहुत बुरी रीति पर करते हैं। उनके इतिहासों में ऐसी बातें बहुत कम पाई जाती हैं, जिनके कहने में उन्होंने निष्पक्ष दृष्टि से विचार किया हो। जिन को हम लोग श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं, उनकी निन्दा करने में उन्होंने कोई कसर उठा नहीं रक्खी। महाराष्ट्र वीर शिवाजी को जिन्होंने अपने बुद्धि बल और प्रकाण्ड शौर्य से १६वीं शताब्दी में महाराष्ट्र राज्य की नींव डाली थी, 'पहाड़ी चूहा' तथा 'डाकू' के नाम से सम्बोधित किया है। पंजाब केसरी रणजीत सिंह को तथा महाराना प्रताप को सब से बड़ा द्रोही बतलाया है! इन बातों का कुछ इलाज नहीं है और न हम इनको तब तक रोक ही सकते हैं, जब तक हम अपना इतिहास आप तैयार नहीं करेंगे और उन मनुष्यों का सच्चा चित्र न खींचेंगे जिनके बारे में हमारे देशभाइयों के बीच भ्रम फैलाया गया है। प्रस्तुत लेख इसी दृष्टि को सामने रखकर लिखा जाता है कि इसमें महारानी लक्ष्मीबाई सदृश वीर महाराष्ट्र महिला की बुद्धि तथा गुणों पर प्रकाश डाला जावे। यद्यपि महारानी का चरित्र वर्णन करने के लिए हमारे पास बहुत ही कम सामग्री है, तथापि महाराष्ट्र में जो इतिहासज्ञों ने खोज की है, उससे हमको उसके चरित्र-चित्रण में बहुत कुछ सहायता मिलेगी।

१६ नवम्बर सन् १८३५ ई० को, काशी में, लक्ष्मीबाई का जन्म हुआ था। उसका पिता मोरोपन्त तम्ब (Moro Pant Tamb) एक महाराष्ट्र ब्राह्मण था, और द्वितीय बाजीराव का, जो कि अन्तिम पेशवा था, दीवान था। लक्ष्मीबाई अपने बाल्यकाल में बहुत सुन्दरी थी। इसके अतिरिक्त वह बहुत बुद्धिमती भी थी। उसने अपनी प्राथमिक शिक्षा पेशवा के लड़के नाना साहिब तथा राव साहिब की संगति में, बिठूर (कानपुर) में, पाई थी। थोड़े ही दिनों में उसने अपनी प्राथमिक शिक्षा समाप्त कर ली और वह अपना ध्यान घुड़सवारी तथा शिकार में और तलवार चलाने तथा अन्य पुरुषोचित कामों में लगाने लगी। सन् १८४२ ई० में उसका विवाह झांसी के राजा गंगाधर राव से हो गया।

सन् १८५१ में उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ, लेकिन दुर्भाग्य से वह दो महीने से अधिक न जीवित रह सका। तदनन्तर, सन् १८५३ में, गंगाधर राव की मृत्यु होने से तो मानो उसपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। इससे झांसी की प्रजा को अत्यन्त दुख हुआ और लक्ष्मीबाई को जो वैधव्य का कष्ट भोगना पड़ा, उसको हम क्या कहें? वह अकथनीय है।

महाराज गंगाधर राव के कोई पुत्र न था, इसलिए उन्होंने अपनी मृत्यु से दो दिन पहले कैप्टिन मारटिन, मेजर इलिस तथा अन्य सर्दारों की उपस्थिति में अपने एक सम्बन्धी के पुत्र को गोद लिया। और, लार्ड डेलहौज़ी की सेवा में एक मेमोरियल भेजा और प्रार्थना की कि आप मेरी मृत्यु के पश्चात् इसको राजा मानें। लेकिन लार्ड डेलहौज़ी की कूटनीति कभी महाराज की इच्छा को पूरी न कर सकती थी। इसलिए वह मेमोरियल नामंजूर हुआ और झांसी बृटिश राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

मृत्यु-क्रियाएं समाप्त होने के पश्चात् महा-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रानी लक्ष्मीबाई को आज्ञा दी गई कि दुर्ग ख़ाली कर दिया जावे और वे पास के महल में चली जावें। दुर्भाग्यपीड़ित महारानी ने लार्ड की आज्ञानुसार अश्रु-पूरित नेत्रों से देखते २ क़िले को ख़ाली कर दिया। उसके बहुत से नौकर हटा दिये गये और उसको बहुत थोड़ी पेन्शन देना स्वीकार की गई। उसकी आपत्ति इतने ही में समाप्त नहीं हुई, वरन् पोलिटिकल एजेन्ट ने उसे आज्ञा दी कि वह झाँसी छोड़ देवे। ऐसी आज्ञा से रानी को बहुत दुःख हुआ और उसने इन आज्ञाओं का विरोध किया और यही कहा:—"हम झांसी नहीं देंगी"। रानी ने अपनी प्रार्थना पर पुनः विचार करने के लिए गवर्नमेंट के पास एक मेमोरियल भेजा। इस मेमोरियल में उसने यह सिद्ध किया कि झांसी राज्य के लिए उसके पति का एक पुत्र गोद लेना ठीक है, क्योंकि सन १८१७ की संधि में जो "जांनशीन" शब्द इस्तेमाल किया गया है, वह "वारिसान" के बिल्कुल प्रतिकूल है। और यह भी कहा कि झांसी राज्य के भाग्य निर्णय से पहिले जो उस राज्य ने पूर्वसमय में अंग्रेज़ों को सहायता दी है, उसका भी ख़याल रखना चाहिये। इस मेमोरियल का परिणाम कुछ नहीं हुआ और गवर्नमेंट पहिले ही इरादे पर डटी रही। इसपर रानी को बहुत क्षोभ उत्पन्न हुआ। एक तत्कालीन लेखक लिखता है कि:—"बृटिश सरकार ने उसके दुःखों की कुछ भी परवा न की। उसने जो कुछ किया, वह अत्यन्त बुरा था। उसपर अधिकारियों ने अपनी ओर से और भी नीचता मिला दी। सरकार ने राज्य छीनने पर उसको ६०,०००) रुपया प्रति वर्ष की पेन्शन देना स्वीकार किया। पहिले तो उसने इतनी छोटी रक़म लेने से इनकार कर दिया, परन्तु जब इसे भी हाथ से जाता देखा तो अन्त में विवश होकर स्वीकार कर लिया। अब आप उसके अपार दुःख का अनुमान कर सकते हैं, जब कि इतने पर भी उससे यह कहा गया कि इसी पेन्शन में से उसे अपने पति का ऋण अदा करना होगा।" निःसन्देह, इस आज्ञा ने उसकी दुःखरूपी ज्वाला में घृताहुति सा काम किया।

इस आज्ञा के मिलने पर उसने दो पुरुषों को, जिनमें से एक बंगाली तथा दूसरा उत्तरी भारत का रहनेवाला था, ८००००) रु० देकर उन्हें सरकार की सेवा में अपने मामले की पैरवी करने के लिए भेजा। लेकिन वे दोनों विश्वासघातक निकले और फिर कभी लौट कर नहीं आये।

सन् १८५७ में दमदम में बलवा मच गया। एक ही महीने के भीतर इलाहाबाद और सतलज के बीच में हर एक रेजिमेंट बाग़ी हो गई। और संयुक्त प्रदेश के बहुत से ज़िलों में सिविल राज्य का अन्त हो गया। बाग़ी तमाम देश में फैल गये और झांसी भी पहुँचे। अंग्रेज़ी सेना हार कर क़िले से भाग गई। बलवाइयों ने अंग्रेज़ी सेना के बहुत से सिपाहियों को उनकी स्त्रियों तथा बच्चों सहित जान से मार डाला। अंग्रेज़ों ने रानी से सहायता मांगी। "दो दिन तक उसने उनको खाने की सामग्री दी। १०० बलिष्ठ मनुष्यों को करी से बुलाकर उनकी सहायता के लिए भेजा। उसने मेजर स्कीन तथा कैप्टिन गार्डन को सलाह दी कि वे दतिया भाग जावें और राजा की शरण लें। लेकिन वे इसे न कर सके और अन्त में लूट लिये गये"। * बलवाइयों ने क़िले को ले लिया और महल को घेर लिया। उन्होंने महारानी से तीन लाख रुपये मांगे। और यह धमकी दी कि यदि तू हमारी मांग पूरी न करेगी तो हम तुझे जान से मार डालेंगे, और महल में आग लगा देंगे। उत्तर में रानी ने यह कहा कि मैं निराश्रिता हूं और तुम्हारी मांग को पूरी करने में असमर्थ हूं। लेकिन

* (T. A. Martin)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलवाइयों ने उसके ऊपर विश्वास नहीं किया और बड़ी निर्दयता के साथ महल में आग लगाना शुरू कर दिया। आख़िरकार रानी ने अपने गहने, जिनकी क़ीमत एक लाख रुपये के लगभग थी, उन्हें देकर अपना पिंड छुड़ाया, तब कहीं जाकर बलवाइयों ने झांसी से प्रस्थान किया। इस तरह, उस समय तक जब तक अंग्रेज़ वहां नहीं आये उसने दुर्ग को अपने अधिकार में रक्खा, और अंग्रेज़ी झंडे Union Jack) की रक्षा की। सदाशिवराव तथा ओरछा के राजा ने इस मौक़े से लाभ उठाकर ६००० मनुष्यों सहित दुर्ग घेर लिया। रानी ने बड़ी बहादुरी के साथ उन दोनों का सामना किया और अन्त में उन दोनों को नीचा देखना पड़ा। हम समझते हैं, यहां पर यह कहना पुनरुक्ति न होगा कि इस ढङ्ग से उसने फिर एक बार क़िले को तथा अंग्रेज़ी झण्डे (Union Jack) को कठिन आपत्तियों से बचा लिया।

नानासाहिब तथा तांतियातोपी ये दोनों बलवाइयों के मुखिया थे। उन्होंने क्रमशः कालपी, चरखारी और कानपुर पर धावा किया और एक के बाद दूसरे को ले लिया। ओरछा के राजा तथा अन्य छोटे २ अधिकारियों ने सरकार के कानों में यह फूंक दिया था कि रानी ने कानपुर के बलवे में सहायता दी है। इससे सरकार का संदेह और भी बढ़ गया और उसको यह विश्वास हो गया कि कानपुर में अंग्रेज़ों के लूटने में इसने अवश्य सहायता दी होगी। इस भ्रम के निवारणार्थ रानी ने कोलेनल फ़ेसर (चीफ़ कमिश्नर आगरा) को एक प्रार्थनापत्र (ख़रीता) भेजा, जो कि स्वयं मिस्टर मार्टिन ने लाकर दिया था। लेकिन प्रार्थनापत्र में कही गई बातें एक कान से दूसरे कान में होकर निकल गईं और उसका कुछ असर नहीं हुआ। सर हफ़ रोज झांसी भेजे गये। उन्होंने पहुंचने पर रानी को यह हुक्म दिया कि जितने अस्त्र तथा गोले-बारूद की चीजें उसके पास हैं, वे सब तुरन्त ही जमा कर दी जावें और वह स्वयम् उनसे मिलने के लिए उनके सामने हाज़िर हो। रानी को इस बात पर बड़ा क्रोध आया। उस महाराष्ट्रवीर महिला के लिए इस अवज्ञा को सहन करना उसकी शक्ति से बाहर था। उसने आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया और स्वाभिमान-रक्षा के लिए हर तरह लड़ने को तैयार हो गई। उसको किसी समझौते की जरूरत न थी, क्योंकि वह भलीभांति जानती थी कि जिस तरह झांसी की राजभक्ति का अभी तक कुछ ख़याल नहीं किया गया, उसी तरह वह भविष्य में भी न किया जायगा। इसलिए उसने लड़ने के लिए अंग्रेज़ों को ललकारा। इस विषय में कोलोनल मैलिसन लिखते हैं—"चाहे अंग्रेज़ों की दृष्टि में उसका कुछ भी दोष सिद्ध हुआ हो, किन्तु उसके देशवासी सदा इस बात को मानेंगे कि उसके साथ दुर्व्यवहार के कारण ही उसे बलवा करना पड़ा और लार्ड डैलहौज़ी ने, जो उसके साथ में अन्याय किया था, वही इस लड़ाई का कारण हुआ।"

२३ मार्च सन् १८५८ ई० को उसने अंग्रेज़ों के विरुद्ध हथियार उठाया। १२ दिन तक लड़ाई जारी रही। सर हफ़ रोज़ लिखते हैं कि "लड़ाई के काम में स्त्रियां तक लगी हुई थीं और बारूद ले जाती हुई दिखाई देती थीं। प्रत्येक ढङ्ग से यह मालूम पड़ता था कि लोग युद्ध के लिए तन मन से लगे हुए हैं।" कहने की आवश्यकता नहीं कि बात की बात में झांसी एक भयानक स्थान हो गया। रानी ने १२ दिन तक बड़ी बहादुरी से युद्ध किया, किन्तु अबला का बल ही कितना? अन्तिम दिन अंग्रेज़ों ने क़िला जीत लिया। उसे मालूम हुआ कि अब मेरा यहां ठहरना ठीक नहीं है, इसलिए कुछ स्वामिभक्त नौकरों सहित वह क़िले से निकलकर चली गई। जाते समय उसने अपने पुत्र दामोदरदास को अपनी पीठ से बांध लिया और अपने साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी पीने के लिए एक चांदी का गिलास ले लिया, और घोड़े पर सवार होकर झांसी को सदा के लिए छोड़ कर चल दिया। अंग्रेज़ों ने उसका पीछा भी किया लेकिन वह उनके हाथ न आ सकी। "उसका पीछा किया गया और वह क़रीब २ पकड़ी ही जाने को थी। लेफ़्टिनेन्ट बोकर ने कुछ घुड़सवारों के साथ बुन्देर तक, जो कि झांसी से २१ मील की दूरी पर है, उसका पीछा किया और वहां पर उन्होंने एक डेरा देखा जहां पर कि अपूर्ण कलेऊ पड़ा था। आगे जाकर उसने रानी को देखा जो घोड़े पर चढ़ी हुई ४ सवारों को लिये जा रही थी। लेकिन इसी वक्त वह बहुत ज़ख़्मी हुआ और उसने पीछा करना छोड़ दिया।"

अंग्रेज़ों ने झांसी को फिर दुबारा ले लिया। और उसको बियाबान जंगल के सदृश कर दिया और लूट लिया।

लक्ष्मीबाई पेशवा से कालपी में मिलीं। अंग्रेज़ों ने उस पर चढ़ाई की, लेकिन रानी ने उन्हें परास्त कर दिया। सर हफ़ रोज़ ने फिर कालपी पर चढ़ाई की और इस बार उसको ले लिया। रानी फिर बच कर चली गई और कौंच पहुंची जहां वह नानासाहिब, रावसाहिब, तांतियातोपी, नवाब बांदा और बनारपुर के राजा से मिली। रानी की शक्ति अब और भी अधिक हो गई। सब ने मिल कर एक सभा की, जिसमें यह निश्चित किया गया कि राजा सेंधिया से प्रार्थना की जावे कि वे हमारे साथ लड़ाई में शामिल हों। लेकिन अंग्रेज़ों का भाग्य-नक्षत्र चमक रहा था। इसलिए सेंधिया ने शामिल होने से इन्कार कर दिया। उसने उसे युद्ध करने के लिए कह दिया। एक तत्कालीन अंग्रेज़ लिखता है कि:—"उस समय यदि सेंधिया हमारे प्रतिकूल खड़ा हो जाता, तो बलवे का रूप बिल्कुल उलटा हो गया होता।" रानी ने आख़िरकार क़िले को घेर लिया और सेंधिया को बिलकुल हरा दिया। अन्त में यह हुआ कि उसने आगरे में जाकर अंग्रेज़ों की शरण ली।

रानी ने ग्वालियर को ले लिया। नाना साहिब अपने को पेशवा कहने लगे। इस विजय पर बलवाइयों की खुशी का कुछ अन्त न रहा। इसलिए उन्होंने ब्राह्मण को भोज देने के लिए प्रस्ताव किया। रानी ने इस भोज के लिए मना भी किया, लेकिन किसी ने उसकी बात न सुनी। क़िले में भोज दिया गया और रानी के अतिरिक्त सब उसमें शामिल हुए। इकायक सर हफ़ रोज़, एक बम्बई रेजिमेंट के साथ, ग्वालियर आ पहुंचे और क़िले को घेर लिया। पांच दिन तक अंग्रेज़ों तथा रानी के मध्य में भयानक लड़ाई हुई। ५वें दिन वह वीर महाराष्ट्र स्त्री बड़ी बहादुरी के साथ लड़ी, और अंग्रेज़ों ने जीतने की आशा बिलकुल छोड़ दी, लेकिन अचानक ही रानी लड़ाई लड़ते २ गिर गई। रामचन्द्रराव देशमुख—जो उसका बहुत योग्य सहकारी था—तुरन्त ही उसको वहां से ले गया और उसकी अन्त्येष्टि क्रिया कर दी।

रानी की मृत्यु से पेशवा ने अपने एक वीर जनरल को खो दिया, और असहाय हो गया। तांतियातोपी और पेशवा साहिब धैर्य छोड़कर ग्वालियर से भाग गये, लेकिन तुरन्त ही अंग्रेज़ों ने उन्हें पकड़ लिया और मार डाला। इसलिए वह लड़ाई जो रानी ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध की थी, पेशवा के कुप्रबंध से असफल हुई। पेशवा की इस चाल ने उसके पक्ष को बहुत कमज़ोर कर दिया, इसलिए महारानी को युद्ध में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

ग़दर शांत हो गया, लेकिन विलायत में अंग्रेज़ों के हृदयों में यह विचार उत्पन्न हो गया कि भारतवर्ष में कम्पनी का राज्य बिलकुल ठीक नहीं है, इसलिए शीघ्र ही यह पार्लामेंट के हाथ में आना चाहिये। सन् १८५८ में इस एक्ट से, जो तत्कालीन स्थिति को देख कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास किया गया था, भारत की राज्य ईस्ट इंडिया कम्पनी से हट कर महारानी विक्टोरिया के हाथ में चला गया। महारानी ने १ली नवम्बर सन् १८५८ को भारतवर्ष में शान्ति और सुशासन के लिए अपनी स्मरणीय घोषणा निकाली और ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन को हटा दिया।

लक्ष्मीबाई का देहान्त १८ जून सन् १८५८ को हुआ था। वह उन योग्य स्त्रियों में से एक थी, जिनको संसार ने अभी तक जन्म दिया है। उसकी तुलना बोडिसा तथा जोन आफ़ आर्क से की जा सकती है, जिनकी प्रशंसा में युरुप वालों ने ढेर की ढेर पुस्तकें लिख डाली हैं। उसमें उच्च कोटि की बुद्धि चातुर्य, चरित्र शक्ति तथा वीरता थी। उसने अपने कृत्यों से अपना नाम सदा के लिए अमर कर दिया, जो चिरकाल तक श्रद्धा और प्रेम के साथ स्मरण किया जावेगा।

उद्गार।

खिन्न मूर्ति यह देख तुम्हारी, कर अवलोकन लोचन नीर।
'हाय! हन्त!' यह कह कर मां! मैं, हो जाता हूं अधिक अधीर॥

शय्या, भोजन, वस्त्र न भाते, भाता नहीं प्रिया-सहवास।
मां! अब मेरे मन मंदिर में, करती तू ही एक निवास॥

तेरी ही चिन्ता से होकर, चिन्तित मेरा चित्त त्रिकाल।
तेरे जीवन के पृष्ठों से † पर, फिरता मां! बन कर बेहाल॥

भव्य वेष वह स्वर्ण-काल * का, कहां गया मां! तेरा आज?
किन हाथों ने लूट लिया हा! पूर्व समय का अनुपम साज?

हाँ, जाना मां! कायर हूं मैं, इससे हैं तव नेत्र सनीर।
इससे ही यह नरक-यातना, भोग रहा हूं बन कर कीर॥

कायरते! हट दूर अलग हो, आया है नूतन उत्साह।
दुखिया मां! अब मलिन वेष तज सुन ली मैंने तेरी आह॥

—'देश व्रत'।

† इतिहास। * Golden age (सतयुग)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामायण-रहस्य ।

[लेखक—पं० मन्नन द्विवेदी, गजपुरी. बी० ए० ।]

एक ही विषय पर बारबार लिखने से नये भाव नहीं आते हैं; वह रुचिकर भी नहीं मालूम होता है। इसलिए कवि और लेखक को नये नये विषय चुनने के लिए हमेशा कोशिश करनी चाहिये। लेकिन हिन्दुस्तान में पुरानी बातों का बड़ा आदर है। साथ ही, हम लोगों का पुरातत्त्वप्रेम भी निराला ही है। जो काम एक आदमी करता है वही सबको सूझ पड़ता है। उदाहरण के लिए रामचरित्र को ले लीजिये।

बाल्मीकि ने रामायण लिखी, लेकिन वह काफी नहीं समझी गई। शायद बाल्मीकि की रामायण में कोई कसर रह गई हो, उसी को दूर करने के लिए संस्कृत की निम्नलिखित पुस्तकें बनीं:—

(१) कालिदास का रघुवंश,

(२) भवभूति के महावीर और उत्तरचरित्र,

(३) जयदेव का प्रसन्न राघव, इत्यादि।

हिन्दी में तो इस विषय पर सौ से कम पुस्तकें न होंगी। लेकिन संस्कृत और हिन्दी सब में वही एकही सुर अलापा गया है। कारण यह है कि करीब करीब सब कवियों ने कलम उठाने के पहिले अपनी स्वतंत्रता खो दी है। आरम्भ में ही उन्होंने अपने को दासानुदास और अपने चरित्र नायक को त्रैलोक्य में अद्वितीय समझ लिया। चरित्रनायक को नमस्कार करके जब लेख आरम्भ होता है, तब चरित्र की कमज़ोरियां कैसे दिखलाई जा सकती हैं।

यही कारण है कि रामायण-सम्बन्धी प्रायः सभी लेख धार्मिक लेख मालूम होते हैं, न कि साहित्य के।

इन्हीं बातों को देखकर आज राम की रामकहानी कहने का जी चाहता है।

अयोध्या का रघुवंशी राजघराना बड़ा मशहूर था। उस खान्दान में एक से एक बढ़कर राजा हुए। महाराज दशरथ की कीर्ति बहुतही बढ़ी चढ़ी थी। जिस अवध प्रान्त में अब इतने तालुकेदार हैं, वह अकेले महाराज दशरथ के अधिकार में था। कुछ लोगों का ख्याल है कि गोरखपुर की कमिश्नरी भी अयोध्या के अधिकार में थी, जिसमें से कुछ सरयूपारीण ब्राह्मणों को दान देदिया गया। लेकिन इस कथन का सबूत नहीं मिलता है। कुछ लोग कहते हैं कि दशरथ जी चक्रवर्ती थे, लेकिन यह बात बिलकुल ही बेबुनियाद है।

(१) रामायण या और किसी किताब में भी दुनियां के और देशों का नाम नहीं आता है। जेनरल और कमान्डरों का पता नहीं। बड़े लाट, छोटे लाट, हाईकोर्ट का कहीं वर्णन नहीं है। जो राजा समग्र एशिया, यूरोप, अफ्रिका, अमेरिका और आस्ट्रेलिया का राजराजेश्वर हो, उसके कार्मचारियों में सिर्फ मंत्र देनेवाले पुरोहित वशिष्ठ का और रथ हांकने वाले सुमंत्र का नाम मालूम हो। आश्चर्य!

(२) जब प्रिंस आफ़ वेल्स हिन्दुस्तान में आये थे, तब उनका कितना आदर हुआ था? हिमालय से कन्याकुमारी तक क्या धूम थी? दुनिया के छठवें हिस्से के राजकुमार का यह आदर और समस्त पृथ्वी के चक्रवर्ती महाराज दशरथ के युवराज का निम्नलिखित वाक्य से सत्कार किया जायः—"धरि बांधउ नृप बालक दोऊ"! साधु राजाओं ने दुष्ट राजाओं को समझायाः—"देखहु रामहि नयन भरि, तजि ईर्षा मद मोहु। लषण रोष पावक प्रबल, जानि शलभ जनिहोहु" आप देखते हैं कि राम के पक्ष में सिर्फ दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातें कही जाती हैं। एक तो राम की खूबसूरती और दूसरा लक्ष्मण का झगड़ालूपन या वीरता। दशरथ महाराज की स्थल-सेना और रिसालों का कहीं ज़िक्र नहीं है।

(३) अयोध्या की फ़ौज का ठीक पता इस बात से लगता है कि घटवार गुह भी अपने साथियों को लेकर उनका मुक़ाबिला करने को तैयार था। कहां महानन्द की सेना का हाल सुनकर सिकन्दर वापस गया और कहां इतनी मामूली फ़ौज, कि निषाद को भी लड़ने की हिम्मत हो जाय। खैर, रामचन्द्र को होनहार देखकर दशरथ जी ने उनको अपने जीते जी युवराज बनाना चाहा। लेकिन कैकेयी रानी से यह नहीं सहा गया। क्षत्री की लड़की यह कब सह सकती है कि उसके भरसक दूसरे को राज मिले और उसका लड़का इधर उधर की ठोकरें खाये।

राजा दशरथ कैकेयी को बहुत मानते थे। इसलिए उसने कोशिश करके अपने बेटे, भरत को राज और रामचन्द्र को बनवास दिलवाया।

रामचन्द्र को बड़ा रंज हुआ लेकिन करते क्या? वह सिर्फ़ पिता की आज्ञा नहीं थी, बल्कि राजाज्ञा थी। अगर सीधे नहीं जाते, तो डर था कि कहीं ज़बरदस्ती न भेजे जाते। लोग कहते हैं कि राम ने खुशी खुशी बाप का कहा माना लेकिन यह ठीक नहीं मालूम होता है:—

मिलने पर जब कौशिल्या ने कहा है।

"तात जाहु बलि बेगि अन्हाहू।
जो कुछ रुचे मधुर फल खाहू॥"
"पितु समीप तब जाएहु भैया।
भइ बड़ि बेरि जाय बलि मैया॥"

राम गुस्सा, अफसोस, रंज और डर से मिला हुआ जवाब देते हैं:—

"पिता दीन्ह मोहिं कानन राजू।
जहँ सब भांति मोर बड़ काजू॥"

राम बन को चले। कहीं भरत कुछ अनिष्ट न कर बैठें, शायद यही सोचकर लक्ष्मण और सीता भी साथ चले।

कहा जाता है कि राम के वियोग में दशरथ महाराज ने प्राणत्याग किया। सिर्फ़ वियोग ही वियोग था या और कुछ था, इसका पता लगाना मुशकिल है। दशरथ जी की मृत्यु बिलकुल अचानक हुई। राम के बन जाने के कई रोज़ बाद तक वे जीते रहे। सुमंत्र के लौटने पर भी वे होश में थे। अफ़सोस ज़रूर था, लेकिन सिर्फ़ अफ़सोस से इतने जल्दी होश-हवाश में इस तरह झट से प्राण पखेरू का निकल जाना आश्चर्य है। ऐसी मृत्यु सिर्फ़ उन लोगों की हो सकती है जिनका दिल कमज़ोर है, जिनको हृद रोग है।

लेकिन, क्या महाराज दशरथ में यह बीमारी थी? जिनको इसमें शक हो वह लोग रघुवंश का नवां सर्ग पढ़लें।

इसी से कुछ लोगों का ख्याल है कि कैकेयी ने शायद महाराज दशरथ को ज़हर दिलवाया हो। मुम्किन है कि कौशिल्या ने ही जलकर ऐसा किया हो। बहु-विवाह में अक्सर ऐसी बुराइयां होती हैं—ऐसे ऐसे फ़साद खड़े हो जाते हैं।

अब भरत ननिहाल से लौटे। साधु वैरागियों के साथ में रहनेवाले, ननिहाल में दिन काटने वाले, राज काज से अनभिज्ञ भरत ने अचानक अपने को एक रियासत का मालिक पाया। इन्तिज़ाम ठीक करने में अपने को अयोग्य पाकर घबड़ा गये।

इधर यह भी देखा कि लोग राम को बड़ा प्यार करते हैं, उनके वियोग में व्याकुल हैं। रास्ते ही में मालूम होने लगा:—

"नगर नारि नर निपट दुखारी।
मनहु सबनि सब संपति हारी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भरत ने सोचा कि पहले जन—सम्मति (public opinion) का पता लगाना चाहिये। अगर वे लोग राम के लौटाने के प्रस्ताव पर ध्यान न देंगे तो ठीक है, नहीं तो जनसम्मति के ख़िलाफ राज करने में षड़यंत्रों का और राजकुल विप्लव (Palace revolution) का भय है।

भरत का अनुमान ठीक निकला। जन सम्मति राम को चाहती थी, राम को वापस लाकर राज सिंहासन पर बैठाना चाहती थी। इसीसे भरत का प्रस्ताव सब ने पसंद किया। तुलसीदास कहते हैं:—"भरत वचन सब कहँ प्रिय लागे।" एक स्वर से सब ने कहा:—

"अवशि चलिय बन राम जहं, भरत मंत्र भलकीन्ह।
शोकसिन्धु बूड़त सबहिं, तुम अवलम्बन दीन्ह॥

प्रजा की यह राय, फिर भरत करते तो क्या करते?

पुरवासियों और सेना के साथ भरत रामचन्द्र को मनाने के लिए—उनको बन से लौटाने के लिए—गये। अगर राम और भरत के वे ही भाव थे जो भक्त कवियों ने लिखे हैं, तो राम को भरतागमन से प्रसन्न होना चाहिये था, लेकिन उलटा उनको अफ़सोस हुआ। राम को डर हुआ कि कहीं भरत उन लोगों को कैद करने तो नहीं आये हैं।

"बहुरि शोचवश भे सियरमनू।
कारण कवन भरत आगमनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी।
सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहिं भा अति शोचू।
इत पितु वच उत बंधु सकोचू॥"

लक्ष्मण ने कहा,

"कुटिल कुबंधु कुअवसर ताकी।
जानि राम बनवास एकाकी॥
करि कुमंत्र मन साजि समाजू।
आये करन अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई।
आये दल बटोरि दोउ भाई॥
जौ जिय होति न कपट कुचाली।
केहि सोहात रथ बाजि गजाली॥
कहं लगि सहिय रहिय मन मारे।
नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥
जिमि करि निकर दलै मृगराजू।
लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता।
सानुज निदरि निपातौं खेता॥

भरत आये, लेकिन वह बात नहीं थी जो लक्ष्मण ने समझी थी। भरत ने जनसम्मति को देख लिया था। इने गिने दो एक आदमियों को छोड़—छिपकर भी भरत का मतलब साधने वाला कोई नहीं था। ऐसी दशा में भरत को कुछ करने की हिम्मत नहीं थी। लेकिन राम को तो यह मालूम नहीं था। उनको मालूम था कि प्रजा उनके राय में थी, लेकिन फिर भी "आखों देखा चेतना, मुंह देखा व्यौहार"। फिर पल्टन तो राजा भरत के हाथ में थी। गुरू बशिष्ठ भरत के मतलब से ख़ाली न थे। उनकी बातें मसलहत से भरी होता थीं। कौन नहीं जानता है कि पुरोहितों और नौकरों चाकरों की भरत के राज में ज़्यादे चल सकती थी। इसी से शुरु ही से सुमंत्र और बशिष्ठ की नीयत ख़राब थी। पहले सुमंत्र ही को लीजिये। जब आप राम, लक्ष्मण, और सीता को बन में पहुंचाकर लौटने लगे, तो लक्ष्मण ने राजा दशरथ को कुछ कड़ी बात कही।

"पुनि कछु लखन कहेउ कटु बानी।
प्रभु बरजेउ बड़ अनुचित जानी॥
सकुचि राम निज शपथ दिवाई।
लखन संदेश कहब जनि जाई॥"

राम ने निवेदन किया। "हे सुमंत्र पिता जी से ये बातें मत कहना":—

लेकिन हुआ क्या? आख़िर में राजा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन खट्टा करने के लिए सुमंत्र ने लक्ष्मण की बात का इशारा करही दिया:—

"लखन कहे कछु वचन कठोरा।
बरजि राम पुनि मोहि निहोरा॥"

वशिष्ठ की भी सब बातें शुरू से आखिर तक भरत के मतलब की हुई हैं।

पहले तो आपका कर्तव्य था कि राजा दशरथ को राम बनबास की आज्ञा रद्द करने के लिए समझाते। यह नहीं हुआ।

चलते वक्त भी भगवान रामचन्द्रः—

"निकरि वशिष्ठ द्वार भये ठाढ़े।"

लेकिन वशिष्ठ जी ने चुप साध ली थी। जो वशिष्ठ यहां इतने चुप थे, वही एकान्त में भरत को पाकर बड़े वक्ता बन गये। कैकेयी की स्पीच से मिलती जुलती स्पीच है। थोड़ा सा नमूना लीजियेः—

"वेद विहित सम्मत सबही का।
जेहि पितु देइ सो पावे टीका॥"

भरत को इशारा दिया जा रहा है कि राज पर बड़े बेटे का हक़ नहीं है। बाप जिसको राज दे, वही राजा है।

राम-भरत सम्मेलन के वक्त तो वशिष्ठ महाराज का राजनैतिक छल Political hypo—cracy और भी साफ होगया। भरत राम से लौटने के लिए कहते हैं और राम भरत को राज करने के लिए कह रहे हैं। ऐसे समय में आप कहते हैं कि राम जो कुछ आज्ञा दें, वही सब को करना चाहिये। देखिये, कितनी चालाकी है, मुनि जी खुद राम ही से कहलाना चाहते हैं क्योंकि राम जब कहेंगे तो भरत के लिए कहेंगे। वशिष्ठ जी फ़रमाते हैं:—

"करि विचार जिय देखहु नीके।
राम रजाइ शीस सबही के॥"

कवि कहता हैः—

"सब सादर सुनि मुनिवर बानी।
नय परमारथ स्वारथ सानी।"

सचमुच ही इसमें 'स्वारथ' की गंध है। लेकिन आपकी चालाकी नहीं लगी। फिर जल भुन कर आप कहते हैं कि अगर भरत राज से ऐसा भाग रहे हैं तो राम लक्ष्मण की जगह खुद शत्रुहन को लेकर बनबास करें।

"तुम कानन गवनहु दोउ भाई।
फेरिय लखन सीय रघुराई॥"

रामचन्द्र सब ताड़ गये और बोलेः—

"राउर जापर अस अनुरागू।
को कहि सकै भरत कर भागू॥

इन्हीं बातों को सोचकर रामचन्द्र ने अयोध्या लौटने में ख़ैरियत न समझी।

भरत अयोध्या लौट आये और रामचन्द्र के चरण-पादुकाओं की मदद से राज करने लगे। उसके बाद राम पर जो जो तकलीफें पड़ीं, उनको दुनिया जानती है। सीताहरण हुआ, रावण ऐसे प्रतापी राजा से वैर हुआ। कहां दो कोमल लड़के और कहां कुम्भकर्ण, मेघनाद ऐसे लड़ाई मे मँजे हुए बीर! ऐसे वक्त में राम ने राजनीति से काम लिया। जिस तरह नेपोलियन बोनापार्ट ने एक दफ़े लड़कों की पल्टन से दुश्मन को हराया, वैसे ही राम ने भी अशिक्षित-बन्दर भालू नाम के—लोगों की पल्टन से देवताओं को हराने वाली लंका के पल्टन को शिकस्त दी। विभीषण को अपनी ओर कर लेने में राम ने बड़ी चालाकी की। मेरा दृढ़ विश्वास है कि अगर विभीषण न फूट आते तो लंका की हार न होती। नीच विभीषण की जितनी निन्दा की जाय, सब थोड़ी है। कुछ लोग कहते हैं कि रावण के बुरे कामों से चिढ़कर विभीषण ने उसको छोड़ दिया, लेकिन यह बात ठीक नहीं है। केशवदास ने लव के मुख से बहुत ठीक कहलाया हैः—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आव विभीषण तू रण दूषण ।
एक तुही कुलको कुल भूषण ॥
जूझि जुरे जे भले भय जीके ।
शत्रुहि आय मिले तुम नीके ॥
देव वधू जबही हरि ल्यायो ॥
क्यों तबही तजि ताहि न आयो ।
यों अपने जिय के उर आये ।
क्षुद्र सबै कुल छिद्र बताये ॥

लंका के लिए यह बड़े गर्व की बात है कि उसके निश्चरावर्त्त में सिर्फ एक विभीषण हुआ और हमारे आर्यावर्त्त में अगणित विभीषण हो गये।

लक्ष्मण को शक्ति लगी। वैद्य ने संजीवन-मूल लाने के लिए हनुमान को भेजा। जब हनुमान औषधि के साथ पहाड़ उठाये आ रहे थे, रास्ते में भरत के बाणाघात से वह गिर पड़े। नज़दीक जाने पर भरत को हनुमान से रामचन्द्र के दुःख का सब समाचार मालूम हुआ। भरत ने कहा भीः—

"अहह दैव मैं कत जग जायउं।
प्रभु के एकौ काज न आयउं ॥"

भरत ने बात तो ठीक कही लेकिन उनका हाथ किसने पकड़ा था, उनको राम की मदद करने से रोका किसने था? सीता हरगई, लक्ष्मण बेहोश हैं, राम विलाप कर रहे हैं। राम के लिए इससे बढ़कर बुरा वक्त नहीं आसकता था, फिर भी भरत ने वहां तक जाने की तकलीफ़ नहीं की। उनसे कहीं यह नहीं कहा गया था कि राम मर भी जायं, तब भी नन्दीग्राम से घंटे दो घंटे के लिए कहीं मत जाना। राम खुद अफसोस से मर रहे हैं और इधर भरत उनकी चरण-पादुका पर अक्षत जल चढ़ा रहे हैं। इसीको कहते हैं सर को काटना और बालों की रक्षा करनी। इसे भरत का पाखंड और चालाकी न कहें, तो क्या कहें? भरत ने सोचा कि राम ने अच्छे घर बायन दिया है। अगर रावण जीत गया तो इधर आप भी खड़ाऊं महाराज का अग्नि संस्कार कर निष्कंटक राज करेंगे, अन्यथा साधुओं का भेष तो बना-बनाया है। राम के लौटने पर दिखला देंगे किः—"राम बिरह सागर महँ भरत मगनमन होत"। होता वही है जो ईश्वर चाहता है। राम ने रावण को हराया और अपनी फ़ौज को साथ लेकर अयोध्या लौटे।

भरत से मिलने के पहिले रामचन्द्र ने उनका भेद लेना चाहा। इसलिए हनुमान ब्राह्मण के रूप में, भरत के पास भेजे गये। अगर दिल साफ होता, तो क्या १४ वर्ष के बिछुरे हुए भाई से मिलने का यही तरीक़ा है—यही ढंग है?

हनुमान भी दूत कार्य में सधे हुए थे। भरत को धमकाने के लिए, उनपर रामचन्द्र का रोब जमाने के लिए; हनुमान ने आते ही कहाः—

"रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता।
आये कुशल देव मुनि त्राता ॥
रिपु रण जीत सुयश सुर गावत।
सीता अनुज सहित प्रभु आवत।"

भरत की सब आशा पर पानी फिरगयाः— "नयन स्रवत जल पुलकित गाता।" परमात्माही जान सकता है कि भरत की आंखों से आनन्दाश्रु गिर रहा था, अथवा अफ़सोस की आहें भाफ़ से पानी बनकर ढरक रही थीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसान ।

(आख्यायिका)

पीतमसिंह एक साधारण किसान है। २०, २५ बीघे की खेती करता है । ३ बैल और एक भैंसे से खेती का काम चलाता है। उसके घर में छः आदमी हैं। एक वह स्वयं, दूसरा उसका छोटा भाई जिसकी अवस्था २०-२२ वर्ष की है, तीसरी उसकी स्त्री, चौथी वृद्धा माता, पांचवीं एक आठ वर्ष की कन्या और छठा एक पुत्र जिसकी उम्र चार वर्ष के लगभग है। खानेवाले चार मनुष्य हैं और काम करने वाले केवल दो; परन्तु फिर भी इन दोनों के कठिन परिश्रम से किसी न किसी प्रकार सुबह से शाम तक रोटियां मिल जाती हैं । साल में १००) रुपये के लगभग ज़मीन का लगान देना पड़ता है और ३० रुपये के लगभग आबपाशी। ३० रुपये आबपाशी देने पर भी कभी उसे यथेष्ट पानी नहीं मिलता। देहातों में "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात प्रचलित है। शहरवाले इस कहावत की हँसी उड़ा सकते हैं, किन्तु देहातवालों से कोई इसका तत्त्व पूछे। वहां तो जिसकी लाठी में बल है उसके सब काम सरलतापूर्वक हो जाते हैं । खेत सींचने के लिए जब पीतमसिंह की बारी आती है और यदि कोई लट्ठबाज़ जा खड़ा हुआ और उसने अपने खेत में पानी काट लिया, तब बेचारा मुंह ताक कर रह जाता है। न तो घर में इतने आदमी कि उनकी लाठी का उत्तर लाठी से दें और न इतना रुपया कि अदालती कार्रवाई करें। परिणाम यह होता है कि जब लट्ठबाज़ों का काम चल जाता है, तब उनका बचा खुचा पानी उसे नसीब होता है । किन्तु इस पानी से उसकी प्यास कभी नहीं बुझती।

उसकी आमदनी का कुछ भाग सूदखोरों की नज़र में, कुछ बीज डालने में, कुछ लगान में, कुछ आबपाशी में, कुछ जानवरों के चारे में और कुछ ज़मीदारों के कारिन्दों की भेंट हो जाता है । इस प्रकार दे दिलाकर उसके पास केवल इतना बचता है कि साल भर मोटा महीन अनाज खाकर अपना पेट भर सके । इसके प्रतिकूल परिश्रम इतना करना पड़ता है कि रात को रात नहीं समझता और न दिन को दिन। जाड़ा हो चाहे गर्मी, उसे सदा काम में लगा रहना पड़ता है। इतना परिश्रम करने पर फिर भी मानसिक शांति नहीं। वर्षा में दो दिन पानी न बरसा, प्राण सूख गये। असमय बादल आया, जान निकल गई। हवा तेज़ चली, कलेजा हिलने लगा। सर्दी अधिक पड़ी, पाले के भय ने शरीर ठंढा कर दिया। जिस समय से खेत बोया जाता है, उस समय से लेकर, जब तक अनाज कट मड़ कर घर में न आजाय, तब तक बेचारे के प्राण कच्चे धागे में झूला करते हैं। इतना कड़ा परिश्रम, इतना विकट मानसिक कष्ट उसे क्या देता है? केवल सुबह शाम चार-छः रोटियां और फटा पुराना कपड़ा । किन्तु इस अवस्था में भी वह कभी कभी बड़ा मग्न हो जाता है। यदि उसकी आवश्यकता पर पानी का एक आध छींटा पड़ गया —फिर क्या है— राग मलार अलापने लगा । उस समय उसे यह ध्यान नहीं रहता कि यदि यह पानी चार छः दिन इसी प्रकार बरस गया, तो क्या होगा। वह केवल अपनी उस समय की आवश्यकता को देखता है, आगे आनेवाली कठिनाइयों का उसे ध्यान नहीं रहता। सच तो यह है कि इन्हीं आशाओं की झलक देख देख कर उसका जीवन चल रहा है। उसकी दशा उस नाविक कीसी है जिसकी नौका मझधार में पड़ कर बह रहा हो और किनारे का कहीं पता न हो। यदि नौका किसी भँवर में पड़कर चक्कर खाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी—नाविक अपने जीवन से निराश हो गया, किन्तु नाव को बचाने की चेष्टा नहीं छोड़ता। उस चेष्टा में यदि नाव भँवर से निकल गई तो उसे उतनी ही प्रसन्नता होती जितनी कि कदाचित किनारा मिलने पर ही हो सकती है, उससे कम न अधिक। उस समय उसे यह ध्यान नहीं रहता कि इस भँवर से निकल गये तो क्या हुआ, अभी किनारे का तो पता नहीं और आगे न जाने कितने भँवर होंगे। बेचारे पीतम की भी प्रसन्नता ठीक ऐसी ही ढंग की होती है। ज्येष्ठ मास बीत गया। आषाढ़ लगते ही किसानों ने प्यासे चातक की तरह आकाश ताकना आरम्भ किया। वृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं; ऊपर से किसी पक्षी ने पेशाब किया, किसान ने चौंक कर ऊपर देखा कि कहीं बूंदें तो नहीं पड़तीं। पड़ोस में चक्की चली—किसान के कान खड़े हुए—पास बैठे हुए आदमी से पूछा—"क्यों जी, क्या बादल गरज रहा है"? बेचारे पीतम की भी यही दशा है। दिन भर में छः दफे घर से निकल कर आकाश देखता है। रात को सोते सोते चौंक कर अपने भाई से पूछता है—"चंदन पानी बरसता है क्या"? ज्येष्ठ समाप्त होते ही उसने अपने हल-बक्खर ठीक ठाक कर लिए हैं। बैलों का दाना भी बढ़ा दिया है; केवल पानी बरसने की कसर है। परंतु इन बेचारों की दशा देखकर इन्द्रदेव का हृदय ही नहीं पसीजता। किसानों की अधीरता बढ़ती जाती है।

अंत को क्षितिज पर कुछ धुंआ सा दिखाई पड़ा, उस धुंए में कभी कभी चमक भी होती थी। कभी कभी वायु का एक आध टेढ़ा झोंका भी आने लगा। किसानों का हृदय कमल खिल गया। चारो ओर यही शब्द सुनाई पड़ने लगे:—"बरसो दई राजा बरसो", "बरसो भगवान बरसो"। देखते ही देखते आकाश मेघाच्छन्न हो गया। किसानों को एक बोतल का नशा चढ़ आया। पीतमसिंह के मुख पर हंसी आई, पड़ोस वालों से मुसकरा मुसकरा कर कहने लगा—"भाई घटा तो बड़ी काली आई है, अब पानी गिरना ही चाहता है—हल बक्खर निकालो"। सब लोग एक एक क्षण पर बूंदें गिरने की आशा करने लगे। परन्तु यह क्या! लीजिए, सब गुड़ गोबर हुआ जाता है। वायु को किसानों की प्रसन्नता अच्छी न लगी; उन्हें प्रसन्न देख कर जल ही तो मरी। फिर क्या था, उसने बादलों में न जाने कितनी स्टीम भर दी कि उनकी चाल जो अभी मालगाड़ी से भी कम थी, अब डाकगाड़ी से भी अधिक हो गई। हवा तेज़ होते देख पीतम की जान जैसे सन से निकल गई। बादलों की चाल बढ़ते देख, कलेजे की धड़कन बढ़ी। बोतल भर का नशा एक क्षण में उतर गया, हृदय कमल छुई मुई की भांति कुम्हला गया। भागते हुए बादलों को सतृष्ण नेत्रों से देख कर ठंडी सांसें भरने लगा। पानी के लिए पीतम को इतना लालायित देख कर उसके नेत्रों को उस पर दया आई, दो चार बूंदों की भेंट देने के लिए तैयार हो गए, पर पीतम ने धन्यवाद सहित उन्हें लौटा दिया। जहां घड़ों की आवश्यकता है, वहां बूंदों से क्या होगा?

दो घंटे तक वायु तथा बादलों में द्वंद युद्ध होता रहा। अंत को जब बादलों का तांता न टूटा—एक पर एक आते ही रहे, तब तो हवा सन्नाटे में आई। उसने चुप होकर बैठने में ही कुशल देखी। हवा का शांत होना था कि बादलों ने, जो भरे बैठे थे, अपने दिल के फफोले फोड़ना आरम्भ किये। पानी बरसना आरम्भ होते ही पीतम का कलेजा हाथ भर का हो गया। खुशी के मारे आंखों में सरसों फूलने लगी। तीन चार घंटे तक लगातार पानी बरसा।

पानी बरस गया। किसानों ने अपने हल बैल निकाल कर खेत जोतना आरम्भ किये। पीतम ने भी ख़रीफ़ के खेत सब जोत डाले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्द्रह दिन के भीतर ही भीतर जोतने बोने का काम समाप्त होगया। खेत जोतने के दस पन्द्रह दिन पश्चात् तक तो पीतम निश्चिन्त रहा, किन्तु इसके बाद उसे फिर पानी का भूत सवार हुआ। खेतों को पानी न मिला तो सारा बीज जलभुन कर राख हो जायगा। आकाश में बादलों का नाम नहीं। धूप वह कड़ाके की–कि चील अंडा छोड़ती थी। अब फिर खलबली पड़ी। पानी के लिए देवी देवता मनाये जाने लगे, टोने टोटके होने लगे। कोई कहता था:—पानी गाड़ दिया गया है, यह जब तक खोला न जायगा—पानी कभी न बरसेगा। पानी खोलने के लिए अनेक प्रकार के यत्न होने लगे परन्तु पानी ने वह सून घसीटी कि सब के छक्के छुड़ा दिये, छू छुक्कों से कुछ काम न चला। अब लोगों ने बम्बे की ख़ाक छानना आरम्भ की, किन्तु बरसात में बम्बा कहां? जब से गांव मे बम्बा आया, तब से लोगों ने कुंओं पर ख़ाक डाली। परिश्रम से बचने के लिए प्रायः लोगों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यदि आज गाँव में कुंए होते तो बहार थी। पानी की राह देखते देखते लोगों की आंखें पथरा गईं, पर पानी आज बरसता है न कल। बेचारे किसानों को एक क्षण के लिए भी कल नहीं पड़ती, चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। सब को विश्वास हो गया कि अब अकाल पड़ा। पीतम की अधीरता का अंत नहीं। पेट काट काट कर बीज के लिए अन्न बचाया था, वह सब मिट्टी में मिल गया। रबी में जो भूसा हुआ था, वह सब इस भरोसे पर बेंच डाला कि वर्षा में घास होगी, किन्तु अब घास के नाम एक तिनका नहीं। सब से अधिक चिंता जानवरों की है। यह बेचारे क्या खाकर जियेंगे? जानवर मरे तो किसान पहले मरा। घर में केवल छः सात महीने के खाने भर को अनाज बचा है। वह बैल डालें, तो आप रक्खें क्या मिट्टी फांकें? इन्हीं चिंताओं ने बेचारे पीतम का शरीर घुलाना आरम्भ किया।

वर्षा ऋतु बीत गई। खरीफ़ की फ़सल नहीं हुई। खेतों में भैरव नाच रहे हैं। गतवर्ष का लगान्-बगान् देकर जो कुछ रुपया बचा था, वह जानवरों को खिला दिया। अब अगली फ़सल बोने के लिए बीज का नाम नहीं। अंग्रेज़ी में एक कहावत है:—"मुसीबत कभी अकेली नहीं आती"। इस अवसर पर यह कहावत अक्षरशः घट गई। अकाल की मार ही क्या कम थी, उस पर युद्धज्वर ने अपना आक्रमण किया। इसकी विकराल मूर्ति देखकर लोग अकाल का दुख भूल गये। कोई घर इसके पंजे से न बचा। बहुत से घरों में तो कोई चिराग़ जलाने वाला तक न बचा। पीतम का समस्त घर भी एक महीने के लगभग इस राक्षस के चंगुल में रहा। तीन चार दिन तो यह दशा रही कि एक को दूसरे को तनिक सुधि न थी, कोई पानी देनेवाला तक न था। अंत को पीतम की माता तथा स्त्री की भेंट लेकर ज्वर ने इनके घर का पिंड छोड़ा। गांव वालों का ईश्वर भला करे कि उन्होंने किसी न किसी प्रकार इन दो मृत शरीरों की अंत्येष्टि क्रिया का प्रबंध कर दिया, नहीं तो पीतम के घरवालों में तो हिलने की शक्ति न थी। जिस समय पीतम पूर्णतः स्वस्थ हुआ, उस समय कार्तिक मास का अन्त हो रहा था। पीतम को माता तथा स्त्री के मरने का जो दुख हुआ वह किस प्रकार लिखा जावे, किन्तु अन्त को मनुष्य किसी न किसी प्रकार मन को समझा ही लेता है। पीतम ने बहुत से घरों से अपनी दशा अच्छी पाई, इसलिए मन को सतोष दिया और साथ ही यह भी सोचा:—"चलो इस अकाल में कम से कम दो खानेवाले तो कम हुए"।

अगहन लगते ही रबी की चिंता हुई। किन्तु केवल चिंता करने से कहीं काम चला है? घर में बीज नहीं, खेत सूख कर खंखड़ हो गये। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक तीन चार पानी न पायंगे तब तक जोतने योग्य हो ही नहीं सकते, और पीतम के पास पानी के नाम आंखों में आँसू भी नहीं। इसके लिए गाँव भर चिल्ला रहा है, किन्तु उसके शब्द—केवल पतरौल से टकरा कर लौट आते हैं—आगे बढ़ते ही नहीं। बम्बा आज आता है न कल। किसानों के कष्ट का अंत नहीं। ख़रीफ़ तो चौपट ही हो गई, रबी भी हाथ से जाती है। जानवर अलग आधे रह गये, हड्डियां निकल आईं। भूख भी कैसी बुरी होती है ? जो बासी भूसा न खाते थे, वे नीम की पत्तियां तथा ढाक के पत्ते तक चबा जाते हैं। वृक्षों में असमय ही पतझाड़ हो गया। ठूंठ खड़े हैं, पत्तियों का नाम नहीं, सब जानवरों के पेट में चली गईं। कुछ किसानों ने, जिनकी अवस्था अच्छी थी, कच्चे कुंए खोदे हैं। पीतम भी हाथ पैर जोड़ कर एक किसान के कुंएँ में साझी हो गया है। स्वतंत्र कुंआं खोदने की सामर्थ्य कहां थी। इधर सरकार ने तक़ावी बांटना आरम्भ किया। बहुत लोग तो तक़ावी पर ऐसे गिरे, मानों भूर बंट रही है। यह ध्यान ही नहीं रहा कि दूसरी फ़सल में ब्याज समेत पूजने पड़ेंगे। किन्तु पीतम समझदार आदमी था, उसने हाथ पैर बचा कर काम किया। केवल दस रुपये लाया। तक़ावी में एक एक रुपये के नोट मिले। बेचारे ने, चद्दर के एक एक कोने में बांध लिये। गांव में आया। एक साहब अपने द्वार पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे, पास ही गाय बंधी थी। पीतम को देख कर बोले—क्यों भाई, कहां से आते हो ?

पीतम—तक़ावी लेने गया था।

प्रश्न—ले आये—अच्छी बात है। अच्छा ज़रा हाल तो बताओ, कितने रुपये तक मिल सकते हैं ? हमारी भी इच्छा लाने की है, पर भाई दस बारह में तो हमारा काम न चलेगा।

पीतम गाय के पास खड़ा हो गया। चद्दर का कोना, जिसमें नोट बंधे हुए थे, लटक रहा था। गांठ देखकर गाय ने समझा, कोई खाने की चीज़ बंधी है। इसके अतिरिक्त प्रायः जानवरों को कपड़ा चबाने की आदत भी होती है। गाय ने चुपके से गांठ मुंह में रख ली और लगी चबाने। पीतमसिंह बात करके चलने लगा तो उसे पता लगा कि चद्दर का कोना गौ के मुंह में है। बेचारे का कलेजा धड़क गया। झटपट गांठ गऊ के मुंह से छुड़ाई—खोल कर देखा, नोट चिथड़ा हो गये थे। बेचारा हृदय पकड़ कर बैठ गया। आँखों से आंसू निकल पड़े। ग़रीबी में आटा गीला—यह दस मूल के लेन और ब्याज घाते में। उसे गाय के स्वामी पर बड़ा क्रोध आया कि यदि यह मुझे रोकता नहीं, तो यह दशा न होती। उन महाशय ने भी बड़ा खेद प्रकट किया, पर अब क्या होना है। इसी प्रकार की घटनाएं और भी हुईं। एक व्यक्ति ने नोटों को टेंट में लगा लिया। घर आते २ देर हो गई, भूख के मारे आंतें कुलबुलाने लगीं। झटपट कुएं पर पहुंच कर स्नान किया। किन्तु स्नान करते समय नोट निकाल कर रख देना भूल गये। नोटों पर पानी जो पड़ा, काग़ज़ तो थे ही—गल कर फट गये। यद्यपि करंसी में ले जाने पर इनके रुपये मिल सकते थे, पर मूर्ख किसान यह क़ायदा क़ानून क्या जाने—उसने रद्दी समझ कर फेंक दिये। यह देख कर बहुतों ने तक़ावी ली ही नहीं। पीतम ने खेतों को सींचने का प्रबंध तो कर लिया, पर बीज के लिए अनाज कहां से आवे ? अब उसने सूदखोरों तथा डेवढ़े-सवाई पर अनाज देने वालों की शरण पकड़ी। बेचारा तीन चार दिन तक दौड़ा धूपा-हाथ पैर जोड़े—तब जा कर कहीं बीज के लिए अनाज मिला और वह भी इस शर्त पर कि फ़सल होने पर डेवढ़ा देना पड़ेगा।

दोनों भाइयों ने पन्द्रह बीस दिन परिश्रम करके खेतों को जोता बोया।

इससे छुट्टी मिली तो दो चिन्ताएँ और सवार हुईं, एक तो खाने की, दूसरे शीतकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए कपड़ों की। छः महीने के लिए अनाज रक्खा था वह धीरे २ समाप्त हो रहा है, रबी की फ़सल होने तक उसका चलना कठिन है। जैसे ही जैसे अनाज घट रहा था, वैसे ही वैसे पीतम का खून भी घट रहा था। अब क्या किया जावे? घर में दस बारह पसेरी महुए रक्खे हुए थे, उसने उन्हीं को काम में लाना आरम्भ किया। आधा महुआ और आधा अनाज मिला कर रोटी बनाने लगा। दोपहर को काम करते समय भूख लगने पर दोनों भाई महुए के दो चार फांके मार लेते थे। बच्चों को भी यही मिलता था। इसलिए पापी पेट को तो किसी न किसी प्रकार समझा दिया, अब कपड़ों की चिंता सवार हुई। दिन तो धूप खाकर कट जाता था, पर रात कटना मुशकिल होती थी। किन्तु; कोई उपाय न था। भला बिना रुपये के कपड़े कहां मिल सकते थे? घर में जो दो चार फटे पुराने कपड़े थे, उनमें बच्चों को गठरी बना कर लिटा देता था और स्वयं दोनों भाई घास फूस बिछा कर और एक एक चादरा ओढ़ कर पड़ रहते थे। यदि पयाल होती तो भी बड़ी सहायता मिलती, परन्तु खरीफ़ हुई नहीं, पयाल कहां से आवे। रात को जब अधिक जाड़ा लगता तो उठकर कुछ देर तक आग ताप लेते, फिर लेट रहते। जब तक तापने की गर्मी रहती तब तक सो लेते, अब फिर सर्दी लगती तब फिर उठकर तापते। इस प्रकार ताप ताप कर रात व्यतीत करते। निदान, इसी तरह समय कटने लगा।

एक दिन प्रातः काल दोनों भाई कुंएँ पर खेत सींचने जारहे थे, राह में गांव का गुड़ैत मिला। उसने कहा:—ज़मींदार, आगये आमदनी ले चलो।

पीतम—"अरे! आमदनी, कैसी? खरीफ तो हुई नहीं। हमने तो सुना था कि मालगुज़ारी मुलतवी होगई।

गुड़ैत—जिन गावों में बस्ता नहीं है, उनमें मुलतवी होगई। इसमें तो बस्ता है, इसमें आधी मुलतवी हुई है आधी देनी पड़ेगी।

पीतम—अरे भाई! बस्ता है तो क्या हुआ, कुछ काम आया? अब जब हम लोगों ने कुएँ खोद खाद लिये, तब बस्ते में पानी आया है।

गुड़ैत—भइया; यह कौन देखता है? पटवारियों ने जो लिख दिया सो हुआ।

पीतम—तो भाई हमें तो बचा दो, फसल पर तुम्हारा मुंह मीठा करेंगे।

गुड़ैत—ऐसा तो सभी कहते हैं, किसे किसे बचाऊं? सब को बचाऊं तो अपने मालिक को क्या समझाऊं। तुम वहां तक चले चलो। फिर जैसा होगा देखा जायगा।

पीतम ने भाई को कुएँ पर भेज दिया और स्वयं डरता कांपता ज़मींदार के डेरे पर पहुंचा।

ज़मींदार के कारिन्दे ने सूरत देखते ही कहा—आमदनी लाये?

पीतम सर खुजलाकर डरता हुआ बोला—मालिक अबकी तो कुछ हुआ ही नहीं—खाने तक का ठिकाना नहीं, आमदनी कहां से लाऊं?

कारिन्दा—यह हम कुछ नहीं जानते। आधी आमदनी तो मुलतवी होगई, अब और क्या, किसी का घर लोगे?

जाओ—जाकर प्रबन्ध करो इन बातों से काम न चलेगा।

पीतम—मालिक! अब तो एक पैसे का ठिकाना नहीं है, कुछ हुआ ही नहीं।

कारिन्दे ने कड़क कर कहा—कुछ नहीं हुआ तो हम क्या करें—तुम्हारा भाग्य। जिस फसल में होता है उसमें हमें क्या कुछ अधिक दे जाते हो?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीतम—"मालिक आपके देने माफिक हम कहां हैं, हमतो आप तुम्हारी रोटियों पर जीते हैं।

कारिन्दे ने कुछ नम्र होकर कहाः—भाई हमें भी तो सरकार को देना है। हमें न देना पड़ता तो हम भी तुम्हें तंग न करते, पर क्या करें! घर से तो दिया जाता नहीं। हां, यह हम कर सकते हैं कि दो चार रुपये कम देदो, बला से, हम अपने पास से देदेंगे, पर यह नहीं हो सकता कि कुछ न दो।

पीतम-इस फसल में तो मालिक! कुछ नहीं हो सकता, आगे कौड़ी गंडे से सब चुकता......

कारिन्दा फिर उबल कर बोला-यह नहीं होगा, हमने जो कहा है वह करना पड़ेगा। नहीं होगे तो हम खेत बेदखल कर देंगे।

पीतम—तो मालिक रुपया तो है नहीं, बैल बछिया हैं सो ले लो-हम अपना कहीं जाकर मजूरी कर खांयगे। इतना कहते कहते पीतम की आंखों में आंसू छलछला आये, अंतःस्थल से ठंडी सांस निकली। उसने गुड़ैत पर एक करुणा दृष्टि डाली। गुड़ैत को पीतम की दशा पर दया आई। वह कारिन्दे से बोलाः-मालिक अबकी इस पर बड़ी मुसीबत पड़ी-दो महीने तक घर भर बीमार पड़ा रहा-मा मरगई-जोड़ मर गई और खेतों में तो जो हुआ, सो संसार जानता है।

कारिन्दा—यह तो सब ठीक है, पर हम अपने मालिक को जाकर क्या समझायेंगे।

पीतम—मालिक को भी सब मालूम है। उनसे क्या कुछ छिपा थोड़ा ही है।

कारिन्दे ने गुड़ैत से कुछ इशारा किया। गुड़ैत ने पीतम को अलग ले जाकर कहाः—भइया! इनकी मुट्ठी गरम करो तो इस बेर माफी मिल जाय।

पीतम हाथ जोड़ कर बोला—दादा! तुम्हें तो सब मालूम है, मेरे पास तो खाने तक का ठिकाना नहीं।

गुड़ैत—अरे दो चार रुपये किसी से काढ़ मांग कर ले आओ। इस फ़सल में तुम्हें २०-२५ रुपये देना है, फिर चार रुपये देने से २०-२५ बच जांय तो कोई बुरी बात थोड़ी ही है।

पीतम कुछ देर तक सोचकर बोला—अच्छा दो रुपये पर मामला तय करा दो-कहीं से काढ़ लाऊँगा।

गुड़ैत—ऊहूं, दो रुपये में तो न मानेंगे।

पीतम—तो भइया! इससे आगे एक पैसे का सुभीता नहीं।

गुड़ैत कुछ सोचकर बोला—अच्छा तीन में उन्हें राजी कर दूंगा, इससे कम एक कौड़ी भी न होगी।

पीतम एक ठंडी सांस भर के बोला-अच्छा तीन ही सही। यह कह कर पीतम घर गया। बेचारे ने अटके भटके समय के लिए पांच रुपये बचाकर रक्खे थे, उसमें से तीन रुपये निकाल कर लाया। उस समय उसे यह मालुम होता था कि उसके कलेजे में से तीन टुकड़े निकले जारहे हैं।

इस प्रकार पीतम ने इस मुसीबत से छुटकारा पाया। अब वह ईश्वर पर भरोसा रखकर आगे की फ़सल के लिए तनमन से परिश्रम कर रहा है।

—विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सम्पादकीय-टिप्पणियाँ ।

मंत्रिमंडल की परिस्थिति

बहुत अच्छी नहीं दिखाई देती। जिस समय से चुनाव का फल प्रकट हुआ था उसी समय से यह कहा जाने लगा था कि वर्तमान मंत्रि-मंडल बहुत दिन नहीं चल सकेगा। उसका संगठन अस्वाभाविक था, उसकी नीति अप्राकृतिक थी। अब धीरे धीरे ऐसी बातों का होना शुरू हो गया है जिनसे पता चलता है कि आपस में मतभेद आरम्भ होगया। अभी ही जिस रात्रि में नूतन सैनिक सेवा बिल (Military Service Bill) दूसरी बार पार्लामेंट में स्वीकृति के लिए उपस्थित किया गया, प्रायः ७० गंगा-यमुनी दल के लिबरल सभा में उपस्थित नहीं हुए। इतना ही नहीं, प्रायः ६ सदस्यों ने गवर्नमेंन्ट का साथ छोड़ कर विरोधी दल का साथ दिया। कारण इसका यह था कि अब लिबरल यह देख रहे हैं कि प्रधान सचिव और मि० बानरला की बातों में वे फंस गये थे। इङ्गलैण्ड के निवासी अब सचेत होकर देख रहे हैं कि उन लोगों ने धोखा खाया। मंत्रिमंडल के

चुनाव

की घोषणा में यह कहा जाता था कि "हम कैसर को फाँसी देंगे", जर्मनी से क्षति-पूर्ति के नाम से बहुत बड़ी रकम लेंगे, "अनिवार्य सैनिक सेवा का अन्त करेंगे"। आश्चर्य! अभी पार्लामेन्ट बहुत दिनों की भी नहीं हुई कि वह इन बातों को भूल गई है। जैसा कि हम पहिले ही कहते थे

कैसर को फांसी

देना सहज नहीं। अब मंत्रिमंडल के वकील भी यही कह रहे हैं। "अनिवार्य सैनिक सेवा" का अन्त तो दूर रहा, मि० चर्चिल दस लाख की एक सेना खड़ी कर रहे हैं और इस सेना के लिए

६ अरब रुपया

के खर्च करना चाहते हैं। क्षतिपूर्ति की रकम का प्रश्न भी इसी प्रकार से व्यवहारिक राजनीति के बाहर दिखाई दे रहा है। जनता का इस तरह से मंत्रिमंडल और उसके प्रधान में विश्वास कम होता जा रहा है और हमको यह दिखाई देता है कि कुछ ही काल बाद मंत्रि-मंडल को इस्तीफा देना होगा

यूरोप की परिस्थिति

भी इस समय भीषण है। विजय-मदमत्त मित्र-दल के राष्ट्र ऐसी चालें चल रहे हैं, जिनसे यह साफ दिखाई देता है कि पिछला यूरोपीय महाभारत महाभारतों का अन्त करने को नहीं, वरन उनका सूत्रपात करने को हुआ था। डा० विल्सन की बातें वृथा हो गईं "संसार को प्रजातंत्र के लिए संरक्षित करने की बात" कोरी ठहरी है। "स्वभाग्य निर्णय" का नुस्खा केवल शत्रुदल के राष्ट्रों के लिए रेचक औषधि थी और "सब राष्ट्रों और जातियों को शासन का अधिकार प्राप्त हो" यह बात हाथी के दांत के समान प्रमाणित हुई है। हमको तो इसके कहने में भी संकोच नहीं कि "जबर्दस्त का ठेंगा सर पर" और "पाशविक शक्ति ही प्रधान है"। इसी सिद्धान्त की विजय का इस समय मित्र-दल के दो राष्ट्र प्रतिपादन कर रहे हैं।

डा० विल्सन की १४ बातें

कहाँ हैं? शत्रुदल ने जिन शर्तों पर हथियार रक्खा था, अब वे किसे याद हैं? मि० लायड जार्ज सदा यह कहा करते थे कि शत्रुदल चाहे कल सन्धि कर ले, वे जर्मन फौजीपन का नाश करना चाहते हैं। जर्मन जनता से उनको कोई बैर नहीं। वे स्वतंत्र नागरिकों से—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से स्वतंत्र राष्ट्र से—सन्धि करने को तैयार हैं। एमेरिकन सैनिकों से उन्होंने कहा था कि जर्मन जनता जब चाहे प्रेसीडेन्ट विल्सन की शर्तों पर सन्धि कर सकती है। यह सब बातें अब कहां हैं ? जर्मन जनता ने जर्मन फौजीपन को नष्ट कर दिया, सैनिक दल के अग्रणी कैसर देश से निकाल बाहर कर दिये गये हैं, स्वतंत्र प्रजातंत्र बर्लिन में ही नहीं, वरन् समस्त जर्मनी में स्थापित हो गये हैं। जर्मनी ने अस्त्र भी रख दिया किन्तु रूस की कौन कहे, ६ मास में भी सन्धि स्थापित नहीं हो पाई। यह क्या है ?

रूस से सन्धि करने को कोई तैयार क्यों नहीं है, जर्मनी से कड़ी से कड़ी शर्तें क्यों की जा रही हैं और मध्य यूरोप के राष्ट्रों की जनता भूखों क्यों मारी जा रही है ? अन्न भी उन लोगों के पास क्यों नहीं पहुँचने पाता ? अस्त्र रखवा लिये गये, माल लाने और पहुंचाने के जितने सामान—रेल जहाज आदि—थे, वह भी ले लिये गये और अब जनता

त्राहिमाम् त्राहिमाम्

चिल्ला रही है, तो अन्न के नाम पर उनसे विकट से विकट शर्तों को मंजूर करने को कहा जा रहा है। इङ्गलैण्ड फ्रान्स का तो कहना ही क्या,

इटली

भी जागोस्लावों को अन्न नहीं दे रहा है। कहता है कि वह कुछ प्रदेशों का पट्टा लिखवाना चाहता है। अन्न के अकाल के कारण मध्य यूरोप के निवासी त्रस्त हैं और इस कारण से प्रजा का स्वतंत्र शासन, जिसका हिमायती मित्रदल बनता था, जर्मनी, अस्ट्रिया-हंगरी, बलगेरिया आदि में नाश को प्राप्त हो रहा है। यह तो एक तरफ हो रहा है, दूसरी ओर से

संसार की भावी शान्ति

भी बेदर्दी से कुचली जा रही है। यह किसी से छिपा नहीं कि प्राण के भय से जो शर्तें स्वीकार कराई जायँगी, वे शर्तें स्थायी नहीं रह सकतीं। भय दूर होते ही ये शर्तें

रद्दी कागज का टुकड़ा

हो जायँगी। आज ही कल में जर्मनी के प्रतिनिधि वार्सेल्स में सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए एकत्रित होंगे। राम राम कर सन्धि पत्र पर किसी तरह हस्ताक्षर हो जाय तो संसार को कहने को कुछ दिन चैन मिल जायगा, यद्यपि हमें यह बात असम्भव मालूम पड़ती है। क्योंकि यदि यह खबर सत्य है कि जर्मनी और रूस में सन्धि स्थापित हो गई है तो फिर जर्मनी और मित्रदल में सन्धि होना कठिन ही है एक ओर यह होरहा है दूसरी ओर से यह भी खबर सुनाई पड़ती है कि जर्मन प्रतिनिधि सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने को पहली मई को वार्सेल्स पहुँच गये होंगे। जर्मन प्रतिनिधि सन्धि पत्र हस्ताक्षर करेंगे या नहीं यह तो दो चार दिन में विदित होगा किन्तु

मित्रदल में वैमनस्य

आपस में शुरू होगया है। जैसा कि हम कभी पहिले लिख चुके हैं बदरबाट की कृपा से बालकन युद्ध की तरह विजयी दल आपस में ही लड़ना चाहता है। कल ही खबर आई थी कि इटली सन्धि-परिषद् से अलग होगया है। इटली जिस समय युद्ध में सम्मिलित हुआ था उसने इङ्गलैण्ड और फ्रान्स से विजय होने पर कुछ प्रदेशों को दिये जाने का वचन ले लिया था।

लंदन में गुप्त सन्धि

हुई थी। उसी सन्धि के अनुसार अब इटली उन प्रदेशों को चाहता है। साथ ही साथ वह Fiume फायूम का प्रदेश चाहता है। डा० विल्सन फायूम को स्वभाग्य-निर्णय का अधिकार देना चाहते हैं। उनका कहना है कि लंदन की सन्धि को हम नहीं मानते। जब सन्धि हुई थी उससे समय बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदल गया है, शत्रुदल हमारी १४ बातों के स्तम्भ पर सन्धि करने को तैयार हुआ था हम उन १४ बातों के विरुद्ध नहीं जा सकते। इटली कहता है कि इटली को छोड़कर सब विजयी राष्ट्रों के लिए १४ बातों का मनमाना अर्थ लगाया गया है एक इटली के लिए ही यह सब क्यों? दूसरे १४ बातों की बातें, स्वभाग्य-निर्णय आदि का सिद्धान्त शत्रु देशों के लिए है मित्रदल के लिए नहीं। इटली यह भी कहता है कि उसकी मांग चौदह शर्तों के अनुकूल ही है। इटली के प्रतिनिधि इटली को एक दम लौट जाने वाले थे, किन्तु मि० लायड ज़ार्ज और मि० क्लिमैन्सो के कहने सुनने से वह शाम तक ठहर जाने वाले थे। एड्रियाटिक समुद्र के तटस्थ प्रदेशों का झगड़ा मालूम पड़ता है फिर खून बहाकर फैसल होगा। एक ओर मित्रदल आपस में यह विरोध पैदा कर रहा है दूसरी ओर शत्रुदल प्रजातंत्र या बोलशविज़्म के नाम पर एक हो रहा है और यह असंभव नहीं कि रूस, जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, टर्की और इङ्गलैण्ड, फ्रान्स आदि में पिछले महाभारत से भी दूसरा भीषण महाभारत उपस्थित हो जाय।

भारत में दमननीति

का दौर दौरा है। समाचारपत्रों पर प्रेस एक्ट की तलवार ज़ोरों से चल रही है और यह कहना कठिन है कि कोई पत्र दूसरे सप्ताह में ज़रूर ही प्रकाशित होता रहेगा। यों तो प्रेस एक्ट गला-घोंटू और ऐसा विस्तृत बना ही है कि हर दशा में यदि इच्छा हो तो वह किसी भी पत्र को भर दबा सकता है, किन्तु इस समय वह चारों ओर लम्बी छलाँगें मारता दिखाई दे रहा है। पत्रिका की ज़मानत ज़प्त होगई और दस हज़ार की ज़मानत फिर जमा कर वह अब निकल रही है। वसुमती को १०००) जमा करना पड़ा है। बाम्बेक्रानिकल की ज़मानत ज़प्त होगई। युक्त प्रान्त में "अखबत" १०००) की ज़मानत मांगी जाने के कारण बन्द होगया, "प्रताप" और "इन्डिपेन्डेन्ट" दो दो हज़ार की ज़मानत जमा कर निकल रहे हैं "अखबत" को दिल्ली जाने की मनाही है, "विजय" "काङ्ग्रेस" और "इनक़िलाब" को पंजाब में घुसने की आज्ञा नहीं है। क्या हो रहा है इस पर टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है किन्तु हम इतना ज़रूर कहेंगे:—

"बारहा देखी है उनकी रंजिशें
पर कुछ अबकी सरगरानी और है"

पंजाब की दशा

इस समय बहुत शोचनीय है। जो कुछ हुआ और जो हो रहा है, उसे आप समाचारपत्रों में पढ़ चुके होंगे। इस समय वहां ओडायरशाही की धूम है। हमारी समझ में नहीं आता कि लाट ओडायर अपने पद से इस समय तक अलग क्यों नहीं किये गये हैं। फौजी कानून की सहायता से किसी प्रजा को काबू में रखना शासन नहीं है, किन्तु यदि भारत सरकार इसी को शासन समझती है तो कोई भी साधारण मनुष्य फौजी कानून के द्वारा किसी देश का शासन कर सकता है। ऐसे शासन के लिए किसी विशेषता की यदि आवश्यकता है तो यही कि उस मनुष्य में मनुष्यता की अपेक्षा पशुता की मात्रा अधिक होनी चाहिये। क्या लाट ओडायर को छोड़कर इतनी योग्यता का मनुष्य सरकार के खज़ाने में और कोई नहीं है।

एक आवश्यक प्रश्न

इस संबन्ध में और उठता है और वह यह है कि पंजाब में शान्ति स्थापित हो गई या नहीं। यदि सरकारी विज्ञप्तियों का विश्वास किया जाय तो यही कहना पड़ेगा कि शान्ति स्थापित हो गई है। इस दशा में प्रश्न यह होता है कि फिर

फौजी क़ानून क्यों जारी

है। फ़ौजी क़ानून यदि क़ानूनन किसी मर्ज़ की दवा है तो केवल उस समय तक काम में लाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जा सकता है जिस समय (Open rebellion) प्रत्यक्ष मारकाट और बलवा जारी हो। शान्ति स्थापित होते ही फौजी क़ानून का प्रयोग दूर होना चाहिये। हम चाहते हैं कि पंजाब में शान्ति स्थापित हो गई या नहीं और यह कि फौजी क़ानून वहां जारी है या नहीं?

पंजाब के बाद कराची

में इस समय दमननीति का तांडव नृत्य दिखाई दे रहा है। तलाशियों और गिरफ़्तारियों का बाज़ार गर्म है। कांग्रेस के भूतपूर्व सेक्रेटरी और बंबई के लाट की सभा के एक सदस्य मि० भरगुरी भी पकड़े गये हैं। बाम्बे क्रानिकल के सम्पादक

मि० हार्नीमैन

को देशनिकाला दे दिया गया है। अभी ही कुछ दिन हुए उनको चीरा लगा था, अभी उनका घाव भी नहीं पुरा था कि उनको आज्ञा मिली कि ब्रिटिश भारत से बाहर निकल जायँ। एक दम जहाज़ पर वे बैठा दिये गये। सरकार ने राह खर्च को उनको ५००) दिया है और एक दत्त डाक्टर से यह भी सम्मति लेली है कि इस सफर से मि० हार्नीमैन को कोई हानि न पहुंचेगी। सब समाचार आपही चिल्ला चिल्ला कर कुछ कह रहे हैं ऐसी अवस्था में इनके संबंध में हमारा कुछ कहना व्यर्थ है।

नेताओं का कर्तव्य

वर्तमान दशा में सब से अधिक है और हम समझते हैं कि इस समय हमारे नेताओं को पंजाब की सैर करना चाहिये। पंजाब के नेता प्रायः बहुत से पकड़ कर भेज दिये गये हैं। इस समय सरकार से प्रश्न करने वाला कोई नहीं है। वहाँ इस समय महात्मा गांधी को पत्र लिखने वाले और यह कहनेवाले बहुत हैं कि सत्याग्रह का आन्दोलन भारत के लिए हितकर नहीं है किन्तु इनमें से एक ऐसा नहीं जो सरकार से यह कहे कि युद्ध-काल में जर्मन कैसर के बहकाने पर भी जब भारतवासी और पंजाबी अपनी राजभक्ति से नहीं डिगे तब फिर युद्ध के बाद जब ब्रिटिश सरकार की धाक और बँध गई है, जब जर्मनी मिट्टी में पड़ा लोट रहा है और टर्की लहू के आंसू बहा रहा है भारतवासियों को शक की दृष्टि से देखने और

रौलट बिलों

के पास करने की कौन सी आवश्यकता थी? भारतवासियों के अनुनय विनय, विरोध को बेदर्दी से पैरों तले रौंदने की आवश्यकता कौन थी? न इनमें से कोई ऐसा ही है जो इस समय कर्नल फ्रेज़र से या लाट ओडायर से पूछे कि आप लोग क्या कर रहे हैं? किसी ने सरकार को या लार्ड चेम्सफोर्ड को यह भी पत्र लिखा है कि नहीं कि शहर के ऊपर, निरस्त्र जनता पर हवाई जहाज़ों द्वारा बम गिराने की नीति जर्मनी की है या किसकी यह भी एक जानने योग्य बात है। तात्पर्य यह कि पंजाब में नेता रहे नहीं, यह देखने वाला कोई नहीं है कि कर्नल फ्रेज़र या लाट ओडायर न्याय के घेरे में हैं या अन्याय की सरहद के भी बाहर निकल गये हैं ऐसी अवस्था में फौजी अफ़सर और फौजी क़ानून को केन्द्र के भीतर ही रखने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि हमारे कुछ नेता पंजब में जांये। इससे एक और यह भी महत्वपूर्ण काम होगा कि वे जांच कर सकेंगे और सब बातों का पता लगा कर तब वे यह भी कह सकेंगे कि दोषी कौन कहां तक है?

सत्याग्रह का आन्दोलन

कुछ समय के लिए महात्मा गांधी ने स्थगित कर दिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्रपति विलसन ने मिश्र पर ब्रिटिश प्रभुता स्वीकार कर ली और कहा है कि मिश्र में किसी प्रकार के स्वराज्य या प्रतिनिधि शासन के क्रमशः विकास के विचार के साथ उनकी सहानुभूति है, परन्तु उनका यह दृढ़ मत है कि खून-खच्चर और पाशविक अत्याचारों से कोई जाति अपनी राजनैतिक मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकती।

जापान और भारतवर्ष का सैनिक खर्च।

यह मानी हुई बात है कि सेना की तैयारी में जापान बहुत कुछ बढ़ा हुआ है, उसकी जल-सेना की बराबरी करने वाला संसार में एक ही दो देश होंगे। इस पर भी वह अपने राजस्व का जो अंश सैनिक-खर्च के लिए व्यय करता है, भारतवर्ष के साथ उसकी तुलना करते हुए आंखें खुल जाती हैं। सन् १६१८-१६ की जापान इयरबुक सूचित करती है कि युद्ध के उन भीषण दिनों में, जब सैनिक शक्ति पर ही प्रत्येक राष्ट्र के जीवन और मरण का प्रश्न निर्भर था, जापान ने अपने राजस्व का ३६·७ प्रति सैकड़ा सैनिक खर्च किया। भारतवर्ष में (गतवर्ष) इस खर्च के लिए समस्त राजस्व का ५१·५ प्रति सैकड़ा अंश व्यय हुआ और इस वर्ष-जब युद्ध समाप्त हो गया है राजस्व का ४७·७ प्रति सैकड़ा अंश सैनिक खर्च के लिए निश्चित किया गया है। ऐसी भिन्नता क्यों? इसका कारण अनुसन्धान करते हुए हमें यही मालूम हुआ है कि जापान में सेना के प्रत्येक बड़े-छोटे पद पर देशवासी ही नियुक्त हैं और भारतवर्ष में वैसी स्थिति नहीं। कुछ इनेगिने लोगों को छोड़ कर सेना के प्रत्येक ऊंचे पद पर विदेशी अफसर हैं जिनको रोटी के लिए गवर्नमेंट मोटी २ तनख़्वाह देने में विवश है।

मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा।

खोज-विषयक रिपोर्टों के देखने से मालूम हुआ कि संसार के प्रत्येक सभ्य देश में शिक्षा मुफ़्त दी जाती है या अनिवार्य है अथवा मुफ़्त और अनिवार्य दोनों है। और तो क्या अभी कल तक जो चीन अन्यान्य बातों में हमारी तुलना नहीं कर सकता था, वह भी बाजी मार ले गया। वहां शिक्षा मुफ़्त और अनिवार्य कर दी गई।

निम्नलिखित देशों में शिक्षा मुफ़्त और अनिवार्य है:—एमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, स्वीज़रलैंड, आस्ट्रिया-हंगरी, इटली, बेलजियम, कनेडा, आस्ट्रेलिया, जापान, सर्विया, रूमानिया, पेरू, डूमेनियन-रिपब्लिक-बलगेरिया, बोलविया, अर्जेन्टाइन, मान्टीनिग्रो और मैक्सिको।

इन देशों में शिक्षा मुफ़्त दी जाती है:—कोलम्बिया, चिली, टर्की, सिलोन, ब्रेज़ील।

अब उन देशों को लीजिए जिनमें शिक्षा अनिवार्य है:—क्यूबा, ग्रीस, पुर्तगाल और अलसीनिया। किन्तु

भारतवर्ष में?

शिक्षा न तो मुफ़्त है—न अनिवार्य है।

न्याय का सस्तापन।

मिस्टर बैपटिस्टा ने लोकमान्य तिलक के मुकदमे का खर्च लगभग ५००००० लाख रुपया बतलाया है, किन्तु इण्डियन डेली टेलीग्राफ कहता है कि सब मिला कर ३००००० रु० खर्च हुआ। खैर, यदि हम इन्हीं पिछले अङ्कों को ठीक मान लें तो मालूम होगा कि ११ दिन की बहस में प्रति दिन औसतन २७००० हजार रुपया के ऊपर खर्च पड़ा।

हम समझते हैं कि संसार को शायद अब यह बतलाने की ज़रूरत नहीं कि सभ्यता के इस नये युग में न्याय का मूल्य कितना सस्ता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाइम्स का स्वप्न।

पाठकों को मालुम होगा कि महात्मा गान्धी ने देश की आर्थिक अवस्था का ध्यान कर भारतवासियों को स्वदेशी-व्रत धारण करने की शिक्षा दी है। उनकी इस शिक्षा पर मदरास टाइम्स ने खूब ही विष उगला है। उसका कहना है कि स्वदेशी वस्तु व्यवहार की शिक्षा देकर महात्मा जी ने उन भावों को उभारने की चेष्टा की है, जिनसे भारतवासियों के हृदयों में अङ्गरेज़ों के प्रति सद्भाव न रहें!

मस्तिष्क की इस उपज का क्या कहना है? निःसन्देह, बिल्ली को स्वप्न में भी छीछड़े नज़र आते हैं।

बोलशेविज़्म का रोग।

हमारे कुछ एङ्ग्लो-इण्डियन मित्रों को बोलशेविज़्म के रोग ने बेतरह धर दबाया है। सोते जागते, उठते-बैठते, जब देखिए ये 'बोलशेविज़्म--बोलशेविज़्म' चिल्लाया करते हैं। हम यह बिना संकोच कह सकते हैं कि इस समय भारतवर्ष बोलशेविज़्म से कोसों दूर है।

मार्शलला मार्शेअल्ला!

पंजाब-सरकार ने अपने २८वीं अप्रेल की विज्ञप्ति में कहा है कि लाहौर के सिविल विभाग के कमाण्डर ने 'मार्शलला' के अनुसार जो आज्ञा दी है उसका लाहौर की वर्तमान अवस्था पर अच्छा असर पड़ा है। हड़ताल के समय कुछ लोगों ने जिनका आन्दोलन से सम्बन्ध था, कुछ अन्न बिना मूल्य या कम मूल्य पर बांटा है। फ़ौजी कानून जारी करने पर जब हड़ताल बन्द हो गई तो व्यापारियों ने अन्न का भाव चढ़ा दिया इसका मतलब यह था कि व्यापार बन्द रहने के कारण जो घाटा हुआ है उसकी पूर्त्ति करलें। यह भी सम्भव है कि इनका मतलब कुछ और हो। परन्तु निश्चित दर की घोषणा करने के कारण गरीबों को कम दाम में अन्नादि मिले और इससे उनका बड़ा उपकार हुआ। इधर दो दिनों से शहर के गरीब लोगों के मुंह से 'मार्शलला की जय' बराबर सुनने में आती है। 'ये मार्शलला' की बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं। परमात्मा ही जाने, भारत में कहना कहलाना इतना आसान है कि उसका कहना ही क्या? समाचार पत्रों में पंजाब की वास्तविक स्थिति के विषय में जो कुछ हम पढ़ते हैं उसको सामने रखते हुए तो एक कवि की यह कविता हमें याद आती है।

कहते हैं बीमार मुझको मेरे सारे चारःगर।
कुछ हकीकत हाल की लेकिन नहीं उनको खबर॥
डाक्टर को फ़ीस से मतलब मरज़ से काम क्या?
मुझको हैरत है कि मेरे मर्ज़ का है नाम क्या?

लाला जी का पत्र।

इस महीने में अमेरिका से, हमें, श्रद्धेय लाला लाजपतराय का एक कृपापत्र मिला है। उसमें उन्होंने अन्यान्य बातों के साथ एक बात जो लिखी है, वह यह है कि गत ३ वर्षों में उन्हें मर्यादा की केवल दो संख्यायें मिली हैं। यह क्यों? केवल इसलिए कि यह सेन्सर महाराज की कृपा है। लाला जी ने इसी कारण वश हमें लिखा है:—"मर्यादा के लिए लेख भेजना अभी व्यर्थ है, क्योंकि शायद वे पहुंचने न दिये जांय। गत वर्ष दो लेख भेजे गये थे, जो न तो राजनैतिक थे और न उनसे किसी प्रकार की हानि पहुंचने की सम्भावना थी, किन्तु यह सब होने पर एक भी नहीं पहुंचा। इसलिए लेख भेजने से लाभ ही क्या? जब तक सन्धि न हो जाय तब तक तुम धीरज रक्खो, उसके बाद मैं लेखों की झड़ी लगा दूंगा।........

प्रेमी पाठको! हमारा भी आपसे यही कहना है कि वर्तमान समय की कठिनाइयों का अनु-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान कर धीरज रखिये। लाला जी तथा अन्यान्य महानुभावों के लेखों का रसास्वादन कराने में यदि हमें क्षमता प्राप्त नहीं है तो यह हमारा दोष नहीं।

प्रेस एक्ट में नया आविष्कार।

प्रताप ट्रस्ट की ओर से श्रीयुक्त शिवनारायण मिश्र ने प्रताप प्रेस के कीपर तथा पत्र के प्रिन्टर और पबलिशर होने का नया डिक्लेरेशन अदालत में दिया। कानपुर के मेजिस्ट्रेट मि० स्टाइफ ने उस पर जो आज्ञा दी, उसका आशय यह है:—

"मैं 'प्रताप' से ज़मानत न लेने का कोई कारण नहीं देखता। नये प्रिन्टर (श्रीयुक्त शिवनारायण मिश्र) का इस पत्र से पुराना सम्बन्ध है। बीस महीने के भीतर पत्र को दो बार चेतावनी दी गई और एक बार उसकी ज़मानत जब्त की गई। भूतपूर्व प्रिन्टर (श्रीयुक्त गणेश शङ्कर विद्यार्थी) ने जो ट्रस्ट कमेटी में हैं, वर्तमान समय में होने वाली हड़तालों में विशेष भाग लिया है, और आजकल के उपद्रव के समय में, यह स्पष्ट रूप से आवश्यक है कि समाचार पत्रों पर कड़ी देख रेख हो। इसलिए मैं २०००) की ज़मानत मांगता हूं, और प्रकाशक को चेतावनी देता हूं कि उसे पत्र प्रकाशित करने की स्वतंत्रता उस समय तक नहीं है, जब तक वह मेरी अदालत में ज़मानत दाखिल न करदे"

पत्र-संचालको, सावधान! ज़माने की उन्नति के साथ ही साथ प्रेस एक्ट ने भी उन्नति की है। अब तक कानून का उपयोग पत्र की नीति के साथ ही होता रहा, अब वह अपने क्षेत्र से निकल कर चार कदम आगे बढ़ा है और उसने सम्पादक की व्यक्तिगत निजी बातों से रिश्ता जोड़ना आरम्भ किया है।

डेपुटेशनों की बिदाई।

इस समय भारत से इङ्गलैण्ड जानेवाले डेपुटेशनों की धूम है। कांग्रेस और माडरेट कान्फरेन्स के डेपुटेशनों के कई सज्जन रवाना भी हो गये हैं। कांग्रेस की ओर से श्रीयुक्त नरसिंह चिन्तामणि केलकर और श्रीयुक्त विट्ठल भाई जहवर भाई पटेल तथा माडरेटों की ओर से माननीय शास्त्री जी और पं० हृदय नाथ कुंजरू गये हैं। ये सज्जन एक ही जहाज से रवाना हुए। कांग्रेस प्रतिनिधियों को बिदा करने के लिए सभा के अध्यक्ष पं० मदनमोहन मालवीय और माडरेट प्रतिनिधियों को विदा करने के लिए सर दीनशा वाचा थे। इन सज्जनों ने विदाई की सभा में क्या कहा यह हमें अभी बहुत ही कम मालूम हुआ है, इस लिए हम उस पर प्रकाश डालने में असमर्थ हैं। हां; इतना अवश्य कहेंगे कि माडरेटों की सभा में मिस्टर नटराजन की वक्तृता बड़े माके की हुई। इन्होंने कहा कि शासन-सुधार हों, चाहें न हों, पर इस देश की वास्तविक अवस्था ब्रिटिश जनता और सभ्य संसार को मालूम होनी चाहिये। कहना व्यर्थ है कि यही भाव भारत के राष्ट्रीयपक्ष का भी है। यदि हमारे देश की ऐसी ही अवस्था रही कि नौकरशाही जो चाहे करे तो सुधारों से कोई लाभ न होगा। मि० शास्त्री ने उत्तर देते हुए कहा कि सत्याग्रह आन्दोलन पर भी वर्तमान परिस्थिति उत्पन्न करने का दोष है, परन्तु सरकार विस्फोटक पदार्थ तैयार करने के दोष से नहीं बच सकती। सच तो यों है कि सत्याग्रह बदनाम चाहे भले ही किया जाय, किन्तु जो हुआ है उसका कारण दुराग्रह ही है।

इङ्गलैण्ड में डेपुटेशन जाने के पक्ष में कुछ लोग सहमत हैं और कुछ उसका विरोध करते हैं। जो लोग सहमत हैं उनका कहना है कि देश कल्याण की दृष्टि से इस समय नेताओं का विलायत पहुंचना अत्यन्त आवश्यकीय है। ये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सज्जन वहां पर हमारी वर्तमान स्थिति का सच्चा चित्र खींचेंगे और उन भ्रमात्मक बातों का खण्डन करेंगे जो मेसर्स सिडनहम—हिवेट एण्ड कम्पनी हमारे विरुद्ध फैला रही है। इसके अतिरिक्त माण्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधार में ये लोग बहुत कुछ सहायता पहुंचावेंगे। डेपुटेशन भेजने का विरोधी पक्ष कहता है:—ये बातें भाड़ में जांय हमें इनकी जरूरत नहीं, हमें तो ज़रूरत है:— To try and kill Odwyrism is much more important from the national point of view than to court Mantaguism. "सुधारों की अपेक्षा लाट ओडायर जैसे स्वेच्छाचारी शासकों की निरंकुशता को दूर भगाने की, सर्वप्रथम और सर्वोपरि आवश्यकता है और इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हमारे कर्णधार विपद्ग्रस्त जनता के पास रहें। हम इस दलील की सत्यता को स्वीकार करते हैं, हमारी राय में भी यदि ओडायरशाही बनी रही तो सुधारों से कोई लाभ न होगा किन्तु इसके साथ ही साथ हम इस सत्य से अपनी आंखें नहीं फेर सकते कि इस समय हमारे कुछ नेताओं को इङ्गलैण्ड में उपस्थिति बहुत आवश्यक है। समय ने भीषण पलटा खाया है, समस्या नाजुक है, हमारे विरोधी अराजकता, बलवा, विद्रोह, अशान्ति का रौला मचा कर सुधारों का अङ्गभङ्ग करना चाहेंगे ऐसी दशा में विरोधियों की बातों का खंडन करने के लिए, स्वार्थियों को मुंहतोड़ जवाब देने के लिए, ब्रिटिश मंत्रिमंडल और जनता को भारत की परिस्थिति का ठीक ठीक ज्ञान कराने के लिए यह बहुत आवश्यक है कि हमारे कुछ नेता डेपूटेशनों में जायँ। भारत में नेताओं का टोटा नहीं है, कुछ लोग रह ही जायंगे और न भी रहें तो जहां इतने दिनों तक वहां कुछ दिन और सही हम लोग ओडायरशाही का सहन कर लेंगे किन्तु यह जानकर हम सुख से भर सकेंगे कि हमारे बाल बच्चों को ओडायरशाही, हेलीशाही, क्रेडकशाही न सता सकेगी।

स्थानीय सहयोगी 'इन्डिपेन्डेन्ट' से २०००) की ज़मानत तलब हुई है जो १ मई को अदालत में मा० पंडित मोतीलाल नेहरू द्वारा जमा कर दी गई। राष्ट्रीयता के उपासक से ज़मानत का माँगा जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं किन्तु आश्चर्य हमको इसपर अवश्य है कि सर हारकोर्ट के शासन में ऐसा हुआ। हम समझते हैं कि पत्र में यदि कोई ऐसी बात थी जिसे प्रान्तीय सरकार हानिकर समझती थी तो सम्पादक को दो चार बार चेतावनी दे देने से काम चल सकता था यदि वास्तव में चेतावनी का अर्थ स्वतंत्र सत्य को निर्भीकता के साथ कहने से रोकना नहीं है। संयुक्तप्रान्त इस समय अन्य शासकों के लिए आदर्श रहना चाहिये, सर हारकोर्ट के लिए इससे अधिक गौरव की बात कोई नहीं हो सकती। अभी तक लोगों का यह ख़्याल था कि सर जार्ज लायड और सर हारकोर्ट दो ऐसे शासक हैं जिन पर भारत सरकार का जादू असर नहीं कर सका। बंबई सरकार अपने पथ से विचलित हो गई यद्यपि सुनते हैं कि उसने स्वेच्छा से मि० हार्नीमैन को देश-निकाला नहीं दिया है। अभी ही "बाम्बे क्रानिकल" की ज़मानत भी ज़ब्त हुई है, उसी समय में "इन्डिपेन्डेन्ट" से ज़मानत का मांगा जाना अच्छा नहीं दिखाई देता। सर हारकोर्ट को हम एक निर्भीक, स्वतंत्र, निराला शासक समझते हैं और हम आशा करते हैं कि वे संयुक्त प्रान्त को इस समय में, जब कि अन्य प्रान्तों के शासक घबरा गये हैं, निराला और सब से भिन्न ही बना रहने देंगे।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित।
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप एक ऐसी सुविधा खो रहे हैं जिसका प्राप्त करना तुम्हारे हाथ में है।

क्या आपने कभी ऐसे दुःख का अनुभव किया है जो घर में अचानक असमय में किसी बीमारी के उठ खड़े होने पर पास में अच्छी दवा के न होने से उठाना पड़ता है। अब सुख संचारक कम्पनी मथुरा का "सुधासिन्धु" आपके पड़ोसी तक मंगाकर लाभ उठा रहे हैं, और कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, कै, दस्त आदि रोगों के आक्रमण से बेफिक्री की नींद सोते हैं। असहाय स्त्रियों के भरोसे पर भी बाल बच्चों को छोड़ कर आप मजे में परदेश जा सकते हैं, एक राजमहल से लेकर किसान के झोंपड़े तक में इसके रहने की जरूरत है, सुधासिन्धु एक सच्ची स्वादिष्ट और २७ वर्ष की परीक्षित दवा है। तब कम से कम १ शीशी घर में मंगाकर रखने के लिये हमारे पास आज ही पत्र लिखिये या अपने पास के एजेंट से खरीद लीजिये क्योंकि सुधासिन्धु भारतवर्ष में सब दवा बेचने वालों के पास मिलता है नकली दवाओं से सावधान रहिये।

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र, जंत्री मुफ्त मंगा देखिये।

मंगाने का पता—

सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा।

२००) रुपये दूंगा

बिना औषध के जन्मभर को रोग दूर।

स्वप्नदोष और शीघ्रपतन बड़े भयङ्कर रोग हैं। स्वप्नदोष नौजवानों के शरीर और दिमाग को मिट्टी कर देता है, याददाश्त का तो यह दुश्मन है। शीघ्रपतन गृहस्थों का घातक है, समय पर लज्जित होने से लोग मर जाना अच्छा समझते हैं, सन्तान भी नहीं होती। मुझे एक ऐसी क्रिया-विधि प्राप्त हुई है जिससे ये दोनों रोग जन्मभर के लिए जाते रहते हैं। यह कोई दवाई नहीं केवल एक साधन है इस पर भी यदि प्रयोग करने पर रोग दूर न हो तो २००) रु० दंड दूंगा जोकि आप अदालत द्वारा मुझसे वसूल कर सकते हैं। इसके बताने की फ़ीस राजाओं से १००) धनवानों से ५) सर्वसाधारण व विद्यार्थियों से २) रु०। डाक मह० ।) आना।

नोट—उक्त क्रिया पत्रद्वारा लिखकर बताई जायगी, साथ ही एक बूटी भी भेजी जायगी जिसका सेवन एक सप्ताह तक आवश्यक है।

प्रकाशक—

चन्द्रशेखर शर्मा धर्मोपदेशक,

(नं० २) पो० जलाली ज़ि० अलीगढ़।

बाटलीवाले की स्वदेशी।

असली कुनैन की १ ग्रेनवाली १०० गोलियों की शीशी, असली कुनैन की २ ग्रेनवाली २०० गोलियों की शीशी बुखार, मैलेरिया और ज़ुकाम के लिए, एग मिक्सचर, कमज़ोर और थके हुए लोगों के लिए ताकत की गोलियाँ दांतों की जड़ को मज़बूत करनेवाला दन्तमंजन, दाद और खुजली का मलहम, ये दवाएं सब दवाफरोशों से या डाक्टर एच० एल० बाटलीवाला सन्स एन्ड० को० लिमिटेड वारली, १८ बम्बई से मिल सकती हैं।

Dr. H. L. Batliwalla Sons & Co. Ltd.
Warli, 18 Bombay.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्यादा

मासिक पत्रिका।

भाग १७] मई, सन् १९१९ [संख्या ५

कोई सितमगर न कहे।

"क्या कहा तुमने हमें कोई सितमगर न कहे।
तुम सितम जिस पै करो वह तुम्हें क्योंकर न कहे॥
जो कहा जाता है अक्सर वही हो जाता है।
तुमको सब कुछ कहें सब, कोई सितमगर न कहे॥
ग़ैर का किसको गिला, है मुझे शिकवा तेरा।
हस्र में जिस पै जो गुज़री है वो क्यों कर न कहे॥
यह सितम तर्जे सितम है कि सितम करते हो।
और कहते हो हमें कोई सितमगर न कहे"॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार-संकट।

यूरोपीय महाभारत के दृश्य।

दूसरे महाभारत की तैयारी।

लाठी के बल सन्धि।

जर्मनी के पतन का रहस्य।

इटली और रा० विल्सन।

मि० लायड जार्ज ने कुछ दिन हुए ठीक ही कहा था कि He feared reaction more than Bolshevism उनको बोलशविज़्म की अपेक्षा प्रतिक्रया से अधिक भय मालूम होता है। वे समझते थे कि बोलशविज़्म से नहीं वरन् प्रतिक्रया से यूरोप का सत्यानाश होगा। बात कुछ ऐसी ही होती नज़र आ रही है। प्रत्येक मिनट जो कुछ यूरोप में हो रहा है वह इसी धारणा को पुष्ट कर रहा है कि युद्ध इसी युद्ध के अन्त से या सन्धि के हो जाने से समाप्त न हो जायगा। मालूम यह पड़ रहा है कि अभी यूरोप में कुछ और भीषण परिवर्तन होंगे। यूरोप, अब पुराना यूरोप जैसा कि पुराने राजनीतिज्ञों को वह दिखाई देता था, नहीं रहा। यह सच है कि यूरोप का महाद्वीप अब भी वही है, यूरोपीय जनता भी बहुत सी अब तक वही है किन्तु इसके साथ ही साथ यह भी सच है कि यूरोप का पुराना कूटनीति का स्वरूप पूर्णरूप से नष्ट हो गया है।

इसका संगठन, राइन नदी से प्रशान्त महासागर तक, उत्तरी समुद्र से मुस्लिम साम्राज्य तक, नष्ट-भ्रष्ट हो गया है और साथ ही छोटे छोटे और द्वितीय और तृतीय श्रेणी के संगठन जो इसपर निर्भर थे और जिनका यह श्रोत था अपने अपने अस्तित्व को खो बैठे हैं। यूरोप को एक नूतन संगठन की आवश्यकता है। आवश्यक यह है कि राजनैतिक, सामाजिक और औद्योगिक क्षेत्रों में नूतन बीज वपन किये जायँ, नूतन नियम बनाये जायँ और नूतन स्तम्भों पर यूरोपीय भविष्य की नींव डाली जाय। इसी पर संसार की भावी शान्ति, व्यवस्था और सुरक्षा स्तम्भित है। किन्तु यह होता दिखाई नहीं देता। हम देख रहे हैं कि पुराने राजनीतिज्ञ उन्हीं दृष्टियों से कार्य-क्षेत्र में काम कर रहे हैं जिनको लेकर वे पैदा हुए थे। इस नूतन संस्कार के ज़माने में भी कूटनीति, स्वार्थ, साम्राज्य-विस्तार, हम और अनुदारता के उन्हीं सिद्धान्तों से वे प्रेरित हैं जिनके कारण संसार को यह भीषण महाभारत देखना पड़ा था। युद्ध का उद्देश्य कम से कम कहा जाने को यह था कि संसार से जर्मन फ़ौजीपन का नाम उठा दिया जाय और न्याय को शक्ति पर प्रधानता दी जाय। जर्मन फ़ौजीपन का अस्तित्व स्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि से और स्थूल रूप में संसार में नहीं रहा किन्तु हमको इसके कहने में संकोच नहीं कि जर्मन फ़ौजीपन छायारूप से या भावरूप में अब भी जीवित है और सन्धि-परिषद् में एकत्रित मित्र-दल के प्रतिनिधि सन्धि की शर्तों को जर्मन फ़ौजीपन के साँचे में ही ढाल रहे हैं। अब वे उन गुप्त सन्धियों का सहारा ले रहे हैं जो १६१५—१६ में हुई थीं, जब कि वे समझे थे कि वे सहज में

जर्मनी पर विजय

प्राप्त कर लेंगे और यूरोप अपने पुराने रास्तों पर चलता रहेगा। उन्होंने यह नहीं समझा कि सन्धि होने के समय तक यूरोपीय जनता का अस्तित्व एक बार डावाँडोल हो उठेगा और इसका फल यह होगा कि क्रान्ति की अग्नि की चिनगारियाँ सभी राष्ट्रों में इधर उधर ढेरों में पड़ी दिखाई देंगी। जो घटनायें घटी हैं उनसे यह प्रत्यक्ष है कि यूरोप में जर्मन फ़ौजीपन या उसका किसी प्रकार का छाया शरीर स्थायी जीवन नहीं लाभ कर सकता। मित्रदल एक भीषण अत्याचारमय प्रणाली को नष्ट करने के लिए उठा था। उसे सफलता प्राप्त हुई। पाशविक शक्ति संगठन, साम्राज्यवाद और निरंकुश उत्तरदायित्वहीन शासन का अन्त हो गया। इस सत्य से हम लोग अपनी आखें नहीं फेर सकते कि सत्यानाश करने के प्रयत्न का फल सत्यानाश ही हुआ है। शेष जो रह गया है वह और कुछ नहीं, केवल भग्नावशेष है, संभावनाएँ हैं, बहुत दिनों से त्रस्त नवजीवन की आशालताओं का पनपना है, पुरानी आशाओं का बन्धनमुक्त होना है; पुराने अत्याचारों का बदला चुकाना है और असीम आन्दोलन और गड़बड़ का होना है। चारों ओर Chaos उलटपलट, अंधेर-खाता और भीषण गड़बड़ी है। यह भयानक है, हानिकर है, भयावह है, कदाचित् छूतमय, छूत से फैलनेवाला और नितान्त बेचैनी फैलानेवाला है। किन्तु एक वस्तु को अच्छी तरह से सब कुछ जानते हुए और होश में होते हुए ध्वंस कर हम विध्वंस को देखते हुए चुप नहीं बैठ सकते और न यह कहने से काम ही चल सकता है कि यह भयावह है, बड़ी गड़बड़ी है, जान आरिज़ है। यूरोप का मध्य भाग वरियों में गल रहा है, और यूरोपीय शरीर का हृदय बुरी दशा में है। खून पहुंचाने वाली रगें कट गई हैं, हाथ पैर में लकवा हो गया है, अवयव सब बेकाम हैं, और इन सब के ऊपर शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पोषक खाद्य-पदार्थ भी नहीं रहे हैं। यूरोप की दशा सोचने ही के योग्य है। चार प्रधान संगठन और कितने ही छोटे बड़े उलट-पलट हो गये हैं। करोड़ों मनुष्य शासन और व्यवस्था से हीन हैं। किसी प्रकार का संगठन शेष नहीं रहा है और शरीर और आत्मा को साथ रखने के लिए खाद्य-वस्तुओं का भी लाला पड़ रहा है।

जनवरी १९१८ की सन्धि।

१९१७-१८ के जाड़े के दिनों में ही यूरोप के कुछ दूरदर्शियों ने इस अवस्था का अनुमान कर लिया था। यह भी छिपा नहीं है कि मार्च १९१८ में एक तरह से युद्ध समाप्त ही हो चुका था। वसन्त समय के आक्रमण से त्रस्त होकर फ्रान्स निर्जीव हो गया था। जुलाई में जर्मन रैशटाग में प्रजा के बहुसंख्यक प्रतिनिधियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात सर्वोपरि मानी जाय, (Majority Resolution) यह प्रस्ताव पास हो गया था। अगस्त मास में पोप ने सन्धि और शान्ति के लिए अपील की थी। स्टाकहाल्म में प्रतिनिधि भी एकत्रित होनेवाले थे। रूस में केरन्सकी को असफलताओं का स्वागत करना पड़ रहा था, फ्रान्स में परशिङ्ग बिना सेना के जेनरल रह गये थे। यह कहा जाने लगा था कि अब तैयारी इटलियन रणक्षेत्र की होगी। मध्य यूरोप के राष्ट्रों में क्रान्ति की चिनगरयाँ उड़ती नज़र आ रही थीं। प्रजाबल इतना ज़बर्दस्त हो गया था कि सम्राट् चार्ल्स और काउन्ट ज़र्निन का हृदय दहल गया था। दिसम्बर आते आते सन्धि की अभिलाषा सब देशों में ज़ोरों से फैल गई थी। युद्ध से लोग घबरा और ऊब गये थे। जनरल स्मट्स, काउन्ट मेन्सडार्फ़ से मिलने के लिए स्विटज़रलैण्ड गये थे, मि० लायड जार्ज और लार्ड मिलनर रूस को अपनी किस्मत पर छोड़ देने को तैयार थे और लार्ड लैन्सडाउन ने साफ़ शब्दों में यह घोषणा की थी कि यदि पुराने यूरोप (वर्तमान सभ्यता) का, अस्तित्व बनाये रखना है तो

तुरन्त सन्धि होनी चाहिये।

इन लोगों ने पुराने यूरोप के अस्तित्व के लिए यह अन्तिम प्रयत्न किया था और इस प्रकार से यूरोप की ये लोग क्रान्ति से रक्षा करना चाहते थे। यूरोपीय महाभारतीय नाटक का पहिला दृश्य यह था। यवनिका के उठते ही रंगमंच पर लूडनडार्फ, क्लिमैन्सो और विलसन तीन ऐक्टर अपने धुन में लीन दिखाई देते हैं। लूडनडार्फ की तूती चारो ओर बोल रही थी, क्लिमैन्सो प्राण-विहीन फ्रान्स को सजीवनमूरि सुंघा कर क़ैसर से बदला चुकाना चाहते थे। स्वार्थरहित निस्पृह विलसन सत्य और न्याय का राग अलाप रहे थे। इस समय सन्धि की शर्तें दूसरी थीं। स्वभाग्य-निर्णय, किसी की भूमि पर कब्ज़ा नहीं करना, क्षति पूर्ति की रकम न लेना और समुद्रों की स्वतंत्रता का बाज़ार गर्म था। अलसेस-लोरेन का नाम लिया जाता था किन्तु यह साफ़ साफ़ कहा जाता था कि Saar Basin सार कुंड जहाँ लोहे की कानें हैं उसके साथ सम्मिलित न किया जायगा। क्योंकि उद्देश्य था १८७१ की भूल के सुधार का न कि १८१५ की। इटली को भी प्रदेश देने की बात नहीं कही जाती थी। ज़ेचो-स्लाव और जूगोस्लाव का नाम भी नहीं सुनाई देता था। यह सब इसलिए था क्योंकि विलसन आस्ट्रिया-हंगरी की अखंडता की रक्षा करना चाहते थे। स्वराज्य पानेवाली जातियों में एक पोलस का नाम लिया जाता था किन्तु पोलैण्ड के साथ लुथेनिया या युक्रेनियन प्रान्तों की चर्चा न थी। मित्रदल बातें बढ़ बढ़ कर कर रहा था किन्तु उसकी चलती कहीं न थी। विलसन ने देखा, कुछ होना असम्भव है, जर्मनी को वे त्रस्त करना चाहते थे किन्तु यह उनकी ताक़त के बाहर था। सन्धि करने को वे तैयार थे किन्तु चाहते थे कि जर्मनी से दबना न पड़े। क्लिमैन्सो और लूडनडार्फ युद्ध का जुआ प्राणों की बाज़ी लगाकर खेल रहे थे और सम्भव था कि हारनेवाले का अस्तित्व भी शेष न रह जाय। रा० विलसन इससे घबरा उठे थे और इसलिए सत्य का पीछा छोड़, कूटनीति, अन्याय और भेद का अस्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने उठाया । अमेरिकन सेनेट में व्याख्यान देते हुए चौथी दिसम्बर को उन्होंने कहा कि हम लोगों को आस्ट्रिया-हंगरी के साम्राज्य के खंडन या संगठन से कोई मतलब नहीं है, हम उनके निज़ी कार्यों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहते। जनवरी के प्रथम या द्वितीय सप्ताह में मि० लायड जार्ज ने पार्लामेंट में व्याख्यान देते हुए इन्हीं भावों को प्रकट किया। इसका साफ साफ अर्थ था आस्ट्रिया-हंगरी को अपनी ओर आजाने का निमंत्रण देना । ८ जनवरी को रा० विल्सन ने अमेरिकन कांग्रेस में यह कहा कि १४ बातों की बिना पर जर्मन रेशटाग के बहु-संख्यक-दल से बातचीत करने को हम तैयार हैं। इन बातों का प्रभाव आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी की जनता पर पड़ा। यूरोपीय नाटक का दूसरा दृश्य यहाँ पर समाप्त होता है।

यूरोपीय महाभारत का तीसरा दृश्य

बहुत ही कुतूहलमय, रहस्यपूर्ण और मनोरंजक है। इस समय में ही वे घटनाएँ घटी हैं जिनका संसार को पता नहीं और जिनको न जानने के कारण आज संसार यह समझ सकने में असमर्थ हो रहा है कि विजय-वैजयन्ती फहरानेवाले जर्मनी का एकदम से बिना तनिक भी विलम्ब के सहसा कैसे पतन हो गया। ताश के घर के समान एकदम से जर्मन साम्राज्य कैसे गिर पड़ा ? १९१८ की सन्धि की शर्तों को देखने से यह प्रत्यक्ष है कि उस समय राजनीतिज्ञ

सुधार न कि पुनःसंगठन

करना चाहते थे। किन्तु जर्मनी लूडन्डार्फ़ की अध्यक्षता में कुछ और ही स्वप्न देख रहा था। वह यूरोप में, संसार में और विशेषकर पूर्वीय देशों में जर्मन साम्राज्य स्थापित करना चाहता था। "हेम्बर्ग से बगदाद" का स्वप्न देखना छोड़ कर वह युक्रेनियन प्रान्त से काकेशस और अफ़गानिस्तान की माला जपने लगा था। मित्र-दल के सैनिकों की संख्या इस समय जर्मन सैनिकों से अधिक थी। यद्यपि मार्शल फ़ाक शैम्पेन (Champagne) में हार गये थे किन्तु सैनिकों की संख्या इनके पास कहीं अधिक थी। यह सब देखकर मित्रदल ने अपनी नीति बदली, भेदभाव को उन्होंने अपना प्रधान अस्त्र बनाया और शत्रुदल में तोड़-फोड़ करना उनको विजय का एकमात्र उपाय दिखाई देने लगा। रा० विल्सन की वक्तृताओं का हम कह चुके हैं असर आस्ट्रिया हंगरी और जर्मन जनता पर पड़ा था। आस्ट्रिया हंगरी में राष्ट्रीयदल अनेक थे, वे हैप्सबर्ग और कैसर के घराने के कट्टर शत्रु थे। इनका एक मासिक पत्र

"नव-यूरोप"

के नाम से ज़ोरों से निकल रहा था। मित्रदल ने इन्हीं राष्ट्रीय दलों के साथ मैत्री स्थापित कर आस्ट्रियन और जर्मन साम्राज्यों को भीतर से भंग करना निश्चित किया।

१९१८ में काम शुरू हुआ।

आस्ट्रिया हंगरी में बलवा कराना निश्चित हुआ। ज़ेचोस्लाव और जूगो स्लाव यह दो प्रधान राष्ट्रीय दल वहां थे। इनको मिलाना और इनकी मांग को स्वीकार कर इनको अपने पक्ष में कर लेना मित्र-दल के लिए एकमात्र उपाय बाकी रहा था। किन्तु यह सहज न था। ज़ेचोस्लाव बड़े ही विद्वान् और उन्नतिशील थे। इनके पक्ष में यह एक बात और थी कि इनकी मांग जो थी उससे मित्र दल के किसी स्वार्थ को हानि नहीं पहुंचती थी। किन्तु

जूगो-स्लाव का मामला

कंटकमय था और अब तक बना हुआ है। इस समय सन्धि-परिषद् से जो इटली अलग हुआ उसकी जड़ उसी समय दिखाई दे गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जूगो-स्लाव जो प्रान्त चाहते थे वह "लंदन की गुप्त सन्धि" से इटली को मिल चुका था। इटली इन्हीं प्रान्तों की लालच से युद्ध में सम्मिलित हुआ था। इङ्गलैंड और फ्रांस ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किया था और वे अपने वचन के विरुद्ध काम नहीं कर सकते थे।

भीषण कसौटी

पर मित्रदल कसा जा रहा था। यूरोप और संसार के अधिवासी यह देख रहे थे कि मित्र-दल जो स्वभाग्य-निर्णय, किसी की भूमि पर कब्ज़ा न करेंगे आदि बड़ी बड़ी बातें कर रहा है वह कहां तक ठीक हैं। जूगो-स्लावों की माँग ने यह मसला उपस्थित किया था। यदि किसी की भूमि पर कब्ज़ा करने की आकांक्षा मित्र दल को न थी तो इटली सहज में ही लंदन की सन्धि को भूल सकता था और जूगो-स्लाव जो प्रदेश चाहते थे वे उसे पा जाते किन्तु यह माऊ का ठौर था। इटली से कहे कौन कि प्रदेशों की लालच छोड़ो और कहा न जाय और इटली राज़ी न हो तो जूगो-स्लाव बलवा न करेंगे। फल यह होगा कि आस्ट्रिया हंगरी ज़बर्दस्त बना रहेगा। समस्या कठिन थी, इङ्गलैंड और फ्रांस बोल नहीं सकते थे, अमेरिका बगलें झांक रहा था। फिर कूटनीति ने काम दिया। इटली के ही हाथ से उसके मुख से ग्रास निकालने की बात सोची गई। इटैलियनों से ही कहा जाने लगा कि मित्रदल और आस्ट्रियन राष्ट्रीय दलों में वे मैत्री स्थापित करा दें। चाल चल गई। इटैलियन पार्लामेंट के एक प्रधान सदस्य डा० टारी और जूगो-स्लाव नेता डा० ट्रम्बरिक के बीच ७ मार्च १९१८ को एक समझौता हो गया। इटली के कुछ लिबरल दल के मनुष्य भी यह देख रहे थे कि यदि जूगो-स्लाव राज़ी नहीं किये जाते तो मित्र दल कभी जीत न सकेगा। ये डा० टारी के सहायक हो गये। फल यह हुआ कि अप्रैल में इटली की राजधानी रोम में आस्ट्रिया-हंगरी की त्रस्त जातियों की एक कांग्रेस हुई। प्रस्ताव यह पास किया गया कि आस्ट्रिया हंगरी का अंगभङ्ग किया जाय। इटली के प्रधान सचिव ने कांग्रेस को साधुवाद कहा। यहां पर एक बात ध्यान में रखने की यह है कि इटली ने राष्ट्र की हैसियत से या सरकारी तौर पर कुछ नहीं कहा था और न लंदन की सन्धि पर उसने हड़ताल ही फेरी थी। मई मास के अन्त में अमेरिका या रा० विल्सन ने ज़चो स्लाव और जूगो-स्लावों की राष्ट्रीयता स्वीकार कर ली, किन्तु भाषा गोलमोल और अस्पष्ट थी। जून मास की वार्सेल्स की मित्र-राष्ट्रों की सभा में बैरन सोनिनो-इटैलियन प्रतिनिधि ने यह साफ साफ कह दिया कि जूगो-स्लावों की मांग को स्वीकार करने को वे तैयार नहीं। उन्होंने अमेरिकन मि० लान्सिङ्ग की गोलमोल भाषा में शरण ली थी। इधर झगड़ा आपस में हो रहा था उधर जूगो-स्लाव और ज़चो स्लाव सेनाएँ जो अब तक आस्ट्रिया की तरफ से लड़ रही थीं आस्ट्रिया के खिलाफ़ हो गईं। मित्र दल की कूटनीति का यह फल हुआ। एक तरफ यह हुआ दूसरी तरफ जून के अन्तिम सप्ताह में मि० लान्सिङ्ग ने साफ शब्दों में यह घोषणा की कि जूगो-स्लाव और ज़चो स्लावों को स्वतंत्र करना, उनका राष्ट्रनिर्माण करना अमेरिका का युद्ध में सम्मिलित होने का एक मुख्य उद्देश्य है।

अगस्त मास में लार्ड नार्थक्लिफ़ ने एक बार फिर प्रयत्न किया कि बैरन सोनिनो जूगो स्लाव की राष्ट्रीयता स्वीकार कर लें। इसका फल यह हुआ कि इटली में एक भारी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसी समय में इङ्गलैंड और अमेरिका ने ज़चो स्लावों का स्वतंत्र राष्ट्र स्वीकार कर लिया। एक ओर यह हुआ दूसरी ओर इटली ने जूगो स्लावों की राष्ट्रीयता और उनकी मांग को स्वीकार कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त बातों से सन्धि-परिषद् से आज-कल रोज़ जो इटली और रा० विलसन के मन-मोटाव के तार आते हैं उनको समझने में बहुत सहायता मिलती है। पाठकों को याद होगा कि इटली "फ़ायूम" का नाम लेकर सन्धि-परिषद् से अलग हो गया था। फ़ायूम के बन्दरगाह पर वह अपना कब्ज़ा चाहता है। इटली "लंदन की सन्धि" की दोहाई देता है, वह यह भी कहता है कि रा० विलसन की चौदह शर्तों के अनुसार भी फ़ायूम उसे मिलना चाहिये। इङ्गलैण्ड और फ्रान्स इटली के विरुद्ध कुछ कह नहीं सकते किन्तु इङ्गलैण्ड दबी ज़बान यह कहता था कि लंदन की सन्धि में अन्य प्रदेशों के देने का ज़िक्र है किन्तु "फ़ायूम" का नाम कहीं नहीं है। इटली कहता है फ़ायूम हम लेहींगे, फ्रान्स अपने हस्ताक्षर की दोहाई देता है। रा० विलसन सिद्धान्त, और अपने वचन का दम भर रहे हैं। इटली रूठ कर चला गया। बैरन सोनिनो का खूब धूम धाम से स्वागत हुआ। अब इङ्गलैण्ड और फ्रान्स इटली को प्रसन्न करने पर तुल गये हैं। इङ्गलैण्ड और फ्रान्स ने इटली से कहा है कि फ़ायूम अभी १५ वर्ष तक तुम्हारे अधीन रहेगा किन्तु राष्ट्र-संघ उसका मालिक होगा। १५ वर्ष में स्लावों के लिए एक दूसरा बन्दरगाह तैयार हो जायगा उस समय फ़ायूम का मालिक इटली बना दिया जायगा। व्यावहारिक दृष्टि से इटली को मुंह मांगी मुराद मिलती है, वह राज़ी हो गया है और सन्धि परिषद् में सम्मिलित होने के लिए तैयार हुआ है किन्तु रा० विलसन अब तक अपनी बात पर अड़े हुए हैं। यह आजकल की बातें हैं किन्तु महाभारत का तीसरा पर्दा गिरता है वहां पर जहां पर जूगो-स्लाव और ज़ेचो स्लाव आस्ट्रिया के विरुद्ध खड़े हो गये। आस्ट्रिया और जर्मनी पर इसका प्रभाव क्या पड़ा यह चौथे दृश्य की बात है और उसका पर्दा किसी अगली संख्या में हम उठावेंगे।

आरम्भ ।

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मणसिंह—'मयंक' ।]

सुप्रभात का समावेश है—
नूतन-युग का प्रथम-प्रभात;
उठो बन्धुवर! आलस छोड़ो,
निद्रा का न समय है तात !!
बीती अहा सदोषा-दोषा,
अन्धकार का हुआ विनाश!
अरुण-वरण पावन-प्रकाशमय
चमक उठा है पूर्वाकाश ॥ १ ॥

आशामई सुन्दरी-ऊषा
हाव-भाव से आती है,
प्राची के सौभाग्य-सूर्य का
शुभ-आगमन जताती है।
सजनी-सरोजिनी का चुम्बन—
प्रेमालिङ्गन करती है;
अलि को बन्धन मुक्त बनाती,
भव्य-भाव से भरती है ॥ २ ॥

पश्चिम में छवि-छीन छपाकर
देखो गिरता जाता है;
अपनी कुटिल-चाल का कटु-फल
उसको दुखी बनाता है।
जग-जागृति का उदय देखकर
हाय होगया वह उद्भ्रान्त,
क्या उसके शासन-नाटक का
अन्तिमाङ्क होगा दुःखान्त ॥ ३ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तारकमाला भी रह रह कर
देखो वदन छुपाती है;
अपने क्षण-भंगुर-विलास पर
उसको लज्जा आती है।
ओस नहीं आँसू है; उसको
आज हो रहा पश्चात्ताप,
हा ! कुसङ्ग में पड़कर किसको
सहना नहीं पड़ा दुख-दाप ॥ ४ ॥
अन्धकार के साथ जा रहे
भागे अन्धकार के भीत।
दिन-कर का कर-निकर-शान्ति-कर
करता है उनको भय-भीत
शुचि-सौरभित-मन्द-मलयानिल
मल-प्रक्षालन करता है;
हरता है आलस; नस नस में
अभिनव-जीवन-भरता है ॥ ५ ॥
मुदित-विहङ्गम स्वतन्त्रता के
शुभ-सङ्गीत सुनाते हैं ;
विजय भक्ति की हुई शक्ति पर,
दुन्दुभि-मधुर बजाते हैं।
रङ्ग-विरङ्गी विविध-तितिलियाँ
चित्त चुराए लेती हैं;
पुष्प-दलों को गले लगाकर
उन्हें बधाई देती हैं ॥ ६ ॥
विपुल-मुकुल-कुल चटक चटक कर
अपना हृदय दिखाता है;
गन्धामोद-दान-मिस मानो
आत्मोत्सर्ग सिखाता है।
स्वागत करने को किंशुक-दल
विह्वल-बढ़ता आता है;
रक्त पात-मिस घन-पलाश-बन
कुसुम कलाप चढ़ाता है ॥ ७ ॥

कर्मयोग-मय भुवन-मोहनी-
"मोहन" मुरली बजती है;
मन्त्र-मुग्ध-भारत-वसुन्धरा
नए साज सब सजती है।
आहा ! कैसी सौम्य मूर्ति है
आओ इसे प्रणाम करो;
कीलो सब कु-कपाल-क्रियाएँ
भक्ति भाव से भुवन भरो ॥ ८ ॥
अमल-धवल सारी शोभित है
किन्तु सुरङ्ग-किनारी है
हर्षोत्फुल्ल वदन-पङ्कज है
किन्तु शीश क्यों भारी है ?
अविश्वास पुत्रों पर ? बुधवर !
सोचो क्या प्रण पारा है ?
माँ के सत्य व्रत की रक्षा
पहला धर्म हमारा है ॥ ९ ॥
उपासना का समय आगया,
माता को चाहिए सुमन,
पुष्पाञ्जलि सजदो, चाहे सब
सूना हो जावे उपवन।
मुरझाने का भय ही क्या है ?
ऋतु-पति आने वाला है;
नव-जीवन का सुभग सँदेशा
हमें सुनाने वाला है ॥ १० ॥
सुप्रभात का समावेश है—
हाँ नव-युग का प्रथम-प्रभात !
स्वागत करो वन्धु वर ! उठकर
बीत गई देखो सब रात ॥
भक्ति-भाव एकाग्र-चित्त से
खड़ा करो ह्याँ कीर्तिस्तम्भ;
निश्चय ही यह अन्धकार के
अमिट-अन्त का है आरम्भ ॥ ११ ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक क़ैदी और भारत सरकार।

[लेखक—श्रीयुत सत्यभक्त जी।]

हमारे भारतवर्ष की दशा इस पन्द्रह वर्ष से कुछ बदलने लगी है। अब से बीस तीस वर्ष पूर्व भी यद्यपि देश में राजनैतिक आन्दोलन किये जाते थे; लोग गवर्नमेंट के सामने अपने स्वत्वों की मांग उपस्थित करते थे; कुछ जोशीले मनुष्य सरकार के विरुद्ध व्याख्यान भी दे डालते थे, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस समय वास्तविक कार्य बहुत थोड़ा होता था; और राजनैतिक क्षेत्र में अधिकांश 'भिक्षांदेहि' की नीति ही काम में लाई जाती थी। भिखमंगों को जेलखाने भेजने की आवश्यकता शासकों को बहुत कम प्रतीत हुआ करती है; और इस कारण उस समय राजनैतिक क़ैदियों की संख्या वर्तमान समय की अपेक्षा बहुत कम हुआ करती थी। किन्तु लार्ड कर्जन की कृपा से समय बदला और देश में वास्तविक राजनैतिक आन्दोलन का प्रसार होने लगा। बंगभंग के कारण लोग समझ गये कि अंगरेज़ों के राज्य में केवल 'भिक्षांदेहि' वाले आन्दोलन से काम नहीं चलता। वे कोरी प्रार्थनाओं पर ध्यान नहीं देते। इसलिए बंगाल के कुछ लोगों ने आन्दोलन का ढंग बदला और स्वदेशी तथा बायकाट का आश्रय लिया। इसके प्रत्युत्तर में हमारे शासकदल ने ऐसी दमननीति से काम लेना आरम्भ किया कि देश के कुछ अनुभवहीन युवकों को यह विश्वास हो गया कि इन वैध आन्दोलनों द्वारा देश अपनी मनोकामना को प्राप्त नहीं कर सकता। इस विचार से वे प्रभावित हो भारतीय सत्य और न्याय के आदर्शों से विमुख होकर पश्चिमीय क्रान्तिकारी मतों का अनुसरण करने लगे। बंगाल में अनेक गुप्त सभायें बनीं। जिनकी कथा हमें मिस्टर रौलेट ने अपनी सुप्रसिद्ध 'सिडीशन रिपोर्ट' में जी भर कर सुनाई है। इस रिपोर्ट से पता लगता है कि गुप्त सभा वालों का समस्त उद्योग व्यर्थ गया।

इन सब नवीन घटनाओं के कारण भारत में राजनैतिक क़ैदियों की संख्या बढ़ने लगी। वर्षों से कोई मास ऐसा नहीं जाता, जिसमें दस पांच अथवा सौ पचास मनुष्य इस प्रकार के अभियोगों में न फँसते हों। अब तो कई साल से इस संख्या की आश्चर्यजनक वृद्धि होने लग गई है। अन्यान्य दमनकारी व्यवस्थाओं के अतिरिक्त केवल एक भारत रक्षा क़ानून ही ने यूरोपीय महायुद्ध के समय में हज़ारों लोगों को राजनैतिक अपराधों के संदेह पर नज़रबंद अथवा क़ैद करा दिया है। अभी कुछ समय पूर्व इस विषय में एक प्रश्न बड़ी व्यवस्थापिका सभा में पूछा गया था। उससे मालूम हुआ कि लगभग दो डेढ़ हज़ार मनुष्य इस अनोखे क़ानून की कृपा से बिना किसी अभियोग आदि के भिन्न भिन्न स्थानों में नज़रबन्द किये जा चुके हैं। इसके पीछे यह भी समाचार आया था कि सरकार ने उनमें से कुछ छोड़ भी दिये हैं, पर तो भी जहां तक हम जानते हैं, अभी बहुसंख्यक मनुष्य इसके कारण जगह जगह कष्ट उठा रहे हैं। अब तो रौलेट बिल भी पास हो गया और जिस चाव, शीघ्रता और ढिठाई से हमारे शासकों ने इसे पास किया है, उसे देखकर हम भली प्रकार इसकी आनेवाली कार्रवाइयों का अनुमान कर सकते हैं।

यही कारण है कि इस समय हमें भारत के राजनैतिक क़ैदियों का ध्यान विशेष रूप से आ रहा है, अन्यथा ऐसी बात नहीं है कि इस प्रकार के राजनैतिक क़ैदी भारत में ही हों। दूसरे देशों में भी समय समय पर बहुत से लोग राजनैतिक अपराधों के लिए जेल भेजे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु यहां और वहां इनकी दशा में एक बड़ा भारी अन्तर पाया जाता है। वह यह है कि अन्य देशों में राजनैतिक क़ैदियों के साथ प्रायः अच्छा व्यवहार किया जाता है, उनकी सुविधा का ध्यान रक्खा जाता है, तथा जहां तक हो सकता है उनको आराम से रखने की चेष्टा की जाती है। परन्तु भारत की दशा इससे भिन्न है। यहां प्रायः राजनैतिक क़ैदियों तथा अन्य साधारण क़ैदियों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं रक्खा जाता। इनके साथ भी वैसा ही अभद्र, कठोर तथा असभ्यतापूर्ण बर्ताव किया जाता है, जैसा मामूली चोर डाकुओं के साथ होता रहता है। इतना ही नहीं, वरन् बहुधा तो इन अभागों के साथ और भी कुव्यवहार होता है।

यहां पर शायद कोई सज्जन कह बैठें कि इस बात का प्रमाण क्या? हम कहते हैं कि प्रमाणों की कमी नहीं है, समाचार पत्रों के नियमित पाठक सदा ऐसी खबरें पढ़ते रहते हैं। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, उदाहरण के लिए हजारी बाग जेल की बात सामने रक्खी जा सकती है। अब से पूर्व दो बार वहां के राजनैतिक क़ैदी भोजन करना छोड़ चुके हैं; और अभी समाचार आया है कि उन्होंने पुनः अनशन-व्रत ग्रहण किया है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि इस प्रकार भूखे रहने का प्रधान कारण जेल के अधिकारियों का दुर्व्यवहार ही हो सकता है। हजारी बाग-जेल के राजनैतिक क़ैदी प्रायः भद्र और उच्चवंशों के बंगाली युवक हैं। इनमें से अधिकांश केवल सन्देह के कारण नज़रबन्द कर दिये गये हैं। पर हमारे शासक उन व्यक्तियों को कष्ट पहुंचाने में भी तनिक नहीं झिझकते, जिन्हें ये केवल सन्देह के कारण गिरफ़्तार कर लेते हैं। इन लोगों में और उन लोगों में, जिन्हें अदालत दोषी ठहरा देती है— कोई भेद नहीं रक्खा जाता। यदि रक्खा जाता है तो शायद इतना ही कि इन्हें अधिक कष्ट दिया जाता है। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो कोई कारण नहीं कि हम इन्हीं के भोजन छोड़ने की हड़तालों की चर्चा आये दिन बराबर सुना करते। खाना पीना छोड़ना कोई साधारण बात नहीं; ऐसा कार्य वही व्यक्ति कर सकता है, जिसका जीवन सर्वथा असहनीय हो गया है। क्या ऐसी उच्च श्रेणी के तथा केवल सन्देह के कारण पकड़े गये लोगों के साथ इस प्रकार बुरा व्यवहार करना अनुचित तथा कलंक की बात नहीं है?

राजनैतिक क़ैदियों के दुःखों का यहीं पर अन्त नहीं हो जाता। पूर्व हो या पश्चिम, जेल में रक्खे जाने से पूर्व पुलिस उनको जिस प्रकार तंग करती है—कष्ट देती है—इन दुःख गाथाओं से हज़ारों पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं। पुलिस यह समझ कर कि इन लोगों को—हो न हो—अन्य राजनैतिक अपराधियों का हाल भी मालूम होगा, छुप कर उन्हें यंत्रणा देने का आयोजन किया करती है। पुलीस के नीच कर्मचारी कभी इस प्रकार के राजनैतिक अपराधियों को कई कई दिन तक सोने न देकर कष्ट पहुंचाते हैं; कभी पानी न देकर प्यासा मारते हैं; कभी नाखूनों में अथवा अन्यत्र सुई या पिन चुभाकर व्याकुल करते हैं; कभी मिर्च इत्यादि के धुआं के पास बैठा कर अस्थिर करते हैं; कभी बेंत मार कर बात पूछने की चेष्टा करते हैं; कभी उलटा या सीधा लटका कर भेद को पेट में से उगलवाने का उद्योग करते हैं। कहां तक लिखा जाय ये नर-पिशाच, मनुष्य रूपधारी राक्षस, नृशंस, पाषाण हृदय, उन कम उम्र, सुकुमार, निरीह सुशिक्षित युवकों पर ऐसे घोर—निर्दयतापूर्ण—अत्याचार करते हैं जिनके स्मरण मात्र से हृदय कांपता है।

इस बात को सब कोई सरलतापूर्वक समझ सकते हैं कि साधारण क़ैदियों और राजनैतिक क़ैदियों में बहुत बड़ा अन्तर है। चोर, डाकू आदि अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने, लोगों का ख़ून करने, सर्वसाधारण पर अत्याचार करने आदि कुकर्मों के कारण जेल में भेजे जाते हैं और राजनैतिक क़ैदियों के जेल भेजे जाने का कारण केवल सरकार के साथ कुछ सिद्धान्तों और बातों में सहमत न होना है। शताब्दियां व्यतीत हो चुकीं कि संसार व्यक्तियों को अपनी अन्तरात्मा के अनुकूल विचार और कार्य करने का अधिकार प्रदान कर चुका है। यह अत्यन्त दुखदायी घटना है कि राजनैतिक क्षेत्र में व्यक्तियों को अपनी अन्तरात्मा के अनुकूल काम करने का अवसर नहीं दिया जाता। इतना ही नहीं वरन् इस वर्तमान उन्नतिशील युग में भी उन्हें मध्यकालीन अत्याचार सहन करने पड़ते हैं। उपरोक्त श्रेणी के देशभक्त मनुष्य जो कुछ भला बुरा कार्य करते हैं, अपने लिए नहीं करते। उनका उद्देश उच्च होता है, और वे सर्वसाधारण की भलाई के लिए अपना तन, मन और धन अर्पण करने के लिए तैयार रहते हैं। वे जो कुछ आन्दोलन आदि करते हैं, उन सब का आशय केवल इतना ही होता है कि देश की दुर्दशा दूर होकर उसकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो। यदि वे सर्वसाधारण में उत्तेजनापूर्ण व्याख्यान देते हैं; यदि वे समाचारपत्रों में जागृति के लेख लिखते हैं; यदि वे स्वदेशी और बहिष्कार के सिद्धान्तों की महिमा गाते हैं, यदि वे अपने देश को सत्याग्रह के आदर्श का अनुरागी बनाते हैं तो इसी ग़रज से कि सर्वसाधारण अपनी दशा और अधिकारों को समझें और उनके लिए प्रयत्न करें। ऐसी दशा में यदि राजनैतिक क़ैदियों के साथ साधारण क़ैदियों का सा व्यवहार किया जाय तो वह न्यायानुसार है या नहीं, इसे सभी विचारवान स्वयं समझ सकते हैं।

क़ानून की किताब में भी लिखा है, कि अपराधी को उसके उद्देश पर ध्यान रख कर दण्ड देना चाहिये। जान बूझकर ख़ून करनेवाले तथा भूल से किसी को मार डालनेवाले के लिए समान दण्ड नहीं दिया जाता है। फ़ैसला करते समय यह अवश्य देखा जाता है कि मनुष्य ने किस नियत अथवा उद्देश से कोई विशेष कार्य किया है। इस दृष्टि से देखने पर साफ़ मालूम हो जाता है कि राजनैतिक अपराधियों के साथ साधारण क़ैदियों का सा व्यवहार करना किसी प्रकार उचित नहीं। क्योंकि उनके उद्देश प्रायः शुद्ध और अच्छे ही होते हैं। अतः व्यर्थ में उनको कष्ट देना; नीच श्रेणी के मनुष्यों में सम्मिलित कर देना; उनके साथ अभद्र, असभ्य, और निर्दयतापूर्ण व्यवहार करना बहुत बुरी तथा नीचता की बात है।

इन्हीं बातों का ध्यान रख कर संसार की प्रायः सभी सुसभ्य सरकारें राजनैतिक क़ैदियों के साथ उत्तम व्यवहार करती हैं। पर जैसा हमने ऊपर लिखा है, भारत की चाल निराली है। यहां पर राजनैतिक क़ैदियों को विशेष रूप से कष्ट देना आवश्यक समझा जाता है। इस श्रेणी के क़ैदियों को कालकोठरी में बन्द कर देना तो यहां साधारण बात है, चाहे वह पागल ही क्यों न हो जाय। दूसरे कष्ट भी जहां तक बनता है, दिये जाते हैं। संसार में सभ्य शिरोमणि कहलानेवाली अंग्रेज़ जाति का यह कार्य देखकर कौन उसे सभ्य और श्रेष्ठ समझेगा।

इस समय संसार में इस सम्बन्ध में और भी अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। अब राजनैतिक क़ैदियों के साथ बुरा व्यवहार करना एकदम बन्द कर दिया गया है। राजनैतिक आन्दोलन करनेवाले पकड़े भी बहुत कम जाते हैं। इङ्गलैंड, जर्मनी आदि ने अपने यहां अधिकांश राजनैतिक क़ैदियों को छोड़ दिया है। अभी भारत से एक बड़े अंग्रेज़ अफ़सर फ़िलीपाइन गये। उन्होंने बड़े आश्चर्य के साथ कहा है कि वहां की जेलों में एक भी राजनैतिक क़ैदी नहीं। हो भी कैसे? यद्यपि फ़िलीपाइन पराधीन देश है; परन्तु यदि हम अमेरिका और बृटिश साम्राज्य की राजनै-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिक पालिसी का मुक़ाबिला करें तो हमारे सामने इस घटना का वास्तविक मर्म प्रकट हो जाता है। एमेरिका के प्रसिद्ध प्रेसीडेंट मि० विलियम एच टैफ्ट, जिन्होंने फिलीपाइन की शिक्षा नीति निर्माण की थी, अपनी रिपोर्ट में अंगरेज़ी सरकार और एमेरिकन सरकार की पालिसी का भेद इन शब्दों में वर्णन करते हैं:—

"हमने जिस उद्देश से फिलीपाइन द्वीप पर अपना अधिकार जमाया था, वह अंगरेज़ों तथा डचों के उद्देश से बिल्कुल भिन्न था और इसी कारण हमारी और उनकी शासननीति में भेद होना अनिवार्य है। गर्म देशों के निवासियों के प्रति हमारी और उनकी शासन नीति में जो बड़ा भारी अन्तर है, उसका कारण यही है कि हम इन जातियों को—जो हमारे शासन के अधीन हैं—स्वराज्य के योग्य बनाने की चेष्टा करते हैं। इस उद्देश की शर्त के लिए हमने प्रथम समस्त फिलीपाइन जाति को मुफ़्त प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा देने की व्यवस्था की है, और दूसरे फिलीपाइन के निवासियों के लिए अधिक से अधिक स्वराज्य की शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्रदान किया है। जिससे वे अपने अनुभव द्वारा नागरिकों के कर्तव्यों को सीखें, उत्तरदायित्व के बोझ को संभालने की योग्यता प्राप्त करें और अपनी इच्छाओं को नियमित रखना जानें जिसके बिना बहुमत कभी अल्प-मत पर अधिकार नहीं रख सकता।

कुछ और आगे चल कर वे इस बात को और भी स्पष्ट कर देते हैं। अंग्रेज़ों और डचों की यह शासननीति राजनीति के इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि यदि आधीन प्रजा को, जो एक ज़बर्दस्त एकाधिपत्य वाले शासन के नीचे रहती है, अज्ञानावस्था में रक्खा जाय तो उसके सरकारी नियमों से असन्तुष्ट रहने की सम्भावना अधिक रहती है, और उससे यह आशा नहीं रखी जा सकती कि वह खेतों में अपने मालिकों की इच्छानुसार जोतने बोने का कार्य करेगी। क्योंकि शिक्षा द्वारा जिस मनुष्य के ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं वह कभी केवल लकड़ी काटने वाले और पानी भरने वाले (अर्थात् दासों) की स्थिति को स्वीकार नहीं कर सकता।

एमेरिकन सरकार का यह उद्देश नहीं है कि वह फिलीपाइन द्वीप में सदा इसलिए अपना आधिपत्य जमाये रक्खे, जिससे उसको वहां के उद्योगधंधों तथा व्यापार और वाणिज्य में लाभ पहुंचता रहे। और न एमेरिकन सरकार की यह नीति है कि वह सुख और शान्ति के बहाने से फिलीपाइन द्वीप को सदा अपने अधीन रक्खे।"

फिर आश्चर्य क्या जो फिलीपाइन की जेलों में एक भी राजनैतिक क़ैदी दिखाई नहीं पड़ता, और भारतवर्ष के कारागार राजनैतिक क़ैदियों से भरे पड़े हैं। और क्या आश्चर्य, यदि हमारी व्यवस्थापक कौंसिलें रौलट बिल पास कर रही हैं तथा हमारा शासकदल भारत रक्षा कानून और सन् १८१८ वाले बंगाल रेगुलेशन के प्रयोग द्वारा हमारे प्रसिद्ध नेताओं को आये दिन शृङ्खला-बद्ध करता दिखाई पड़ता है। इन अभागों को गिरफ़्तार करना तो एक ओर रहा, इनके साथ ये क्रूर शासक वैसा वर्ताव करते हुए भी लज्जित नहीं होते जो संसार के सभ्य देशों में चोर डाकुओं और खूनियों के साथ भी नहीं किया जाता। भारतवासी इस विषय पर बहुत कुछ कह रहे हैं, पर सरकार का ध्यान अब भी भंग होता नहीं जान पड़ता। देखें यहां के शासकों में वह बुद्धि कब आती है, जब इस प्रकार की अनुचित तथा अन्यायपूर्ण घटनाओं का होना बन्द हो, और राजनैतिक क़ैदियों के साथ उनके अनुरूप व्यवहार किया जाने लगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि आज नहीं तो दस दिन पीछे सरकार को अपनी यह नीति बदलनी होगी, उसे भी अन्य देशों के समान राजनैतिक क़ैदियों के सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में विशेष व्यवस्था करनी होगी, पुराने राजनैतिक कैदियों को छोड़ना पड़ेगा और नवीन कैदियों का इस प्रकार अन्यायपूर्वक पकड़ा जाना बन्द करना होगा।

हीरे का हृदय।

अरे हृदय! हीरे का होकर, मत बन कंकड़ पत्थर तू,
सत्य मानना, मूल्यवान है, सब से बढ़ कर भू पर तू।
किन्तु तुझे अब घोर घनों का, हा! प्रहार सहना होगा,
फिर भूपों के मौलि मुकुट पर चढ़ करके रहना होगा॥ १॥
हा! मूढ़ों ने मिल कर तुझको, डाल दिया है कीचड़ में,
या दीमक ये स्वयं हुए हैं, हो मदान्ध अपनी जड़ में।
पर तू आत्म-वंश के गुण को, कभी नहीं जो भूलेगा,
तो पहले ही खा फूलेगा, फिर सब के उर झूलेगा॥ २॥
अरे! अनाड़ी के कर पड़ तू हा! अपमानित होता है,
आपा खोकर रोता है तू नहीं नींद भर सोता है।
रखना याद, किसी विधि तेरा झट पट छुटकारा होगा,
बड़े बड़ों का शीश सुशोभित फिर तेरे द्वारा होगा॥ ३॥
काट छांट तेरी हो, पर तू क्या नितान्त कट जावेगा?
और सुडौल बनेगा, तेरा मूल्य नहीं घट जावेगा।
घन विदत पर कर से होना हृदय! कर्म है वीरों का,
विपत्काल में क्या घटता है कभी धैर्य-धन धीरों का? ४॥
सब रत्नों का राजेश्वर है ग्लानि नहीं तू कर मन में,
तेरा तेज बना है अब भी दीप्यमान तेरे तन में।
क्या है हानि? यदपि अज्ञों ने तुझको मिट्टी माना है,
अरे! एकसा कभी किसी का रहता नहीं ज़माना है॥ ५॥
कोटि कोटि किरणों से वेष्ठित रत्नेश्वर! तू अब भी है,
चाहे किसी दशा में है तू दर्शनीय पर तब भी है।
तुझको तो भी अधम बनेचर यदि बांधे अपने पग में,
तो उसने काँटे को बोया अपने कर अपने मग में॥ ६॥
जब तेरा अस्तित्व नष्ट हो, तभी नष्ट हीरक होना,
जग में रह कर अरे! स्वकर से कभी न गौरव को खोना।
कहीं स्वप्न में भी क्षणभर अचल हुआ है पवन कभी?
या नाशक का किसी वीर ने कहीं किया है स्तवन कभी? ७
हीरक! तेरा नाम वज्र है, तू कैसे पिस जावेगा?
तुझे पीसने वाला जग में, स्वयं कभी पिस जावेगा।
मर्यादा-रत कभी नीरनिधि, नीर-हीन क्या होता है?
विविध यत्न करिए पर दिनकर, तमोलीन कब होता है? ८॥

रामचरित उपाध्याय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहयोग समितियाँ या क्षेत्रन्यास बंक।

[लेखक—पं० जगन्नाथप्रसाद मिश्र, बी० ए० ।]

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहां की सैकड़े ८५ मनुष्यों की जीविका कृषि पर अवलम्बित है। परन्तु इस समय कृषि की जो शोचनीय दशा हो रही है, वह किसी से छिपी नहीं है। कभी वह समय था, जब इस देश में कृषि और वाणिज्य दोनों अच्छी दशा में वर्तमान थे—शिल्प और वाणिज्य में भारतवर्ष प्राचीन काल में संसार के सभी देशों का सिरमौर था, किन्तु अब वह समय नहीं रहा। यहां का शिल्प एवम् वाणिज्य जिस प्रकार अन्यायपूर्वक नष्ट किया गया, उस दुःखमय कहानी को यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही कहना यथेष्ट है कि इस समय भारत की अधिकांश जनसंख्या कृषि द्वारा अपना जीवन निर्वाह करती है। प्रायः सभी कृषि प्रधान देशों में राजस्व के अधिकांश की पूर्ति भूमिकर द्वारा ही होती है। उद्योग एवम् वाणिज्य-प्रधान देशों में भी यद्यपि कृषि की आर्थिक महत्ता साधारण समयों में कठिनता से दृष्टिगोचर होती है, तथापि युद्ध-काल में जब बाह्य देशों की आमदनी बन्द हो जाती है अथवा अन्यान्य कारणों से देशान्तरों से रहनी वाली वस्तुओं की सुविधाएँ एकाएक अपर्याप्त हो जाती हैं; तभी हमको भली भांति इसका ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त राज्य की आय का नियत एवम् अति फलप्रद उद्गम स्थान भूमि ही है। अतएव अपने देश के कृषकों की रक्षा करना प्रत्येक राज्य अथवा सरकार का मुख्य कर्त्तव्य है। भारत सरकार एवम् सभी प्रान्तीय सरकारों ने इस आपत्ति की विभीषिका को समझकर कृषि सम्बन्धी व्यवसायों की आर्थिक उन्नति के लिए सहयोग-समितियां स्थापित की हैं।

किन्तु सरकार की सदिच्छाएँ पूर्णरूपेण फलप्रद नहीं हो सकतीं, इसका कारण यह है कि जो उपाय सोचे गये हैं, उनसे यदि कुछ लाभ हो सकता है तो इतना ही कि उस रोग के बाह्य लक्षणों का प्रतिकार हो सकता है, जो कृषकों के नस नस में व्याप्त है और जहां तक इन उपायों की पहुंच कठिनता से है, वस्तुतः जो कृषकों के मर्मस्थान को आघात पहुंचा रहा है। वर्तमान काल में ऋण देनेवाली संस्थाएँ केवल साधारण बैंक और स्थानीय महाजन हैं। बैंकों की संख्या बहुत थोड़ी है और वे वाणिज्य तथा उद्योग की आर्थिक उन्नति के लिए अधिक उपयोगी नहीं हैं। व्यापार एवम् वाणिज्य के स्वार्थों की क्षति किये बिना जिनके लिए उनकी स्थापना हुई है—कृषकों की ऋणग्रस्त दशा के सुधार की आशा उनसे नहीं की जा सकती है। कृषकों की उन्नति मार्ग में महाजन कण्टक स्वरूप समझे जाते हैं। एक बार कृषक जहां महाजन के चंगुल में फँसा; फिर जन्मभर उससे उद्धार पाने की आशा नहीं। इस बात का अनुभव प्रति दिन होता रहता है। कुछ लोगों की धारणा है कि समुचित कानून द्वारा उनका नियन्त्रण किया जा सकता है, किन्तु कठिन से कठिन कानून भी उनको इस अन्याय वृत्ति से नहीं रोक सकता। विविध युक्तियों से जिस प्रकार कानून की अवहेलना की जा सकती है वह सभी को मालूम है, उसके विस्तार की यहां आवश्यकता नहीं। महाजनों के बहिष्कार अथवा उनकी कार्यवाहियों को कम करने का एकमात्र उपाय ऋण देनेवाली प्रतिद्वन्द्वी संस्थाओं की स्थापना है जिनका उद्देश केवल लाभ करना ही न हो। यदि व्यक्तिगत बैंकों की ओर ध्यान दें तो मालूम होगा कि उनसे भी यह काम नहीं चल सकता। कारण यह है कि वे भी अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किम्बा न्यून रूप में लाभ उठानेवाली संस्थाएँ हैं। व्यक्तिगत बैंक भी व्याज की दर बढ़ाने में तथा व्यतिक्रम होने से निर्दिष्ट सीमा तक दाण्डिक शर्तों का बन्धन देने में प्रवर्तित होते हैं। अतएव रैयतों की ऋणग्रस्त दशा के सुधार के लिए, इस के प्रथम कि सहयोग-समितियां तथा अन्यान्य ऋण देनेवाली संस्थाएँ, भाव गिर जाने से अथवा अन्यान्य दैवी घटनाओं के समाधान के लिए किसी प्रान्त में लाभदायक हो सकें, एक विशेष प्रकार की संस्था का स्थापित होना अत्यावश्यकीय है। इस प्रकार की ऋण देनेवाली संस्था निजी उद्योग के भरोसे नहीं छोड़ी जा सकती, क्योंकि प्रथम तो इसके लिए अपरिमित द्रव्य की आवश्यकता है और दूसरा कारण यह है कि वर्तमान दशा में लोगों की स्वकीय संस्थाओं पर उतना विश्वास नहीं हो सकता जितना कि सरकारी संस्थाओं पर होता है, इस आयोजना (Scheme) पर सब से बड़ी आपत्ति सहयोग-समिति के समर्थकों द्वारा होती है। किन्तु इस प्रथा के लाभदायक परिणामों पर अणुमात्र भी आक्षेप किये बिना यह कहा जा सकता है कि यदि अच्छी तरह से काम किया जाय तो ये क्षेत्रन्यास बंक (Land-Mortgage-Bank) सहयोग समिति की कार्यवाहियों को सुगम कर देते हैं, जिनका कार्य वहीं से प्रारम्भ होता है जहां बैंक के उद्देश्य का अंत होता है। इन समितियों को अपने संस्थापकों की गहरी मांग को पूरा करने के लिए जो मूलधन की आवश्यकता होती है उससे भी मुक्ति मिल जाती है। सुतरां यदि ये क्षेत्रन्यास बंक स्वकीय उद्योग से चलाये गये हों तो यह आपत्ति युक्तिसंगत एवम् विचारणीय होगी, क्योंकि उस दशा में पूंजी वालों को रुपया पैदा करने की प्रवृत्ति प्रतियोगिता के कारण उत्तेजित हो उठेगी। अतएव यहां पर सरकारी संस्था का समर्थन किया जाता है। क्षेत्र न्यास बैंकों की कार्यवाहियां एक निश्चित सीमा तक सीमाबद्ध होने से, उनका सहयोग-समिति के साथ होड़ करने का अथवा उन्हें नष्ट कर देने का तो कोई भय ही नहीं है। क्षेत्रन्यास बैंकों के स्थान में दूसरी कोई व्यवस्था केवल दोषाच्छादक हो सकती है। Deccan Agriculturists Relief Act, Agriculturists Loans Act, The Usuary Act एवम् अन्यान्य भारत सरकार द्वारा रचित कानूनी साधनों से अभीष्ट फल की सिद्धि नहीं हुई है। अतएव महाजनों को नियन्त्रण करने वाली कितनी ही अवास्तविक कानूनी व्यवस्थाओं से व्यवहारिक लाभ नहीं हो सकता। इनसे केवल अधिकाधिक कुटिल युक्तियों के आविष्कारों को उत्तेजना मिलेगी, जिनके द्वारा कानून की अवहेलना की जा सके। यदि सरकार वास्तव में कृषकों को ऋणपाश से मुक्त करना चाहती है, और वर्तमान नैराश्य पूर्ण दशा से उनको उद्धार करने की इच्छा रखती है तो इस कठिन समस्या को हल करने का एकमात्र उपाय उत्तरदायित्वपूर्ण ऋण देनेवाली संस्थाओं की स्थापना है, जिनकी पूंजी यथेष्ट हो, और जिनसे रैयतों में विश्वास उत्पन्न हो और जिनके द्वारा उनकी ऋणग्रस्त दशा का सुधार हो। कृषकों की अवनत दशा की ओर सरकार का ध्यान भी आकर्षित हुआ है। स्थान २ पर सहयोग-समितियां स्थापित हो रही हैं। किन्तु इनसे यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि इनकी संख्या बहुत थोड़ी है। साधारण बैंकों, बड़े २ व्यापारों एवम् व्यवसायों तथा सहयोग-समितियों का काम क्षुद्र उद्योगों, व्यापारों और कृषि-संबन्धी व्यवसायों की आर्थिक उन्नति करना है, अतएव सरकार इनमें से किसी को बिना कुछ हानि पहुंचाये क्षेत्रन्यास बंक खोल सकती है। इन बंकों की स्थापना भारत के प्रत्येक केन्द्र में हो, और इनकी शाखाएँ ज़िला २ में खोली जायँ। प्रार्थनापत्र केन्द्रस्थित बंकों के पास जाना चाहिये और उनमें ऋण की तादाद, किश्त, बन्धक का किस्म, उसकी वार्षिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आय, वर्तमान ऋण पर व्याज की दर इत्यादि बातों का सविस्तृत वर्णन होना चाहिये। सहयोग-समिति के कार्य में हस्तक्षेप न करने के अभिप्राय से इस सवन्ध में उस समिति के पास भी सूचना देनी चाहिये जिसके कार्यक्षेत्र में प्रार्थी (applicant) रहता है, और यदि समिति के मांग की पर्याप्त पूर्ति कर सकने के योग्य हो और ऐसा करने के लिए अपनी इच्छा प्रकट करे तो अर्जी को उस समिति के पास भेज देना चाहिये। किश्तों का विस्तार अनेक वर्षों तक होना चाहिये, जिससे ऋण लेने वाले वार्षिक किश्त अदा करने के पश्चात् अपनी आय का कुछ अंश अपने भरण पोषण के लिए रख सकें। किश्तों की संख्या अधिकाधिक ४५ तक होनी चाहिये। प्रत्येक किश्त भूमिकर के साथ वर्ष भर में अदा करने के योग्य हो। इस आयोजना (Scheme) के लिए विपुल संपत्ति की आवश्यकता है। अब प्रश्न यह है कि इसके लिए पर्याप्त द्रव्य कहां से आवेगा? महाजन लोग सम्भवतः ही इसका विरोध करेंगे, अतएव उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे इसमें अपना द्रव्य लगायेंगे। निस्सन्देह कुछ भद्र एवम् देशभक्त सज्जन इसके अपवाद स्वरूप हैं, किन्तु उनकी संख्या इनी गिनी है। सब से एक उत्तम उपाय यह है कि सरकार, सौ या उससे अधिक के ऋण का कागज़ (Loan-Bond) पांच रुपये सैकड़ा व्याज की दर से निकाले। व्याज वर्ष भर में और मूलधन २०, २५ वर्षों में अदा होना चाहिये। ऋण की गारंटी राजस्व से होनी चाहिये! सरकार को इस देश में तथा अन्यान्य देशों में इन कागज़ों को प्रचलित करने का प्रयास करना होगा। किन्तु यदि इस उपाय से भी अभीष्ट द्रव्य की प्राप्ति न हो सके तो आवश्यकीय मूलधन प्राप्त करने की एक और उत्तम तथा प्रलोभ देनेवाली पद्धति यहां बनाई जा सकती है। इस देश के बहुत से लोगों ने (Premium Bond) प्रीमियम बान्ड का नाम सुना होगा जो पाश्चात्य देशों के सरकारी एवम् म्यूनीसिपैलिटियों द्वारा जारी किये जाते हैं। इन बौंडों (दस्तावेज़ों) का मूलतत्त्व यह है कि सभी दस्तावेज ग्राहकों (Bond-holders) को क्षुद्र रकम में व्याज अदा करने के बदले तीन मास, छः मास अथवा साल भर में अदा करने योग्य व्याज की समग्र रकम कतिपय राशियों में बांट दी जाती है। इस प्रकार इसका मूल्य प्रत्येक दस्तावेज (Bond) से कई गुणा बढ़ जाता है और लाटरी द्वारा इनका विभाग किया जाता है। लाटरी में वे ही दस्तावेज लिये जाते हैं जिनका व्याज अदा करने के योग्य हो गया हो। उन दस्तावेज़ों का नाम जो लाटरी में इनाम प्राप्त करते हैं रद्द कर दिया जाता है, जिससे मूलधन की यथेष्ट रकम के प्रतिशोध की बचत हो जाती है और दस्तावेज़ के ग्राहकों (Bond-holders) को भी अपने दस्तावेज़ से कई गुणा अधिक मूल्य मिल जाता है। दस्तावेज़ का मूल्य थोड़ी दर पर निश्चित किया जाता है जिससे कि गरीब लोग भी लाभ उठा सकें और इसके अतिरिक्त इसमें भारी इनाम पाने का भी संयोग है। कभी २ दस्तावेज़ के खरीदारों को छोटी २ किश्तों में मूल्य चुकाने को कहा जाता है और ऐसे खरीददारों को जो दस्तावेज दिये जाते हैं वे प्रथम किश्त के प्रतिशोध की तिथि से लाटरी में भाग लेने के अधिकारी होते हैं। यदि ये दस्तावेज इनाम प्राप्त करें तो बाकी रकम इनाम के मूल्य से घटा दी जाती है। प्रत्येक दस्तावेज के प्रतिशोध के लिए ३० या ४० वर्ष का समय निश्चित किया जाता है जिसके बाद वे सब दस्तावेज जिन्होंने इनाम नहीं प्राप्त किये हैं और फलतः अप्रतिशोधित रहे हैं, समान रूप से चुका दिये जाते हैं। खरीदारों को फंसाने के लिए संसार भर में एजेन्ट नियुक्त किये जाते हैं। और वह सरकार जो इस पद्धति का अनुगमन करती है, प्रचुर ऋण प्राप्त करने के योग्य हो जाती है, और बिना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयास के ऋण चुका देती है। अस्तु, इस प्रथा की उन्नति हम ब्याज का कुछ अंश बचा कर एक रक्षित कोष (Reserve Fund) के निर्माण द्वारा कर सकते हैं। इस रक्षित कोष (Reserve Fund) से एक निर्दिष्ट दर पर दस्तावेज़ के सभी ग्राहकों को जो अन्त तक पुरस्कार प्राप्त करने में असफल हुए हों, ब्याज का प्रतिशोध किया जा सकता है। सच तो यह है कि जहां चाह है, वहां राह है। ऊपर जिन युक्तियों का हमने वर्णन किया है, आशा है, हमारी सरकार का ध्यान उस ओर समुचित रीति से आकर्षित होगा और वह निकटवर्ती भविष्य में क्षेत्र यास बैंकों की स्थापना करने की चेष्टा करेगी।

शान्ति-पाठ ।

(१)

आगया कठिन भयङ्कर काल, काल सा जो है अति विकराल !
ग्रास नित कितने करता है ! पेट तब भी नहीं भरता है !

(२)

पाशविक बल का ज़ोरो शोर, धर्म-धरती पर छाया है।
सत्य खाकर चोटों पर चोट, पड़ा अति व्यथित लखाता है !

(३)

ज़बां पर तालों की भर मार ! क्रिया पर तोपों की धमकार !!
कहें तो मारे जाते हैं ! नहीं तो हारे जाते हैं !!

(४)

हांकते सब अपनी अपनी, सजाते अपना अपना साज।
खेद ! ऊँचे हलक़े में भी, क्षुद्र भावों का जुटा समाज !

(५)

आत्मबल की दुःखद घटती, मान-गौरव की विस्मृति है।
वचन में कार्य में न एका, इसीसे सारी दुर्गति है !!

(६)

महात्मा जन के बस पद चिह्न, बनाते सीधी सच्ची राह।
बढ़ाते चलो क़दम आगे, न रक्खो विघ्नों की परवाह॥

(७)

गिरें दल-बादल चाहे टूट, तड़ातड़ कड़्ड़ गिरें अनेक।
न होना धैर्यच्युत हे वीर, न तजना सुध-बुध, विमल विवेक॥

(८)

सभी सब योगी* बन कर के, प्रेम बदले में बरसाओ !
अनोखी आर्य-धरा पर यार, शान्ति-सुख अमृत सरसाओ !!

—हरिभाऊ उपाध्याय।

---

*योगश्चित्त वृत्ति निरोधः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास का महत्व।

[लेखक-श्रीयुत परशुराम सिरोत्रा।]

उपक्रमणिका।

एक समय था जब कि मनुष्य पशु की भांति जंगलों में विचरा करता था और उसे रूखा सूखा भोजन कर लेने और चर्म वल्कल अथवा पल्लवों से अङ्ग रक्षा कर लेने के अतिरिक्त मानव-समाज का कुछ भी ध्यान न था। उसे अहर्निश नोचने, खसोटने और पेट भरने से ही अवकाश न मिलता था। परन्तु आज अगणित शताब्दियों के अनन्तर यह उज्वल समय हमारे सम्मुख उपस्थित है। निस्सन्देह वर्त्तमान युग में संसार अपूर्व बल और वेग के साथ उन्नति-पथ पर चला जा रहा है। मनुष्य ने आज शरीर का पालन पोषण ही आनन्दमय नहीं बना लिया है, किन्तु आत्मिक और मानसिक उत्कर्ष के लिए भी शिक्षा-प्रणाली ढूंढ़ निकाली है। जिस प्रकार प्राचीन भारतवर्ष में—जब कि समस्त संसार में उसी ही का बोलबाला था—ऋषियों के क्रम के अनुसार चार वेदों, छः शास्त्रों और अठारह पुराणों की शिक्षा दी जाती थी, उसी प्रकार आजकल संसार में रसायनशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, पदार्थविद्या, भूगोलविद्या, प्राणशास्त्र, गणितशास्त्र, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, चित्रकारी, शिल्पकारी, उपन्यास, नाटक, कविता और इतिहास आदि की शिक्षा दी जाती है। इनमें से 'इतिहास' ने मनुष्य जीवन को लाभप्रद और सूक्ष्म बनाने में जितना भाग लिया है और उसका संसार में जितना महत्व है, वह परम प्रशंसनीय है। प्राचीनकाल में जब कि मनुष्य प्राथमिक अवस्था से उभरा ही था उसे इतिहास की उपयोगिता का स्वप्न में भी ध्यान न था, परन्तु ज्यों २ सभ्यता की श्रेणी बढ़ती गई, त्यों २ उसके ज्ञानचक्षु खुलते गये और वह महत्वपूर्ण घटनाओं और जीवनियों को पद्य के रूप में स्मरण रखने लगा। क्रमशः जब लिपि का आविष्कार हुआ तब से वे लिपिबद्ध होने लगीं। हमको ऐसे ग्रन्थों के उदाहरण रामायण, महाभारत और इतिहास से मिलते हैं, परन्तु वे इतिहास कदापि नहीं कहे जा सकते। अब कविता, उपन्यास और इतिहास के क्षेत्र बिलकुल पृथक २ हो गये हैं। इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमको अब केवल स्काट और होमर ऐसे कवियों पर ही निर्भर नहीं रहना पड़ता, किन्तु रांके (Ranke) गिबन (Gibbon) मामसेन (Mommsen) ग्रोटे (Grote) और यदुनाथ सरकार ऐसों का आश्रय लेना पड़ता है। परम हर्ष की बात है कि दो शताब्दियों से इतिहास का गौरव मनुष्य पर विदित हो चला है और अब इतिहासाध्ययन ही संसार की उन्नति के मुख्य उपायों में गिना जाता है, यहां तक कि इतिहासवेत्ता रोलिंस कहते हैं कि History is the first that could be given to children in order to form their hearts and understanding,' अर्थात्—इतिहास सब से पहिला विषय है जो बालकों को उनके हृदय और बुद्धि बनाने के लिए दिया जा सकता है"। सन् १८८९ में प्रोफेसर मैक्समूलर (Prof. Max Muller) ने एक व्याख्यान में, लन्दन में, कहा था कि "It is the historical spirit with which they should try to inspire every generation" अर्थात् "यह ऐतिहासिक भाव है जिससे प्रत्येक सन्तति को उत्तेजित कर देना चाहिये।

अब स्वभावतः यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इतिहास है क्या? दो तीन शताब्दियों के पूर्व तो इतिहास के अर्थ बहुत बड़े थे, यहां तक कि पदार्थविद्या, रसायन शास्त्र और जन्तु-शास्त्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Zoology) तक की बातों को इतिहास ही में सम्मिलित कर लेते थे ।* अब भी इतिहास के दो अर्थ लगाये जाते हैं:—प्रथम तो "कथा, वर्णन, अथवा भूतपूर्व घटनाओं का विवरण" और दूसरे, किसी देश के भूतकाल की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अन्य विशेष प्रकार की घटनाओं का अर्थ समझना, उनका पारस्परिक महत्व स्थिर करना और साधारणतः उनमें व्यापक नियमों की खोज करना।

इतिहास क्या है ?

इतिहास वह प्रकाश है, जिससे देश का प्राचीन अथवा अर्वाचीन चित्र हम प्रत्यक्ष रूप से देख सकते हैं । इतिहास के एक तत्ववेत्तामहाशय लिखते हैं:—"History is the cyclic poem written by Time upon the memories of men" अर्थात्, इतिहास वह वृत्ताकार कविता है जिसे समय ने मनुष्य पर अङ्कित किया है। इतिहास वह नदी है जो मनुष्य स्वभाव रूपी पर्वत से निकल कर सामाजिक, राजनैतिक और विदेशी प्रभावों के द्वारा काटे हुए मार्ग का अनुसरण करती हुई कहीं निर्मल, कहीं गंदली, कहीं धीमी और कहीं वेगयुत और अन्य देशों की सभ्यतारूपी सहायक धाराओं को साथ ले आपत्ति की चट्टानों, विभव के हरे भरे मैदानों और नीरसता के मरुस्थलों पर विचरती हुई और आन्दोलनरूपी टीलों से विचलती हुई बहती चली जाती है। अमुक देश की प्राचीन एवं अर्वाचीन दशा में आकाश पाताल का अन्तर क्यों हो गया ? वह किस कारण से म्रियमाण हो रहा है ? उसके प्राचीन आचार, विचार, देवार्चना, साहित्य, चित्रकला, धनुर्विद्या, सामाजिक-सङ्गठन, स्त्री स्वतंत्रता और राजनैतिक स्वच्छन्दता कहां लुप्त हो गई ? इतना भारी विप्लव कैसे हो गया ? किन २ गुप्त और प्रकट शक्तियों के प्रभाव से उसे वर्तमान अवस्था प्राप्त हुई ? किन २ राजनैतिक तथा अन्य दोषों से और किन २ महाभूलों से उसका पतन हुआ ? भौगोलिक स्थिति ने उस देश के परिवर्तन में क्या २ भाग लिया ? किन २ आश्रमों से गुज़रता हुआ वह देश वर्त्तमान अवस्था में पहुंचा ? उसकी छाती पर कौन २ से नाटक खेले गये ? अमुक देश ने किस तरह इतनी उन्नति कर दिखाई ? इन उपरोक्त दोषों में से किन २ से वह मुक्त था ? और कब २ उसके उदर से किन २ महापुरुषों ने जन्म लेकर उसका उद्धार किया ? उसकी वर्तमान सभ्यता किन २ शक्तियों का परिणाम है ? उसकी कुलीन सत्ता का तिलिस्म कैसे टूट गया ? उसके प्राचीन भ्रम का भूत कैसे उतर गया ? अमुक देश की जयपताका कहां २ फहराती है ? उसका फहराना कब आरम्भ हुआ था ? अमुक देश में आजकल कैसी लहर का प्रवाह हो रहा है ? समाज के लक्षण क्या पाये जाते हैं ? इत्यादि इन सब बातों का उत्तर जो विद्या वैज्ञानिक रूप से देती है, वह विद्या इतिहास है।

वंशपरिचय, संग्रामों का जय-पराजय अथवा अन्य घटनाओं का केवल तिथिमय वर्णन जैसा कि आजकल की पाठशालाओं की ऐतिहासिक पुस्तकों में दिया रहता है सच्चा इतिहास कदापि नहीं। अतः जो लोग इन्हीं पुस्तकों के आधार पर अपनी अन्तिम सम्मति स्थिर कर लेते हैं वे बड़ी भूल करते हैं। उनका कहना मानो इस प्रकार है कि जैसे किसी सज्जन की यह धारणा हो कि चित्रकारी में भिन्न २ रंगों की मिलावट के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। कविता में तुकबन्दी के सिवा रक्खा ही क्या है ? ताजमहल ऐसी इमारतें केवल पत्थरों के ढेरमात्र हैं, गणितशास्त्र में जोड़ बाकी गुणा भाग ही का तो सारा खेल है; इत्यादि। भला

* देखो, सीली रचित इन्ट्रोडक्शन टू पोलीटिकल साइन्स।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो मनुष्य कविता में लालित्य को, चित्रकारी में सौन्दर्य को, मूर्त्तिनिर्माण में भाव को और गणितशास्त्र में सूक्ष्मता, क्रमशीलता और एकाग्रता को अनुभव नहीं करता, वह यदि इतिहास को संग्रामों, वंशों और राजाओं के वर्णनमात्र कहने में तनिक भी न संकोच करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? भारतवर्ष में ही नहीं, किन्तु इङ्गलिस्तान तक में भी कुछ विद्वान पुरुष ऐसे हैं जो कहा करते हैं कि (History repeat itself) इतिहास की घटनाओं में आवृत्ति हुआ करती हैं। जैसे अमुक राजा अमुक समय सिंहासनासीन हुआ, अमुक देश में विलव हो गया, अमुक समय में एक संग्राम या आक्रमण हुआ, इत्यादि। यह तर्क बिलकुल इसी प्रकार की है जैसे कि नाटक देखते २ दर्शकों में से कोई बालक यह कहने लगे कि अरे यहां परदों का गिरना बार बार होता है, मंच के दोनों पार्श्वों से नाना प्रकार के वस्त्र पहने प्रत्येक बार कुछ लोग आते हैं, कुछ कहते सुनते और चले जाते हैं, इत्यादि। जिस प्रकार एक मनुष्य का चेहरा दूसरे मनुष्य के चेहरे से कुछ अंश तक मिलता जुलता हो सकता है, परन्तु एक सा नहीं हो सकता, इसी प्रकार इतिहास की घटनायें भी हैं। मानव प्रकृति इतनी भिन्न प्रकार की होती है, देशों और समाजों की दशायें इतनी भिन्न २ स्थितियों में हुआ करती हैं कि कभी दो स्थानों पर बिलकुल एक ही सी स्थिति होना असम्भव है।

इतिहास और अन्यशास्त्र।

मार्ले साहब का कथन है:—History is like a drama, not like a chess" अर्थात्, "इतिहास नाटक की तरह होता है, शतरञ्ज की तरह नहीं", अतः ऐसी २ बातों के बहकावे में न आ जाना चाहिये कि इतिहास भवन दोहराया करता है या नहीं। हां यह समस्या निस्सन्देह कुछ गुरुता रखती है कि क्या इतिहास विज्ञान है? उत्तर में यह निर्भीकता के साथ कहा जा सकता है कि इतिहास विज्ञान अवश्य है, परन्तु ठीक उसी प्रकार का विज्ञान नहीं, जिस प्रकार की पदार्थ विद्या या रसायन विद्या है। क्योंकि रसायनविद्या में परीक्षायें (Experiments) सम्भव हैं, किन्तु इतिहास में नहीं और रसायनविद्या में प्रकृति से ही काम पड़ा करता है, परन्तु इतिहास में मानवी खेल अधिक है। तथापि यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि यदि इतिहास में रसायनविद्या की परीक्षाओं के ढङ्ग की परीक्षायें सम्भव नहीं हैं, तो भी अनेक देशों और कालों की भिन्न २ राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, तथा अन्य प्रकार की घटनाओं की पारस्परिक तुलना से मनुष्य समाज के सामान्य व्यापक नियम स्थिर किये जा सकते हैं।

हाँ एक बात अवश्य है कि कभी कभी इतिहास में किसी २ काल तक का कोई पता ही नहीं मिलता या मिलता भी है तो अधूरा, असत्य और अविश्वसनीय, परन्तु जिस प्रकार कि सिन्दूर (Redlead) को गरम करने पर पारा निकल आता है, जिस प्रकार दूध को मथने पर घी निकलने लगता है और जिस प्रकार कि मीपों की छान बीन से मोती मिलते हैं, उसी प्रकार प्राचीन कविताओं और उपन्यासों के अवलोकन से इतिहास के मतलब की बहुत सी बातें ज्ञात हो जाती हैं। कार्य अवश्य कठिन है, परन्तु कार्य की असफलता में भी विद्यार्थी घाटे में नहीं रहता, क्योंकि उसे साथ ही साथ अन्य कई बातों की शिक्षा मिलती जाती है। बस, यही तो इतिहास में विलक्षणता है।

लिली साहब अपनी एक पुस्तक में लिखते हैं:—"There is a Science at the bottom of history" अर्थात् इतिहास की पेंदी में एक विज्ञान है। तर्कशास्त्र, आत्मविद्या आदि तो इतिहास की पूरक और सहायक धारायें हैं।

इस जगद्प्रसिद्ध प्राकृतिक नियम से कौन अभिज्ञ नहीं है कि मनुष्य सामाजिक जीव है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह स्वभाव ही से समाज में रहने की रुचि रखता है। सुप्रसिद्ध लेखक जोज़ेफ एडीसन के "The Royal Exchange" नामक निबन्ध के पढ़ने से भलीभांति विदित हो जायगा कि मनुष्य अकेला नहीं रह सकता, उसके जीवन और उसकी सभ्यता के लिए समाज अत्यन्तावश्यक है। तत्ववेत्ता एरिस्टोटल (Aristotle) का कथन है:—"Man is a political animal" अर्थात् ',मनुष्य राजनैतिक जीव है" और यह बात बिलकुल यथार्थ है भी। इतिहास की शरण जाने से पता चलता है कि उस युग में भी जब कि संसार में सभ्यता की झलक मात्र थी, मनुष्यों की यह दशा थी कि जहाँ कहीं भी कुछ मनुष्यों का समारोह हुआ, वहीं पर वे स्नेह स्वतरता और सुख कामना से प्रेरित होकर सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के निमित्त सामाजिक प्रबन्ध और राजनैतिक सङ्गठन कर लिया करते थे। सभ्यता का अधिक सञ्चार होने तक हम भारतवर्ष के प्राचीन काल में देखते हैं कि प्रत्येक गृह में एक २ मुखिया होता था, जिसके कहने के अनुसार ही सब घरवाले चला करते थे। उसकी आज्ञा उल्लङ्घन करने का साहस किसी को भी न होता था, यहां तक कि आजकल भी अनेक घरों में यह प्रथा प्रचलित है। प्रत्येक मुहल्ले का मुखिया एक चौधरी हुआ करता था, इस चौधरी की आज्ञा सभीघर के मुखियों को माननी पड़ती थी। इसी प्रकार ग्राम भर का एक सरदार हुआ करता था और नगर में एक अधिपति होता था। इसी तरह चुनाव के द्वारा लोग आपस ही में से मुखिया, मंत्री अथवा मालिक बना लिया करते और आनन्द से कालक्षेप किया करते थे। यह सुप्रबंध मुसलमानों के समय तक रहा और कहीं २ तो अब भी समाज की रक्षा के लिए पञ्चायतों का अस्तित्व नहीं मिटा है। निस्सन्देह, यह कितना सुन्दर और स्वाभाविक प्रबन्ध है!

इस बात को मानते हुए कि मनुष्य प्रकृति से ही सामाजिक तथा राजनैतिक जीव है, यह तुरन्त मानना पड़ता है कि मनुष्य को जिस प्रकार प्राण-रक्षा के निमित्त हवा में रहना, भोजन करना और जल का पीना परमावश्यक है, उसी प्रकार धार्मिक, सामाजिक एवम् राजनैतिक विषयों में भाग लेना मनुष्यता स्थिर रखने के लिए आवश्यक है।

इसी विचार से एक बड़ा इतिहासज्ञ लिखता है:—"I count the man who cares little for public weal as a worthless nuisance, not simply an inoffensive nonentity" अर्थात् उस पुरुष को जो सार्वजनिक उन्नति की परवा नहीं करता, मैं केवल हानि रहित बेकार वस्तु ही नहीं मानता, बल्कि उसे मैं प्रयोगरहित और अप्रिय समझता हूं"।

भला कौन ऐसा भला आदमी होगा जिसे इस संसार भर का नहीं, तो कम से कम, अपने देश और समाज का कुछ न कुछ हाल जानने की उत्कट इच्छा न हो और इस बात की लगन न हो कि हमारा समाज, धर्म और देश—जिनमें कि हमने जन्म पाया है—उन्नत रहे? किसे मानवोत्थान का विवरण जानने की रुचि नहीं और वर्तमान स्थिति का ज्ञान किस सभ्य पुरुष को आवश्यक नहीं? भला किसे दृढ़ता, दूरदर्शिता और "व्यवहारिक बुद्धिमानी" इत्यादि का अर्जन करना परम प्रिय न होगा?

कौन ऐसा पुरुष है जो इस बात को नहीं मानता कि थोड़ासा पढ़ना लिखना सीख-साख कर अथवा व्यापारादि करके पेट पाल लेना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य नहीं है, वरन् शिक्षा द्वारा विद्या से अपने को यथा सम्भव सुसज्जित करते हुए इस संसार रूपी नाटक-मञ्च पर अपना खेल भलीभांति खेलकर मनुष्यमात्र रूपी दर्शक गण की सेवा करके परमेश्वर रूपी स्वामी को प्रसन्न करना है! (अंग्रेज़ी में कहा भी है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar
पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"erve man if you wish to serve God" अर्थात्, यदि तुम परमेश्वर को प्रसन्न रखना चाहते हो तो मनुष्य की सेवा करो)।

अच्छा; यदि मनुष्यमात्र को या देश की सेवा हमारा उद्देश है तो इतिहासाध्ययन करना अत्यावश्यक है, क्योंकि इतिहास ही में मनुष्य के उत्थान और पतन का विवरण पाया जाता है। यदि व्यवहारिक बुद्धि का उपार्जन करना हो तो इतिहास का पढ़ना अत्यावश्यक है, क्योंकि बेकन कहता है:—"History teaches practical wisdom" अर्थात् इतिहास व्यवहारिक बुद्धि सिखाता है। यदि देश या समाज की वर्तमान स्थिति का अच्छा ज्ञान प्राप्त करना हो, यदि अपनी भाषा की उत्पत्ति, अपने ग्राम अथवा वंश की गत बातों से लाभ उठाना हो और यदि दूसरे पृष्ठ में वर्णित प्रश्नों का वैज्ञानिक रूप से उत्तर ढूंढ़ना हो तो इतिहासाध्ययन अत्यन्तावश्यक है। प्रोफेसर मोक्समूलर कहते हैं :—"There is but one way to understand the continuous growth of human mind............that is to watch its historical development.........There is but one key to the present-that is the past."*

मनुष्य के मस्तिष्क की निरन्तर उन्नति को समझने का केवल एक द्वार है—अर्थात्, उसके ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करना ...वर्तमान की एक ही कुञ्जी है और वह भूतकाल है"।

आवश्यकताओं को निवारण करने और उपरोक्त गुणों द्वारा मनुष्य की आत्मिक और मानसिक शक्तियों को तीक्ष्ण कर के उसके विचारों को परमोच्च बनाने के अतिरिक्त इतिहास के अध्ययन में आनन्द भी प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक भ्रमण ही को ले लीजिये—आगरे का ताजमहल, दिल्ली की मोती मसजिद, चित्तौर का गढ़ कालिञ्जर का क़िला, इलोरा की खोहें, चीन की दीवार और मिश्र के ढेरों का अवलोकन कर के किसे हर्ष न होगा और किस की इच्छा न होगी कि इन विचित्र स्थानों पर जो लीलायें हो चुकी हैं, उनका कुछ तो ज्ञान हो जाय? अशोक के स्तम्भों को देख कर कौन उस सुखमय समय का स्मरण न करेगा, जब कि (जैसा मैगेस्थनीज़ लिखता है) भारतवर्ष में अतुलित सम्पत्ति थी, अपूर्व गौरव और परम सुख था, लोगों के परम पवित्र जीवन हुआ करते थे, तस्करता और व्यभिचार का नाम न था और स्त्रियों को स्वतंत्रता मिली हुई थी?

इतिहास पढ़ कर सोलोमन, अशोक, एलफ्रेड, शालमैन, अकबर आदि के परम प्रशंसनीय कार्यों को कौन मुक्तकण्ठ से धन्य न कहेगा और किसे आनन्द न होगा? राजपूत स्त्रियों की अद्वितीय वीरता, महाराणा प्रताप और शिवाजी का स्वदेश-प्रेम और उनकी सत्यनिष्ठा, सिकन्दर और नेपोलियन के अद्भुत पराक्रम के विषय में जो ग्रंथ रचे गये हैं, उनको केवल एक ही बार पढ़कर किसका हृदय गद्गद न हो उठेगा? रामायण और महाभारत पढ़ कर जिनसे इतिहास की बहुत सामग्री मिलती है, किसे प्रफुल्लता न होगी? स्काट और होमर की इतिहास संबन्धी रचनायें किसे रोचक न प्रतीत होंगी? जापान ऐसे देश का गवेषणापूर्ण इतिहास पढ़ कर जो आनन्दानुभव होता है, वह अकथनीय है। बस यह कहना कदापि अत्युक्ति नहीं हो सकता कि इतिहास वह सागर है, जिसमें गोते लगाने से नित्य नया आनन्द आता है।

शिक्षा।

यह तो हुई अभिलाषाओं को शान्ति करने और आनन्द के अनुभव करने की बात। परन्तु

* देखो "Aspects of modern study" page 120.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक सुविख्यात विद्वान सर जान सीली (Sir John seely) का कथन‡ है :—"History modifies readers view of the Present and his forecast besides gratifying curiosity" अर्थात् अभिलाषा को शान्त करने के अतिरिक्त इतिहास वर्तमान के बारे में पाठकों की दृष्टि बदल देता है और भविष्य की दृष्टि को भी दूसरा रूप दे देता है। इसी पर मैकाले साहब भी कहते हैं :—History is useful in asmuch as it enables me to see my way more clearly through the present."

अर्थात् "इतिहास इस कारण से लाभप्रद है कि उसके द्वारा हम वर्तमान समय में अपना मार्ग अधिक अच्छी तरह से देख सकते हैं।" निःसन्देह यह अक्षरशः सत्य है।

फ्रांस में कुछ काल पूर्व यह दशा थी कि राजा ईश्वर के तुल्य अपने को मानता था, उसकी आज्ञा को चुपचाप सुनना और उसका पालन करना ही प्रजा का धर्म था। "जनता धन और माल की उत्पादक थी और राजा उनका विलासक एवम् भोक्ता था।" राजा प्रजा का रक्षक था और प्रजा उसकी भेंड़ बकरी। राजा चाहे जितना अन्याय और अत्याचार करता, किन्तु प्याऊं का मुंह पकड़ने वाला कोई न था। परन्तु सन् १७८९ की राजक्रान्ति द्वारा इन बातों की कायापलट हो गई।

भारतवर्ष में भी मुसलमानों के राज्य में राजा का बड़ा आतङ्क छाया हुआ था। मुहम्मद तुग़लक ऐसे राजा मनुष्य का पशुवत आखेट कराने में तनिक न संकोच करते थे। जहांगीर ऐसे बादशाहों की सनकों को पूरा करने के लिए मनुष्यों को क्षुधापीड़ित बाघों से लड़ना पड़ता था क्योंकि इसमें उनका मनोरञ्जन था। बलबन और अलाउद्दीन ऐसे बादशाह स्वेच्छानुसार मनुष्य संहार कराते थे, परन्तु आज ऐसे नरेशों की दाल क्षण भर नहीं गल सकती। आज भारतवर्ष में ही नहीं, किन्तु समस्त संसार में जनसत्ता की समस्या बड़े जोर से उपस्थित है। फ्रांस और रूस की राजक्रान्तियें, फिलीपाइन या हंगरी की स्वराज्य-प्राप्ति, इटैली, और एमेरिका की स्वाधीनता, टर्की और मिश्र की नई लहरें, इङ्गलैंड और फ्रांस में जनसत्ता और आयर्लैण्ड एवम् भारतवर्ष के आन्दोलन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इतिहास ही में यह सब बातें और उनके कारण मिलते हैं।

इस समय भारतवर्ष में—धर्म, भेद, वर्णव्यवस्था, शिक्षा का अभाव, स्त्रियों की पराधीनता इत्यादि—किन २ सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दोषों के कारण क्या अवस्था हो रही है, इसके दूर करने के कौन २ से उपाय अन्य देशों ने प्रयोग किये थे और उनमें से इस देश में कौन २ से लागू हैं? इस बात को इतिहास भली भाँति दिखला देता है।

इतिहास परमेश्वर के अटल सिद्धान्तों और नियमों को निराकार रूप से नहीं समझता, किन्तु मनुष्य के द्वारा खेली हुई सच्ची लीला के द्वारा बिना ऐतिहासिक उदाहरणों के जाने हुए उत्थान और पतन के कोई भी नियम समझ में नहीं आ सकते। ऐतिहासिक उत्पत्ति, गणित की उत्पत्ति की भांति अपूर्ण रीति से कोई बात समझा कर अलग नहीं हो जाती, किन्तु कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होकर मनुष्य को सहज में भूलों से बचाती, देशप्रेम सिखाती, वीरों और महात्माओं के कार्यों से परिचय कराती और उनके मस्तिष्कों से सम्पर्क कराती हुई मानसिक शिक्षा का अटल पाठ पढ़ाती है।

सिकन्दर नेपोलियन और बिस्मार्क ऐसे वीरों और महानुभावों की विचारशैली का सच्चा ज्ञान केवल इतिहास में वर्णित कार्यों के अध्ययन से हो सकता है। इन ऐसे वीरों ने जिन्होंने कि संसार में भारी परिवर्तन कर

‡ देखो भूमिका of "Histoy and politics by Sir John seely.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिये—किन २ कठिनाइयों को पार कर के कैसे २ अद्भुत पराक्रम और साहस के साथ काम किया, भीर पड़ने पर ये लोग कभी विचलित न होकर अपनी बुद्धिमत्ता से किस प्रकार काम किया? थोड़ीसी सामग्री और मुट्ठी भर सेना के साथ किस प्रयत्न से पर्वतों को नीचा दिखाया अथवा इन वीरों ने अपनी अमथकित सेना में किस ओजस्वी वक्तृता के द्वारा एक नया आवेश भरने की चेष्टा की और इनकी मानसिक शक्तियां कैसी महान थीं? प्राचीन भारत में ऋषि लोगों ने किस दैविक शक्ति से चार वेद छः शास्त्र, अठारह पुराणों की रचना की थी? शिवा जी और महाराणा प्रताप किस अतुलित पराक्रम और मानसिक बल से मर्यादा की रक्षा की थी, अशोक किस बुद्धिमत्ता से अपना शासन चिर-स्मरणीय कर गया, इत्यादि इन सब बातों का पता चलता है?

भारतवर्ष के इतिहास का जिसने वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया होगा यह देख कर कि आजकल इस देश में जिसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी विचित्र है और जो भूतकाल में हिन्दू और मुसलिम सभ्यता के गौरवपूर्ण समय को देख चुका है और जिसमें तीन शताब्दियों के अपकर्ष और विरोध के अनन्तर अब सुख शान्तिमय ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित है, पाश्चात्य सभ्यता के प्रवेश को देखकर स्थिति का अनुभव करेगा। सामाजिक अवस्था जैसा कि अभी वर्णन किया जा चुका है) सन्तोष-प्रद नहीं है, मतभेद इतना बढ़ाचढ़ा है कि राजनैतिक उन्नति में बाधा पड़ रही है; कृषिदशा, शिक्षा-प्रणाली, व्यापार-व्यवस्था और शासन-प्रणाली की शोचनीय अवस्था है, शिक्षित और अशिक्षित समाजों के मध्य में शासकों और शासितों के मध्य में तथा उच्च कुलों और नीच कुलों के मध्य में एक बड़ी खाँई है, मध्यम श्रेणी निरन्तर निर्धन और दुखी हो रही है, तीसरी श्रेणी अन्धकारमय और प्रथम श्रेणी प्रायः अचेत और स्वार्थी है परन्तु संसार की नई लहर ने यहां भी प्रवेश करके परिवर्तन कर दिया है। जनता के दिलों में नई उमङ्गें उठ रही हैं। नये २ कार्यों का अनुष्ठान हो रहा है इत्यादि इन सब बातों की परीक्षा के अनन्तर इस हम देश की वर्तमान स्थिति में और भविष्य तक में अन्तर दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

इतिहास केवल इतनाही नहीं करता, किन्तु वह अन्य विज्ञानों की अपेक्षा कहीं उत्तम रीति से पद पद पर कार्यकारण की शिक्षा देता है। तर्कशास्त्र की भांति इतिहास का यह अटल सिद्धान्त है कि कोई भी घटना हो, बिना कारण के कदापि नहीं हो सकती। चाहे यह भले ही हो कि वह कारण दूर अथवा गुप्त होने के कारण प्रतीत न हो, चाहे कोई भारतवर्ष में मुसलिम और बृटिश राज्यों को स्थापनाओं, वर्तमान महायुद्ध और रूसी-राज्यक्रान्ति को भाग्य का उलट फेर बताया करे, परन्तु इतिहासज्ञ उनके कारणों का चित्रकार की भांति चित्र खींचकर सामने रख देगा।

बाबर के आक्रमण ही का उदाहरण ले लीजिये। अफ़गान बादशाहों और सिपाहियों ने अपने ठण्डे देश की शक्तिवर्धक वायु को छोड़कर इस देश में गर्म वायु और भोग-विलास के कारण अपना वह बल और आवेश खो दिया था. मुग़ल लोग ताज़े २ वहीं से आ रहे थे। चङ्गेज़ खाँ के आक्रमणों के समय से उनका आतङ्क यहाँ छाया हुआ था और फिर इन मुग़लों का सरदार बाबर इस समय ऐसा बली, पराक्रमी, साहसी, विद्वान, सर्वप्रिय, कृपालु, उदार और दृढ़ नेता था। देश की यह दशा थी कि अफ़गानों की "दास प्रथा" के कारण कई एक दास दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हो चुके थे। अतः उन्होंने अपने सम्बन्धियों को उच्च स्थान दे रक्खे थे। वे कालान्तर में स्वाधीन हो बैठे थे, दिल्ली का राज्य केवल नाम ही में बड़ा था। दरिया खां जौनपुर से, दौलत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाँ पञ्जाब से और इब्राहीम का चचा अलाउद्दीन ये सब दिल्ली पर अधिकार करना चाहते थे। इब्राहीम का शासन परम असह्य और अत्याचारपूर्ण हो रहा था। लोगों में फूट फैली हुई थी। तैमूर के आक्रमण का ध्यान लोगों को रह २ कर हो जाता था। अधिकांश हिन्दू धार्मिक मतभेद के कारण तथा राजपूत अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए परस्पर विरोधी हो रहे थे। भला, ऐसी अवस्था में बाबर ऐसा पुरुष जो कि कई बार यहां आकर ये बातें देख गया था, कैसे न आता? इसी प्रकार मुग़लों के पतन की भी व्याख्या की जा सकती है कि कैसे औरङ्गज़ेब के अत्याचार, हिन्दू-विरोध, मरहठों और सिक्खों के अस्तित्व, उनके प्रभाव और देश की उस समय की दशा इत्यादि ने क्या परिवर्त्तन कर दिया था और वह कैसी अशान्ति का समय था। इसी प्रकार यूरोप के १५वीं शताब्दी के विद्या, पुनरुज्जीवन, १६वीं शताब्दी के धार्मिक संशोधन (Religious reformatiry) १७वीं शताब्दी के युद्धों में १८वीं शताब्दी की फ्रेंच राज्यक्रांति, १६वीं शताब्दी के राष्ट्रीय आन्दोलनों और २०वीं शताब्दी के वर्तमान महायुद्ध के अनेक कारण हैं जो वर्षों से काम कर रहे थे।

इतिहास सत्यता का भी पाठ पढ़ाता है। यहां पर एक उद्धृतांश ही पर्याप्त होगा। गिबन का कथन है:—"Truth, naked truth, unblushing truth is the first thing in History" अर्थात् "इतिहास में सबसे प्रथम बात सत्यता और केवल सत्यता है (देखो उसकी autobiography)

एक पन्थ दो काज।

इतिहास की प्रतिभा यहां पर ही समाप्त नहीं हो जाती। इतिहासाध्ययन में यह विलक्षणता है कि एक पन्थ दो काज की कहावत बिलकुल चरितार्थ होती है। अभी तक उसकी प्रशंसा में जो कुछ कहा जा चुका है, वह उसके निम्नलिखित लाभों का पासंग भी नहीं। सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता मार्ले लिखते हैं:—"Direct lessons of History are few, its specific morals rare" अर्थात्, इतिहास के सीधे पाठ बहुत कम हैं और उसके आदेश तो और भी कम। निस्सन्देह इतिहास को ठीक प्रकार से अध्ययन करने में स्वयं ही जो विशेष मानसिक लाभ हो जाता है, वह और किसी द्वार से होना दुर्लभ है। यह लाभ स्वभावतः हो जाता है, इस मानसिक लाभ का एक खण्ड यह है कि सत्यता की खोज की प्रबल अभिलाषा हो जाती है जैसे किसी घटना के समस्त मुख्य कारण, किसी व्यक्ति के चरित्र के विषय में पूरा २ ज्ञान, किसी विशेष बात का वर्णन इत्यादि ये सब बातें हमने किस प्रकार निर्णित कर लीं? इसकी उत्पत्ति क्या है? कैसे मालूम किया कि ये २ बातें झूठ से अमिश्रित हैं? हम किस विश्वसनीय आधार पर इसे बात को सत्य मान लें? इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ निकालना इतिहास के विद्यार्थी का प्रथम कर्त्तव्य है और इसी खोज में उसे जितनी छान-बीन करनी पड़ेगी और इस छानबीन से जो लाभ होता है, वह प्रत्यक्ष है। किसी घटना के विषय में लेख, ग्रन्थ, स्मारक, पत्र, गीत, शिला इत्यादि जो कुछ भी सामग्री मिले उन सब को संग्रह करके अपनी सारी बुद्धिरूपी कन्नी बसूली द्वारा यथासम्भव परिश्रम से सत्यरूपी भवन बनाना उसका परम धर्म है। उस सामग्री में दिये हुए वर्णनों की तुलना इस प्रकार करनी पड़ती है, क्या यह सब वर्णन एक दूसरे से मिलते जुलते हैं? यदि नहीं तो असत्य कौन सा हो सकता है? अच्छा इन पत्रों और लेखों के अमुक लेखक को उन घटनाओं में स्वयम् उपस्थित रहने का भी अवसर था या नहीं? यदि था तो कितना? उसके उपस्थित रहने का उद्देश क्या था? वह सरकारी नौकर था या अन्य कर्मचारी, वह अपने मित्र के मनोरञ्जन के लिए लिखा करता था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या स्वदेश को ठीक २ सूचना देने के लिए ? या दोनों बातें थीं ? उस लेखक में योग्यता कितनी थी ? क्या उसकी जीवनी से कुछ पता चलता है कि उसने कितनी शिक्षा पाई थी ? यदि योग्यता भी थी तो उसमें लिखने की शक्ति कैसी थी ? यदि यह भी था तो उसे लिखने का अवकाश कितना मिलता था ? और उसे लिखने की रुचि कितनी थी ? किसीका उसके ऊपर दबाव तो नहीं था ? (जैसे औरङ्गज़ेब के समय का एक लेखक ख़फ़ी ख़ां था परन्तु उसने जीवन भर अपने लेखों को भय के मारे प्रकाशित नहीं करवाया) यदि वह स्वयं उपस्थित नहीं रहता था तो वह समाचार किन २ द्वारों से एकत्रित करता था और फिर ये समाचार देनेवाले किससे समाचार लेते थे ? उनके अवकाश, योग्यता, रुचि आदि का क्या हाल था ? उनके स्वभावों में क्या २ दोष थे ? क्या वे बाबर की तरह निष्पक्ष और सत्यनिष्ठ थे ? इस सब से लाभ यह होता है कि Black Hole ऐसी कपोलकल्पित घटनायें असत्य सिद्ध हो जाती हैं और मुहम्मद तुग़लक व औरंगज़ेब ऐसे महापुरुषों के चरित्रों के विषय में भ्रम दूर हो जाता है और सत्य-शोधन की टेव पड़ जाती है। क्या इस प्रकार के अन्य लेख पत्रादि कभी नष्ट तो नहीं किये गये, क्या वे वैसे ही बने हैं ? इस छान बीन में यदि कोई सिद्धान्त बाद को असत्य निकल आये तो हताश न होना चाहिये, क्योंकि बर्क, फ़ौक्स भी गलती कर चुके हैं। परन्तु सत्य की खोज के लिए कई और बातों की आवश्यकता है। इनमें से एक बात मनन करना है। इतिहास के विद्यार्थी को अपनी परिस्थितियों पर सूक्ष्म रीति से विचार करना आवश्यक है। अपने सारे अनुभव और अपनी सारी योग्यता का प्रयोग करके अपने चारों ओर की बातों पर यथासम्भव ध्यान देते हुए अपने विचारों की तुलना करके उन्हें भूतकाल की बातों में घटित करना परमावश्यक है। उदाहरणार्थ वर्तमानकाल की घटनाओं के निरीक्षण से हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि बाबर को तोपों से कितनी सहायता मिली होगी और मुसलमानों के एकता, भ्रातृत्व और समानता के भाव के तथा अपनी दीनताई के लिए 'शहीद' हो जाने के अद्भुत प्रेम को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बाबर की विजय का उपर्युक्त भाव एक मुख्य कारण था। आजकल के दंगे-बखेड़ों के देखकर अच्छा पता चल सकता है कि अविद्यान्धकार, मतभेद, जातीय-स्पर्धा और कुप्रबन्ध के समय जनता में कितनी खलबली मच जाती है, किस प्रकार नगर और ग्राम उजड़ जाते हैं, लोग अपनी रक्षा के लिए क्या २ प्रयत्न करते हैं, "मारो २" "आये २" आदि शब्दों से कैसी हलचल मच जाती है, कुछ लोग कैसे भयभीत हो जाते हैं और कहीं २ नगर किस प्रकार भांय भांय करने लगता है, सहायक की कैसी आवश्यकता होती है इन बातों को ध्यान में रखकर यदि भारत में अठारहवीं शताब्दी का चित्र देखा जाय और पिण्डारियों के समय की अशान्ति का अध्ययन किया जाय तो अत्युत्तम होगा। जिस प्रकार आजकल अंग्रेज़ी भाषा के जानने या न जानने से व्यक्तियों के और समाज के जीवन और कारबार में बड़ा भारी अन्तर पड़ जाता है, उसी प्रकार हम समझ सकते हैं कि तीन चार शताब्दी के पूर्व तत्कालीन राजभाषा फ़ारसी जानने या न जानने का कैसा प्रभाव पड़ता होगा। ऐसा करने में इतिहास का तो अच्छा ज्ञान हो ही जायगा और ऊपर से सूक्ष्म विचार की भी उन्नति होगी।

इतिहास के अध्ययन में बहुत पुस्तकों के पढ़ने की अत्यावश्यकता होती है क्योंकि एक ही देश के इतिहास पर अनेक पुस्तकें पढ़ने से केवल आनन्द ही नहीं प्रतीत होता किन्तु नई नई बातें भी मालूम हो जाती हैं। इसका कारण प्रत्यक्ष है कि एक ही लेख की प्रत्येक घटना के विषय में प्रत्येक बात नहीं मालूम हो सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर प्रत्येक लेखक की विचार-शैली भिन्न भिन्न हुआ करती है, प्रत्येक लेखक प्रत्येक घटना को एक ही दृष्टि से नहीं देखता। जगत्प्रसिद्ध इतिहासज्ञ गिबन ने अपनी जीवनी* में लिखा है कि "History is sombody's image of the Past." और "Style is the image of one's character." अर्थात "इतिहास भूतकाल का किसीके द्वारा खींचा हुआ चित्र है" और लेखन-शैली लेखक के चरित्र की प्रतिमा हुआ करती है"। इनकी सत्यता में विश्वास करते हुए तुरन्त स्वीकृत करना पड़ता है कि इतिहास के अध्ययन के लिए बहुत पढ़ना चाहिये और विस्तृत पठन के लाभ किसे ज्ञात नहीं हैं? इसके साथ ही साथ यह कह देना परमावश्यक है कि इतिहासाध्ययन के लिए अनेक भाषाओं का जानना भी ज़रूरी है। भला क्या अशोक के सुशासन का हाल बिना पाली पढ़े, सिकन्दर के आक्रमण तथा उस समय के भारतवर्ष का कुछ ज्ञान बिना ग्रीक पढ़ें, अकबर के सुकाल का हाल बिना फ़ारसी पढ़े और अङ्गरेज़ी समय का हाल बिना अङ्गरेज़ी पढ़े पूरी तरह ज्ञात हो सकता है? भला क्या भारतीय प्राचीन सभ्यता का चित्र बिना संस्कृत ग्रन्थ पढ़े सामने आसकता है? इन भाषाओं का पढ़ना भारतीय इतिहास के पढ़ने के लिए अत्यावश्यक है। हां अनुवादादि से कुछ काम निकल सकता है परन्तु अनुवादों से मूल ग्रन्थों के समान पूरा २ लाभ और आनन्द नहीं मिल सकता। क्या कहीं अशोक के स्तंभों, वेदों, पुराणों, शास्त्रों, फ़रिश्ता और अङ्गरेज़ी में जो सहस्रों ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं उनका यथोचित ज्ञान केवल अनुवादों के द्वारा हो सकता है? अनुवादों ही पर निर्भर रहना और इतिहासज्ञ कहलाना अपने मुंह मियाँमिट्ठू बनना है। अतः इतिहास का सच्चा प्रेमी कभी केवल अनुवादों ही पर निर्भर न रह कर कई भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करके अपनी मनोकामना सफल करेगा।

इतिहास के प्रयोजन से अन्य भाषायें सीख लेने पर उनके साहित्य के अध्ययन होने से हम और भी लाभ उठा सकते हैं। फिर इतिहास का सच्चा लाभ उठाने के लिए न केवल एक देश का किन्तु यदि संभव हो तो समस्त देशों के इतिहासों का पढ़ना अत्युत्तम है क्योंकि एक ही देश के भूतकाल में संसार की सारी विचित्रता, संसार भर का सारा अनुभव और संसार भर की सारी बुद्धिमत्ता तो मिल ही नहीं सकती और फिर विद्यार्थी को यह सोचना चाहिये कि प्रथम वह संसार का निवासी मनुष्य है तब वह अपने देश का देशवासी। उदाहरणार्थ प्रत्येक ऐतिहासिक विद्यार्थी को जापानोन्नति* फ्रांसीसी-राज्यक्रान्ति, ग्रीस तथा रोम के ओज-समय इतिहासों तथा भारत के इतिहास का अध्ययन अवश्य करना चाहिये। फिर इतिहासाध्ययन तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक कि देशाटन न किया जाय। भला किस ऐतिहासिक विद्यार्थी के लिए इतिहास में वर्णित स्थानों को प्रत्यक्ष देखना लाभप्रद एवं आवश्यक नहीं? भला चित्रकूट, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, प्रयाग, काशी, नासिक और लंका देखे बिना प्राचीन भारत का, पाटलीपुत्र, गोरखपुर, सांची और तराई के खण्डरों को देखे बिना अशोकादि के काल का, कन्नौज, आगरा दिल्ली, कालिञ्जर, चित्तौर तथा फ़तहपुर-सीकरी के देखे बिना मध्यकाल का, इलाहाबाद, मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, कानपूर, लखनऊ आदि को देखे बिना ब्रिटिश राज्य का अच्छा ज्ञान होना सम्भव है? इसी बहाने देशाटन करने का मिल जाता है और देशाटन से अनुभव, सांसारिक ज्ञान तथा बुद्धि की जो वृद्धि होती है उसे कौन नहीं जानता?

---

* देखो "Gibbon's autobiography" का introduction.

* देखो "जापानदर्पण" और सेंट निहालसिंह की "Messages of uplift for India".

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बात और है अर्थात् ऐतिहासिक नक़शों तथा भौगोलिक विद्या का ज्ञान परम आवश्यक है और जो अन्य लाभ इनके उपार्जन से होते हैं वे सभी जानते हैं। प्रयाग और इलाहाबाद में, आर्यावर्त्त और इंडिया में, पटना और पाटली-पुत्र में क्या अन्तर है ? तलिङ्गना और उड़ीसा में क्या सम्बन्ध है ? किन २ नदियों के किनारे पहले रेत ही रेत थी आज नगर बसा है या घना घन खड़ा है ? ऐसे ही प्रश्नों का उत्तर देने के लिए ऐतिहासिक नक़शों का होना परमावश्यक है क्योंकि बिना इनके ऐतिहासिक ज्ञान में भ्रम हो जाने की आशङ्का है। यदि ऐसे नक़शे न हों तो ये परिवर्तन कैसे स्मरण रह सकते हैं ?

प्राचीन समय में जब कि जलयानों का आगमन भारतवर्ष में नहीं हुआ था, आक्रमण केवल पश्चिमोत्तर से ही क्यों होते थे ? दो शताब्दियों तक रहने के पश्चात् मुग़ल लोगों ने पराक्रमहीन, विलासी और अपने पूर्व बल से रहित होकर अपना सत्यानाश क्यों कराया, बम्बई क्यों बड़ा भारी नगर हो गया? दिल्ली ही भारत की राजधानी इतने समय तक क्यों रही ?

दक्षिणी भारत पर अलाउद्दीन का आक्रमण क्यों हुआ था ? मरहठों की अधिक हानि हुए बिना ही वे प्रायः क्यों विजय पाते जाते थे ?

इङ्गलैंड के टापू होने से और फिर एक कोने में होने के कारण (उसे जलयानों ही पर आश्रित रहना पड़ता था अतः जहाज़ों का काम प्रायः पड़ने से सामुद्रिक बल बढ़ता गया और कोने में रहने के कारण वह झगड़ों से मुक्त रहा करता था और उसकी सामुद्रिक वायु बारहों मास काम करने के लायक़ है) और उसमें लोहे और कोयले की खानें होने के कारण उसकी उन्नति में कितनी सुविधा हुई। फ्रांस की ऐसी स्थिति के कारण यूरोप में कैसे बड़े परिवर्तन हो गये इत्यादि इन सब बातों की निर्णयकर्त्री भूगोल-विद्या है। अतः इतिहास के लिए भूगोल-विद्या की भी बड़ी आवश्यकता है। भूगोल-विद्या का अध्ययन अन्य अनेक लाभ पहुंचाता है। इतिहास को पढ़ने के पूर्व ही भिन्न २ धर्मों का अध्ययन कर लेना अत्यावश्यक है क्योंकि धर्म को—जिसके कारण अनेक आक्रमण हुए, संसार में यत्रतत्र भारी परिवर्तन हो गये और खलबली मच गई, जिसकी रक्षा के लिए अनेक पुरुषों ने घोर यातनाओं का सामना किया, सहस्रों जानें गईं, अनेक पन्थ और सम्प्रदायों के जन्म हो गये—इतिहास से पृथक कर देना अन्याय ही नहीं किन्तु भारी भूल है। इस प्रकार इतिहास के अध्ययन के साथ धर्मों का आपेक्षिक अध्ययन स्वयं हो जाता है और वर्तमान समय में इस अध्ययन से एक बड़ा भारी काम निकल सकता है। एक मुख्य बात और है अर्थात् इससे सामाजिक नियमों से अच्छा परिचय हो जाता है। इतना कह देना पर्याप्त होगा कि समाज को, जो कि इतिहास का एक प्रधान अंग है, छोड़ देने से इतिहास इतिहास ही नहीं और सामाजिक उत्थान व पतन का वैज्ञानिक परिचय इतिहासाध्ययन ही में खासी मदद न देगा किन्तु सामाजिक उन्नति करने में भी परम सहायक होगा। यदि यह लोकोक्ति सत्य है कि "Practice makes Perfect" अर्थात् "अभ्यास पूर्ण बना देता है" तो क्या इतिहासाध्ययन से एकाग्रता, तीक्ष्णता और क्रमशीलता, जिनका कि इतिहास में पद २ पर काम पड़ता है, न आजायँगी? बोर्न साहब ठीक लिखते हैं कि "History teaches to think historically" अर्थात् इतिहास ऐतिहासिक रीति से विचार करना सिखाता है। निस्सन्देह इससे प्रत्येक कार्य को क्रम, सावधानी और दूरदर्शिता से सोचना आजाता है।

इतिहास यह भी बतलाता है कि थोड़ी २ सी बातें इतिहास में कितना भारी परिवर्तन कर दिया करती हैं, जैसे नेपोलियन के स्थान पर वाशिङ्गटन नेता होता तो यूरोप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आजकल और ही दृश्य होता; यदि मीर जाफ़र केवल सिंहासनासीन होने का अभिलाषी न होता तो निस्सन्देह भारत की तत्कालीन राजनैतिक अवस्था में भारी अन्तर हो जाता और यदि मुहम्मद तुग़लक केवल उद्धत स्वभाव का न होता तो वह अपने समय का सब से बड़ा राजा हो जाता । इतिहास के ठीक २ ज्ञान के लिए तर्क-शास्त्र (Logic) का; मानस-शास्त्र Psychology का; मनुष्य-शास्त्र (Anthropology) का ज्ञान भी उतनी ही मात्रा तक आवश्यक है जितनी कि अन्य बातें । इन बातों की सहायता के बिना इतिहास का अध्ययन करना ऐसा निरर्थक है जैसा कि रेल यात्रियों के लिए एञ्जिन के बिना रेल गाड़ी, तथा ऐसा निष्प्रयोजन और निष्फल है जैसा कि बिना धन के व्यापार की इच्छा, एवम् ऐसा भ्रमात्मक है जैसा कि एक नेत्रान्ध कोचवान को गाड़ी पर बैठकर बिना गढ्ढों में गिरे और चोटें खाये हुए ठीक समय में अपने लक्ष्य तक पहुंच जाना ।

उपसंहार ।

इतिहास का अध्ययन इस प्रकार करने से यह ज्ञात हो जायगा कि हां इतिहास कोई महत्व की चीज़ है और इतिहास वह क्षीरसागर है जिसमें प्रत्येक सभ्य मनुष्य को डुबकी लगाना चाहिये । एक मनुष्य जिसके पास असंख्य धन हो और वह उस सारे धन को बड़ी श्रद्धा के सहित देश की सेवा में लगादे तो भी उसकी सेवा उस सेवा के समान नहीं हो सकती जो कि एक सच्चा इतिहासज्ञ अपनी मातृभूमि की सेवा कर सकता है । धन जो स्वभावतः ऐहिक है कहां तक परमार्थ कर सकता है? यदि कर भी सकता है तो परिमित क्षेत्र ही का और परिमित समय तक । परन्तु जो सामाजिक और राजनैतिक उन्नति एक इतिहासज्ञ की दूरदर्शिता से हो सकती है वह बहुत मनुष्यों की और अधिक समयवाली होगी । यदि ज्योतिषी अपने गणित के द्वारा किसी व्यक्ति के भविष्य की कुछ बातें बतला सकता है और यदि वैद्य रोगी को स्वस्थ कर सकता है तो यह कह देना अत्युक्ति कदापि न होगी कि एक सच्चा इतिहास देश का दुःख अपनी दूरदर्शिता के बल से दूर कर सकता है, अपने ज्ञान के द्वारा देश की स्थिति का अच्छा अध्ययन करके वह कुछ भविष्य की बातें भी बतला सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं । सर जान सीली का कथन है कि "History without political science has no fruit. Political science without History has no root."

अर्थात "बिना राजनैतिक ज्ञान के इतिहास फल और फूलरहित है और बिना ऐतिहासिक ज्ञान के राजनैतिक ज्ञान मूलरहित है ।"

अतः इतिहास के विद्यार्थी को राजनीति पढ़ना अत्यन्तावश्यक है, विशेषतः नेताओं, कर्मवीरों और सुधारकों के लिए ऐतिहासिक-ज्ञान परमावश्यक है क्योंकि जिसकी वे उन्नति करना चाहते हैं उसका वे इतिहास ही नहीं जानते तो वे किस काम के सुधारक या नेता हैं? लोग वृथा ही में इतिहासरूपी सूर्य के ऊपर धूल डालने का प्रयत्न किया करते हैं इसका कारण केवल अज्ञानता है । ऐसे लोग भारतवर्ष के इतिहास और उसकी शिक्षा-प्रणाली से ही अपने सिद्धान्त बना लेते हैं परन्तु उन्हें मालूम नहीं कि फ्रांस में इतिहास पढ़ाने के लिए कैसे २ देशभक्त और योग्य नेताओं ने एक पृथक् कमेटी बना दी है जो ऐतिहासिक पुस्तकों की निरन्तर उन्नति करती रहती है; उन्हें मालूम नहीं कि इङ्गलैंड, जर्मनी, एमेरिका और स्विज़रलैंड में इतिहास पर कितना अधिक ध्यान दिया जाता है । उन्हें मालूम नहीं कि यूरोप में गिब्बन, बकल, नीबर, गुइज़ट, जैनाफ़न, फ्रीमन, हिरोडोटस्, ऐसे इतिहासलेखक और हिगल, मार्लें, ह्यूम, मिल ऐसे ऐतिहासिक तत्त्ववेत्ता हो चुके हैं । परन्तु भारतवर्ष में भी आशा है कि यह दिन न रहेंगे क्योंकि यहां भी रानडे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वक्त और सरकार ऐसे इतिहासज्ञ पैदा हो चले हैं और इतिहास का महत्व धीरे २ लोगों को विदित हो चुका है और लोग भी अपनी हीनता पहिचान चले हैं।

यह वह समय है जब कि नये नये आविष्कारों के साथ २ साहित्यिक और ऐतिहासिक उन्नति भी होती जा रही है। संसार भर में भ्रातृत्व, समानता और स्वतंत्रता के लिए भिन्न भिन्न देश चोटी-एंड़ी का पसीना एक कर रहे हैं, प्रत्येक देश, देशों की घुड़दौड़ में अग्रसर हो जाने के लिए यथाशक्ति परिश्रम कर रहा है। युग पूरा है और सभ्यता खूब फैल रही है संक्षेप में इतिहासाध्ययन ऐसी तैयारियों को करने; समाजोन्नति और देशोन्नति करने के लिए ही आवश्यक है।

अस्तु भारतवर्ष की अवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन करना और उसकी उन्नति की मूल प्रणाली ढूंढ़ निकालना भारत के सपूतों का प्रथम कर्त्तव्य है।

यदि वे अपने देश के प्राचीन गौरव को संसार पर विदित करना चाहते हों, यदि वे इस घुड़दौड़ में पीछे न रह कर अग्रसर होना चाहते हों; यदि वे अपनी जन्मभूमि के ऋण से उऋण होना चाहते हों, यदि वे अपनी कालिमा को मिटा देना चाहते हों और यदि वे स्वाभिमान रखते हों तो उन्हें उचित है कि वे इतिहास ऐसी अद्वितीय विद्या का अध्ययन स्थगित न करके उस इतिहास के महत्व को समझें और विदेशियों पर निर्भर न रह कर अपने धर्म का पालन करें। इस निष्क्रियता और अकर्मण्यता को तिलाञ्जलि दे कर भारत की भीषण विभीषिका न देखते रहें। हर्ष है कि इनकी सुविधा के लिए ब्रिटिश राज्य के सुखों से हम लोग सम्पन्न हैं। देशाटन, पुस्तक-प्रकाशन इत्यादि सभी बातों की सुगमता हो गई है। सामग्री भी बड़ी प्रचुर उपस्थित है अर्थात् प्राचीन ज्ञान के लिए वेद, पुराण, उपनिषद्, सूत्रग्रन्थ, महाभारत, स्मृति, बौद्ध ग्रंथ, जैन ग्रंथ, अश्वघोष, कालिदास, रामदास, कबीर, तुलसी, चैतन्य आदि की रचनायें, मुद्रिकायें, स्तम्भों पर के लेख इत्यादि, मुस्लिम समय के भारत का ज्ञान पाने के लिए, फ़रिश्ता, आईने अकबरी, उर्दू और फ़ारसी के आज अनेक ग्रन्थ और विदेशियों के पत्रादि और ब्रिटिश समय के ज्ञान के लिए तो सहस्रों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। बस अन्तिम शब्द ये हैं:—

"यद्यपि भयंकर भाव से छाई हुई है दीनता।
कुछ २ समझने हम लगे हैं किन्तु अपनी हीनता॥
बीती नहीं यद्यपि अभी तक है निराशा की निशा।
है किन्तु आशा भी कि होगी दीप्त फिर प्राची दिशा॥
अब भी न यदि कुछ कर सके तो फिर हमारी भूल है
अनुकूल अवसर की उपेक्षा हूलती फिर शूल है॥"

(कविवर श्री० मैथिलीशरणजी गुप्त)।

हृदयोद्गार।

[लेखक—श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त।]

चुटकियाँ लो और दो सौ गालियां
ये तुम्हारे पान की हैं छालियां
पहुंचते ही कान तक मेरी कथा
झूम झूलेंगी तुम्हारी बालियां
चित्त को न चुरा सका तो बात क्या
लाख ताले खोल लेंगी तालियां

मुंह न मोड़ो पथ कड़ुआ ही सही
छोड़ते हैं क्या परोसी थालियां
खार खाने पर तुम्हें कैसे रुचें
आज मेरी फूल-फल की डालियां
रंग ही देता मुझे है ढंग से
धन्य आंखों की तुम्हारी लालियां।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देशभक्ति का अनुष्ठान

[लेखक-पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा, 'कौशिक' ।]

(१)

सूर्यनारायण क्षितिज के नीचे पहुँच चुके हैं, अँधेरा हो चला है। इसी समय दो घुड़सवार धीरे धीरे एक ओर को चले जा रहे हैं। दोनों धूल में लतपत हैं, पास थोड़ासा असबाब भी है घोड़े भी पसीने से तर हैं--इन बातों से पता लगता है कि ये लोग दूर से आ रहे हैं। दोनों चुपचाप चले जा रहे थे, उसी समय हठात् वायु का वेग बढ़ने लगा। यह देखकर एक ने दूसरे से कहा—भाई जान! हवा तेज़ चल रही है, कहीं तूफ़ान न आवे—शहर कितनी दूर है?

जान ने आकाश की ओर देखकर कहा--हां कुछ मालूम तो ऐसा ही होता है--मालूम क्या यह तो स्पष्ट है--वह देखो—यह कह कर उसने उँगली से आकाश की ओर इशारा किया। जान के साथी ने घूमकर देखा और देखतें ही बोल उठा—ओफ़! कितनी काली घटा है, बिजली भी चमक रही है—निश्चय तूफ़ान आवेगा—अब?

"अब क्या, चलो किसी बाग़ में चल कर ठहरें--शहर तो अभी दूर है कम से कम दो घंटे का रास्ता।"

"एँ दो घंटे का"!

और क्या इससे कुछ अधिक ही होगा, कम नहीं।

तब तो बेमौत मरे, बाग़ में भला बचाव कहां हो सकता है।

यदि घने वृक्षों के झुंड हुए तो बचाव भली भांति हो सकता है।

तो फिर उड़ चलो, तूफ़ान आने ही वाला है, घटा बड़ी तेज़ी से फैल रही है।

दोनों ने घोड़ों को एँड़ लगाई और पूरी तेज़ी से चल निकले। आध घंटे तक ये लोग बड़े धावे से चलते रहे।

जान के साथी ने कुछ अधीर होकर कहा—इधर तो कोई बाग़वाग़ दिखाई नहीं पड़ता!

जान ने कहा---वह क्या है---वह जो फाटक दिखाई पड़ रहा है वही बाग़ मालूम होता है।

साथी ने ध्यानपूर्वक देखकर कहा—फाटक तो मालूम होता है किन्तु यह बाग़ तो...... ।

—बाग़ ही है।

इसी प्रकार की बातें करते हुए ये लोग फाटक पर पहुंच गये। फाटक पर पहुंचते ही दोनों घोड़ों पर से उतर पड़े और लगाम पकड़ कर फाटक के अंदर घुसे।

दो चार क़दम चलते ही जान का साथी बोल उठा--अरे यह तो कोई क़ब्रस्तान है।

हां क़ब्रस्तान ही है।

किन्तु क़ब्रें बहुत थोड़ी हैं और देखने से नई मालूम होती हैं।

यही बातें कहते हुए दोनों घने वृक्षों के एक खंड में पहुंच गये। दोनों ने अपने घोड़े वृक्ष से बांध दिये। जान ने इधर उधर देखकर कहा--बैठने के लिए तो यहां कोई स्थान नहीं है, आओ उस क़ब्र के फ़र्श पर बैठें। उनके सामने ही आठ दस क़दम पर एक क़ब्र थी जिसकी चारों ओर पक्का फ़र्श बना हुआ था। दोनों जाकर उसी फ़र्श पर बैठ गये।

फ़र्श पर बैठतें हुए जान की दृष्टि क़ब्र पर पड़ी; वह चिल्ला उठा—अरे इस पर तो फूल रक्खे हुए हैं!

जान के साथी ने घूमकर देखा और बोला-ल तो फहां रक्खे हुए हैं और बिलकुल ताज़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे मालूम होता है कि यहां कोई आदमी है या हमारे आने के थोड़ी देर पहले तक रहा हो।

हां मालूम तो ऐसा ही होता है।

उस समय संसार पर चन्द्रमा का अधिकार हो गया था, किरणें वृक्षों से छनछन कर भूमि पर पड़ रही थीं।

जान ने कहा—लो चांद तो निकल आया हवा भी कम हो गई है—मालूम होता है, घटा उसी ओर निकल गई।

हां ऐसा ही होगा।

अच्छा अब आकाश तो स्वच्छ हो ही गया —कोई डर नहीं रहा—थोड़ी देर यहां विश्राम करके तब चलेंगे।

जान के साथी ने कुछ चौंक कर एक ओर देखते हुए कहा—एँ यह कौन ?

जान ने भी उसी ओर देखा—एक मनुष्य-मूर्त्ति धीरे धीरे उनकी ओर आरही थी।

दोनों का कलेजा धड़कने लगा। जान ने अपने साथी की ओर देखा और उसने जान की ओर।

जान ने धीमे स्वर में कहा—यह कौन है भाई ?

साथी ने उत्तर दिया—क्या मालूम कहीं…।

इतने ही में वह मूर्त्ति इनके निकट आगई। दोनों ने देखा कि एक देहाती वेषधारी वृद्ध पुरुष उनकी ओर आरहा है।

जान यह देखते ही खिलखिला कर हँस पड़ा। साथी भी उसी प्रकार हँसने लगा और हँसता हुआ बोला-ओफ़ अच्छी दिल्लगी रही-हम लोग निरर्थक ही भयभीत हुए।

इतने ही में वृद्ध उनके सामने आकर खड़ा हो गया। पहले तो उसने इन दोनों को सर से पैर तक घूरा, फिर कर्कश स्वरमें यह बोला—इसे भी क्या कोई शहर का भटियारखाना समझा है जो बैठे क़हक़हे लगा रहे हो—उठो यहां से अलग खड़े हो। न जाने उस बुड्ढे की डाट में क्या बात थी कि दोनों उसी क्षण उठ कर अलग खड़े हो गये।

बुड्ढे ने उस स्थान को जहां ये बैठे थे अपने वस्त्र से साफ़ किया।

जान ने मुंह बिचका कर अपने साथी की ओर देखा—साथी भृकुटी चढ़ाये हुए बुड्ढे का काम देख रहा था।

जान ने साथी के कान में कहा—मालूम होता है इसके बाप की क़ब्र है।

वरन् परबाबा की, दुष्ट साफ़ कैसे कर रहा है, मानो हमारे बैठने से मैला हो गया। बचा बुड्ढे न होते तो अभी मज़ा चखाता। बुड्ढा स्थान साफ़ कर चुकने पर इनकी ओर घूमा और कुछ नम्र होकर बोला—तुम लोग कहां रहते हो?

जान ने अपने रहने का स्थान बताया।

बुड्ढे ने पूछा—क्या, इधर पहले ही पहल आये हो ?

जान—हां पहले ही पहल।

बुड्ढे ने सिर हिला कर कहा—तभी, तभी ठीक है तभी।

दोनों को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे दोनों सोचने लगे कि बुड्ढा पागल है क्या—तभी, तभी का क्या अर्थ ?

जान ने डरते डरते पूछा—आप क्या यहीं रहते हैं ?

बुड्ढा कुछ क्षण तक सोच कर बोला—हां यहीं रहता हूं—इस बाग़ के कोने में मेरा झोपड़ा है।

जान ने फिर पूछा—क्या आप अकेले ही रहते हैं ?

बुड्ढे ने फिर सिर उठा कर कुछ क्षण तक दोनों की ओर स्थिर दृष्टि से देखा। बुड्ढे के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेहरे पर कोई दिव्य तेज था और उसकी आंखों में विचित्र चमक थी। चांद की हल्की किरणें उसके श्वेत बालों तथा दाढ़ी पर पड़ रही थीं। इन किरणों के प्रभाव से उसके बाल चांदी के समान चमक रहे थे।

बुड्ढे ने कहा—नहीं—मैं अकेला नहीं हूं।

यह कह कर उसने क़ब्रों की ओर देखा। फिर बोल उठा—किन्तु तुम लोग मुझे अकेला ही समझो।

अब दोनों को कुछ कुछ विश्वास हो चला कि बुड्ढा पागल है।

जान का साथी बोल उठा—क्या आप बता सकते हैं कि ये क़ब्रें किनकी हैं ?

बुड्ढा सिर हिलाकर अपने ही आप बोला,—मैं तो पहले ही समझ गया, वही बात निकली! फिर मान के साथी से बोला—तुमने क्या पूछा ? हां ये क़ब्रें किसकी हैं—तुम इन्हें नहीं जानते ? हां जान ही कैसे सकते हो ? यहां के रहनेवाले होते तो जानते, जिन्हें यहां का बच्चा २ जानता है, उन्हें तुम नहीं जानते। शोक! किन्तु तुम परदेशी हो, परदेशी हो—इसलिए यदि न जानो तो कोई अपराध नहीं—कोई अपराध नहीं। बुड्ढे की बात ने इन दोनों को और भी चक्कर में डाल दिया। अभी तक तो वे केवल इसीके विषय में जानने के लिए उत्सुक थे किन्तु अब उन्हें क़ब्रों के विषय में भी जानने की उत्सुकता बढ़ी।

जान ने कहा—आपकी बातों से मालूम होता है कि ये क़ब्रें कुछ महत्व रखती हैं, अतएव ...।

बुड्ढा चिल्ला उठा—ऐं कुछ महत्व! देखो तुम दोनों परदेशी हो, तुम इनके विषय में कुछ नहीं जानते, अतएव इनके विषय में जो कुछ कहना ज़रा ज़बान संभाल कर कहना, कुछ महत्व! कुछ महत्व! ये क़ब्रें वह महत्व रखती हैं कि मेरी दृष्टि में संसार की कोई क़ब्र भी उतना महत्व नहीं रखती होगी।

जान ने विनीत स्वर से कहा—तो कृपया हमें इनके विषय में बताइये।

बुड्ढा कुछ क्षण तक सोच कर बोला—बताऊंगा, अवश्य बताऊंगा, तुम दोनों युवक हो, तुम्हें संसार में अधिक दिनों तक रहना है, तुम्हें इनके विषय में जानने की बड़ी आवश्यकता है, अच्छा मेरे साथ आओ।

दोनों बुड्ढे के पीछे पीछे चले।

(२)

बाग के एक कोने में एक झोपड़ी बनी थी। बुड्ढा उन दोनों को उसी झोपड़ी में ले गया। झोपड़ी में दो तीन छोटी छोटी कोठरियां थीं और एक छोटा सा कमरा था। कमरे में एक ओर एक भद्दी सी मेज़ लगी थी और उसके पास ही दो तीन पुरानी कुर्सियां रक्खी थीं।

बुड्ढे ने मोमबत्ती जलाकर मेज़ पर रखदी और एक कुर्सी पर स्वयं बैठ गया और बाक़ी दो पर उन दोनों को बैठने का इशारा किया।

उनके बैठने पर बुड्ढे ने पहले उनसे कुछ जलपान करने के लिए कहा। जान ने उत्तर दिया—पहले हम इनके विषय में सुनेंगे, तत्पश्चात् जलपान करेंगे।

बुड्ढा प्रसन्न मुख होकर बोला—शाबास!

बुड्ढे ने कहना आरंभ किया।

"ये उन लोगों की क़ब्रें हैं जिन्हें मैंने अपनी आंखों से जीवित दशा में देखा है और अब भी कभी कभी मैं उन्हें उसी दशा में देखता हूं। ये वे लोग हैं जिन्होंने अपने प्यारे देश—अपनी मातृभूमि के लिए अपना खून पानी की तरह बहाया है। ये लोग मातृभूमि के "शहीद" हैं। जीवन में सच्चे सपूत मरने के पश्चात् सच्चे शहीद। ये वे शहीद हैं जिनकी मैं उपासना करता हूं, जिन्हें मैं अपना इष्टदेव समझता हूं और मेरा विश्वास है कि मातृभूमि का प्रत्येक,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमी इन्हें उसी दृष्टि से देखेगा, जिस दृष्टि से कि मैं देखता हूं।

इतना कहते कहते बुड्ढे का चेहरा तमतमा उठा। वह उछल कर खड़ा हो गया और कमरे में इधर उधर टहलने लगा। कुछ क्षण पश्चात् वह फिर बोला—"तुम इनके विषय में जानना चाहते हो किन्तु यह याद रखना कि यह कोई कहानी नहीं है, इसे इस कान से सुनकर दूसरे कान से मत उड़ा देना, इसे याद रखना और यदि हो सके तो यथाशक्ति तुम भी इससे कुछ सबक लेना। सुनो, बुड्ढा फिर कुर्सी पर बैठ गया और कहने लगा :—

"ये लोग वे हैं जिन्होंने मातृभूमि को दासत्व के विषाक्त चंगुल से छुड़ाना चाहा था, ये लोग वे हैं जिन्होंने अत्याचारियों का सर कुचलना चाहा था। सन—की बात है इस देश फ्लेडर्स पर स्पेन का राज्य था। स्पेन की ओर से ड्यूक आफ़ एलवा इसका गवर्नर नियुक्त किया गया था। वह गवर्नर बड़ा अत्याचारी था। उसके अत्याचार यहां तक बढ़े कि मातृभूमि के सपूतों को वह असह्य हो उठा। उन्होंने देखा कि हमारी आंखों के सामने मातृभूमि पर कुठाराघात हो रहा है। वे सच्चे सपूत कौन थे? वे लोग थे प्रिंस आफ़ आरेञ्ज, काउन्ट रैसूर तथा कार्लू—आहा कौन कार्लू? वही कार्लू जिसने देशप्रेम के आगे, देश के प्रति अपने कर्तव्य के आगे अपनी प्रेमिका को ठुकरा दिया। नहीं—उसका वध किया—क्यों वध किया? वही विश्वास-घातिनी, वही देशद्रोहिणी, वही पति-घातिनी ही तो उनकी सारी चेष्टा पर पानी फेर गई। वही कार्लू देश का चमकता हुआ रत्न! बुड्ढे की आंखों से आंसू बहने लगे, उसने आंसुओं की कुछ परवाह न की, बराबर कहता गया। हाँ वही कार्लू, आज भी मैं उसकी वीर मूर्त्ति देखता हूं। हा कहां गये, वे रत्न कहां गये? वे रत्न थे, पृथ्वी के गर्भ से निकले थे, मातृभूमि के गर्भ से निकले थे, थोड़े दिन संसार को अपना तेज दिखाकर फिर मातृभूमि की गोद में सो गये। सो न जाते तो करते क्या, संसार अन्धा था, उसने उन्हें नहीं पहिचाना, जिसने पहिचाना वह आज भी उनके नाम की माला जप रहा है, उन्हींकी याद कर रहा है। बुड्ढे ने अपने आंसू पोछ डाले और फिर कहना आरंभ किया। प्रिंस आफ़ आरेञ्ज, कार्लू तथा काउन्ट रैसूर ने मातृभूमि को इस अत्याचारी के पञ्जे से छुड़ाना चाहा। उन्होंने एक गुप्त सभा स्थापित की और उसके द्वारा अपने बहुत से साथी बना लिये। उनका काम कुछ चल निकला था किन्तु दुर्भाग्य से ड्यूक आफ़ एलवा को किसी प्रकार पता लग गया कि प्रिंस आफ़ आरेञ्ज बग़ावत करने पर तुला हुआ है। यह जानते ही उसने शीघ्र ही प्रिंस आफ़ आरेञ्ज को देश से निकाल दिया। प्रिंस को देश-निकाला दे देने के पश्चात् अन्य षड्यंत्रकारियों को सतर्क करने के लिए उसने शहर के स्थान २ पर स्पेन के झंडे लगा दिये। काउन्ट रैसूर को सरकारी फ़ौज के कप्तान रिन्कन के मकान में रहने की आज्ञा दी गई। काउंट रैसूर और कार्लू में बड़ी घनिष्ट मित्रता थी, किन्तु इसी मित्रता के साथ साथ कार्लू तथा काउंट की स्त्री में प्रेम उत्पन्न हो गया।"

यहां पहुंच कर बुड्ढे के चेहरे पर क्रोध की झलक दिखाई पड़ी और उसने मेज़ पर हाथ पटककर कहा—"और यही प्रेम कार्लू तथा उसके साथियों के सर्वनाश का कारण हुआ। हा यदि कार्लू उसके प्रेम में न फँस गया होता तो आज……। कार्लू ने यह बड़ी भारी भूल की उसे ऐसा कदापि उचित न था—किन्तु उसने अपने पाप का प्रायश्चित्त कर दिया। काउंट रैसूर अत्यंत गुप्त रूप से रात को सभा में जाया करता था, यद्यपि इसके पीछे जासूस लगा दिये गये थे किंतु फिर भी वह नित्य जाया करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक दिन रैसूर गुप्त सभा में गया हुआ था। उसके पीछे कार्लू को उसकी दुष्टा स्त्री ने (दांत किटकिटाकर)—आह यदि वह स्त्री मुझे मिलती तो—किन्तु खैर उसे उसके कार्यों का फल मिल गया—कार्लू की स्त्री ने बुलाया, लौटते समय जब कार्लू कमरे से बाहर आया तो उसे रिन्कन नशे की हालत में आता हुआ दिखाई पड़ा और उसने चाहा कि काउन्ट की स्त्री के कमरे में घुस जायँ। कार्लू ने उसे रोका, इस रोकटोक में बात बढ़ गई। कप्तान नशे में तो था ही, उसने झट तलवार खींच ली। इधर कार्लू ने देखा कि यदि कप्तान से तलवार चली तो सारा भंडा फूट जायगा। उसने चाहा कि किसी प्रकार बच कर निकल जायँ किन्तु कप्तान ने, जो कार्लू को काउन्ट रैसूर समझे हुए था, तलवार का वार कर ही तो दिया। कार्लू ने उसका वार तो बचा लिया किन्तु उसका हाथ ज़ख्मी हो गया। अब कार्लू ने वहां एक क्षण ठहरना भी उचित न समझा, अतएव वह कप्तान को ढकेल कर शीघ्रतापूर्वक मकान के बाहर हो गया।

उधर काउन्ट के पीछे, जो गुप्त सभा में सम्मिलित होने गया था, एक जासूस लगा। वह गुप्त सभा का हाल तो जान न सका किन्तु यह जान गया कि रैसूर रात को कहीं जाता है। दूसरे दिन उसने गवर्नर को काउन्ट रैसूर के विषय में रिपोर्ट दी। गवर्नर ने उसी क्षण उसकी गिरफ़ारी का हुक्म दिया। काउन्ट गिरफ़ार कर लिया गया। कप्तान रिन्कन को भी यह मालूम हुआ। वह पहले ही से अपने रात के व्यवहार पर पश्चात्ताप कर रहा था। जब उसको काउन्ट की गिरफ़ारी की सूचना मिली तब उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने सोचा कि काउन्ट रैसूर निर्दोष ही फँसा जा रहा है। उसने तुरन्त गवर्नर को एक पत्र लिखा कि:—"काउन्ट कल रात को कहीं नहीं गया था, जासूस ने भूल की है। रात वह अपने घर ही में उपस्थित था, मुझसे उसकी एक साधारण बात पर झगड़ा भी हुआ था और भूल से मेरी तलवार उसके हाथ पर लग गई, जिसके कारण उसका हाथ ज़ख्मी हो गया है।"

कप्तान के इस पत्र पर काउन्ट रैसूर तुरंत छोड़ दिया गया।

किन्तु काउन्ट को बड़ा आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह तो रात को सभा में गया ही था। काउन्ट बार बार कप्तान के पत्र को पढ़ता था और विस्मय-सागर में गोते खाने लगता था। सोचते सोचते उसके हृदय में यह बात आई कि—"मेरी स्त्री अवश्य किसीसे फँसी है और कल रात को वही आया होगा।" यह विचार आते ही उसका हृदय उबलने लगा, क्रोध के मारे आंखें रक्तवर्ण हो गईं। वह उसी समय अपनी स्त्री के पास पहुंचा और अपनी स्त्री का टेटुवा पकड़ कर बोला—दुष्टा व्यभिचारिणी! सच बता रात को तेरे पास कौन आया था।

उसकी स्त्री पहले तो बड़ी गरम पड़ी और लगी आंय बांय बकने किन्तु जब काउन्ट ने उसके आगे कप्तान का पत्र रक्खा तब तो उसकी आंखों तले अँधेरा छागया। उसने सोचा कि अब कार्लू अवश्य पहचान लिया जायगा क्योंकि हाथ का घाव उसका भेद खोल देगा। किन्तु स्त्री थी बड़ी धूर्त्त उसने चुप्पी साधने ही में कल्याण देखा। काउन्ट ने उसके प्रेमिक का नाम जानने के लिए बहुत कुछ हाथ पांव मारे, स्त्री को बहुत कुछ मारा पीटा किन्तु उसने नाम न बताया, न बताया। अंत को काउन्ट ने हार मान कर स्त्री का पिंड छोड़ा और स्वयं सभा में सम्मिलित होने के लिए चल दिया। काउन्ट की स्त्री समझी कि उसका पति कार्लू की खोज में जाता है और यह सोचकर कि कहीं काउन्ट उसके प्रेमिक को कोई हानि न पहुंचावे, उसने भी काउन्ट का पीछा किया।

काउन्ट के पीछे जाने से उसे गुप्त सभा का सब हाल मालूम हो गया। जिस मकान में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभा होनी थी उस मकान की खिड़की से उसने सारी बातें सुन लीं।

षड़यंत्रकारियों ने अपने देश को स्वतंत्र करने के लिए प्रिंस आरेञ्ज का साथ देने की क़सम खाई थी। उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि टाउन हाल पर आक्रमण करके उस पर अधिकार जमा लिया जाय। यदि टाउन हाल मिल जाय तो उसी समय एक निश्चित ऊँचे स्थान पर देशी झंडा लगा दिया जाय जिसको देखकर प्रिन्स आफ़ आरेञ्ज अपनी सेना सहित सरकारी सेना पर आक्रमण करने के लिए, शहर में घुस आवें और यदि टाउनहाल पर अधिकार जमाने में सफलता न हो तो काले रंग का झंडा लगा दिया जाय जिससे प्रिन्स आफ़ आरेञ्ज शहर में आने का विचार न करें। षड़यंत्रकारियों ने आपस में एक दूसरे की पहचान के लिए अपनी तलवारों में नारञ्जी फ़ीता बांध लिया था। ये सब बातें काउन्ट की स्त्री को मालूम हो गईं। उसने उसी समय ठान ली कि कालूं को छोड़कर अन्य समस्त षड़यंत्रकारियों, यहां तक कि अपने पति को भी गिरफ़्तार करवा देना चाहिये। ऐसा करने से वह कालूं के साथ खुल्लमखुल्ला प्रेम का खेल खेल सकेगी।

उधर एक दिन असंतुष्ट प्रजा ने ड्यूक के अत्याचारों का बदला लेने के लिए उसकी कन्या पर आक्रमण किया किन्तु दैवसंयोग से उस स्थान पर कालूं पहुंच गया और उसने उसे बचा लिया। यह जान कर ड्यूक आफ़ पलवा ने उसे अपने महल में बुलवाकर बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और इस कार्य के बदले में, कालूं ही की प्रार्थना पर दो चार अत्यन्त कड़े क़ानून रद्द कर दिये। कालूं ने इन क़ानूनों को इसी-लिए रद्द कराया था कि षड़यंत्रकारियों को अपना काम करने में अधिक सुविधा हो जाय। ड्यूक ने उसे सरकारी सेना में ओहदा भी देना चाहा किन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। चलते समय, जल्दी के कारण, वह अपनी तलवार भूल गया। इस तलवार में भी "नारञ्जी फ़ीता" बँधा था। कालूं के जाने के पश्चात् ही काउन्ट की स्त्री भी ड्यूक के पास पहुंची। काउन्ट की स्त्री अपना मुंह एक मोटी नक़ाब से छिपाये हुए थी। उसने ड्यूक से षड़यंत्रकारियों का सारा कच्चा चिट्ठा कह दिया और उनका चिह्न (नारञ्जी फ़ीता) भी बता दिया। ड्यूक ने षड़-यंत्रकारियों के नाम पूंछे। स्त्री ने कालूं को छोड़ कर अपने पति सहित सब के नाम बता दिये।

काउन्ट की स्त्री ड्यूक से बिदा हो ही रही थी कि ड्यूक की दृष्टि हठात् कालूं की तल-वार पर पड़ी। उसमें नारञ्जी फ़ीता बँधा देख कर ड्यूक ने समझ लिया कि कालूं भी षड़यंत्र में सम्मिलित है। उसने उसी समय कालूं सहित सब की गिरफ़्तारी का हुक्म दिया।

काउन्ट की स्त्री कालूं का नाम सुनकर मूर्च्छित होगई।

उधर सब षड़यंत्रकारी अपना कार्य आरम्भ करने के लिए टाउन हाल में एकत्रित हुए। वहां सब ने देश को स्वतंत्र करने की चेष्टा में प्राण दे देने तक की कसम खाई। जिस समय कालूं हाथ में तलवार लेकर कसम खाने लगा उस समय अकस्मात काउन्ट रैसूर की दृष्टि कालूं के हाथ पर पड़ गई। हाथ में घाव था ही, अतएव घाव देखते ही उसको मालूम होगया कि यही व्यक्ति मेरी स्त्री का प्रेमिक है। यह मालूम होते ही वह क्रोध से कांपने लगा और उसने चाहा कि कालूं का काम तमाम कर डालें। कालूं ने उसका विचार समझते ही उसके सामने घुटने टेक दिये और अपना अपराध स्वीकार कर लिया। काउन्ट उस समय देश को स्वतंत्र करने की धुन में था उसने सोचा कि यदि इसके प्राण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ले लिये जायंगे तो देश-सेवा के काम में बाधा पहुँचेगी; क्योंकि कालू बड़ा वीर तथा योद्धा था। काउन्ट ने उससे कहाः—कालू तुमने काम तो ऐसा किया है कि यदि तुम्हें इसी समय जान से मार डालूं तो कुछ भी अनुचित नहीं किन्तु यह मुझे मालूम है कि तुम सच्चे हृदय से देश-सेवा के काम में लगे हो और तुम्हारी सहायता से हम लोगों का पूरा भला होगा, इसलिए मैं तुम्हें प्राण-दान देता हूं—उठो और एक बार फिर कसम खाओ"।

कालू तलवार हाथ में लेकर बड़ी दृढ़ता-पूर्वक बोला—मैं ईश्वर को साक्षी करके क़सम खाता हूं कि मैं देश को स्वतंत्र करने के लिए अपने प्राण तक दे दूंगा।

काउन्ट ने उसे उसी समय क्षमा देदी और उससे प्रेमपूर्वक हाथ मिलाया।"

इस स्थान पर पहुंच कर बुड्ढा बोला—क्यों मित्रो! मातृभूमि के प्रति इससे बढ़कर और क्या प्रेम हो सकता है कि काउन्ट रैसूर ने अपनी आबरू की भी कुछ परवाह न की और केवल इसलिए कि कालू मातृभूमि का सच्चा सेवक था, उसे छोड़ दिया। इसीलिए तो मैं कहता हूं कि वे रत्न थे; ऐसे रत्न कि जिनकी···। "किन्तु काउन्ट ने एक बड़ी भूल की। उसे उचित था कि अपनी स्त्री को मार डालता, उस व्यभिचारिणी को छोड़ना उचित न था—(हाथ मलकर) आह, यदि उसने मार डाला होता तो क्या आनन्द आता; फिर तो उन्हें अवश्य सफलता होती—किन्तु ख़ैर उसी समय सरकारी आदमी टाउन हाल में भड़भड़ाकर घुस पड़े, षड्यंत्रकारियों ने उनका सामना किया। थोड़ी सी लड़ाई होने के पश्चात्, जिसमें दोनों ओर के कुछ आदमी काम आये, षड्यंत्रकारी गिरफ़ार कर लिये गये—आह उनकी दृष्टि में षड्यंत्रकारी पकड़ लिये गये किन्तु मेरी दृष्टि में मातृभूमि के सपूत अन्याय द्वारा अपने देश की सेवा करने से रोके गये। आह वह दृश्य—मैं क्या कहूं मित्रो! आज भी वह दृश्य मेरी आंखों के सामने फिर रहा है। वह दिन बड़ा मनहूस दिन था।"

यह कह कर बुड्ढा उठकर इधर उधर टहलने लगा।

(३)

थोड़ी देर पश्चात् वह फिर कुर्सी पर बैठ गया और कहने लगाः—

"उचित समय पर सब का विचार हुआ। सब को जीवित जला देने का हुक्म हुआ। काउन्ट रैसूर सब का मुखिया था, अतएव उसके लिए आज्ञा हुई कि पहले इसे ख़ूब पीड़ा (Torture) दी जाय, तत्पश्चात् सब के साथ वह जीवित जलाया जाय।

काउन्ट की स्त्री ने जब यह समाचार सुना तो वह दुष्टा ड्यूक के पास गई और बहुत रोई चिल्लाई। ड्यूक ने पहले तो कालू को प्राण-दान देना स्वीकार न किया किन्तु जब काउन्ट की स्त्री ने षड्यंत्रकारियों का भेद बतलाने के बदले में कालू के प्राण की भिक्षा मांगी तब ड्यूक विवश हो गया और उसने कालू को छोड़ देने की आज्ञा दी और साथ ही फ्रांस जाने के लिए उसे आज्ञा-पत्र भी दे दिया। काउन्ट की स्त्री ने भी अपने लिए फ्रांस जाने का आज्ञा-पत्र ले लिया।

जिस समय पीड़ा देने के लिए सरकारी मनुष्य काउन्ट को लिये जा रहे थे, उस समय कालू को छोड़ देने का हुक्म पहुंचा। कालू ने काउन्ट को पीड़ा दिये जाने से बचाने की बड़ी चेष्टा की, किन्तु कोई लाभ न हुआ। काउन्ट को पीड़ा दी गई और जिस समय वह लाया गया उस समय उसका अंत निकट था।

काउन्ट ने कालू के छूटने पर हर्ष प्रकट करते हुए उससे कहाः—भाई मेरा अंत समय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकट है किन्तु जब तक मैं यह न मान लूं कि जो कुछ मेरी इच्छा है, वह मेरे पश्चात् पूरी की जायगी, तभी तक मेरी आत्मा को शांति न मिलेगी।

कालूं ने आँखों में आंसू भर कर कहा—मित्र! मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि मैं तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूंगा, चाहे उसके लिए मुझे अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़े।

काउन्ट ने कहा—बस केवल यह कि जिस विश्वासघाती स्वदेश के शत्रु ने हमारा भेद खोला है, उसे ढूंढ कर यमलोक पहुंचाना।

कालूं ने काउन्ट का हाथ अपने हाथ में लेकर कसम खाई।

कुछ ही क्षण पश्चात् काउन्ट ने दम तोड़ दिया।

उधर ड्यूक ने सोचा कि यदि इस समय निश्चित स्थान पर देशी झंडा लगवा दिया जाय तो प्रिन्स आफ़ आरेन्ज अवश्य शहर में घुस आवेगा और इस प्रकार वह अपने रचे हुए जाल में आप ही आ फंसेगा।

जिस व्यक्ति को यह काम सौंपा गया था उससे कहा गया कि "जिस स्थान पर झंडा लगाना नियत किया गया हो, उस स्थान पर देशी झंडा लगा दो, ऐसा करने से तुम्हें क्षमा दे दी जायगी"। उसने स्वीकार किया। वह व्यक्ति उसी समय छोड़ दिया गया। वह व्यक्ति सरकारी आदमियों के साथ साथ पहले तो अपने घर गया। उसकी पत्नी उसके लिए शोकाकुल हो रही थी। उसके तीन छोटे छोटे बच्चे भी थे। वह अपनी स्त्री से मिला। उसने अपने बच्चे को खूब प्यार किया। उन्हें अपने हाथ से भोजन खिलाया। तत्पश्चात् वह उठ खड़ा हुआ और अपनी स्त्री से विदा होकर बाहर आया। वह सरकारी आदमियों के साथ निश्चित स्थान पर पहुंचा। वहां देशी तथा काला झंडा दोनों रक्खे हुए थे। पहले उसने देशी झंडे को उठाकर आंखों से लगाया फिर बड़ी भक्तिपूर्वक आंखों से लगा कर उसे उसके स्थान पर रख दिया। इसके पश्चात् उसने ईश्वर-प्रार्थना की। ईश्वर-प्रार्थना कर चुकने पर उसने बड़ी दृढ़ता से उठकर झट काला झंडा उठा कर चढ़ा दिया। यह देखकर सरकारी आदमियों ने उसे उसी क्षण गोली मार दी।

मित्रो! इसीको देश-सेवा कहते हैं। इसीको मातृभूमि का प्रेम कहते हैं। ऐसे ही लोग देश के सच्चे सपूत हैं। हां, यदि वह चाहता तो प्रिन्स आफ़ आरेञ्ज को फँसवा देता और स्वयं बच जाता किन्तु उस वीर ने अपने देश के सामने अपने बच्चों की परवाह न की, अपनी स्त्री की परवाह न की, अपने प्राणों की परवाह न की—इसीलिए मैं कहता हूं कि ये सब रत्न थे—इसीलिए मैं इन्हें अपना इष्टदेव समझता और इनकी उपासना करता हूं।

बुड्ढे ने फिर कहना आरंभ किया—"कालूं फ्रांस जाने के निमित्त ड्यूक तथा उसकी कन्या से विदा होने के लिए आया। वहां ड्यूक की कन्या से उसे मालूम हुआ कि एक स्त्री ने उनका भेद खोला है। उस स्त्री को फ्रान्स जाने के लिए आज्ञापत्र भी दे दिया गया है। कालूं उस स्त्री के विषय में सोचता हुआ काउन्ट के मकान पर पहुंचा।

काउन्ट के मकान के सामने ही चौक था। उसी चौक में अपराधियों को जलाने के लिए चिता लगाई गई थी। कालूं ने देखा कि देश के सपूत चिता पर खड़े किये जा रहे हैं। क्या वह चिता थी? अंधों के लिए वह चिता थी, और वह षड्यन्त्रकारी थे, अपराधी थे। किन्तु हृदय की आंख से देखनेवाले जानते थे कि वह चिता नहीं किन्तु देशभक्तों के लिए सिंहासन था—स्वर्ग की सीढ़ी थी। आह किस प्रसन्नता से माता के सपूत उस पर खड़े थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके मुख पर दिव्य ज्योति थी, चिता को वे फूलों की सेज समझ रहे थे! उन्हें आग की गर्मी से क्या डर था; उनके हृदय में मातृभूमि के प्रेम की इतनी गर्मी थी कि जिसके सामने उस आग का कोई अस्तित्व न था। मित्रो! वह दृश्य यदि तुम देखते—(अपनी अश्रुपूर्ण आंखों की ओर इशारा करके) इन आंखों ने वह दृश्य देखा है और मैं इन आंखों को धन्य समझता हूं।"

बुड्ढे के शब्दों में इतना प्रभाव था कि जान तथा उसका साथी भी आंसू बहा रहा था।

बुड्ढे ने आंसू पोंछ कर फिर कहना आरम्भ किया:—"कालू ने यह दृश्य देखा; उसका हृदय विदीर्ण होने लगा। उसकी इच्छा होती थी कि वह भी चिता में फांद पड़े और अपने मित्रों का साथ दे। किन्तु उसने काउन्ट से प्रतिज्ञा की थी और उसी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए उसने अपने को जीवित रखना आवश्यक समझा।

कालू मकान के अन्दर पहुंचा। उस समय काउन्ट की स्त्री फ्रांस जाने की तैयारी कर रही थी। कालू को देखते ही वह उससे लिपट गई और बोली—प्यारे कालू! फ्रांस चलोगे?

कालू ने उसे हृदय से लगा कर कहा—हां चलूंगा तो किन्तु तुम कैसे चल सकती हो, आज्ञा-पत्र में तो केवल मेरा ही नाम है।

काउन्ट की स्त्री मुसकुराकर बोली—नहीं इसके लिए चिंता करने की आवश्यकता नहीं। मुझे भी आज्ञा-पत्र मिल गया है।

यदि कालू पर वज्रपात होता तब भी वह इतना न चौंकता जितना कि वह यह बात सुन कर चौंका। उसने स्त्री को सर से पैर तक देखा और बोला—तुमने आज्ञा-पत्र कहां से पाया?

स्त्री ने उत्तर दिया—ड्यूक से।

इतना सुनते ही कालू की आंखों तले अंधेरा छा गया। उसने अपने हृदय पर हाथ रख कर एक आह की। इसमें सन्देह नहीं कि वह भी उस स्त्री से प्रेम करता था। थोड़ी देर तक वह इसी दशा में रहा किन्तु उसने शीघ्र ही अपने को संभाल लिया। उसे अपनी प्रतिज्ञा, स्त्री का विश्वासघात, उसके विश्वासघात द्वारा मित्रों का जलाया जाना इत्यादि—सब बातें याद आईं। इनका स्मरण होते ही उसका प्रेम क्षण में बदल गया। वह बोला:—पतिघातिनी मातृभूमि की शत्रु, इधर आ।

यह कह कर कालू उसे घसीटता हुआ खिड़की के पास ले गया और चिता की ओर—जिसमें उस समय आग दी जा रही थी—इशारा करके बोला—इन शहीदों को देख—देख यह मशाल तेरे विश्वासघात के कारण प्रज्ज्वलित हो रही है। तूने इस मशाल से मातृभूमि का सर्वस्व स्वाहा कर दिया। कालू की विकराल मूर्त्ति देखकर स्त्री कांपने लगी। उसने लड़खड़ाती हुई ज़बान से कहा—प्यारे कालू! मैंने तुम्हारे ही प्रेम ....।

कालू कड़ककर बोला—चुप दुष्टा, जिसे अपने पति के प्रति, जिसे अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम न हुआ वह संसार में किसीसे भी प्रेम नहीं कर सकती। यह कह कर उसने आकाश की ओर देखा और कहा:—प्यारे काउन्ट मैंने तुम से जो प्रतिज्ञा की थी, वह आज पूरी करता हूं। कालू ने कमर से छुरा निकाल कर स्त्री की छाती में भोंक दिया।

इसके पश्चात् कालू, वीर कालू दौड़ कर चिता के पास आया और यह कहता हुआ उस पर चढ़ गया "ठहरो मित्रो! ठहरो—मेरी प्रतीक्षा करो—मैं भी आता हूं—मेरा काम समाप्त हो गया, जिस लिए मैं जीवन धारण किये हुए था वह बात पूरी हो गई। अब मैं सहर्ष तुम्हारा साथ देने को तैयार हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थोड़ी ही देर में कालू सहित सब देशभक्त—मातृभूमि के सच्चे सपूत आग की लपटों में अदृश्य हो गये।

इतना कह कर बुड्ढा बोला—ये क़बरें उन्हीं लोगों की हैं, जो गिरफ़्तारी के समय मारे गये थे, और इन्हीं में उसकी क़ब्र भी है जिसने अपने प्राणों की पर्वाह न करके काला झंडा चढ़ा दिया था।

उसी समय हवा के एक तेज़ झोंके से मोमबत्ती बुझ गई। बाग़ के वृक्ष ज़ोर से खड़खड़ाये और फिर एकदम सन्नाटा हो गया।

जयध्वनि।

[लेखक—श्रीयुत लक्ष्मणसिंह—'मयंक'।]

जयति जननि! जय जयति जननि जय
सत्य-सु-रक्षणि, दुष्ट दलनि जय॥

जयति जननि तेरी प्रिय सन्तति;
जयति लोक-सेवा-प्रति-रति-कृति;
जयति जयति यति, धृति, मति, गति-अति,
नित्य, निरामय, निर्मम, निर्भय।
जयति जननि! जय जयति जननि जय॥

जयति जयति निस्सीम शक्ति-नव;
जयति अलौकिक-राजभक्ति-तव;
जयति जयति न्यायानुरक्ति-श्रव;
अतुल, अचल, अविकल, ममतामय।
जयति जननि! जय जयति जननि जय॥

जयति विपुल अरिदल संहारणि;
जयति-समर-चण्डी-वपु-धारणि,
ब्रिटिश-छत्र-रक्षणि, जगतारणि,
धन्य धन्य तेरा नय-अभिनय।
जयति जननि! जय जयति जननि जय॥

जयति जननि! जग क्रान्ति-क्लान्ति-हर;
जयति जयति सुख-शान्ति-श्रान्तिकर,
त्यागमूर्ति! जय जय जय गुरुतर—
पर हित यह तेरा सञ्चय-व्यय।
जयति जननि! जय जयति जननि जय॥

जय स्वातन्त्र्य-सुरभि-सञ्चारणि;
जगत-जनित-भय-ताप-निवारणि,
स्वत्व-महत्व-तत्व-विस्तारणि;
गुण-गौरव-गरिमा-ज्ञानाश्रय।
जयति जननि! जय जयति जननि जय॥

जयति जननि! खल-दल-बल-गञ्जनि;
जयति जयति निज-जन-मन-रञ्जनि;
जय माता भव-भीति विभञ्जनि;
सुन्दर ज्ञान-मान-ध्यानालय।
जयति जननि! जय जयति जननि जय॥

जय अमला-कमला विमला जय,
शस्य-श्यामला जय सुफला जय;
सरला जय, अबला-सबला जय,
सिंह-प्रसू सहदर्य-कर्म मय।
जयति जननि! जय जयति जननि जय॥

धन्य! धन्य! तेरा सु-बाहु-बल;
कूजित है महि-स्वर्ग-रसातल;
व्योम तथा जल थल अनिलानल
"जयति ब्रिटिश! निर्भय दृढ़-निश्चय!
जय भारत! जय जय भारत जय॥"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भारत और अफ़गानिस्तान में युद्ध।

६ मई को भारत गवर्नमेंट के वैदेशिक विभाग ने निम्नलिखित सरकारी सूचना निकाली थीः—

१३ अप्रैल के पश्चात् से अफ़ग़ानिस्तान में आश्चर्यजनक शीघ्रता से अवस्था परिवर्तित हुई है। इस दिन अमीर अमानुल्ला ने कहने को तो अमीर हबीबुल्ला की हत्या के मामले को उसके सम्मुख उपस्थित करने के लिए परन्तु वास्तव में अपने पहिले से निश्चय किये हुए दण्डों के पक्ष में अनुमति प्राप्त करने के लिए एक दरबार किया था। यद्यपि देखने में दरबार ने एक मत होकर कर्नल अलीरज़ा को असली हत्यारा बतलाकर प्राण-दण्ड की आज्ञा दी और इस कर्म में सम्मिलित होने के अपराध में सरदार नसुरुल्लाखां को जन्म भर के लिए कैद का दण्ड दिया तो भी दरबार के विसर्जित होने के पूर्व ही उपस्थित मनुष्यों में कानाफूसी होने लगी थी। चन्द दिनों ही में यह कानाफूसी बढ़ने लगी और यह बात खुल्लमखुल्ला ज़ोर के साथ कही जाने लगी कि वास्तविक अपराधियों के बचाने के लिए एक निर्दोष मनुष्य को फांसी दी गई है और निर्दोष सरदार नसरुल्ला खां को जन्म भर के लिए कैद किया गया है। उच्च पद पाने वाले बहुत से नवीन मनुष्यों के विरुद्ध अपराध खुल्लमखुल्ला लगाये जाने लगे। और तो क्या स्वयं अमीर अमानुल्ला ही का नाम अपराध से मुक्त न रह सका। असन्तोष फैलने लगा और विशेष कर सैनिकों में जिन्होंने कि अपने मृत अमीर का बदला चुकाने की सब से अधिक हठ की थी और अफ़ग़ानी फ़िरकों में और मुल्लाओं में जिनकी सरदार नसूरुल्ला खां पर सदा बड़ी कृपा रहती थी।

अमीर अमानुल्ला की स्थिति अब अधिक आशंकापूर्ण है और यही कारण है कि वह ब्रिटिश गवर्नमेंट के साथ मित्रता प्रगट करते करते अचानक उसके खुले शत्रु बन गये। असंतोष बढ़ कर विद्रोह का रूप धारण कर लेगा यह आशंका थी। ऐसे समय में उन्होंने युद्ध द्वारा अपनी प्रजा का ध्यान घरेलू झगड़ों की ओर से हटाने के खतरनाक काम को करने का निश्चय किया। पंजाब के दंगों और धनधान्य-पूर्ण बाज़ारों और सुन्दर खेतों के जो कि उनके कथनानुसार अफ़गान आक्रमणकारियों के लिए अरक्षित पड़े हुए हैं बढ़े चढ़े बयान फैला-कर उन्होंने सैनिकों और किसानों को अपने पक्ष में कर लेने की चेष्टा की। यद्यपि यह बात विश्वासनीय न ज्ञात होगी तो भी अन्तिम कुछ दिनों की घटनाओं से विचार किया जाय तो मालूम होगा कि इन विचित्र झूठों में कम से कम इस समय तो बहुत सफलता हुई। दूसरी मई को निंगरार के जरशाह नामक एक रिस-बार ने अपने लश्कर के साथ आकर खैबर के वाटरवर्क्स में ५ कुलियों को क़त्ल कर डाला। अब मालूम हुआ है कि उसने काबुल से आज्ञा पाने पर ऐसा किया था और अगले दिन उसने काफिला के 'खैबर राईफ़िल्स' नामक सैन्य के रक्षकों के कार्य में हस्तक्षेप करना चाहा। उसी रात को १५० सैनिकों ने बाग़ के पानी के चश्मों पर अधिकार कर लिया। बाग़ नामक स्थान सीमा की ब्रिटिश ओर को है। ज़बरदस्ती यह आशा करते हुए कि अमीर अमानुल्ला अब भी अपनी भूल समझ जायँगे भारत गवर्नमेंट ने उनके इस युद्ध के लिए ललकारने के काम को ऐसा समझने का निश्चय किया जैसे किसी नवीन स्थानीय हाकिम ने यह काम कर डाला हो। श्रीमान् वाइस-राय ने अमीर अमानुल्ला को ऐक्सप्रेस तार भेजा जिसमें खूब कड़ी चेतावनी दी गई थी परन्तु उनके सम्मानपूर्वक बचने का मार्ग भी खुला हुआ था। खैबर से डक्का के स्थानीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाकिम को नियमानुसार प्रतिवाद का पत्र भेजा गया परन्तु बड़ा दृढ़ उत्तर मिला । ५ मई को अफ़ग़ान सैनिकों के ३ रेजीमेण्ट २ तोपों सहित बाघ में आ पहुंचे । सरहद् पर और भी कई स्थानों पर अफ़गान सैनिकों के भेजे जाने के समाचार मिले हैं ।

इस प्रकार की धमकी का केवल एक ही उत्तर हो सकता था अर्थात् इस प्रकार अचानक उत्पन्न हो उठनेवाली अवस्था के लिए जो तैयारियां सदा रहती हैं उनसे काम लिया जाय । सैन्य एकत्र करने के लिए जो स्थान नियत हुए हैं वहां को आवश्यक सैनिकों के बड़े बड़े दल अभी से जा रहे हैं । देश के भीतर सुव्यवस्था स्थापित रखने के लिए जो प्रबन्ध आवश्यक हैं वह बिना किसी बाधा के जारी रहेंगे । हमारे सरहद् पर रहनेवाले फिरकों का भाव अभी प्रशंसनीय है । अफरीदी लोग अभी वफ़ादार बने हुए हैं और मोहमन्ड लोगों का एक जिरगा प्रतिनिधि ५ मई को सर जार्ज रूस कैपैल के सम्मुख यह कहने को उपस्थित हुआ था कि यदि हमारे सैनिकों से सहायता मिले तो वे हमारी ओर से लड़ने के लिए तैयार हैं ।

यद्यपि मालूम होता है कि इस समय अमीर अमानुल्ला ने अपनी नीति के पक्ष में अपनी प्रजा की किसी कदर अनुमति प्राप्त करली है अभी से काबुल ही में अनैक्य के चिन्ह दीख पड़ते हैं और वहां एक ऐसा दल दिखलाई पड़ता है जो अपने देश का घात करने के इस काम में सम्मिलित होने को तैयार नहीं है । विशेष कर इस सम्बन्ध में बहुत चिन्ता की जा रही है कि सरदार नसूरुल्ला खां और सरदार इनायतुल्लाखां का क्या हुआ ।

इस बात का प्रमाण मौजूद है कि अमीर अमानुल्ला स्वयं उक्त दोनों सरदारों के निकट जेल में गये थे और उनसे कहा कि यदि वे हिन्दुस्तान के विरुद्ध सेना का नेतृत्व ग्रहण करेंगे तो इस सहायता के बदले में उन्हें स्वतंत्र कर दिया जायगा । परन्तु उन दोनों ने स्वर्गीय अमीर हबीबुल्लाखां की स्मृति के सम्मान-स्वरूप ऐसा करने से इनकार कर दिया क्योंकि स्वर्गीय अमीर साहिब के राजत्व काल में उनकी सफल नीति की कुंजी ब्रिटिश के साथ मित्रता रही थी । कुछ मनुष्यों के कथनानुसार सरदार नसूरुल्ला खां जेल में ज़हर द्वारा मर भी चुके । सम्भवतः यह बात महत्वशून्य नहीं है कि कुछ सप्ताहों से सरदार इनायतुल्ला खां की कुशल क्षेम का कोई प्रामाणिक समाचार सरहद पर नहीं आया है ।

फ़ौजी क़ानून पर एक प्रसिद्ध वकील की सम्मति ।

ब्रिटिश राज्य के भारत के पहिले राज्यों की अपेक्षा उत्तम होने का सबसे बड़ा प्रमाण बहुधा यह दिया जाया करता है कि वह क़ानून का राज्य है । उसमें छोटे से छोटे आदमी से लेकर बड़े से बड़े अधिकारी को क़ानून के आगे मस्तक झुकाना होता है । परन्तु इस समय फ़ौजी क़ानून के नाम पर पंजाब में जो हृदय-विदारक कार्य किये जा रहे हैं उनके क़ानून के अनुकूल होने के सम्बन्ध में, बहुतों को भारी सन्देह है । ७ मई के 'लीडर' में एक प्रसिद्ध कानूनवेत्ता मि० स्पैंकी की सम्मति फ़ौजी क़ानून के सम्बन्ध में प्रकाशित हुई है । यह सज्जन १९वीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग में कलकत्ते में वकालत करते थे और अपने समय के एक सर्वश्रेष्ठ क़ानूनवेत्ता थे । १८१८ में जब कि वह एडवोकेट जनरल के पद पर थे इन्होंने गवर्नमेंट की प्रार्थना पर यह सम्मति प्रकट की थी । आपकी सम्मति में फ़ौजी अदालत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल उन्हीं मनुष्यों का विचार कर सकती है जो गवर्नमेंट के विरुद्ध विद्रोह का कोई खुल्लमखुल्ला कार्य करते हुए अथवा गवर्नमेंट के शत्रुओं को खुल्लमखुल्ला सहायता देते हुए या बहकाते हुए या गवर्नमेंट के विरुद्ध खुले तौर पर शत्रुता का कार्य करते हुए पकड़े जावें। जिन मनुष्यों पर ये अपराध लगाये जावें परन्तु जो इन अपराधों को करते हुए पकड़े न गये हों उनका विचार फ़ौजी अदालत नहीं कर सकती। ब्रिटिश राज्य की और उसकी प्रजा के जान माल की रक्षा के लिए ही फ़ौजी क़ानून से काम लिया जाता है। परन्तु फ़ौजी अदालत से काले पानी और जेल के दण्ड मिलना प्रकट करता है कि फ़ौजी अदालतों की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि शीघ्रतापूर्वक और साधारणतः फांसी ही के दंड देकर विद्रोहियों को डराने की आवश्यकता हो तभी फ़ौजी अदालत की आवश्यकता है। जिन अपराधों में फौरन ही विशेष रूप से दंड देने की ज़रूरत हो उन्हीं का विचार फौजी अदालत में होना ठीक है परन्तु जो मामले चक्करदार हों उनका विचार साधारण अदालतों ही में होना चाहिये। इस सम्मति को देखते हुए क्या पंजाब में फ़ौजी अदालतों से दिये जानेवाले दण्ड आईन-विहित कहे जा सकते हैं? क्या जिन मनुष्यों को दंड मिला है वे सब खुल्लमखुल्ला विद्रोह के कार्य में अथवा गवर्नमेंट के शत्रुओं की सहायता करते हुए पकड़े गये थे? क्या फ़ौजी क़ानून के नाम पर जिन मनुष्यों को दंड दिया गया है उन सब को गवर्नमेंट तथा प्रजा की रक्षा के लिए दंड मिलना और इतनी शीघ्रतापूर्वक ही मिलना आवश्यक था? हम समझते हैं कि बहुत कम निष्पक्ष मनुष्य इन प्रश्नों का उत्तर 'हां' दे सकेंगे। कटक में फौजी अदालतों द्वारा दिये गये दंडों के सम्बंध में जब मि० स्पैंकी ने यह सम्मति दी थी उन्होंने उक्त दंडों को क़ानून के प्रतिकूल बतलाया था और गवर्नमेंट को सब दंडाज्ञाओं को रद्द कर देने की सिफारिश की थी। क्या इस समय भी सरकार को ऐसा ही करना उचित नहीं है? हमारी इच्छा यह कदापि नहीं है कि पंजाब में जिन मनुष्यों ने उपद्रव किये हैं उनको दंड न मिले। परन्तु हां हमारी यह इच्छा अवश्य है कि अपराधियों को क़ानून के अनुकूल उचित दंड मिले और साथ ही निर्दोष मनुष्यों पर भी कोई आपत्ति न आये।

❋

मार्शल ला किस तरह काम में लाया जाय?

मार्शल ला किस तरह काम में लाना चाहिये इस विषय में सन् १८१८ में बंगाल के एडवोकेट-जनरल मि० स्पैंकी ने जो सम्मति दी थी वह हम अन्यत्र प्रकाशित करते हैं। सन् १८१८ में सीलान में उपद्रव हुआ था और वहां मार्शल ला यानी फौजी क़ानून जारी हुआ था। इस सम्बन्ध में पार्लामेंट की लार्ड सभा में सन् १८५१ में

ड्यूक आफ़ वेलिंगटन

ने यह सम्मति दी थी:—

"जो जनरल फौज का शासन करता है उसकी इच्छा ही मार्शल ला है, न उससे ज्यादा न उससे कम। वास्तव में मार्शल ला का मतलब यही है कि कोई क़ानून है ही नहीं। इसलिए जो जनरल मार्शल ला जारी करता है और हुक्म देता है कि यह काम में लाया जाय उसे कुछ ऐसे नियम, क़ायदे व हदें बनानी ही पड़ेगी जिनसे वह अपनी इच्छा को काम में लावे। मैं भी एक दूसरे देश में मार्शल ला काम में ला चुका हूं, अर्थात् मैं अपनी इच्छा के अनुसार बहुत से आदमियों के एक देश पर शासन कर चुका हूं। पर मैंने वहां क्या किया? मैंने घोषणा कर दी कि देश में उसके राष्ट्रीय कानूनों के अनुसार ही शासन हो और अपनी इस इच्छा को मैं काम में लाया। मैंने ठीक क़ायदे के अनुसार और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांतिपूर्वक शासन किया; फल यह हुआ कि वे राजनैतिक नौकर और जज जो शुरू में भाग गये थे या निकाल दिये गये थे उन्होंने भी प्रसन्नतापूर्वक मेरी आज्ञा के अनुसार कार्य करना स्वीकार किया।"

कामन्स सभा में यह प्रगट किया गया था कि 'सन् १८१५ में ड्यूक आफ वेलिंगटन ने फ्रांस के दक्षिण में मार्शल ला जारी किया था पर देश की मामूली अदालतें बन्द नहीं कर दी गई थीं और कानून का विचार सदा की भांति मुल्की अफसरों द्वारा होता था।'

भारत के वर्तमान वाइसराय लार्ड चैम्सफोर्ड के चाचा

सर एफ० थीसगर

ने मार्शल ला के सम्बन्ध म कहा था:—

"सर जे० मेकिनटोश [जो हिन्दुस्तान में कानून के बड़े जाननेवाले थे] ने कहा है कि 'जब कि शस्त्रों के बल से कानून बन्द कर दिया जाय उस समय फौजी अफ़सरों को जिनसे उनकी और समाज की रक्षा संकटापन्न हो जाय दमन करने के लिए उचित रूप से दण्ड देना चाहिये पर जब यह समय बीत जाय उसके बाद नहीं। इस अवस्था के बीत जाने के बाद एक क्षण भी उसे काम में लाना ज़बरदस्ती है। जब कि (मामूली तरह) कानून से काम चल सकता है उस समय आशङ्कित अपराध को और किसी उपाय से दबाना स्वयं बड़ा भारी अपराध करना है।'"

"भारत बन्धु"।

सम्पादकीय-टिप्पणियाँ।

संसार के भविष्य की दृष्टि से यह मास बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसी मास में एक तरह से यह तय हो जायगा कि संसार को फिर युद्ध कितनी जल्दी या देर में देखने को मिलेगा। सन्धि-परिषद् और संसार के तारों को तनिक ध्यानपूर्वक पढ़ियेगा।

❋

संसार का चक्र घूमता नज़र आरहा है, सभ्यता जैसा कि हम बहुत दिनों से कहते चले आ रहे हैं नया रूप धारण करनेवाली है। यूरोप अर्थात् वर्तमान सभ्यता में बहुत कुछ परिवर्तन होगया है, किन्तु देखना यह है कि अब जो शेष है वह शक्ति के स्तम्भ पर स्तम्भित होगा या न्याय के?

❋

सब से बड़ी बात जो तय होने को है वह यह है कि संसार में अधिकार किसका होगा, धनियों, पूंजीवालों का या श्रमजीवियों का? तय होगा यह कि जो परिश्रम करते हैं, जो उद्योग करते हैं, जो अपना खून और पसीना एक करते हैं राष्ट्रीय और सामाजिक नियम उनके अनुकूल होंगे या उनके जो शक्ति के पुजारी हैं, और जिनका सब और सब कुछ रुपया है।

❋

यह भी देखने की बात है कि यूरोपीय महाभारत जातियों के युद्ध के केन्द्र से बाहर निकलता है या नहीं? हम से छिपा नहीं कि राष्ट्र State के सिद्धान्त ने नेशन का रूप धारण किया, नेशन ने बढ़कर साम्राज्यवाद और जाति Race का बाना पहिना और इसी प्रलोभन में पड़ कर यूरोपीय महाभारत में रूस ने स्लाव साम्राज्य का, जर्मनी ने ट्यूटन साम्राज्य और सभ्यता का और लेटिन जातियों ने लेटिन जातियों के विभव का बीड़ा उठाया। अब देखना यह है कि रा० विल्सन के सहयोग का अर्थ एङ्लो-सैकसन डामिनेशन या संसार की प्रभुता तो नहीं है?

❋

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार का भविष्य जर्मनी की हां या ना पर निर्भर है। जर्मनी हां करता है तो उसकी मौत है क्योंकि शर्तें ऐसी हैं कि वह उसे किसी अर्थ का न रहने देंगी, यदि वह ना करता है तब भी उसकी मौत है क्योंकि मित्र-राष्ट्र की फौजें सजी सजाई जर्मन सीमा पर तैयार खड़ी हैं और ना की आवाज़ सुनते ही वे चढ़ दौड़ेंगी। देखें जर्मनी कौनसी मौत पसन्द करता है?

❊

जर्मनी की युद्ध प्रारंभ करने की न इच्छा है न उसमें अब यह शक्ति ही शेष है। हद से हद वह यही कह सकता है कि हमको शर्तें स्वीकार नहीं और हम सन्धि नहीं करेंगे, जो तुम कर सको करो, हमारे देश में घुस आओ और हमारे साथ जैसा चाहो व्यवहार करो। तुम हमको इस प्रकार से उतना हीन और त्रस्त नहीं कर सकते जितना कि तुम्हारी शर्तें हमको हीन बना देंगी।

❊

वास्तव में जर्मनी की दशा कुछ ऐसी हीन है कि मित्र-दल मिन्टों में सेना की सहायता से उसे खंडहर का रूप दे सकता है। इतना ही नहीं जर्मनी आज सहज में उसी दशा को पहुंचाया जा सकता है जो उसकी दशा Thirty years War "तीस वर्ष वाले युद्ध" के अन्त में थी।

❊

किन्तु इसका फल बुरा होगा, जर्मनी के लिए नहीं वरन् संसार और उसकी भावी शान्ति के लिए क्योंकि अवसर पाकर जर्मनी जागेगा और बदला लेगा।

❊

यह भी सन्देह है और यह भयावह है कि यदि मित्रदल अपनी ऐसी करना चाहेगा और जर्मनी को कोई उपाय अस्तित्व का न दिखाई देगा तो वहां बोलशविकों की प्रधानता हो जायगी।

मित्र-दल के राजनीतिज्ञ कदाचित इस सत्य का अनुभव नहीं कर रहे हैं कि भूख और उद्योग-धंधों की कमी मानवसमाज के दुःखों का प्रधान कारण है और इसी के कारण क्रांतियां और खून-खराबे का बाज़ार गर्म होता है। मित्रराष्ट्र इस सत्य की ओर से आँखें फेर कर मारकाट और क्रान्ति की वृद्धि को क्रान्तिकारियों को मार काट कर रोकना चाहते हैं। मालूम पड़ता है संसार के अन्न के ढेर को खाने वालों की संख्या कम कर वे बढ़ाना चाहते हैं। रूस में यही किया जा रहा है और संभव है यही पाठ जर्मनी में भी पढ़ा जाय।

❊

स्वार्थ और बदले की हवस बुझाने के नशे में यूरोपीय राजनीतिज्ञ कदाचित् यह नहीं देख रहे हैं कि यूरोप के निवासी यह देख रहे हैं—देख ही नहीं रहे हैं वरन् यह उनका विश्वास है—कि उनकी गवर्नमेंट्स धूर्तता, चालबाज़ियों, ज़बर्दस्तियों और भूमि हड़पने के दाँव पेंच की मार से उनकी रक्षा नहीं कर सकती हैं और यह कि गवर्नमेंटों में न शक्ति है, न दूरदर्शिता और न बुद्धि कि भविष्य में वे युद्धों का होना असंभव कर दें। इसी जागृति, इसी भाव के उदय होने की वजह से आस्ट्रिया-हंगरी का अङ्ग-भङ्ग हुआ, रूस में बोलशविक प्रधान हुए, जर्मनी से कैसरडम नेस्तनाबूद हो गया, यत्र-तत्र भीषण हड़तालें हो रही हैं और कितने ही तख़्त हिलते नज़र आरहे हैं। हम साफ देख रहे हैं कि आर्थिक क्रान्तियों के झंडे के साथ साथ दूसरे महाभारत की तैयारी हो रही है और दुःख से कहना पड़ रहा है कि सन्धि-परिषद् इस महाभारत की गति को प्रत्येक मिनट तेज़ कर रहा है।

❊

वेदवाक्य यह है कि इस महाभारत ने मज़दूरों और श्रमजीवियों को ऐसा डांवाडोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दिया है कि वे कभी तब तक सेवा या काम करने को तैयार न होंगे जब तक कि वे प्रथमतः स्वतंत्र नहीं होजाते। इससे यह छिपा नहीं कि परिश्रम ही ऐसी शक्ति है जो संसार को जीवित रक्खे हुए है। ऐसी अवस्था में श्रमजीवियों की प्रसन्नता और स्वतंत्रता पर ही सब कुछ निर्भर है। इसके साथ हमको यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि पूँजीवालों का स्वार्थ भिन्न हो सकता है, ईर्षा उनमें भेदभाव भी पैदा कर सकती है किन्तु संसार के समस्त श्रमजीवी एक हैं और वे सदा एक दूसरे की सहायता को तैयार रहेंगे।

❋

यह सब अमेरिका देख सकता है किन्तु शर्त यह है कि वह स्वयम् किसी की कृपा का भिखारी न हो और साथ ही वह किसी पर विशेष कृपा करने की इच्छा भी न रखता हो।

❋

जर्मन, उनकी सरकार और उनके प्रतिनिधि सन्धि की शर्तों को एक स्वर से बुरी कह रहे हैं और उनको वे मानने को तैयार नहीं। अभी तक सरकारी रूप से मित्र-राष्ट्रों को कोई उत्तर नहीं दिया गया है।

❋

मैंचेस्टर गार्जियन ने "भारतीय अशान्ति और गड़बड़" के सम्बन्ध में एक बहुत ही सारगर्भित लेख प्रकाशित किया है। लेख में कई एक बातें बड़ी मार्के की हैं। अशान्ति के कारणों की विवेचना करते हुए "गार्जियन" ने लिखा है कि निकटस्थ कारण रौलट ऐक्ट है जो कि विशेषतया इसलिए नहीं पास किया गया कि बमबाजों या षड़यंत्र रचनेवालों को दंड दिया जाय वरन् इसलिए कि युद्ध के अन्त होने पर जो गड़बड़ हो वह रोकी जाय, सेनाओं के लौटने पर जो उपद्रव मचे वह बन्द किया जाय और साथ ही भारतीय राजनैतिक सुधारों के संबन्ध में जो घोर आन्दोलन हो वह काबू में रक्खा जाय। "गार्जियन" को यह सब लिखने के पहिले भारत सरकार से सलाह कर लेना चाहिये था कि बातें उसकी कहाँ तक ठीक हैं।

❋

दूसरी बात जो पत्र ने लिखा है वह यह है कि इङ्गलैंडवासियों को समझ लेना चाहिये कि भारतवासियों में परस्पर जाति-भेद और धर्म-भेद के कारण जो झगड़े और वैमनस्य रहते थे और जिनके कारण शासन का कार्य कुछ सहज हो जाता था अब नहीं रहे। इङ्गलैंडवालों को इस सत्य को स्वीकार करना चाहिये कि भारत अपरिवर्तनशील नहीं है और उसकी दशा में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है। खुलेखुले शब्दों में जिनमें दूसरा अर्थ नहीं पहनाया जा सकता इङ्गलैंड ने भारत में उत्तरदायित्वपूर्ण शासन स्थापित करने का वचन दिया था और अपने वचन को उसे शीघ्र ही पूरा करना चाहिये।

❋

वेनस्पूर, विलियम लून, डंकन ग्रेहम, राबर्ट रिचर्डसन तथा दो एक और सज्जनों ने कामन्स सभा में इस प्रस्ताव को उपस्थित करने की सूचना दी थी कि रौलट ऐक्ट संबन्धी जो दो क़ानून भारत में गढ़े जा रहे हैं उनका प्रयोग तब तक न किया जाय जब तक कि कामन्स सभा इन क़ानूनों के संबन्ध में अपनी सम्मति न प्रकट कर ले। विलियम लून यह भी प्रस्ताव करनेवाले थे कि एक दिन इस प्रस्ताव की बहस के लिए विशेषतया निश्चित कर दिया जाय। खबर नहीं मिली कि इन सब बातों का नतीजा क्या हुआ किन्तु यह कम सन्तोष की बात नहीं है कि भारतीय प्रश्नों के संबन्ध में मज़दूर-दल के सदस्य अधिकाधिक दिलचस्पी ले रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाब की भीषण दशा

है। पंजाबी नेता प्रायः सब पकड़ गये हैं ! उन पर बग़ावत आदि का भीषण अभियोग लगाया गया है। मुकदमा हो रहा है किन्तु अन्याय और अंधेर यह है कि अभियुक्त अपनी पसन्द के वकीलों से अपनी पैरवी नहीं करा सकते हैं। यह फौजी कानून का न्याय है। बाहर के वकील पंजाब में पैर नहीं रख सकते हैं।

❀

हमारे नेता, हमारे प्रतिनिधि पंजाब में घुसने नहीं पारहे हैं। अधिकारी प्रकाश को मालूम पड़ता है सह नहीं सकते, यह भी संभव है कि वहाँ जो हो रहा है वह प्रकाश में नहीं लाया जा सकता।

❀

हमको इसके कहने में संकोच नहीं कि पंजाब सरकार की विज्ञप्तियों को हम वेद-वाक्य नहीं मान सकते, वह अधूरी और एक-तरफ़ा है, अधिकारियों ने जो कुछ कहा है उसी को सरकार ने वेदवाक्य समझ कर तथास्तु कह दिया है। हम यह नहीं जानते कि पंजाब सरकार ने कभी इस सम्बन्ध में स्वतंत्र जांच की है किन्तु जो सरकारी विज्ञप्तियां निकली हैं, उनकी बिना पर भी फौजी कानून नहीं जारी किया जा सकता था। सड़कों पर बेत मारना किसी भी दृष्टि से न्यायसंगत नहीं हो सकता, दीनहीन निरस्त्र जनता पर गोलाबारी जिस समय जर्मनों ने आरम्भ की थी सभ्य संसार ने चीत्कार शुरू किया था, उसने यह सब युद्ध में किया था किन्तु अपनी दीन प्रजा पर गोलाबारी का श्रेय हमारी पंजाब सरकार ने ही प्राप्त किया है। हम चाहते हैं कि इस मामले में पूरी पूरी जांच हो। जांच के लिए हमारे प्रति-निधि वहाँ जाने पायें। वे मसाला एकत्र करेंगे और फिर एक पार्लामेन्टरी कमीशन नियुक्त किया जाय जो ओडायरशाही के शासन की पूरी पूरी जांच करे। हम जानना चाहते हैं कि रिक्रूटिङ्ग और युद्ध-ऋण के काल में वहां क्या क्या हुआ है।

❀

हमारे नेताओं का भी एक कर्तव्य है। हम जानते हैं कि वे चुप नहीं बैठे हैं, हम यह भी जानते हैं कि वे पंजाब में घुस नहीं सकते किन्तु इसके होते हुए भी वे शहर शहर और ग्राम ग्राम में मीटिङ्ग करा सकते हैं। ब्रिटिश जनता और संसार की जनता को हम सुना देना चाहते हैं कि पंजाब में क्या हो रहा है।

❀

हमारे नेताओं को चाहिये कि वे इन बातों का प्रबन्ध करें और मि० मांटेगू से साफ कह दें कि हम लोगों को सुधार की आवश्यकता नहीं वे अपने सुधार अपने घर रक्खें, हम लोग केवल एक बात चाहते हैं और वह है ओडायर-शाही शासन की पूरी पूरी जाँच।

अभ्युदय प्रेस, प्रयाग में बद्रीप्रसाद पाण्डेय के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप एक ऐसी सुविधा खो रहे हैं जिसका प्राप्त करना तुम्हारे हाथ में है।

क्या आपने कभी ऐसे दुःख का अनुभव किया है जो घर में अचानक असमय में किसी बीमारी के उठ खड़े होने पर पास में अच्छी दवा के न होने से उठाना पड़ता है। अब सुख संचारक कम्पनी मथुरा का "सुधासिन्धु" आपके पड़ोसी तक मंगाकर लाभ उठा रहे हैं, और कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, कै, दस्त आदि रोगों के आक्रमण से बेफिक्री की नींद सोते हैं। असहाय स्त्रियों के भरोसे पर भी बाल बच्चों को छोड़ कर आप मजे में परदेश जा सकते हैं, एक राजमहल से लेकर किसान के झोंपड़े तक में इसके रहने की जरूरत है, सुधासिन्धु एक सच्ची स्वादिष्ट और २७ वर्ष की परीक्षित दवा है। तब कम से कम १ शीशी घर में मंगाकर रखने के लिये हमारे पास आज ही पत्र लिखिये या अपने पास के एजेंट से खरीद लीजिये क्योंकि सुधासिन्धु भारतवर्ष में सब दवा बेचने वालों के पास मिलता है नकली दवाओं से सावधान रहिये।

पूरा हाल जानने के लिये बड़ा सूचीपत्र, जंत्री मुफ्त मंगा देखिये।

मंगाने का पता—

सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा।

२००) रुपये दूंगा

बिना औषध के जन्मभर को रोग दूर।

स्वप्नदोष और शीघ्रपतन बड़े भयङ्कर रोग हैं। स्वप्नदोष नौजवानों के शरीर और दिमाग़ को मिट्टी कर देता है, याददाश्त का तो यह दुश्मन है। शीघ्रपतन गृहस्थों का घातक है, समय पर लज्जित होने से लोग मर जाना अच्छा समझते हैं, सन्तान भी नहीं होती। मुझे एक ऐसी क्रिया-विधि प्राप्त हुई है जिससे ये दोनों रोग जन्मभर के लिए जाते रहते हैं। यह कोई दवाई नहीं केवल एक साधन है इस पर भी यदि प्रयोग करने पर रोग दूर न हो तो २००) रु० दंड दूंगा जोकि आप अदालत द्वारा मुझसे वसूल कर सकते हैं। इसके बताने की फ़ीस राजाओं से १००) धनवानों से ५) सर्वसाधारण व विद्यार्थियों से २) रु०। डाक मह० ।) आना।

नोट—उक्त क्रिया पत्रद्वारा लिखकर बताई जायगी, साथ ही एक बूटी भी भेजी जायगी जिसका सेवन एक सप्ताह तक आवश्यक है।

प्रकाशक —

चन्द्रशेखर शर्मा धर्मोपदेशक,

(नं० २) पो० जलाली ज़ि० अलीगढ़।

बाटलीवाले की स्वदेशी।

असली कुनैन की १ ग्रेनवाली १०० गोलियों की शीशी, असली कुनैन की २ ग्रेनवाली २०० गोलियों की शीशी बुखार, मैलेरिया और जुक़ाम के लिए, एग मिक्सचर, कमज़ोर और थके हुए लोगों के लिए ताकत की गोलियाँ दांतों की जड़ को मज़बूत करनेवाला दन्तमंजन, दाद और खुजली का मलहम, ये दवाएँ सब दवाफरोशों से या डाकृर एच० एल० बाटलीवाला सन्स एन्ड० को० लिमिटेड वारली, १८ बम्बई से मिल सकती हैं।

Dr. H. L. Batliwalla Sons & Co. Ltd.
Warli, 18 Bombay.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मर्यादा

मासिक पत्रिका।

भाग १७] जून, सन् १९१९ [संख्या ६

कामना।

[लेखक—श्रीयुत रामचन्द्र टंडन, बी० ए०]

प्रभो, भारत का हो उत्थान।
विद्या, बुद्धि, कला, कौशल में, हो इसका सम्मान ॥ १ ॥
प्रभो, भारत०

इसकी अमर-भूमि पर पोषित होवे जो सन्तान।
उसमें अर्जुन-सदृश वीर हों, भीम सदृश बलवान ॥ २ ॥
प्रभो, भारत०

गौतम, कपिल, कणाद, यहां हों, हों श्रीकृष्ण महान।
और महात्मा शङ्कर होवें विद्या-ज्ञान-निधान ॥ ३ ॥
प्रभो, भारत०

और यहां पर उन्नति होवे सर्वोत्तम विज्ञान।
जिसका भारत को भी होवे, हे भगवन अभिमान ॥ ४ ॥
प्रभो, भारत०

इसकी अचलकीर्ति का होवे सभी दिशा में गान।
और सभी देशों में होवे दिन दिन इसका मान ॥ ५ ॥
प्रभो भारत का हो उत्थान।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजनैतिक उन्नति के प्रारम्भिक सिद्धान्त ।

[लेखक—लाला लाजपत राय ।]

अपने छात्र-जीवन के आरम्भ से हिन्दुस्तानी अख़बारों को पढ़ते रहने तथा भारतीय राजनैतिक दल से—इस बीस वर्ष के अर्से से—व्यवहारिक सहानुभूति रखते हुए मैं इस निर्णय तक पहुंचा हूं कि भारतीय राजनैतिक दल 'राजनीति' और 'आन्दोलन', दोनों शब्दों को एक अर्थ में लेता आया है। आन्दोलन—राजनैतिक स्वत्वों के लिए लगातार आन्दोलन करते रहना—राजनैतिक स्वत्वों की प्राप्ति के लिए एक राष्ट्र के निमित्त भले ही एक मार्ग मान लिया जाय, किन्तु अकेला 'आन्दोलन' शब्द इस भाव को व्यक्त नहीं कर सकता जो अर्थ 'राजनीति' शब्द के हैं। आन्दोलन केवल वर्तमान स्थिति से सम्बन्ध रखता है और उसका आधार चलतू घटनाओं पर होता है। जो महत्त्व इसे दिया जाता है, वह सिर्फ़ सामयिक घटनाओं और तालिकाओं से, अथवा हाल में गुज़री हुई बातों से ही प्राप्त है। परन्तु 'राजनीति' का सम्बन्ध भविष्य की दृष्टि से राष्ट्र-निर्माण के साथ है। वह (राजनीति) अपनी सहायता के लिए भूत और वर्तमान, दोनों को खींचती है और भविष्य का सोच-विचार करती है, साथ ही भविष्य के निर्माण के लिए सामान एकत्रित करती है। इस प्रकार, वह एक धर्म है, एक विज्ञान है और साथ ही अकेले राजनैतिक आन्दोलन से विचार और विस्तार दोनों में बढ़ी चढ़ी है। एक सच्चे राजनीतिज्ञ में—जैसा कि मैं समझता हूं—जातीयता या विश्वास होता है, परन्तु आन्दोलन करनेवाले में ऐसा कोई भाव नहीं होता। आन्दोलन करनेवाले में "लक्ष्य की तरफ झुकाव, आवेश और अकसर प्रतिभा भी होती है, परन्तु जैसे ही समय बीतता है और उसका उत्साह तथा नया खून ठंडा पड़ जाता है, वह शक्ति-विभाजन तथा असफलताओं के कारण शीघ्र ही पथ-भ्रष्ट अथवा विचलित हो सकता है"। लेकिन राजनीतिज्ञ ऐसा व्यक्ति है; जिसे "उसके विचार सामाजिक अनाचार अथवा अनीति का ज्ञान कराते हैं, परिश्रम मार्ग दिखाता है और जिसका अन्तःकरण—जो कि मानवोद्देश्यमय धार्मिक विश्वास से प्रकाशमान बना हुआ है—उसे आत्मत्याग के उस अथक कर्तव्य का ज्ञान कराता है, जिससे वह उक्त बुराइयों को निकाल फेंकने या दूर कर देने में समर्थ हो सकता है"। और आन्दोलन करनेवाला यानी 'विरोधाचारी'—जैसा कि लेखक, जिसके उद्धरण मैं ले रहा हूं, कहता है—ऐसा व्यक्ति है जो कि अन्याय के विरुद्ध क्रान्ति के उन भावों से जो तनिक सरल मस्तिष्कों में प्रकृति से ही होते हैं, और बहुधा उस व्यथा और कष्ट से भी, जो कि समाज में अपना उचित पद न प्राप्त कर सकने के कारण उन सब लोगों की सहायता से जो वैसी ही आपत्ति में ग्रसित होते हैं, अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न करने के लिए उत्तेजित होता है। सच्चा राजनीतिज्ञ वह है जो "जब तक बुराई विद्यमान है, तब तक अपनी व्यक्तिगत स्थिति की परवाह न कर, आगे बढ़ता चला जाता है। इसके विपरीत आन्दोलनकारी, ज्यों ही उसके प्रति अन्याय बन्द होगा या ज्योंही उस शक्ति के विनाश से जिस पर कि वह आक्रमण करता था उसकी मांग पूरी हो जायगी और क्रान्ति का भाव शान्त या कम हो जायगा, त्योंही चुप बैठ रहेगा"। एक का उद्देश निर्माण करना है, दूसरे का विनाश करना है। पहला उन्नति का इच्छुक है, दूसरा विरोध का। "पहला इस प्रश्न को सिद्धान्तमय समझता है, दूसरा छोटी छोटी बातों को ही गौरव प्रदान करता है। पहले के पास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधेयात्मक कार्य क्रम है, जब कि दूसरा केवल उसी विश्लेषण का अवलम्बन करता है जो पृथक् और नष्ट करता है। सम्भव है कि सच्चा राजनीतिज्ञ अपने उद्देश की पूर्ति न कर सके; परन्तु यदि वह एक बार भी सफल हो गया तो उसकी सफलता स्थायी होगी, जब कि केवल आन्दोलनकारी की विजय, कभी कभी चमत्कृत होने पर भी, अचिरस्थायी होती है। पहला, पहले कर्तव्य का आह्वान करता है, फिर अधिकारों का; दूसरा पहले अधिकारों का आह्वान करता है फिर कर्तव्यों का। पहला यद्यपि वह मानसिक विरोध के कारण, प्रतिकूल कहे, तब भी उसके कार्य प्रबल धार्मिक झुकाव से प्रेरित होते हैं, जब कि दूसरा ईश्वर के नाम की दुहाई देता हुआ भी अधार्मिक और भौतिक दृष्टि से कार्य करता है। पिछले की सम्मति में वर्तमान सदैव भविष्य से और भौतिक स्वार्थ नैतिक उन्नति से श्रेष्ठतर होता है। पहली श्रेणी के लोग जो कि स्वेच्छापूर्वक आत्मत्याग करने के आदी होते हैं, अपने समय के लिए इतना परिश्रम नहीं करते जितना कि आगामी सन्तति के लिए करते हैं। संसार में वे जिन भावों का प्रचार करते हैं उनकी विजय धीरे धीरे होती है, परन्तु पूर्ण और निश्चयात्मक होती है। दूसरी श्रेणी के मनुष्य बहुधा अपने समकालीनों के लिए विजय प्राप्त करते हैं, परन्तु उनकी सन्तति उसका फल नहीं भोगती। पहली श्रेणी के लोग मनुष्यता के नबी हैं, दूसरी श्रेणी के मनुष्य आन्दोलन के प्रेमी होते हैं, किन्तु उनके सिद्धान्त अपरिहार्य होते हैं और यदि सत्य हों तो उन्हें कोई नष्ट नहीं कर सकता। भारत के भविष्य के लिए राजनीतिज्ञों की आवश्यकता है, केवल आन्दोलन करनेवालों की नहीं। राष्ट्र के भविष्य के आधार के लिए दृढ़ और ठोस सिद्धान्त तथा पवित्र साधन चाहियें, भेद-नीति के झगड़ों या सन्देह युक्त चालबाज़ियां नहीं। भारत को ऐसे मनुष्यों की आवश्यकता है जो सुदिन और दुर्दिन, दोनों में क्षणिक पराजय या कठिनाइयों की परवा न करते हुए, उसे सीधे उद्देश्य की ओर ले जायँ—ऐसे मनुष्य जो न तो प्रारम्भिक सफलता के मद से ही फूलें और न क्षणिक असफलताओं से ही भयभीत हों। भारत के राजनैतिक दल के निर्माण करने और नेतृत्व के लिए ऐसे ही मनुष्यों की आवश्यकता है, बलवानों, धनवानों, उपाधिधारियों की नहीं, वरन् दृढ़ात्मा, कर्मण्य, दृढ़ निश्चयी, प्रलोभनों और लालचों में न फँसनेवाले और सर्वोपरि कभी हार न माननेवाले मनुष्यों की आवश्यकता है। वे एक कार्य-क्रम-मत-निश्चित करें और उनके बहुत से देशवासी जो देशभक्ति से भरे हुए हैं, उनके चरण चूमेंगे और सुदिन हो या दुर्दिन, उनका अनुकरण करेंगे। इसलिए राजनीतिज्ञ का पहला काम अपने देश के भविष्य की, जहां तक उसकी पहुंच हो, चिन्ता रखना है। और स्वकल्पित भविष्य की सिद्धि के लिए उपायों की योजना करना है। राजनीतिज्ञ का दूसरा काम अपना मत चुनना और उसका प्रचार करना है।

पहले वह यह निश्चित करे कि वह पूर्ण राजत्ववादी है, या प्रजातंत्रवादी अथवा विधि-विहित राजत्ववादी है, क्योंकि यदि वह इन बातों पर विचार कर लेगा, तभी वह उचित उपायों की योजना कर सकता है जो कि राष्ट्र को इष्ट उद्देश तक ले जायँगे और जिन पर राष्ट्र को अपने भविष्य के लिए तैयारी करनी होगी। जैसा उद्देश्य होगा, वैसे ही उपाय भी होंगे।... ... ..., ...

... ...

... ...

हमको यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भारत में स्वेच्छाचारिता केवल एक व्यक्ति की नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु एक व्यक्ति समुदाय की है। भारतीय राजनीतिज्ञ का प्रथम कर्तव्य—वह प्रजातंत्रवादी हो तब भी—राष्ट्र को इस योग्य बनाना है कि वह एक शासनप्रणाली की विवेकयुक्त माँग कर सके। पहली सीढ़ी मांग पेश करना या मांग का रूप निश्चित करना नहीं, किन्तु उन शक्तियों को पैदा करना है जिनके कारण राष्ट्र को अपना दावा करने का न्याययुक्त अधिकार मिले। मेरी विनीत सम्मति में भारतीय राजनीतिज्ञों के स्मरण रखने योग्य प्रथम स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त यह है कि कोई राष्ट्र जो इन अधिकारों की भीख माँगने और उनका दावा करने में अन्तर नहीं देख सकता, वह किसी राजनैतिक सम्मान के योग्य नहीं। बिना किसी प्रकार की क्षतिपूर्ति के भिखारी को घर से बाहर निकाला जा सकता है, परन्तु ऋणदाता को नहीं, क्योंकि; उसका सम्मान करना पड़ता है। कोई ऋणी ईमानदारी और ज़ोर से अपने दाता की उपेक्षा नहीं कर सकता, परन्तु प्रत्येक दानी पुरुष उस भिखारी की उपेक्षा कर सकता है जिसे वह पसंद नहीं करता या जिसे वह योग्य नहीं समझता। इससे कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अभी हमारी स्थिति भिखारियों की सी है। हम अपने शासकों की दानशीलता पर निर्वाह करते हैं। वे न केवल हमारे ऊपर शासन ही करते हैं, परन्तु वे हमारे आवश्यकताओं के लिए सोचते बनाते और उपदेश भी देते हैं और हमारा भरण पोषण करते हैं।

एक स्वराज्य प्राप्त देश में अथवा स्वस्थ राजनैतिक शरीर में राजा और प्रजा परस्पर परिवर्तनीय हैं। उनके पारस्परिक और क्रमिक अधिकार और कर्तव्य हैं। विदेशियों द्वारा देश में शासक और शासित एक नहीं होते। परन्तु प्रत्येक सच्चे राजनीतिज्ञ का उद्देश्य ऐक्य उत्पन्न करना होना चाहिये। शासित और शासकों के बीच की गहरी खाई तभी भर सकती है जब कि प्रजा, बुद्धि, योग्यता, नैतिकता, आत्मत्याग के माद्दा और उच्च आदर्शों की अधीनता स्वीकार करने में राजा के बराबर हो जाय। जितने ही अधिक सर्वसाधारण इन गुणों में शासकों के बराबर होते जायँगे, उतना ही राजनैतिक समस्या का हल करना, सरल होता जायगा।

जितनी अधिक संख्या में तुम उनके बराबर होते जाओगे, उतना ही वे कर्तव्य कम होते जायँगे जो वास्तवों में प्रजा के होते हैं, परन्तु जो समाज की वर्तमान अवस्था में राजा द्वारा पूर्ण किये जाते हैं। पूर्ण प्रजातंत्र में वास्तविक स्वामित्व लोगों का होता है। राज्य का अस्तित्व उनके लिए और उनके प्रतिनिधि होकर शासन करने के लिए है और फलतः उन्हें प्रजा से कम काम करने पड़ते हैं। अतः सच्ची राजनैतिक उन्नति राष्ट्र को वे कर्तव्य कर सकने के योग्य बनाने में है, जो यद्यपि आजकल शासकों द्वारा किये जाते हैं, तथापि जो स्वस्थ राजनैतिक अवस्था में प्रजा द्वारा किये जाना चाहिये। इस प्रकार विश्लेषण करने पर यह समस्या एक शिक्षा सम्बन्धी समस्या हो जाती है। धार्मिक, नैतिक, मानसिक या औद्योगिक चाहे जिस दृष्टि से देखो, भारत की उन्नति का प्रश्न शिक्षा का प्रश्न है। सारांश यह कि यही सब प्रश्नों का प्रश्न है और इसी के हल होने पर राष्ट्र का भविष्य निर्भर है। यह प्रश्न हैः—राष्ट्र को उन कर्तव्यों की कैसी शिक्षा दी जाय, जिनके समुचित रूप से करने से ही वे साम्राज्य-संघ में अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

परन्तु मेरे देशवासियों को यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि वर्तमान समय का यह महत्वपूर्ण प्रश्न व्याख्यानों और प्रस्तावों द्वारा ही हल नहीं हो सकता। यदि हम अपने देश के भविष्य में सच्चा अनुराग रखते हैं तो हमें गहरा आत्मत्याग करने के लिए तैयार होना चाहिये, ज़ोर से दिल मिल कर कंधा लगा, उन्नति की गाड़ी को नियत स्थान तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खींच ले चलना चाहिये, फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो।

गाड़ी भारी है और जो इसके ले जाने में योग देने की इच्छा रखते हैं, वे दृढ़ात्मा, सच्चे कर्मनिष्ठ, अथक अध्यवसायी और दुर्जेय इच्छा वाले होने चाहिये—वे क्रियाशील और स्वाभिमानी मनुष्य होने चाहिये। देश में सच्ची शिक्षा का प्रचार करने के लिए हमें सादे जीवन में रहने की ज़रूरत है, क्योंकि केवल उपयोगी; ठोस और सर्वव्यापी शिक्षा ही से राष्ट्र का निर्माण हो सकता है और वह अपने भाग्य का निर्णय आप करने का दावा कर सकता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जितना आत्मत्याग करना पड़े, थोड़ा है और जितना ही शीघ्र हम इसका अनुभव करेंगे, उतना ही हमारे और राष्ट्र भर के लिए अच्छा होगा।

—अनुवादक, रमाशङ्कर अवस्थी।

उपालम्भ।

हुआ दुश्वार जीना दिल लगा जबसे सनम तुमसे,
मज़ा पाया न हमने ज़िन्दगी का इक क़लम तुमसे।

जहां तक हो सका ख़ातिर किया हमने, मगर हम पर
रहा बाकी उठाने को नहीं कोई सितम तुमसे॥

भला ही जान कर हमने किया जो कुछ कहा तुमने
रहे अपने लिए मिन्नत ही करते दमबदम तुमसे।

तुम्हारा हुकम हमने आजतक हरगिज़ नहीं टाला
हजारों बार खाई ख़ैरख्वाही की कसम तुमसे॥

हुए बरबाद हरशै से तुम्हारे इश्क में लेकिन
हमारा हो सका पूरा नहीं दर्दे-जख़्म तुमसे।

—श्रीकान्त-कुसुमाकर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वतंत्र-विचार।*

[लेखक—पं० शारदाप्रसाद दुबे, 'विशारद'।]

इस विषय को और स्पष्ट करने के लिए हम इसकी उपमा पुस्तकालय से देते हैं। मान लीजिये कि एक वृहत पुस्तकालय है, परन्तु पुस्तकें उचित स्थान पर शोभायमान नहीं हो रही हैं। दूसरा पुस्तकालय उससे छोटा तो अवश्य है, परन्तु उपर्युक्त त्रुटि से रहित है। कोई भी मनुष्य केवल दूसरे पुस्तकालय की ही गणना उपयोगी पुस्तकालयों में करेगा! ठीक ऐसी ही दशा साहित्य संबंधी विद्वत्ता की भी है। अपने सद्विचारों के परिश्रम से उपार्जन किया हुआ ज्ञान, चाहे कम ही क्यों न हो, उस असीम ज्ञान की अपेक्षा, जो केवल पुस्तकावलोकन से प्राप्त हुआ है, कहीं बढ़ कर है। जो कुछ मनुष्य जानता है प्रायः उसी की यथासाध्य योजना कर के अथवा प्रत्येक सिद्धान्त की दूसरे सिद्धान्त के साथ तुलना करके वह अपने ज्ञान को परिपक्व करता और उस पर अधिकार प्राप्त करता है। वह केवल उसी विषय पर विचार कर सकता है जिसका उसे ज्ञान है। अतएव ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसे कुछ उद्योग करना नितान्त आवश्यक है। परन्तु वह केवल उस विषय को ही जानता है जिसके ऊपर उसने भलीभांति विचार किया है। कवि ने बहुत ही ठीक कहा है :—'चिन्ता बिन चतुराई नहीं'।

मनुष्य जब चाहे तब किसी विशेष उद्देश्य से अपने को केवल पढ़ने तथा सीखने में ही लगाये रह सकता है, परन्तु विचार करने की क्रिया में वह ऐसा नहीं कर सकता। विचार करने की क्रिया को तभी उत्तेजना मिल सकती है, जब कि विचारणीय विषय में चाहे वह कर्म सम्बन्धी हो या अधिकरण सम्बन्धी, विचारक को आनन्द आवे और तभी वह स्थिर भी रह सकती है। जिन विषयों से विचारक का सम्बन्ध है, केवल उन्हीं विषयों में विचार करने की क्रिया का प्रादुर्भाव होता है। परन्तु प्रथम क्रिया केवल सम्भवतः विचारशील मस्तिष्कों के लिए ही है, अर्थात् जिनके लिए विचार क्रिया का होना उतना ही स्वाभाविक है जितना कि जीवन के लिए सांस का लेना। किन्तु ऐसे प्रतिभाशाली इनेगिने ही मिलते हैं।

पठन-क्रिया जनित प्रभाव तथा स्वतन्त्र विचार द्वारा उत्पादित प्रभाव में बड़ा भेद है। इसी कारण मस्तिष्क की प्रवृत्ति या तो विचार क्रिया अथवा अध्ययन की ओर हो जाती है। प्रथम क्रिया के मस्तिष्क में उन विचारों का प्रादुर्भाव होता है जो विदेशीय होने के कारण उसकी स्वतंत्र धारा में बहने के योग्य नहीं हैं। इस दशा में बाहरी दबाव पड़ने पर मन को ऐसे विषयों पर विचार करना पड़ता है जो सर्वथा उसकी इच्छा के प्रतिकूल हैं, तथा जिन पर विचार करने के लिए यथार्थ में शक्य नहीं है। इसके विपरीत स्वतन्त्र विचार करने में मस्तिष्क अपनी स्वाभाविकगति का ही अनुसरण करता है, चाहे किसी बाह्यिक संयोग से अथवा किसी पूर्वा पर स्मृति से वह अमुक विषय पर केवल थोड़े समय के लिए विचार करने पर बाधित हुआ हो। प्रत्यक्ष बाह्यिक संयोग मनुष्य के मन पर एक विशेष विचार ही नहीं अङ्कित करते हैं जैसा कि बहुधा पठन क्रिया से हुआ करता है, किन्तु वे उसे ऐसे विचारों के लिए प्रायः ऐसे उपकरण तथा अवसर प्रदान करते हैं जो उसके स्वभाव तथा तत्कालीन रुचि के

* शोपेनहार की सेल्फ थिंकिंग (Self-thinking) के आधार पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल होते हैं। अतएव पठन क्रिया की बाहुल्यता के कारण मस्तिष्क की इच्छानुकूल भिन्न भिन्न विषय की ओर चित्तवृत्ति नहीं होने पाती। मौलिक विचारशक्ति के न उत्पन्न होने का एक निश्चित कारण यही है कि जिस समय फुर्सत मिली, पाठक अपने हाथ में पुस्तक लेकर बैठ जाते हैं और विचारशक्ति का मार्ग सदैव अवरुद्ध ही रखते हैं। ऐसी ही आदत स्वाभाविक प्रतिभाशाली तथा बुद्धिमान लोगों को भी मन्दबुद्धि तथा मूर्ख बना देती है और सफलता के सभी विधान पलट देती है। इसी आशय को लेकर अंगरेज़ी के प्रसिद्ध कवि पोप (Pope) ने बहुत ही ठीक कहा है:—For ever reading, never to be read:—अर्थात्, निरन्तर पढ़नेवालों के विचारों में नवीनता नहीं रहती और वे दूसरों के लिए व्यर्थ हैं।

वे विद्वान् पुरुष अवश्य हैं जिन्होंने पुस्तकों द्वारा विद्योपार्जन किया है, परन्तु विचारशील, प्रतिभाशाली, संसार को अपनी बुद्धि द्वारा देदीप्यमान करनेवाले योग्य पुरुष तथा मानव जाति के सच्चे उपकारी सज्जन वे ही हैं जिन्होंने सीधे संसार रूपी ग्रन्थ का अध्ययन किया है।

वस्तुतः मनुष्य के मौलिक विचार ही सत्य एवं सजीव हैं, क्योंकि उन्हीं को हम ठीक ठीक और पूर्ण रीति से समझ सकते हैं। विदेशीय विचार जिनका हम मनन करते हैं दूसरों के भोजन का जूठा अंश है, अथवा यों कहा जाय कि किसी परदेशी अतिथि का घृणापूर्वक उतारा हुआ वस्त्र है।

हमारे हृदय में जो विदेशीय विचार उत्पन्न होते हैं, उनका सम्बन्ध हमारे निजी विचारों के साथ ठीक वैसा ही है जैसा कि सृष्टि के आदि में संसार के किसी पौधे के तने पर अंकित चिह्न का बसंत के विकसित पौधे के साथ होता है।

पठन क्रिया मौलिक विचारों का खुद दूसरा स्वरूप है। इसमें मनुष्य के स्वतन्त्र विचारों की तन्त्री दूसरों द्वारा हिलाई जाने पर नाचती है। इसके अतिरिक्त कितनी ही पुस्तकें ऐसी भी हैं जो केवल असत्य पथ ही प्रदर्शन करती हैं और जो मनुष्य अपने स्वतन्त्र विचारों का पथप्रदर्शक मानकर ऐसी निस्सार एवं असत्य पुस्तकों पर अवलम्बित रहता है, वह बड़ी गहरी भूल करता है। जो केवल प्रतिभाशाली है—वह, जो स्वतः विचार करने की शक्ति में समर्थ है, स्वतंत्रतापूर्वक, ठीक ठीक यथातथ्य किसी विषय का निर्णय कर सकता है—उसी के पास दिशा निरूपण (Compass) यंत्र है, जिसके द्वारा वह सदैव उचित और सत्य पथ को ढूंढ़ निकालता है। मनुष्य को केवल उसी समय पढ़ना चाहिये जब उसके मौलिक विचारों का स्रोत बन्द हो। इसमें सन्देह नहीं कि यह दशा कभी २ प्रायः सर्वोत्तम मस्तिष्क वालों की भी हो जाती है। हाथ में केवल पुस्तक ले लेने के लोभ में जो मनुष्य अपने मौलिक विचारों की अवहेलना करता है, वह ईश्वर के समीप पाप भागी तथा पतित है। ऐसे मनुष्यों की गणना उन लोगों में है जो जड़ीबूटियों को देखने के बहाने से स्वयं प्रकृति से भागते हैं, अथवा जो किसी खुदे हुए चित्र में किसी भूमिखण्ड के चित्र का विचार किया करते हैं।

यदि कभी किसी को संयोगवश सुगमता से ऐसा सिद्धान्त पुस्तक में मिल भी जाय जिसे उसने शनैः २ कठिनतापूर्वक अपनी विचारशक्ति द्वारा प्राप्त किया है, तो भी स्मरण रहे कि विचारों द्वारा उपलब्ध सिद्धान्त पुस्तकों में प्राप्त किये हुए सिद्धान्त की अपेक्षा मूल्य में शतगुणा अधिक है, क्योंकि तभी तो समस्त विचारों में से वही एक जागृति अवस्था में है और केवल तभी वह विचारों की शृङ्खला में संगठित है तथा अपने क्षेत्र के उपयुक्त अवसरों पर स्मरण हो जाता है। वह अपनी शैली के स्वतंत्र विचारों के रंग में रंगा रह सकता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए कि उसका स्मरण उचित तथा आवश्यकता के समय पर हुआ है तथा मस्तिष्क में दृढ़तापूर्वक स्थिर है। दूसरों द्वारा छिन जाने से निर्भय होकर वह सुरक्षित रहता है। इसी संबंध में गटे (Goethe) ने इसे पुष्ट करते हुए कहा है, कि "अपनी पैत्रिक सम्पत्ति को अधिकार में सुरक्षित रखने के हेतु उसे प्राप्त करो"। स्वनामधन्य लेखक के शब्दों की सत्यता यहीं झलकती है। स्वयं आलोचकों को अपने विचारों के सत्य होने के प्रमाण कालान्तर ही में प्राप्त हुआ करते हैं, जब कि वे प्रमाण केवल उनके विचारों का पिष्टपेषण करते और स्वयं उन विचारों को सदृढ़ करते हैं। पुस्तकीय तत्ववेत्ता इसके विपरीत इन्हीं सम्मतियों का अनुगामी है। वह विदेशी विचारों से ही, जिन्हें उसने पुस्तकों द्वारा प्राप्त किया है, अपने लिए सम्पूर्ण क्रम निर्माण करता है। इस प्रकार वह इस स्वतंत्र चलनेवाले यंत्र के सदृश है जो विदेशी सामग्री से तैयार किया गया है। परन्तु प्रथम प्रकार का तत्त्वज्ञानी जीता जागता मनुष्य है, क्योंकि इस दशा में वह शरीरधारी मनुष्य की नाईं आविर्भूत हुआ है, उसकी उत्पत्ति ऐसी विचार सम्पन्न स्वाभाविक बुद्धि से हुई है जिसने बहिरंग संसार द्वारा गर्भधारण किया है।

सत्यता—जो शिक्षा का परिणामभूत है,—अपने से इस प्रकार संयुक्त रहती है जिस प्रकार शरीर में कोई अवयव। परन्तु जो सत्यता हमें मौलिक विचारों द्वारा प्राप्त होती है, वह स्वाभाविक अवयव के तुल्य है। वह हमारी वास्तविक सम्पत्ति है। स्वतन्त्र विचार और पुस्तकीय पाण्डित्य में जो भेद है वह इसी से सिद्ध है। अतएव स्वतः विचार करने वालों की मानसिक प्राप्ति उस जीवन रूपी चित्रकारी के सदृश है, जो चित्रकार की पूर्ण योग्यता का परिचय अपने विषय में दे रही है और जो आवश्यक प्रकाश, रंग के दर्जे तथा रंग के एक लय इत्यादि गुणों से विभूषित है। परन्तु एक पुस्तकीय पंडित की मानसिक प्राप्ति, इसके विपरीत, उस काष्ठ के तख्ते की नाईं है, जो चटकीले रँगों से भरा हुआ तथा क्रमानुसार सुशोभित तो अवश्य है, परन्तु तल्लीनता की श्रेष्ठ वंचित है।

पढ़ने का अर्थ, विदेशी मस्तिष्क से, जो अपना नहीं है, विचार करना है। परन्तु मौलिक विचार के लिए जिससे यदि विशुद्ध संस्थिति नहीं तो सम्पूर्ण संयोग युक्तक्रम विकसित होता है, लगातार पठन क्रिया द्वारा प्राप्त विदेशी विचारों के अभेद्य समूह से अधिक और कोई विषय हानिकारक नहीं है; क्योंकि ये—जिनका उत्पत्ति स्थान एक दूसरा ही हृदय है—जो एक दूसरी ही संस्था की सम्पत्ति है—तथा जो एक निराले रंग में ही रंगे हैं—कभी भी एक साथ नहीं बहते, जिससे किसी विशेष विचार की सम्पूर्ण श्रेणी तथा ज्ञान की पूर्ति अथवा निश्चयात्मक सिद्धान्त प्राप्त हो, किन्तु इसके विपरीत विचारों को यत्र तत्र फैला देते हैं तथा हृदय को जो उनसे परिपूर्ण है, अंधकारमय बना देते हैं और उसे अव्यवस्थित दशा में फेंक देते हैं। पुस्तकीय पंडितों की यह दशा ध्यान देने योग्य है। परिणाम यह होता है कि अशिक्षित पुरुषों की अपेक्षा प्रौढ़ विचार में, यथार्थ ज्ञान में तथा अभ्यसित युक्ति में वे पीछे रह जाते हैं। दूसरे प्रकार के मनुष्य अर्थात् अशिक्षित लोग सदैव अपने बाह्य ज्ञान को, जो उन्होंने अनुभव, वार्तालाप तथा पठन क्रिया द्वारा प्राप्त किया है, अपने विचाराधीन कर परिपक्व कर लेते हैं। वैज्ञानिक विचार करने वाला इस कार्य को अधिक उत्तमता से संपादन करता है। यद्यपि उसे अधिक ज्ञान की आवश्यकता होने के कारण अधिक पढ़ना अनिवार्य है, तथापि उसका हृदय इस असीम ज्ञान पर प्रभुत्व जमाने में, उसे अपने अनुकूल करने में तथा विचारों की श्रेणी में क्रमशः सम्मिलित करने में और अन्त में उसे पूर्णतया संयोगाधीन कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाज्वल्यमान प्रकाश में लाने में, जो सर्वदा बढ़ता ही रहता है, सदैव शक्तिमान है। वे मनुष्य, जिनका समस्त जीवन पढ़ने में ही व्यतीत हुआ है तथा जिन्होंने अपना ज्ञान पुस्तकों द्वारा ही प्राप्त किया है, उन मनुष्यों के सदृश हैं जिन्होंने किसी देश का पूर्ण ज्ञान एक प्रवासी द्वारा लिखित उस देश के यात्रा विवरण से प्राप्त किया है। ऐसे मनुष्य देश सम्बन्धी अधिकांश विषयों पर विचार प्रकट कर सकते हैं, परन्तु हृदय में वे इस देश की बनावट सम्बन्धी किसी भी अनुकूल, शुद्ध तथा मौलिक परिचय से अनभिज्ञ हैं। इसके विपरीत वे सज्जन, जिनका सम्पूर्ण जीवन विचारसागर में ही डुबकी लगाने में बीता है, उन पुरुषों की तरह हैं, जो स्वयं देश में भ्रमण कर चुके हैं। वास्तव में केवल वे ही उस देश सम्बन्धी प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर दे सकते हैं, क्योंकि वे वहां की वस्तुओं से तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध से भली भांति परिचित हैं।

साधारण पुस्तकीय तत्त्व ज्ञानी का सम्बन्ध स्वतः विचार करने वाले के साथ ठीक वैसा ही है, जैसा ऐतिहासिक अनुसन्धानक का प्रत्यक्ष दर्शी के साथ। प्रत्यक्ष दर्शी वस्तु के सीधे अवलोकन द्वारा प्राप्त किये हुए ही समाचार सुनाता है। अतएव सब स्वतः विचारक अन्तिम अङ्क पर सहमत होते ही हैं। उनके मतभेद का आरम्भ उनके स्थिरबिन्दु से ही आरम्भ होता है। यदि आरम्भ में मत भेद न हुआ तो सब का कथन एक सा ही हुआ करता है, क्यों कि वे ऐसे ही विषय को सबके सन्मुख प्रकट करते हैं, जो प्रकट में स्वाभाविक ही असत्य से प्रतीत होते थे और जिस कारण मुझे उनके उपस्थित करने में कुछ दुविधा उत्पन्न होती थी। परन्तु उनका पूर्व कथन प्रसिद्ध पुरुषों के ग्रन्थों में देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ, और जिससे मुझे संतोष तथा आश्चर्य दोनों का लक्ष्य बनना पड़ा, परन्तु पुस्तकीय तत्त्वज्ञानी, इसके विपरीत, केवल यही कह सकता है कि अमुक ग्रन्थकार ने इस इस प्रकार कहा है तथा अमुक ने इस रीति से विचार किया है और एक तृतीय ग्रंथकार ने उस पर इस प्रकार आपत्ति की है .... इत्यादि। इसकी वह तुलना करता है, इस पर विचार, टीका टिप्पणी, समालोचना इत्यादि करता है और इस प्रकार विषय की सत्यता को ढूंढ़ निकालने का उद्योग करता है। इस विषय में वह समालोचक इतिहास लेखक के सदृश है। कोई भी पुरुष उपरोक्त सज्जन के उचित परिश्रम पर आश्चर्य कर सकता है, क्योंकि उस समय ऐसा प्रतीत होता है कि यदि यह पुरुष स्वयं विषय पर ही अपनी दृष्टि जमा कर थोड़ा सा भी स्वतंत्रता पूर्वक विचार करे तो अवश्य उद्देश्य को प्राप्त कर लेगा। परन्तु इसके लिये केवल एक ही रुकावट है और वह यह है कि यह अपनी इच्छा पर अवलम्बित नहीं है। कोई भी मनुष्य इच्छानुसार चाहे जब बैठ कर पढ़ सकता है, परन्तु विचार नहीं कर सकता। जिस प्रकार मनुष्य अपनी इच्छानुसार किसी स्वतंत्र व्यक्ति को आज्ञा द्वारा नहीं बुलवा सकता है, उसी प्रकार वह विचारों को भी नहीं बुलवा सकता है। उसे उनके आगमन की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। किसी भी विषय पर विचार के स्वरूप की आभा तभी प्रतिबिम्बित हो सकती है, जब बाह्य अवसर अथवा प्रयोजन, आनन्दमय मधुर हो और आन्तरिक सम्बन्ध मन के वेग के अनुसार उपस्थित हो। परन्तु ये ही दो बातें उपरोक्त प्रकार के सज्जनों के अनुकूल नहीं होती है। यदि हम कतिपय बाह्यिक संयोग के वशीभूत हो किसी विषय का निर्णय किया चाहते हों तो इच्छानुसार हम किसी भी समय पर बैठ कर कारण पर विचार कर सकेंगे परन्तु अपने मनोरथ में सफल न होंगे। क्योंकि बहुधा हम अपने ध्यान को विधिपूर्वक इस क्रिया में संलग्न न कर सकेंगे, वरन् उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यत्रतत्र भ्रमण करता हुआ पायेंगे, जिनके लिये कभी कभी उन बाह्यिक संयोगों में हमारी अरुचि ही पर इसका उत्तर दायित्व है। अतएव हमें उस समय बलपूर्वक अपने विचारों को उस ओर प्रवृत्त न करना चाहिये वरन् चित्त के झुकाव की बाट जोहना चाहिये। यह झुकाव अकस्मात् ही, परन्तु बारम्बार होगा और प्रत्येक मनका भिन्न वेग प्रत्येक भिन्न समय में उक्त विषय पर नया प्रकाश डालेगा। यही मन्द क्रम अथवा विधि ज्ञान की परिपक्व दशा है, क्योंकि विचारों का विभाजित करना आवश्यक है और इस प्रकार असावधानी द्वारा विशेष विस्मृति का अधिकांश पुनः प्रकाश युक्त होगा और अरुचि से पिण्ड छूट जायगा, क्योंकि आवृत अवस्था में जो बातें दृष्टि के सम्मुख रहती हैं, प्रायः बहुत काल तक स्थायी रहा करती हैं। इसी प्रकार काल्पनिक विभाग में भी उचित समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है और बड़े से बड़ा भाग तक सदैव स्वतः विचार करने के योग्य नहीं रहता है। अतएव शेष समय का उपयोग यदि पढ़ने में, जो उपरोक्त कथनानुसार मौलिक विचारों का प्रतिनिधि है और जो मस्तिष्क के लिए सामग्री प्रस्तुत करता है, किया जाय तो अति उत्तम है। इसमें हमारे लिये कोई दूसरा ही विचार करता है जो सर्वदा इसी प्रकार का होता है जिस पर हमारा निजी अधिकार नहीं है। इस कारण हमको पढ़ने में अधिक निमग्न न होना चाहिये जिससे हमारा मन प्रतिनिधि होने ही को अभ्यसित न हो जाय और परिणाम में स्वयं विषयको ही न भूल जाय। दूसरे शब्दों में, यों कहिए कि जिससे वह पद दलित पथ का अभ्यासी न होजाय और जिससे विदेशी विचारों के पथ पर भ्रमण करता हुआ स्वीय पथ से विरक्त न होजाय। मनुष्य को पढ़ने के लोभ में पड़कर अपने तईं वास्तविक संसार के दृश्य से अलग न कर लेना चाहिये, क्योंकि पढ़ने की अपेक्षा बहुधा इस दृश्य में, मौलिक विचार के लिये क्रमानुसार अवसर और रुचि अधिकतर उत्पन्न होती है और विचारशील मनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति ही शक्ति तथा मौलिकता में सर्वकालीन और वास्तविक है और यही उसे सुगमता से गहन विषयों की ओर प्रेरित करने में समर्थ है।

यदि ये विचार सही हैं तो आश्चर्य नहीं है कि स्वतः विचार करनेवाले और पुस्तकीय तत्वज्ञानी अपनी २ वक्तृता द्वारा सुगमता से पहिचाने जा सकते हैं। विचारक के विचारों की विच्छिन्न व्यवस्था तथा उसके उच्चारण में उत्साह सारल्य और मौलिकता की मुहर लगी होगी। पुस्तकीय तत्ववेत्ताओं की वक्तृता में प्रायः प्रत्येक विशेषता परंपरागत मतों तथा नीरस विषयों में बसी हुई विदित होती है जो ढूंढ़ कर निकाली गई है और इसी लिए चिह्न के चिह्न की नाईं रसहीन तथा शिथिल हुआ करती है। उसकी शब्दरचनाशैली जो साधारण रीति के पदों से युक्त है, उस सामान्य रजवाड़े की नाईं है, जिसमें केवल विदेशी सिक्कों का ही प्रचलन है। क्योंकि वह राज्य अपना निजी सिक्का गढ़ने में असमर्थ है।

विचार के बदले में केवल अनुभव को हम उतना ही स्थान दे सकते हैं जितना पढ़ने को देते हैं। यथार्थ अनुभव का सम्बन्ध विचार के साथ ठीक वैसा ही है जैसा भोजन करने का पाचन शक्ति के साथ होता है। अनुभवी मानुषिक बुद्धि का बुद्धि-सम्बन्धी घमंड ठीक वैसा ही है जैसे मुख का शरीर प्रतिपालन-सम्बन्धी।

वास्तव में जो योग्य पुरुष हैं उनके कार्य अपनी स्पष्टता तथा निश्चय द्वारा प्रसिद्ध होते हैं, क्योंकि वे स्पष्ट रीति से निश्चयपूर्वक उस विषय को जानते हैं जो उन्हें दूसरों को दर्शाना होता है, चाहे वह गद्य या पद्य में हो, चाहे ध्वनि में हो। यह उज्वलता तथा स्पष्टता अन्य पुरुषों में नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाई जाती है और इसीसे वे पहिचाने जा सकते हैं।

प्रथम प्रकार के हृदयों का विशिष्ट लक्षण यह है कि उनकी सम्मति तत्काल ही प्राप्त हो जाती है। जो कुछ उन्हें सब के सन्मुख प्रदर्शित करना है, वह सब उन्हीं के विचारों का परिणाम है और हर जगह उन्हें उनकी वक्तृता उन्हें प्रसिद्ध कर लेती है, अतएव राजाओं की नाईं हृदय के साम्राज्य में अति उत्तम सामयिकता उनकी ही सम्पत्ति है। शेष मध्यम श्रेणी के पुरुष हैं, जैसा कि उनकी रचनाशैली से विदित होता है; क्योंकि वह प्रायः मौलिकता रहित होती है।

प्रत्येक सात्विक विचारशील पुरुष इस प्रकार इतना ही होने पर एक राजा की नाईं है। उसकी विचारशक्ति तत्कालीन है और इस लिए वह अपने से बढ़कर किसी को नहीं मानता, उसका निर्णय राजाओं के निर्णय की नाईं उसकी ही महान् शक्ति से प्रादुर्भूत होता है, क्योंकि राजाओं की ही तरह वह आज्ञाएँ तथा प्रमाण स्वीकार नहीं करता, किन्तु इसके साथ ही साथ वह सर्वसाधारण को अपना ऐसा मत भी अंगीकार करने की अनुमति नहीं देगा जिसे उसने विचार शक्ति द्वारा परिपक्व न कर लिया हो। साधारण मस्तिष्क समूह, जो भिन्न भिन्न प्रकार के मत, प्रमाण तथा पक्षपात में फँसा हुआ है, उन मनुष्यों के समान है जो चुपचाप उपर्युक्त पुरुष के विधान एवं आज्ञा का पालन करता है।

वे मनुष्य, जो प्रमाणों की सहायता द्वारा कई प्रश्नों का निर्णय करने में बहुत उत्साही और उतावले होते हैं। अपनी समझ तथा परख के बदले, जिसकी उनमें न्यूनता रहती है, दूसरों की समझ और परख क्षेत्र में लाने से बड़े प्रसन्न होते हैं। उनके विवाद में विश्वव्यापक प्रमाण ही अमोघ शस्त्र होते हैं। इसीसे वे एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं; और यदि संयोग वश इनमें से कोई मनुष्य अपने विवेक तथा तर्कना शक्ति का उपयोग करना चाहे तो समझ लेना चाहिये कि उसे बुरी सलाह मिली है।

वास्तविकता के साम्राज्य में चाहे वह कितना ही सुन्दर, सुखी तथा प्रसन्न मुख हो, हम लगातार अत्याचार के ही प्रभाव में अपना प्रचलन करते हैं और हमें उसके ऊपर विजय प्राप्तार्थ निरन्तर प्रयत्नशील रहना पड़ता है। परन्तु विचार साम्राज्य में हम उस झूठी छाया के समान हैं जो मान और श्रम से रहित है। अतएव इस भूतल पर कोई भी सुख, उस सुख की बराबरी करने में सर्वथा असमर्थ है जो एक सुन्दर एवं उपजाऊ हृदय आनन्द के उमंग में, अपने को प्राप्त करता है।

विचार की उपस्थिति ठीक अपने प्रियजन की उपस्थिति के सदृश मूल्यवान है। हमारी धारणा है कि अमुक विचार को हम कभी विस्मरण नहीं करेंगे और हमारा वही (विचारकृति) प्रियतम हम से कभी उदासीन न होगा। परंतु वह दृष्टि के बाहर होते ही हृदय के भी बहिर्गत हो जाता है। सुन्दर से सुन्दर विचार भी, यदि लिपिबद्ध नहीं है तो उसे भूल जाने का इस प्रकार जोखिम रहता है कि पुनः स्मरण शक्ति में प्रवेश न कर सके और प्रियतमा का भी वियोग यदि वह वैवाहिक ग्रन्थि द्वारा बँधी हुई नहीं है, तो भी अवश्यमेव होना ही है।

कई ऐसे विचार हैं जो केवल विचार करने वाले ही के लिये मूल्यवान हैं, परन्तु इनमें से भी ऐसे बहुत कम हैं जो प्रतिघात तथा प्रतिक्षेप के लिए कर्तृत्वशक्ति से सुसज्जित हैं, अर्थात् जो लिपिबद्ध होने के पश्चात् पाठक से संबंध उत्पन्न कर सकें।

परन्तु, इसके सम्बन्ध में केवल उसीका वास्तव में मूल्य है जिसने प्रथम दृष्टान्त में ही स्वतः अपने लिए विचार किया हो। विचारक दो प्रकार के होते हैं:—प्रथम, वे जो पहिले अपने ही लिए विचार करते हैं और द्वितीय, वे जो दूसरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए तत्कालिक विचारशक्ति से सम्पन्न हैं। प्रथम प्रकार के ही मनुष्य यथार्थ में (तथा शब्द के द्विगुण अर्थ में) स्वतः विचार करनेवाले हैं, वे ही यथार्थ में तत्वज्ञानी हैं। क्योंकि वे ही किसी विषय पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान देते हैं। उनके जीवन का आनन्द और सुख केवल विचार-क्रिया में ही है। द्वितीय प्रकार के पुरुष मिथ्या हेतुवादी हैं। वे दूसरों के द्वारा प्रसिद्ध और सम्मानित हुआ चाहते हैं तथा उन्हीं से सुख-प्राप्ति की भी इच्छा रखते हुए वही अन्वेषण करते हैं। यही उनकी गम्भीरता है। अब लेखक इन दो प्रकारों में से किस विशेष नामावली को अपने नाम द्वारा विभूषित करता है, यह बात सुगमतापूर्वक उसकी रचनाशैली तथा आचरण से विदित हो सकती है।

यदि कोई यह विचार करे कि अस्तित्व (जीवन) की समस्या—इस संदिग्ध—पीड़ित क्षणभंगुर, स्वप्नवत् जीवन की समस्या—कितनी कठिन एवं सूक्ष्म और हमारे कितने समीप है तो उसे विदित हो जायगा कि वह इतनी बड़ी और हमारे इतने समीप है कि ज्योंहीं उसके अस्तित्व से मनुष्य परिचित होता है, त्योंहीं उसकी अन्य समस्याएँ और प्रयोजन प्रथम समस्या के प्रतिबिम्ब के गिरने के कारण उसकी आंख से ओझल हो जाते हैं। यदि कोई मनुष्य इस बात को सोचे कि किस प्रकार सब मनुष्य—कुछ अनूठे सज्जनों को छोड़कर—इस प्रश्न से किसी दशा में भी यथार्थ में अभिज्ञ नहीं हैं—यद्यपि वास्तव में वह उनके अधिकार में नहीं है, तथापि उसे छोड़ और सब विषयों में वे परिश्रम करने को सदैव प्रस्तुत हैं; और उनका सम्बन्ध केवल वर्तमान दिवस से ही है और अपने भविष्य से भी अल्प समय के लिए है—तो या तो वे इस प्रश्न को साफ साफ अस्वीकार ही करते हैं या अपने को इच्छापूर्वक उसके सम्बन्ध में प्रसिद्ध तथा सर्वप्रिय आध्यात्मिक रीति से संतोष दे लेते हैं। जब कोई मनुष्य इस पर भलीभांति विचार करता है, तब उसका प्रायः यही मत स्थिर होता है कि मनुष्य केवल अत्यन्त साधारण अर्थ में ही विचारशील कहा जा सकता है; और चाहे कोई अचैतन्यता अथवा सादेपन के लक्षणों की अनुपस्थिति पर भले ही चकित हो, परन्तु इतना अवश्य उसे ज्ञात हो जायगा कि औसत में मनुष्य की मानसिक स्थिति यद्यपि पशुओं के मानसिक स्थिति से श्रेष्ठ तो है (जो पशु अपने संपूर्ण अस्तित्व से—भूत अथवा भविष्य से—अपरिचित हैं और मानो प्रत्यक्ष में वे केवल वर्तमान ही के लिए जीव धारण किये हुए हैं) तथापि इतनी नहीं कि उसकी गणना ही न हो सके, जैसा बहुधा मनुष्य कल्पना कर लेते हैं।

उपर्युक्त कथनानुसार वार्तालाप में मनुष्यों के विचार छोटे २ किये हुए तिनके के टुकड़ों की नाईं कट जाते हैं, अतएव उनसे कोई विस्तृत सूत नहीं काता जा सकता।

यह भी असंभव होता यदि इस संसार के सब निवासी विचारशील पुरुष ही होते। इस दशा में ठीक वैसा ही होता जैसे कि मानो सब प्रकार के चिल्लाने को—चाहे वह कितना ही भीषण अथवा प्रयोजन रहित हो, अनुमति एवं असीम अमर्यादित स्थान प्रदान कर दिया गया हो। यदि प्रकृति का उद्देश्य मनुष्यों के उत्पन्न करने में केवल उन्हें विचारशील ही बनाना था तो वह मनुष्यों को श्रवणेन्द्रिय कभी भी प्रदान न करती, अथवा चमगीदड़ों की नाईं जिनके इस विशेष अधिकार पर मुझे ईर्षा उत्पन्न होती है; मनुष्यों को भी वह वायु-प्रवेश-मार्ग कुंठित ढकनों से विभूषित करती।

परंतु वह—शेष की नाईं—एक कंगाल जीवधारी है, जिसकी कार्यकारिणी शक्ति का लक्ष्य अपने जीवन की रक्षा करना है और यही कारण है कि उसे सदैव खुली हुई कर्णेन्द्रियों की आवश्यकता पड़ती है जो रात दिन दुःख पर वर्तमान की विज्ञप्ति करते हैं या घोषणा देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुयोग-कुयोग।

सुयोग।

दिनकर ने दिग्वधू—पूर्व के पट घूंघट को खोल।
कोमल कर में वेष्टित करके निरखे रक्त कपोल॥
कहा सरोवर से समीर ने—"यह संयोग अमोल"।
"स्वागत, रवि"!—कह तरल तरङ्गें करने लगीं कल्लोल॥ १॥

दिनमणि ने उत्तुङ्ग आर्द्र के हिम शिखरों को चूम।
पिघला दिया प्रेम से उसके अश्म* हृदय को झूम॥
वह प्रेमार्द्र भाव सुरसरि से मिला खूब ही घूम।
स्रोतों ने कलगान किया लखि यह सम्मेलन धूम॥ २॥

अमल कमल ने ऊर्ध्वग्रीव हो देखा एक निमेष।
रुक न सका अह्लाद वेग रोके था जो हृद्देश॥
बड़े, अर्धमीलित, रतनारे खञ्जन ने सविशेष—
बालातप† को दिया अर्घ्य भर भर जीवन‡ निःशेष!! ३॥

कुयोग।

नभ के वक्षस्थल पर थी नक्षत्रों की मणिमाल।
उसकी लड़ियां टूटीं बिखरे गजमुक्ता सुविशाल॥
"हा, रमणप्रिय निशानाथ! क्या यह दुरन्त विकराल,—
होने को था? "कहा कुमुदिनी ने होकर बेहाल!! ४॥

श्याम गगन में लाली छाई पलट गया वह रङ्ग।
अरुणशिखा§ ध्वनि से दिल धड़के छुटता प्रियतम-सङ्ग॥
नयन जलज में अश्रु ओसकण झलके झिझके अङ्ग।
प्रात दीप भी बुझा साथ ही जलबुझ गया पतङ्ग!! ५॥

शुभ्रा सुभग चन्द्रिका की सन्तप्त श्वास के साथ।
निकले ये उद्गार—"सुनो तुम ऐ! ज्वलन्त दिननाथ!
"छुड़ा करों से दिया तुम्हीं ने जिनका प्यारा साथ—
"उनकी आहें झुलसा देंगी क्या न तुम्हारे हाथ?" ६॥

—"नवीन"।

---

* पत्थर। † बालरवि ‡ जल तथा जीवन। § कुक्कुट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठी इतिहास की शोध।

[लेखक-पं० ब्रजनाथ दुबे, ।]

मराठों का राज्य गये कोई १०० वर्ष व्यतीत हुए हैं। ग्रांटडफ नामक एक इतिहासवेत्ता ने मराठा जाति के विकास, उत्थान तथा पतन का वृत्तान्त तीन भागों में सन् १८२६ ई० में लिखा है, तब से आज तक कोई ग्रन्थ मराठों के इतिहास का नहीं बना, जो बने हैं, वे केवल ग्रांटडफ की पुस्तक के के आधार पर ही हैं। क़रीब पचास वर्ष से मराठों को ग्रांटडफ के बनाये हुए इतिहास पर सन्देह तथा ईर्षा होने लगी है। तब से बहुत सी नई खोज हुई है, परन्तु अब तक कोई इतिहास ग्रांटडफ के मुक़ाबले नहीं बना है।

यदि कोई मनुष्य शिवाजी का जीवनचरित्र ग्रांटडफ की सहायता बिना लिखना चाहे तो नहीं लिख सकता। क्योंकि इतिहास लिखने के पहिले उसको फ़ारसी, मराठी, हिन्दी तथा अङ्गरेज़ी ये चार भाषायें अवश्य जाननी चाहिये और इन भाषाओं में जो हस्तलिखित पुस्तकें हैं, उनका और अङ्गरेज़ी भाषा में "१७वीं शताब्दी में भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे पर इङ्गलिश फैक्ट्री"* नामक पुस्तक का पूर्णरूप से अध्ययन करना चाहिये। बीजापुर, गोलकुण्डा तथा मुग़ल साम्राज्य के उत्तर तथा दक्षिणी देशों का आन्तरिक इतिहास ठीक तौर से जाने बिना कोई भी महाराष्ट्र राजाओं का वृत्तान्त, सच्ची घटनाओं का ठीक २ काल तथा हाल नहीं लिख सकता, क्योंकि सत्रहवीं शताब्दी में दक्षिण प्रान्तों की चार बड़ी २ शक्तियों की (जिसमें कि मराठों की भी शक्ति शामिल थी) आपस में लड़ाई, सन्धि तथा आन्तरिक झगड़ों ने दक्षिण के इतिहास को बहुत कुछ बदल दिया था। केवल शिवाजी और सम्भाजी के राजकाल का इतिहास फ़ारसी भाषा में पाया जाता है। यह यथार्थ में इन दोनों राजाओं के राज्य का बहुत कुछ ठीक क्रमानुसार पता देता है। मराठी भाषा में सन् १६९४ ई० से पहिले कोई इतिहास नहीं बना, किन्तु महाराष्ट्र तथा मुग़ल साम्राज्य का क्रमानुसार हाल पेशवाओं के समय के मराठी पत्रों से मालूम हो सकता है।

पहिले ही पहिले जो इतिहास मराठी भाषा में बना, वह "शिव छत्रपति चैन चरित्र" है। यह इतिहास कृष्णाजी अनन्त ने, जो पहिले जींजीं के क़िले में क़ैद था और फिर राजदर्बारी बना, राजाराम† की आज्ञा से शिवाजी के १४ वर्ष बाद बनाया, यह इतिहास राजकीय पत्रों की सहायता बिना लिखा गया है। इसमें शिवाजी के बाल्य तथा युवावस्था का वर्णन है। यह इतिहास सब से पुराना है और शिवाजी के जीवन का ठीक २ हाल बताता है।

दूसरा इतिहास, सर गोविन्दराम देसाई के कथनानुसार, "श्रीशिव दिग्विजय"‡ है। यह इतिहास शिवाजी के एक कायस्थ लेखक बालाजी आवाजी के पुत्र खांडो बल्लाल ने नर्मदा नदी के दक्षिण में सन् १७१८ ई० में बनाया है। मि० (सर) देसाई लिखते हैं कि यह ग्रन्थ शिवाजी के मरने के ३४ वर्ष बाद लिखा गया है। ग्रन्थकर्त्ता ने शिवाजी की कचहरी के पत्रों से बहुत कुछ लिखा है और कहीं कहीं तो पत्रों की बिलकुल नकल ही करदी है। इस ग्रन्थ को पूर्ण और सच्चा समझना चाहिये। कोई कोई खांडोबल्लाल को इसका रचयिता

* यह पुस्तक इण्डिया ऑफ़िस (India Office) में है। † ये शिवाजी के पुत्र थे ‡ यह ग्रंथ १८९५ ई० में बड़ोदा राज्य में में छपा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं मानते, वे कहते हैं कि इसकी भाषा से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ सन् १७८८ ई० के लगभग नहीं बना, किन्तु कुछ वर्षों बाद बना है।

तीसरा इतिहास जो मराठी भाषा में पाया जाता है वह "चित्रगुप्त बखर" है। इस इतिहास को राजा कोल्हापुर के लेखक रघुनाथ यादव ने सन् १७६०-१७७० ई० के बीच में कभी लिखा है। इस पुस्तक में मराठे दरबारियों का वर्णन है जो कहीं २ छन्दों में भी है। ग्रन्थकर्ता ने इस पुस्तक में बहुतसी घटनाओं का उल्लेख किया है, किन्तु वह ऐतिहासिक दृष्टि से सच्ची नहीं मालूम पड़तीं।

चौथा ग्रन्थ "चितनीस बखर" है जिसको कि राजा सतारा की आज्ञा से उनके सेक्रेटरी मल्हारराम रावने सन् १८१० ई० में बनाया था। इसमें शिवाजी की जीवनी का अच्छी तरह से वर्णन है और इसमें मराठा राज्य के स्थापित करनेवाले को देवता का अवतार बतलाया है। इस ग्रन्थ में बहुत सी आश्चर्यजनक घटनायें पाई जाती हैं और कुछ ऐतिहासिक घटनायें ठीक तौर से लिखी नहीं गई हैं।

मराठी भाषा में "शिवाजी का रायगढ़ में जीवन" नामक सन् १६७०-८० ई० के बीच का बना हुआ एक इतिहास और भी मिला है। इसके मूल का तो पता नहीं चलता, किन्तु ई० जे० फ्रीसैल (E. J. Frissel) ने इसका अङ्गरेज़ी में अनुवाद करके छपवाया है। इस पुस्तक में बहुतसी कहावतें तथा कहानियां दी हुई हैं, परन्तु वे ऐतिहासिक शोध में बहुत थोड़ी सहायता दे सकती हैं।

फ़ारसी भाषा में एक इतिहास "तारीख़ शिवाजी" नामक पाया जाता है। यह इतिहास एक हिन्दुस्तानी ने मराठी पुस्तक से सन् १७७०-८० ई० के बीच में अनुवाद किया है। संस्कृत भाषा में भी एक इतिहास सन् १८२१ ई० का लिखा हुआ है, जोकि "शिवकाव्य" के नाम से पुकारा जाता है। परन्तु इससे भी मराठों का इतिहास अच्छी तरह नहीं मालूम होता।

मराठी राजकीय पत्रों तथा चिट्ठियों से भी बहुत सी ऐतिहासिक घटनाएं मालूम होती हैं। ग्रांटडफ ने अपनी पुस्तक बनाने में इनकी सहायता ली है, किन्तु उसके ग्रन्थ के बनने के बाद भी अब और बहुत से पत्र मिले हैं, जिन में से कोई १० हजार के लगभग पत्रों को कुछ उत्साही महाराष्ट्र सज्जनों ने परिश्रम करके छपवाया है, और अभी बहुत से छपवा रहे हैं। इन पत्रों में से केवल ३५ पत्रों में शिवाजी का हाल है।

मराठी भाषा के जितने इतिहास अबतक मिले हैं उनमें केवल "सभासद बखर" ही एक ऐसा इतिहास मिला है जो शिवाजी तथा उनके घराने के राज्यकाल का बना है, नहीं तो सब इतिहास पेशवाओं के समय में बने हैं। इसका कारण यह है कि जब छत्रपति सन् १६७४ ई० में सिंहासन पर बैठे, उस समय मराठों का किसी देशपर राज्य नहीं था, कोई नगर उनके पास ऐसा नहीं था जिसमें भागकर लोग आपत्ति काल में अपने प्राणों की रक्षा कर सकें और कोई विद्याप्रेमी राजा भी नहीं था जो इतिहास-लेखकों और विद्वानों की रक्षा करे। दूसरा कारण, इतिहासों का १७वीं शताब्दी के बाद बनने का यह है कि यद्यपि शिवाजी की वीरता तथा चतुराई से मराठा राज्य बन गया, चारों ओर महाराष्ट्र देश में शान्ति हुई और इतिहास-लेखकों की भी रक्षा हुई, तो भी महाराष्ट्र देश ने सन् १६६८ से १६८१ ई० तक अधिक सुख नहीं भोगा, और फिर तीस वर्ष (सन् १६८१ से १७११ ई०) तक इस देश में बहुत सी लड़ाइयां हुईं, जिसमें कि मराठों के बहुत से क़िले और नगर शत्रुओं ने लेलिये और सब राजकीय पत्र तथा पुस्तकों को भस्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर डाला। ऐसे समय में इतिहासों का लिखा जाना बहुत ही कठिन था, इसी कारण सब मराठी इतिहास पेशवाओं के समय के लिखे हुए मिलते हैं।

अब फ़ारसी की पुस्तकों का हाल सुनिये। (१) पहिला इतिहास, जो फ़ारसी भाषा में मिलता है, उसमें केवल बीजापुर के बादशाह अली आदिलशाह (द्वितीय) के १० वर्ष के राज्य का हाल है, यह इतिहास नूर उल्लाह का बनाया हुआ है।

(२) दूसरा इतिहास "बस्तीने सलाती" नाम का मिलता है। यह बीजापुर राज्य का पूर्ण इतिहास है और बहुत कुछ विश्वासनीय है। इस ग्रन्थ में शिवाजी और बीजापुर की रियासत का पारस्परिक सम्बन्ध दिया हुआ है, किन्तु मराठों की भीतरी बातों का कुछ भी हाल नहीं है।

(३-४) आलमगीर "तथा मसीरे आलमगीरी" नामक दो पुस्तकें हैं, जो औरङ्गज़ेब के राज्य के सरकारी इतिहास हैं। इन इतिहासों में मराठों और मुग़लों के बीच में जो २ घटनाएं हुई हैं, उनका उल्लेख है।

(५) पांचवां इतिहास ख़फ़ी खां का बनाया हुआ है। इस ग्रन्थ को उसने सन् १७३४ ई० में लिखा है, किन्तु जो बातें ग्रन्थकर्त्ता ने शिवाजी तथा सम्भाजी के लिए लिखी हैं, वे राजकीय पत्रों तथा पुस्तकों के आधार पर नहीं लिखी गईं, किन्तु यों ही सुनसुनाकर लिख दी गई हैं है।

(६) छठा ग्रन्थ रघुनन्दन के पुत्र भीमसेन द्वारा लिखित "नुसख़-ए-दिलकशा" नामका है। इस इतिहास में मराठों और मुग़लों की लड़ाई, प्रसिद्ध २ मनुष्यों के चरित्र तथा और बहुत हाल विस्तारपूर्वक लिखा गया है। शिवाजी का जीवनचरित्र लिखने के लिए इस पुस्तक से अधिक और कोई विश्वासनीय पुस्तक नहीं है। भीमसेन ने कहीं कहीं तारीख़ लिखने में ग़लती की है और सन् १६६०-७० ई० के बीच का जो हाल लिखा है उससे मालूम होता है कि उसने बालकपन में सुनी हुई कहानियों पर निर्भर होकर भी बहुत कुछ लिखा है।

(७) सातवां ग्रन्थ पाटन देश के एक निवासी का लिखा हुआ "औरङ्गज़ेब का इतिहास" है जो कि उसने औरङ्गज़ेब के राज्यकाल में ही बनाया था। इसमें औरङ्गज़ेब का सब हाल लिखा है। किन्तु दक्षिण का इतिहास इसमें बहुत ही थोड़ा मिलता है।

(८) मुग़ल बादशाहों ने जो पत्र महाराष्ट्र राजाओं को फ़ारसी भाषा में लिखे हैं, उनसे भी बहुत कुछ पता चलता है। इन पत्रों में से केवल २२ पत्र ही पाये जाते हैं जो रायबहादुर डी० बी० पर्सनीस के पास हैं। "ख़तूत शिवाजी" और जयसिंह के मंत्री की बनाई हुई "हफ़्त अन्जुमन" नामक पुस्तकों में इन फ़ारसी के २२ पत्रों का उल्लेख है।

(९) "अख़बारात दर्बार मुअल्ला" अर्थात्, मुग़ल सम्राटों की राजग्रहों की घटनाओं के समाचार हैं। इन समाचार पत्रों में से केवल २० पत्रों का पता चलता है, जिसमें कि शिवाजी का पूर्ण रीति से हाल मिलता है।

अब हिन्दी की पुस्तकों की बात सुनिये। केवल दो ही ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें कि शिवाजी का हाल है:—"भूषण काव्य" तथा "छत्रप्रकाश"। 'भूषण काव्य' सुप्रसिद्ध भूषण कवि का बनाया हुआ है। यह पुस्तक वीररस के कवित्तों से भरी हुई है। और इसमें शिवाजी की बहुत प्रशंसा की गई है। इस पुस्तक के बनाने पर भूषण कवि ने शिवाजी से एक लाख रु० और एक हाथी पारितोषिक पाया था। इनकी इस पुस्तक से शिवाजी का इतिहास लिखने में कोई विशेष सहायता नहीं मिल सकती। "छत्रप्रकाश" में शिवाजी और छत्रशाल बुन्देले के सम्बन्ध का वर्णन है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अङ्गरेज़ी भाषा में भी ऐसे ग्रन्थ मिलते हैं, जिनसे १७वीं शताब्दी का हाल मालूम होता है। इङ्गलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी (English East India company) के जो कारखाने १७वीं शताब्दी में सूरत, राजपुर, कारवार तथा धरमगांव में थे, उनके पत्रों से हमको शिवाजी तथा सम्भाजी के काल का ठीक २ वृत्तांत ज्ञात होता है। इन पत्रों से और भी कई विशेष बातें मालूम होती हैं। शिवाजी का वाणिज्य-विषयक तथा उनके जंगी जहाज़ों एवम् सामुद्रिक लड़ाई का वर्णन और बम्बई के किनारे की शक्तियों के साथ सम्बन्ध, सूरत की लूट, मराठा राज्य का कोन्कन (Konkan) तथा कनारा (Kanara) की ओर विस्तार, शिवाजी और उनके दरबार का अङ्गरेज़ों का देखा हुआ वर्णन, शिवाजी का सन् १६७४ ई० में बड़े समारोह के साथ सिंहासनारूढ़ होने का संक्षित हाल और देश की उस समय की दशा आदि बातों का विस्तारपूर्वक हाल भी उसमें मिलता है।

शिवाजी की जीवन-घटनाओं की संक्षिप्त सूची:—१६२७ ई० में शिवाजी का जन्म।

सन् १६४६-५६-शिवाजी ने कोन्कन में बीजापुर के क़िलों को जीता।

सन् १६५७-शिवाजी और मुग़लों की पहिली लड़ाई और सन्धि।

सन् १६५६-शिवाजी का अफ़ज़लखां को मारना, बीजापुर से लड़ाई और राजपुर का छीनना।

सन् १६६०-शाइस्ता खां और बीजापुर वालों का उत्तर, दक्खिन से शिवाजी पर धावा। शाइस्ता खां का चकन लेना और बीजापुर वालों का शिवाजी से पनहला का छीनना।

सन् १६६३-शिवाजी का शाइस्ता खाँ पर पूना में धावा।

सन् १६६४-शिवाजी का सूरत को पहिली बार लूटना।

सन् १६६५-शिवाजी का जयसिंह से लड़ना, पुरन्दर की सुलह।

सन् १६६६-शिवाजी का आगरे में औरङ्ग़ज़ेब के दरबार में उपस्थित होना और उनका आगरे से भागना।

सन् १६६८-शिवाजी का शाहज़ादा मुअज़्ज़म द्वारा मुग़लों से सुलह करना।

सन् १६७०-शिवाजी की मुग़लों के साथ लड़ाई और सन् १६६५ ई० में गये हुए क़िलों को फिर से छीन लेना और सूरत को दूसरी बार लूटना।

सन् १६७१-शिवाजी का दिलेर खां को हराना और सलहर देश का जीतना।

सन् १६७२-शिवाजी का मलहर छीनना, और मोरोपंथ का रामनगर और कोली राज्यों का जीतना।

सन् १६७३-शिवाजी का सितारा के क़िले का जीतना।

सन् १६७४-बीजापुर से लड़ाई और शिवाजी का रायगढ़ में धूमधाम से सिंहासन पर बैठना।

सन् १६७५-शिवाजी का कनारा (Kanara) और करवार (Karwar) का जीतना, और बीजापुरवालों से सन्धि करना।

सन् १६७७-७८-शिवाजी का करनाटक (Karnatak) पर धावा।

सन् १६८०-शिवाजी की मृत्यु।

अब शिवाजी की महत्ता का हाल भी सुनिये। छत्रपति शिवाजी ने मराठा जाति को जन्म देने और उसको इस धरातल पर दृढ़ रूप से संस्थापित करने के लिए ही जन्म धारण किया था। शिवाजी का अपने कार्यों में फलीभूत होना उनके शत्रुओं की निर्बलता का कारण नहीं हो सकता, किन्तु उनका चतुराई से शासन करना ही उनका उस ऊँची पदवी पर पहुंचने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का मुख्य कारण है। शिवाजी का शासन तथा मालगुज़ारी की प्रणाली बहुत ही विचित्र और अच्छी थी, जिसके कारण उनकी प्रजा सदा प्रसन्न और धनवान् रही (मराठाजाति के पतन होने का मुख्य कारण केवल पेशवाओं का शिवाजी के समय की शासन-प्रणाली को काम में न लाने का ही है)। शिवाजी ने अपने राजकार्य को अपने हाथों से किया और अपनी सेना को बिना किसी की सहायता के युद्धकला सिखलाई।

शिवाजी कुछ भी पढ़े लिखे नहीं थे, किन्तु तो भी उन्होंने शासन बहुत ही अच्छे ढङ्ग से किया। उन्होंने किसी अपने मंत्री अथवा सेनापति से सलाह तथा सहायता न ली, किन्तु केवल अपनी ही बुद्धि तथा कार्यदक्षता से उन्होंने ऐसे बड़े मराठा राज्य को स्थापित किया।

शिवाजी के जन्म से पहिले मराठा जाति के लोग जंगलों में इधर ऊधर घूमते और नौकरी का काम करते थे। शिवाजी ही ने इस मराठा जाति को एक ऐसे अखंडित सूत्र में बाँधा कि इस जाति ने दक्खिन की चार बड़ी २ शक्तियों और मुग़लों को बारबार लड़ाई में ललकारा और उनके दांत खट्टे किये, उन्होंने संसार को बतला दिया कि हिन्दू जाति भी एक ऐसी जाति है जो कि शत्रुओं का नाश, अपना बचाव, राज्य-संस्थापन, व्यापार की वृद्धि, जहाज़ बनाने तथा विदेशियों के साथ सामुद्रिक लड़ाई करने में समर्थ हो सकती है।

शिवाजी ने अपने पराक्रम, कार्यदक्षता आदि से भलीभांति बतला दिया है कि यह हिन्दू वंश का वृत्त वास्तव में नष्ट नहीं हुआ है, किन्तु यह भीतर से सहस्रों वर्ष पर्यन्त राज्य-शासन से च्युत होने पर भी फिर उत्पन्न हो सकता है और इस वृत्त में फिर से वही मजमुआदार (Non-Commissioned officers) चितनीस (Clerks) रूपी पत्तियां और शाखाएँ ही केवल नहीं निकल सकते, किन्तु मन्त्री, सेनापति और छत्रपति राजारूपी सुन्दर २ फूल भी उत्पन्न हो सकते हैं और इस देश का मस्तक फिर से आकाश की ओर उठ सकता है।

यही सब कारण हैं कि जिससे भारतवासी छत्रपति शिवाजी को स्नेह तथा मान की दृष्टि से देखते हैं और उनके इतिहास को पढ़ते हैं।

अन्योक्ति।

रे मदान्ध गज! सावधान! मत रह निशङ्क तू!
मत कर पादाक्रान्त शस्य को व्यर्थ, रङ्क तू!!
करता शीर्ण विदीर्ण अनय-करिवर अग्रेसरी!
आ पहुँचा है निकट, सुशासन भीम केसरी!!

—राष्ट्रीय पथिक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजविद्रोह की महौषधि ।

रूस और भारत ।

आर्यावर्त की वर्तमान स्थिति में और रूस की राज्यक्रान्ति के पहिले की स्थिति में अनेक समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। दोनों देशों के निवासी बहुत बड़े धर्मशील हैं और वेदान्त इत्यादि के विवादों में बड़ी रुचि रखते हैं। दोनों ही देशों के निवासी ऐहिक स्वार्थ और सुख-सम्पदा में तल्लीन नहीं होते और दोनों ही की मानसिक वृत्ति ऐसी ही है कि उन पर महापुरुषों की सत्ता बहुत जल्द जम जाती है। प्रकृति ने दोनों ही को अनेक गुणों का आधार बनाया है। दोनों देशों में जनसंख्या भी बहुत है। करोड़ों ही मनुष्य बसते हैं। वह भी भिन्न २ जातियों के और भिन्न २ कर्मों के माननेवाले तथा भिन्न २ भाषाओं के बोलने वाले। दोनों ही देशों में अशिक्षितों की संख्या बहुत ज़्यादा है और निर्धनता का घोर साम्राज्य है। रूस की दुर्घटना के यही तीन कारण थे। एक तो (१) देश निवासियों में विषमता (२) मूर्खता का राज्य था और तीसरे लोग भूख से मरते थे। पहिले दो कारणों का परिणाम यह हुआ कि रूस में जो शान्तिपूर्ण विप्लव हुआ था, वह सफल न हुआ। और दूसरे और तीसरे कारण का यह परिणाम हुआ कि रूस में ऐसी भयङ्कर स्थिति उत्पन्न हो गई। यह रूसी राज्यक्रांति सब लोगों के लिए क्रांतिवादियों के लिए एवम् उन्नति के विरोधियों के लिए तथा सच्चे बुद्धिमानों के लिए और सुधारकों के लिए अत्यन्त उपदेशजनक है। रूस में अराजकता इस कारण से उत्पन्न हुई कि देश के भिन्न २ वर्गों के लोग एक दूसरे के विचारों से, एक दूसरे की विचार-प्रणाली से, एक दूसरे के प्रयोजनों से सर्वथा अनभिज्ञ थे। सरकारी अफ़सर, ज़मींदार, मध्यम श्रेणी के लोग, पढ़े लिखे लोग और किसान लोग इनमें से प्रत्येक वर्ग अन्य वर्गों के विषय में कुछ भी नहीं जानता था। सब से अधिक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि यद्यपि शिक्षित लोग जी जान से प्रयत्न कर रहे थे कि देश में धीरे धीरे सुधार करें और जनता की उन्नति करें तथापि वह जनता के चरित्र को और जनता के गुण-दोषों तथा विचारों को अच्छी तरह से न समझ सके। इसका

कारण क्या था ?

रूस के सुधारवादी कैडिट लोग राष्ट्र पर कोई बड़ा प्रभाव नहीं रखते थे। इसका कारण क्या था ? कारण यह था कि वे जनता से उत्पन्न नहीं हुए थे। वे जनता के दृष्टिकोण को नहीं समझ सकते थे। जनता के सिद्धान्तों का वास्तविक अर्थ करने की सामर्थ्य उनमें न थी। इसी कारण से न तो किसान और न मज़दूर ही उनके दल में सम्मिलित हुए और वे अकेले ही रह गये।

अब सोचिये कि भारतवर्ष के सुधारक किसानों पर और मज़दूरों पर क्या प्रभाव रखते हैं। क्या वे इनसे कोई वास्तविक प्रेम-सम्बन्ध रखते हैं ? क्या यहां के किसान रूस के किसानों की सी दशा में अथवा उससे भी बुरी दशा में नहीं हैं ? और यदि हैं तो उसके लिए उत्तरदाता कौन है ? क्या मज़दूरों को यह मालूम है कि भारतवर्ष के राजनीतिज्ञ हमारे लिए क्या करना चाहते हैं ? और यदि नहीं मालूम है तो इसके लिए उत्तरदाता कौन है ? रूस के किसानों के विषय में एक लेखक ने कहा है कि अशिक्षित होने के कारण उनको अपने क्लेशों और शासन-पद्धति के सम्बन्ध का कुछ ज्ञान न था। वह तो यही समझते थे कि हमारे क्लेश ईश्वरी परमेश्वर के विधान हैं जिसे वे बिलकुल न जानते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, पर जिसकी पूजा करना उनके धर्म ने उनको समझाया था। जनता का अधिकांश भाग कुछ इनेगिने लोगों के सुख-ऐश्वर्य के लिए दिन भर पसीना बहाता था। यह भाग नीचा भाग समझा जाता था और उसे यथार्थ उन्नति करने से रोका जाता था।

जनता की मूर्खता की तरह इस बात में भी भारतवर्ष और क्रान्ति पूर्व रूस की समानता थी कि वहां एक

विदेशीय पद्धति के अनुसार शिक्षा

दी जाती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा विफल ही नहीं हुई किन्तु उससे कुछ आपत्तियां खड़ी हो गईं। रूस के विद्यार्थियों के विषय में एक लेखक ने कहा है कि उनकी ग्रहण-शक्ति आश्चर्यजनक थी। समालोचन-शक्ति अत्यन्त प्रखर थी। सब कुछ जानने के लिए वे उत्सुक थे। पर वे परले सिरे के आलसी भी थे और संकल्प-शक्ति से विहीन थे। वे विज्ञान के दबदबे में थे। पाश्चात्य सिद्धान्तों और विचारों को स्वयम्सिद्ध मानते थे और इनको अपने देश की संस्थाओं में लागू समझते थे। पर वास्तविक कार्य करने की न तो उनके पास सामग्रियां थीं, न शिक्षा थी और न सामर्थ्य थी।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जब इन विद्यार्थियों ने हीगल, मार्क्स, केन्टसकी-मिल और बर्कल इत्यादि के ग्रन्थों का बिना पूर्ण अभिप्राय समझे हुए ही अध्ययन किया और जब उन्होंने रूस के प्रपीड़ित जनसमूह की अवस्था देखी तब वे घोर क्रान्तिवादी हो गये। वे समझने लगे कि राजकर्मचारी जो कुछ करते हैं, वह सब निन्दनीय है--घोर पाप है। बस पूर्वी राजपद्धति और पश्चिमीय विचारों और सिद्धान्तों का रूसी मस्तिष्क पर यह प्रभाव हुआ कि वह विप्लवकारी भावों से भर गया।

भारतवर्ष के लिए सौभाग्य की बात है कि अंग्रेज़ प्रथम भारतीय विद्वान् नेताओं ने नवयुवकों की सामर्थ्य और भावों के लिए एक द्वार खोल दिया है।

रूसी दुर्घटना का तीसरा कारण

घोर दीनता

थी। एक रूसी लेखक ने अपने देश के किसानों के विषय में लिखा है कि इनको मनुष्य समझना ही कठिन है। वे तो टैक्स देनेवाली मशीनें हैं। इनकी स्वयम् यही धारणा है कि हम निराशापूर्ण घोर परिश्रम में ही अपने दिन बिताने के लिए बनाये गये हैं। भारतवर्ष की भांति रूस में भी ऐसे भूखे किसानों का समुदाय था कि जो विदेशियों को सस्ता अन्न पैदा करके खिलाया करता था। इस वर्ष १५ फरवरी को बङ्गाल कोआपरेटिव कान्फरेंस के अधिवेशन में सर डेनियल हैमिल्टन ने कहा था कि युक्तप्रदेश से एक मित्र मुझे लिखते हैं कि यहां पर लोग मक्खियों की तरह मर रहे हैं और कोई परवाह नहीं करता। इसमें आश्चर्य ही क्या है? क्योंकि जब रुपया नहीं है तो डाक्टर कहां से आवें और अन्य प्रकार की सहायता कहां से हो?

भारतवासी अपने देश की आवश्यकताओं को कब समझेंगे? और सुधार के लिए कब प्रयत्न करेंगे?

रूस के दुर्भाग्य से भारतवर्ष को तीन शिक्षाएँ मिलती हैं। एक तो यह कि भारतवर्ष में एकता होनी चाहिये दूसरे यह कि शिक्षा का खूब प्रचार होना चाहिये और तीसरे यह कि जनता की आर्थिक दशा की उन्नति होनी चाहिये।

जब भारतीय जनता के स्वत्वों पर अच्छी तरह से विचार होगा, जब मज़दूरों को उचित वेतन दिया जावेगा, यथार्थ शिक्षा दी जावेगी और समुचित धार्मिक और राजनैतिक स्वतंत्रता प्रदान की जावेगी तब राजविद्रोह आपसे आप दूर हो जावेगा, पर इन बातों के लिए धन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता है। और उस समय तक यह कार्य में परिणत नहीं हो सकता जब तक भारतवर्ष की स्वाभाविक सम्पत्ति और सामग्री से देशी अथवा विदेशी स्वार्थी व्यक्ति या संघ अनुचित लाभ उठाते रहेंगे। इस प्रकार का स्वार्थ-साधन बिलकुल दूर होना चाहिये। राजविद्रोह की यही दवा है। दमननीति से, रौलट ऐक्ट इत्यादि से, कुछ परिणाम नहीं हो सकता।

वर्तमान शिक्षा का आदर्श।

[लेखक—श्रीयुत हरिहरस्वरूप शर्मा ।]

शिक्षा के विस्तार के लिए भारत में इस समय अच्छा उद्योग हो रहा है। शिक्षा की उपादेयता और आवश्यकता को लोग समझने लगे हैं और उसके सर्वत्र प्रचार के अनेक साधनों में भी व्यग्रता दिखलाने लगे हैं। बड़े बड़े विद्यालय, कालेज, गुरुकुल, ऋषिकुल और विश्वविद्यालय तक भारतीयों की गाढ़ी कमाई से बनाये जा रहे हैं। अवश्य ही ये लक्षण अच्छे हैं; परन्तु विचार इस बात का है कि ये सब उद्योग जातीय अभ्युत्थान में किस हद तक सहायक प्रमाणित हुए हैं और आगे हो सकते हैं। आज कल की शिक्षा का उद्देश्य क्या होना चाहिये और वह क्यों होना चाहिये, यह भी एक सोचने की बात है। आज इसी ओर हम पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं।

प्रत्येक काम में, जिसे हम कर रहे हों या करने का विचार करते हों, सफलता की पहली शर्त यह है कि जिस परिणाम पर हमें पहुंचना हो उसके सब पहलुओं को भली प्रकार समझें। अपने बच्चों की शिक्षा को सफल और सम्पूर्ण करने की यदि इच्छा है तो पहले इस विषय पर शान्त चित्त से विचार करना चाहिये, कि इस समय शिक्षित पुरुष आप किसे समझते हैं। किन योग्यताओं के प्राप्त करने से वर्तमान शिक्षा-प्राप्त युवक जीवन-संग्राम में कामयाब माना जा सकता है।

त्रेता और द्वापर की शिक्षा-प्रणाली को सामने रख कर बहस मत कीजिये और न इस प्रकार का शास्त्रार्थ छेड़िये कि स्मृति और पुराण के अनुसार इस प्रकार की शिक्षा होनी चाहिये क्योंकि युगपरिवर्तन के साथ साथ प्रायः सभी बातों में भारी अन्तर पड़ जाते हैं। देश की शिक्षा, सभ्यता आदि पर भी इस परिवर्तन का विचित्र प्रभाव पड़ना एक अनिवार्य बात है। इसी कारण आर्य ऋषियों की शिक्षा के आदर्श और उद्देश्यों से, आज के—यूरोपियन सभ्यता के नक़ाल—भारत के शिक्षा-सम्बन्धी आदर्श एवं उद्देश्यों में आकाश-पाताल का अन्तर हो जाना स्वाभाविक है। इसलिए बहुत प्राचीन काल की नैतिक उच्चता का मुक़ाबिला छोड़ कर पिछले ही दिनों की शिक्षा-प्रणाली के साथ इस समय की यूनिवर्सिटी की शिक्षा का मिलान करके देखना चाहिये कि दोनों में कौनसी अधिक सफल हुई है। हिन्दुओं के प्रत्येक कार्य

वर्ण-व्यवस्था

पर निर्भर रहे हैं, हिन्दू जीवन का कोई भी भाग वर्ण-व्यवस्था के आश्रय बिना परिचालित नहीं हो सकता था। शिक्षा के सम्बन्ध में भी वैसे ही चारों वर्णों की, उनके कर्मानुसार, शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। आज कल की तरह गुरु के आसन पर बैठ कर शिक्षा देने की न तो किसी वैश्य या क्षत्रिय की हिम्मत थी, और न ब्राह्मण ही अपने आचार्य पद को त्याग फ़ौजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जामा पहनने या लालाओं की कोठियों के मुनीब अथवा दलाल बनने में अपना गौरव समझते थे। इसी मर्यादा के अनुसार आज तक देखा जाता है कि वर्ण-परम्परागत शिक्षा की व्यवस्था अब भी बहुत कुछ मौजूद है। इसी का फलस्वरूप आज भी खाती का बेटा खाती, लुहार का लुहार, सुनार का सुनार और चमार का चमार ही बनता है। इस व्यवस्था के अनुसार बच्चों को अपना मार्ग बनाने की कठिनाई से सर्वथा छुटकारा मिला रहता है और उन्हें व्यर्थ जीवन नहीं बिताना पड़ता। संसार में अपने हाथ पाँव हिला कर काम करने योग्य होते ही वे किसी अच्छे कार्य में लग जाते हैं। उन्हें कोई ऐसी शिक्षा अवश्य मिल जाती है, चाहे वह कैसी ही साधारण क्यों न हो, जिससे वे अपना पेट पालने के लिए रोटी कमा सकें और समाज के एक लाभदायक अंग प्रमाणित हों। किन्तु

नई शिक्षा का आदर्श

केवल यही नहीं है। इस समय अमेरिका की शिक्षा के आदर्श को सामने रख कर उसके अनुकरण की ओर लोगों की प्रवृत्ति लगी हुई है। अमेरिका के शिक्षित युवक के चित्त में जो एक विशेष प्रकार का गौरव और अहंकार है वह यह है कि वह अपनी योग्यता के बल पर अमेरिकन प्रजातन्त्र का प्रेसीडेंट बन सकता है और इस आशा से बलीयान् होकर वह अभीष्ट-सिद्धि के लिए जाता है। प्रत्येक नागरिक के लिए समान रूप से हर तरह के रास्ते खुले हुए हैं। आदर्श वास्तव में बड़ा ऊंचा है, इसका विरोधाचरण बन नहीं पड़ता, तथापि बहुत ही दुरूह है और असमञ्जस में डालने वाला है। प्रायः प्रत्येक अमेरिकन युवक शिक्षित होते हैं। उनके सामने यह उद्देश्य रक्खा मिलता है कि जीवन भर उन्नति और अभ्युदय के लिए संग्राम करो, एक क्षण भी सन्तुष्ट हो कर मत बैठो, जब तक उन्नति की सीमा तक पहुंच न लो। दौड़ में दौड़ने वालों की तरह वे धक्का-मुक्की से पहुंचने के स्थान को पा लेने के लिए रात दिन व्याकुल हैं। आराम करना उनका काम नहीं, बल्कि मुक़ाबले के लिए हर घड़ी तैयार रहना ही उनका कर्तव्य है, जिसकी समाप्ति जीवन के साथ ही होती है। इस प्रकार जीवन-संग्राम का कुछ फल ऐसे ही देश में मिल भी सकता था, जिसका ढाँचा नई सूझना ने नये ही ढंग से बनाया था। किन्तु यह दृढ़ता-पूर्वक कहा जाना कुछ कठिन मालूम पड़ता है कि यह प्रथा स्थायी रह सके और इस सिद्धान्त पर जिस समाज की नींव रक्खी गई हो उसे किसी समय भी शान्ति का सुख मिल सके। प्रधान कठिनता तो यही है कि ऐसे अशान्त जीवन के उत्तम पारितोषिकों की संख्या बहुत कम है और उनके उम्मीदवारों का कुछ ठिकाना नहीं। इसी बात को प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्पिनोज़ा (Spiuoza) ने कैसी सुन्दरता से कहा है:—

I am certain that the good of human life cannot lie in the possession of things which for one man to possess, is for the rst to lose, but rather in things which all can possess alike, and where one man's wealth promotes his enighbour's.

किन्तु आर्य आदर्श इससे कहीं ऊँचा था। वहां लौकिक उन्नति को तो कोई वस्तु ही नहीं माना गया, पारलौकिक उन्नति को ही उन्होंने अपना सर्वस्व माना और उसीकी प्राप्ति के लिए सदा सचेष्ट रहे। इसी कारण हिन्दू शिक्षक और विद्यार्थी निरीह, निष्काम होकर विद्या पढ़ते पढ़ाते थे। भिक्षा मांग कर गुज़ारा करना विद्यार्थी का धर्म निर्दिष्ट किया गया था। उनके रहन सहन बहुत सादे और सस्ते थे। उनकी आवश्यकताएँ लम्बी चौड़ी न थीं। उनके हृदय में उठनेवाले विचार बड़े मूल्यवान् होते थे, किन्तु शरीर से दरिद्रता टपकती थी। पिछले दिनों की यूरोपियन शिक्षा की प्रीति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी एक हद तक यही आदर्श रहा है। जब मुद्रण-कला का आविष्कार नहीं हुआ था तो यूरोप में एक से दूसरी यूनिवर्सिटी में, उत्तम शिक्षकों के उपदेश सुनने के लिए, विद्यार्थी जाया करते थे। इसी प्रकार यूरोप के विशिष्ट दार्शनिक एबेलार्ड (Abelard) का मार्मिक भाषण सुनने के लिए यूरोप भर से तीस हज़ार विद्यार्थी पेरिस में एकत्र हुए थे; वे रेल, मोटर या गाड़ियों द्वारा वहां तक नहीं गये थे और उनके साथ सूट सूट से भरे बक्सों का बोझा भी नहीं था। आवश्यक वस्त्रों का गट्ठड़ अपनी पीठ पर लाद कर उन्होंने यात्रा की थी। पेरिस से पेडुआ और पेडुआ से सेलेमैंका (Salamanca) तक उन्होंने पैदल यात्रा की और रास्ते भर भिक्षा मांग कर गुज़ारा किया। विद्या की खोज में घूमनेवालों के लिए भीख मांगने की छूट थी। घर पर और कालेज में विद्यार्थी का काम बड़ा कठिन था और रहन सहन अत्यन्त साधारण था। आजकल की किसी अंग्रेज़ी यूनिवर्सिटी के एक लार्ड घराने के विद्यार्थी के कमरे में नाटक की नर्त्तकियों और घुड़दौड़ आदि के चित्रों सहित हज़ारों के मूल्य का फ़र्नीचर सजा मिलेगा। किन्तु क्वीन एलिज़बेथ के समय में जब प्रसिद्ध अर्ल आव् एसेक्स पढ़ने के लिए भेजा गया था तो उसके रक्षकों ने उसे हरे कपड़े से ढकी हुई एक सादी मेज़, आधे दर्जन कुर्सियां, हाथ धोने की चिलमची और एक सफ़री बिस्तरा दिया था। इन सब वस्तुओं का मूल्य शायद सौ रुपये भी न बैठा होगा। आश्चर्य तो यह होता है कि दरिद्र भारत के विद्यार्थियों में आजकल की अंग्रेज़ी यूनिवर्सिटियों के छात्रों की छैल छींट के नक़ल करने की प्रवृत्ति प्रतिक्षण बढ़ रही है! यह बड़े सन्ताप की बात है।

प्राचीन काल में सादा जीवन से विद्यार्थी की प्रतिष्ठा में कोई बट्टा नहीं लगता था, बल्कि उसकी अधिक प्रतिष्ठा होती थी; क्योंकि जाति के प्रति उसका कर्तव्य रुपये से न तो पूर्ण होता था न उसका बदला ही रुपये से चुकाया जाता था। जिस धन का वे उपार्जन ही नहीं कर सकते थे, जीवन में उसी पर सर्वथा निर्भर भी नहीं रहते थे; इसी कारण उनकी स्वतंत्रता और आत्म-सम्मान के भाव अक्षुण्ण बने रहते थे। स्वतंत्र होने के सब से सरल ये दो मार्ग हैं। यदि तुम अपनी आवश्यकताओं को अधिक बढ़ाते हो, तो ज़रूरी है कि अधिक ही पैदा भी करो। यदि अधिक पैदा करने की योग्यता नहीं है तो इच्छा और आवश्यकताओं को भी कम करो। वे मनुष्य जिनकी विद्या के द्वारा जगत् की वस्तु-स्थिति में कुछ वृद्धि नहीं हो सकती, इसी योग्य हैं कि दरिद्र रह कर दिन काटना सीखें। वे पृथ्वी पर भार-स्वरूप हैं और पृथ्वी का भार जितना हलका किया जा सके उतना ही उत्तम है। वह विद्या जो अपना पेट पालने की योग्यता सम्पादन करने के सिद्धान्त से प्राप्त की जाती है, जातीय और सामाजिक अभ्युत्थान में बड़ी सहायक होती है। इस सिद्धान्त की छत्रछाया में कला और विज्ञान कभी भूखों नहीं मरे।

"विलासिता"

ने जितनी महान् आत्माओं का शिकार किया है उतना भूख ने कभी नहीं किया। इन्हीं उद्देश्यों को लक्ष्य रख कर गौतम और कणाद उत्पन्न हुए; इसी मार्ग का अवलम्बन करने से पाणिनि, पतञ्जलि और कालिदास जीवन-यात्रा में सफल हुए; इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार लूथर, बुकानन, मिल्टन, केपलर और स्पिनोज़ा स्वतंत्र एवं शान्तिमय जीवन बिता सके। खेत में पले बर्न्स (Burns) और विलासिता में डूबे हुए बायरन (Byron) का मुक़ाबला करने से इस सिद्धान्त की महत्ता भली प्रकार मालूम हो जायगी।

यह प्राचीन काल की शिक्षा-पद्धति थी। [illegible] नहीं सकती, क्योंकि नई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभ्यता के साथ इसका मिलान नहीं बैठता। वर्ण-प्रथा के अनुसार शिक्षण की प्रथा नष्ट हो गई; सादगी से गुज़ारा करने के उपदेश का तरीक़ा भी लुप्त हो गया; और इनका स्थान "उदार विचारों" (enlarged minds) को एक आही पुरूषिका ने ग्रहण कर लिया है।

यदि आजकल के एक शिक्षित पुरुष से पूछा जाय कि शिक्षा किस लिए दी जाती है तो उत्तर मिलेगा कि मनुष्यों को शिक्षित बनाने के लिए। यदि यह पूछा जाय कि शिक्षित पुरुष किसे कहा जा सकता है तो उत्तर होगा कि वह मनुष्य शिक्षित कहला सकता है जिसकी प्रतिभाका विकाश भलीभाँति हुआ हो, जो उस संसार का कुछ ज्ञान रखता हो जिसमें वह रहता है, भिन्न भिन्न जातियों, उनकी भाषाओं, इतिहासों, और उनके साहित्य की पुस्तकों का भी जिसे ज्ञान हो; और इसके अतिरिक्त नवीन विज्ञान, ज्योतिष, भूगर्भ-शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, गणितशास्त्र, तथा वे सब शास्त्र, जिनका जानना एक शिक्षित मनुष्य के लिए आवश्यक है, उसके हस्ता मलक हों।

इसके अनुसार शिक्षा का अर्थ है कि प्रत्येक ज्ञातव्य बात का जानना, यानी जो कुछ मनुष्य जाति ने किया हो, सोचा हो, या खोज निकाला हो।

शास्त्रों का इतना बोझा लाद देने पर इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती। योग्यता की परख का जो ढंग है वह पढ़ाई के तरीक़े से भी कहीं बुरा है। परीक्षाओं में जैसे कूट प्रश्न करके परीक्षक लोग अपनी विद्वत्ता का सिक्का जमाना चाहते हैं और उससे परीक्षार्थियों का जैसा संहार होता है उस से हर एक समझदार आदमी दुःखित हुए बिना नहीं रह सकता। अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध लेखक फ्रूड (Froude) ने इसी कठिनता का वर्णन करते हुए लिखा है— कि "जब पहले पहल मुक़ाबले की परीक्षा की प्रणाली चलाई गई तो परीक्षकों के एक बोर्ड को प्रश्न बनाने का काम दिया गया। किस योग्यता के प्रश्न किये जायँ, पहले यह सोचा गया। बोर्ड में से एक विशेष प्रसिद्ध पुरुष ने जो अंग्रेज़ी इतिहास के परीक्षक थे, यह इच्छा प्रकट की कि वे ऐसा पत्र बनाना चाहते हैं जिसमें मैकाले ही शायद पूरे नम्बर पा सके; और अन्य परीक्षकों से भी अनुरोध किया कि वे भी अपने अपने विषयों में ऐसे ही ऊंचे प्रश्न पूछने का ध्यान रक्खें। इस पर तुर्रा यह कि साधारण २१ वर्षीय नवयुवकों से, जिन्हें ग्रीक, लेटिन, आचारशास्त्र, प्राचीन इतिहास, गणित और दो प्रचलित भाषाओं में भी परीक्षा देनी पड़ती थी, यह प्रतीक्षा की जाती थी कि वे प्रत्येक विषय में वैसी ही योग्यता प्रदर्शित करें। किन्तु मैकाले सदृश असाधारण प्रतिभाशाली और बढ़ी चढ़ी अवस्थावाले पुरुष ने, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन एक ही विषय (इतिहास) के अध्ययन में बिता दिया था, केवल एक प्रश्नपत्र देखा था और स्वयं वह भी उन दर्जन भर प्रश्नों में से दो को ही हल कर सका। भारत की यूनिवर्सिटियों में भी बहुत कुछ इसी प्रणाली का अनुसरण किया जाता है।

इस प्रणाली के अनुसार पढ़ना विविध विषयों को अन्दर ठूंसना है। भिन्न भिन्न विषयों को इच्छा न रहते हुए भी परीक्षा में बैठने के लिए गले के नीचे उतारना पड़ता है—इसलिए नहीं कि उन्हें हृदय में स्थायी आवास दिया जाय बल्कि इस लिए—यद्यपि यह कहना वीभत्स होगा—कि एक नियत समय पर परीक्षक की गोद में उन्हें उगल दिया जाय। यह सब उस समय होता है, जब मनुष्य को अपने जीवन की जड़ समाने का अच्छा मौक़ा मिलता है; उसी काल में जिस कार्य के आश्रय से उसे पेट भरना है उस ओर ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न देकर शिक्षित कहलाने के लिए अपनी तमाम शक्तियों को व्यर्थ बातों में लगा देना पड़ता है।

भारत की यूनिवर्सिटियां इन बुराइयों को दूर करने की चेष्टाएं करने लगी हैं। किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय कि उन्होंने अपना कार्य किस हद तक किया तो कुछ विशेष सन्तोष नहीं होता, क्योंकि विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम में जीवनोपयोगी विषयों की संख्या अभी नहीं बढ़ाई गई है; वे ही विषय पढ़ाये जा रहे हैं जो आज तक पढ़ाये जाते रहे हैं। दरिद्र भारत के निर्धन विद्यार्थियों को सादगी से जीवन बिताने का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। कालेज में पढ़ते समय छात्र को उन विलासिताओं का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, जिनका कालेज में घुसने से पहले वह नाम भी नहीं जानता था। आरामतलबी का अभ्यास इतना बढ़ जाता है कि संसार की किसी प्रकार की भी कठिनता का सामना करने की शक्ति जाती रहती है। इस पर मज़ा यह कि समय, स्वास्थ्य और धन का बलिदान करके जो विद्या प्राप्त की जाती है उसकी

बाजार में मांग

नहीं; दुनिया में उचित मान भी नहीं, क्योंकि दुनिया में जो काम हो रहे हैं उनमें वह हिस्सा नहीं ले सकता—उनमें भाग लेने की उसमें योग्यता ही नहीं होती। वह शिक्षित कहलाता है; किन्तु यदि उसके लिए आपही कमा कर पेट भरने के सिवा दूसरा उपाय न बचे तो आठ आने रोज़ाना से अधिक कमा सकना कठिन हो जाय। क्लर्कशिप के सिवा वह किसी मतलब का नहीं। हां, विश्वविद्यालय की शिक्षा पाकर एक मनुष्य

"जेन्टिलमैन"

कहलाने का पात्र अवश्य बन जाता है। इसके अतिरिक्त कोई योग्यता उस छात्र में आती है सो बात नहीं होता। पढ़ लेना और बात है और कार्यक्षेत्र में उतर कर सफल होना बिल्कुल दूसरी बात। विशेषतः इस ज़माने में सफलता के घर शिक्षा से बहुत दूर हो गये हैं।

अन्धेर तो यह है कि हमारे गुरुकुल और ऋषिकुलों में भी इस आवश्यक प्रश्न की ओर उचित ध्यान नहीं दिया जाता। उन्हें राज-कुमारों की तरह हाथ का फोड़ा बनाकर पालते समय यह नहीं सोचा जाता कि कार्यक्षेत्र में उतर कर ये किस योग्य सिद्ध होंगे और इनकी बेहद बढ़ी हुई इच्छाएं किस तरह पूर्ण हो सकेंगी। उन्हें पढ़ाई जाती है संस्कृत, जिसकी स्कूलों या कालेजों में मास्टरी और थोड़ी सी प्रोफ़ेसरशिप के सिवा कहीं पूछ नहीं। उन्हें दरिद्रता का पाठ नहीं पढ़ाया जाता जो संस्कृत छात्रों के लिए आवश्यक रहा है और आज कल जिसकी उपादेयता और भी बढ़ गई है। कपिल कणाद, गौतम बनाने का शंख बजाते बजाते नेताओं के मुंह दुख चले। परन्तु बनते हैं मुलम्मे के 'नक़ली जंटिलमैन', जो इधर के रहते हैं न उधर के। ये इस कारण भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं कि जैसे इन्हें पढ़ाने लिखाने का दण्ड जनता ने भोगा है, वैसे ही उनके जन्म-भर पालन-पोषण का भार भी कहीं उसके सिर न पड़े। असल बात तो यह है कि कणाद, कपिल को उत्पन्न करने का न तो बीज रहा न बोने वाला रहा और न भारत की भूमि में ही वैसे

सुकुमार कुसुम

उपजाने की अब शक्ति रही। कह कर चित्त प्रसन्न कर लेने से क्या होता है; कांच चिन्ता-मणि का स्थान त्रिकाल में भी नहीं पा सकता। ख़ैर देखना है, हमारी—हताश भारत की—आशाओं का एकमात्र लक्ष्य, हिन्दू विश्वविद्यालय, इस कमी को किस हद तक पूर्ण करने में सफल होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आवश्यक हो गया है कि इस प्रणाली को बदला जाय; किन्तु प्रश्न यह है कि किस प्रकार और किस मार्ग का अवलम्बन किया जाय? स्कूलों की शिक्षा की ओर आंख उठाकर देखिये, वहां भी वही

मेड़ियाधंसान

है। टेक्स्ट बुक, उनके सार, कुंजी, अनुवाद आदि घोट घाट कर परीक्षाओं में ऊपरी बनाव दिखाने की चेष्टाएँ ही वहां दीख पड़ती हैं। छोटे छोटे बच्चों को भी अनिच्छापूर्वक अनेक विषयों के पाठ तोते की तरह रटने पड़ते हैं। बालक के हृदय में उन विभिन्न वस्तुओं के नामों को स्थान दिया जाता है जो उसने कभी सुनी नहीं, उन स्थानों के जो उसने कभी देखे नहीं और न देखेगा, ऐसी बातों के वर्णन, जिनको वह समझ ही नहीं सकता और जो उसके लिए केवल शब्द हैं—मेरे विचार में कोमल मेदे को बिल्लौरी पत्थरों से भरना है। यह अवश्य ही आश्चर्य की बात है कि अनेक विषयों की रटन्त लगा कर भी कितने ही प्रतिभा-सम्पन्न बालकों के मस्तिष्क इस योग्य रह जाते हैं कि अनेक बातों को हृदयंगम रखकर बड़ी हाज़िर जवाबी से प्रश्नों के उत्तर दे सकें, मदर्से के इम्तहानों के समय इन्स्पेक्टर साहब को सन्तुष्ट कर दें और अपने मास्टर के कृपाभाजन भी बन सकें। किन्तु इसके बदले में लड़के को क्या लाभ हुआ, इस प्रकार की प्रतिभा को पूर्ण मात्रा में प्राप्त कर के भी वह स्कूल से निकल खड़ा हो तो क्या वह कुटुम्ब के पोषण और जीवन-संग्राम में अपनी एंड़ियों के बल खड़ा रहने योग्य हो गया?

बहुत से लोग बातें किया करते हैं कि भारत में उदार विचार फैलें, अज्ञानान्धकार का नाश होकर विद्या का सूर्य उदय हो, विद्या का प्रकाश हो। हां, हम प्रकाश चाहते हैं, किन्तु ऐसा प्रकाश चाहते हैं, जिसकी रोशनी में हम काम कर सकें और अपने खाने पहनने और रहने की व्यवस्था कर सकें। उसके लिए आवश्यक है कि देश और समाज की सुख-समृद्धि बढ़ाने के लिए उद्योग-धन्धे की शिक्षा का विस्तार किया जाय। एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ने धनी विलासियों के अस्तित्व को इसलिए उपयोगी बतलाया है कि ग़रीब और मध्य-वित्त लोगों के लिए वे आदर्श हैं, यदि वे बने रहेंगे तो जो वैसे नहीं हैं, वे जीवन भर उनकी अवस्था तक पहुंचने का प्रयास करते रहेंगे। वे सीधे स्वर्ग से उतरे हुए देवताओं के प्रतिनिधि से जान पड़ते हैं और अपने पुजारियों को मानो यह उपदेश देते हैं कि

रुपया कमाओ

खूब पैदा करो; तुम और तुम्हारी सन्तान हमारे सदृश ही संसार का सुख भोगेगी; खाओ, पीओ, मौज करो—'भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः'।

यद्यपि आर्यभूमि भारत के निवासियों के हृदय में ये उद्देश्य ऊँचा स्थान नहीं पा सकते और न पाना ही चाहिये; जहां ब्रह्मविद्या को ही परा विद्या माना है और ब्रह्मज्ञान ही जहां वास्तविक ज्ञान है, वहां सांसारिक सुख-दुःख के विचार से पेट भरने ही की विद्या को महत्व देना कदापि युक्ति-युक्त प्रतीत नहीं होता, तथापि समय की गति और लोगों की मति की ओर ध्यान देते हुए, प्राचीन आदर्श की अपेक्षा अत्यन्त अपकृष्ट आदर्श होते हुए भी, देश की दशा को समुन्नत करने के लिए इसी सिद्धान्त को वर्तमान शिक्षा का आदर्श मान लेना कुछ बेसमझी का काम न होगा। इसी विचार से अर्थशास्त्री की राय की भी कुछ क़द्र हो सकती है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि प्रत्येक चतुर आदमी धनी हो जाय और भोला भाला मनुष्य निर्धन रहे। यद्यपि सभ्य और उन्नत कहलानेवाले देशों में रुपया कमाने के सीधे और टेढ़े अनेक प्रकार के मार्ग हैं, किन्तु वहां भी देखा गया है कि अनेक मूर्खों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पास लाखों रुपया है, पर चुस्त चालाक उसकी जुस्तजू में जूतियां चटखाते फिरते हैं। इन बातों पर विचार करना दिलचस्पी से ख़ाली नहीं है।

इससे पहले कि एक बालक के हृदय पर शिक्षा की छाप पड़े हमें यह सोचना चाहिये कि वह कैसी हो। यह सिद्धान्त तो मान ही लेना चाहिये कि प्रत्येक मनुष्य जो संसार में उत्पन्न हो उस मार्ग पर डाला जाय जिस पर चलता हुआ वह ईमानदारी के साथ स्वतंत्र जीवन-यात्रा बितावे। जो शिक्षा इस प्रथम और आवश्यक सिद्धान्त को पूर्ण नहीं कर सकती वह किसी काम की नहीं। जीने के, जैसा किसी ने कहा है, तीन उपाय हैं—काम करना, भीख मांगना या चोरी करना। वे लोग जो कुछ भी काम नहीं करते, चाहे हम कैसी ही सुन्दर भाषा में कह लें, शेष दो में से किसी एक का आश्रय अवश्य लेते हैं। एक निर्धन आदमी का लड़का अपनी इच्छा से दुनियां में नहीं आता है, औरों की तरह वह भी कर्म-बन्धनों में जकड़ा हुआ होने के कारण संसार में पैदा होता है। हमें यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि उसे भिखमंगा या गिरहकट बनने के लिए मजबूर करें; वह भली प्रकार

मेहनत मजदूरी

से अपनी रोटी कमाने का हक़ रखता है। एक वृक्ष को यदि फला फूला देखना है तो पहले उसका बीज उपजाऊ भूमि में बोना होगा। एक मनुष्य अपना सम्मान चाहता है, दूसरा दया का पात्र न बन कर स्वतंत्र रहना चाहता है, आवश्यक है कि वह अपने पांव पर खड़ा हो सकने की योग्यता सम्पादन करे। इसी बुनियाद पर मेधाशक्ति के वास्तविक उत्कर्ष का महल शायद खड़ा किया जा सकता है। इसलिए प्राचीन शागिर्दी का तरीक़ा या सीना बसीनां कोई हुनर ख़ानदान में चलते आने की प्रथा बहुत ही लाभदायक थी। उसके साथ ही धर्म-भीरुता, अपने २ कर्तव्य-कर्म में निष्ठा के भाव बड़े ही शान्ति और सन्तोषप्रदायक होते थे। किन्तु अब इस प्रणाली का लोप हो गया और रहा सहा और हो जायगा।

प्रत्येक छलरहित पेशा, जिसमें कोई आदमी अपना दिल लगाता है, यदि पूर्णरूप से एकाग्र होकर सीखा जाय तो उस विषय का उसे आचार्य बना देता है। कोई भी पेशा हो, चाहे वह कितना ही नीचे दर्जे का हो—भंगी, क़साई या चाबुक के काम से मेरा यहां मतलब नहीं है—किन्तु उपजाऊ पेशा हो, जो

मनुष्यत्व के भण्डार

में कुछ वृद्धि करनेवाला हो, यदि पूरे अवधान से किया जाय तो यह उन्नति की एक सीढ़ी है जिसका कहीं अन्त हो नहीं दीखता, और जिसकी उत्तरोत्तर उन्नति के साथ विज्ञान का दायरा बराबर बढ़ता ही चला जाता है। "कस्बे कमाल कुन् कि अज़ीज़े जहां शवी"। एक खेतिहर का काम लीजिये, जिसे बहुत मोटा काम कहा जाता है। किसान का काम है कि भूमि को अन्न पैदा करने योग्य बनावे; उसके काम के आरम्भिक नियम बड़े सीधे हैं और उन्हें कार्य में परिणत करना श्रमसाध्य होकर भी बहुत साधारण है; तथापि एक मूर्ख और पंडित किसान में बहुत अन्तर है, इस विद्या का जानने वाला खेती की यन्त्र-विद्या, ऋतु-विज्ञान, बीज-वपन की कला, भूमि के अधिक उर्वरा करने की युक्ति और उद्भिजशास्त्र की अनेक बारीकियों से परिचित होगा; जिन्हें एक अल्हड़ किसान नहीं जानता। विज्ञान का प्रत्येक सिद्धान्त इस प्रकार के पेशे में तत्क्षण ही अनुभूत किया जा सकता है। कृषि-विद्या के पंडित की इस समय अच्छी पूछ हो सकती है, वह अपना जीवन ख़ासे मान और सुख से बिता सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक कला और शिल्प का व्यवसाय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करनेवाले दर्ज़ी, सुनार, लुहार, मेमार, चमार, मोची आदि के पेशों में भी बाक़ायदा तौर पर काम किया जाय और उन्हें विज्ञान से सम्बद्ध कर दिया जाय तो अधिक उन्नति हो सकती है। स्कूलों में विविध विषयों की असम्बद्ध व्यवस्था की अपेक्षा प्रत्येक कला और शिल्प के पृथक् पृथक् पढ़ाने की व्यवस्था हो सके तो बड़ा काम हो। बालकों को केवल इतनी ही बात पढ़ाओ जिनसे उन्हें जीवन में काम लेना हो, उन बातों के पढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं, जिन्हें वे स्कूल से निकलते ही भूल जायँ। इन तत्व और सिद्धान्तों का ज्ञान इन्हें कराना चाहिये जिनसे उनका काम पड़े; और यदि प्रतिभाशाली बालकों को अमेरिका के प्रेसीडेंट या कोटीश्वर बनाना हो तो भी शिल्प की शिक्षा निकम्मी सिद्ध न होगी।

हमारे कहने का मतलब यह नहीं है कि दिमाग़ी शिक्षा की ज़रूरत ही नहीं। संसार में जहां हाथ से काम करने वालों की आवश्यकता है, वहां दिमाग़ या दिमाग़ और हाथ दोनों से संयुक्त काम करनेवालों की भी कम ज़रूरत नहीं है। धर्मोपदेष्टा, न्यायवादी (वकील) डाक्टर, और इंजीनियर आदि की मांग बराबर बनी हुई है। आध्यात्मिक ज्ञान नष्ट हो गया है, शारीरिक स्थिति बिगड़ चली है; व्यवहार में कपट का प्रयोग होता है; इस लिए ऊपर लिखे हुए उजले पेशों की भी ज़रूरत है। पेशों के लिए जो शिक्षा प्राप्त की जाती है उसमें भी उसी सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। आज कल की यूनिवर्सिटियों में पेशे की शिक्षा भी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं की जा सकती, किन्तु इतना अवश्य है कि वहां हर एक पेशे के छात्र के हृदय में काल्पनिक और वैज्ञानिक रीति से बुनियाद पड़ जाती है जो अन्य उपाय से सम्भव ही नहीं, और यदि वह मूल्यवान् समय व्यर्थ गँवा दिया गया तो फिर यथार्थ में उसकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। यदि तुम्हें एक कामयाब वकील बनना है तो संस्कृत भाषा अवश्य पढ़नी चाहिये, क्योंकि इसकी सहायता बिना हिन्दू क़ानून और मनु तथा याज्ञवल्क्य प्रणीत न्याय का वास्तविक ज्ञान नहीं होगा और लिवी या थ्यूसिडाइड्स पढ़ने की अपेक्षा स्काटलैंड के ऐक्ट आव् पार्लामेंट का पढ़ डालना अधिक लाभदायक होगा। किन्तु यदि डाक्टर बनना है तो न ऐक्ट आव् पार्लामेंट और न लिवी किसी मतलब के हैं, उस दशा में रसायन शास्त्र (chemistery) का ज्ञान और समय मिले तो वैद्यक एवम् यूनानी चिकित्सा-प्रणाली का ज्ञान लेना अधिक लाभदायक होगा। और यदि इंजिनीयर बनना है तो सब छोड़ गणितशास्त्र का मन लगाकर अध्ययन करना चाहिये और केमिस्ट्री तथा पदार्थ विज्ञान-शास्त्र से भी परिचय लाभ करना चाहिये। इस तरह जिस पेशे का अवलंबन करके जीवन बिताना है, पहला काम यह है कि उसकी

शाखा-प्रशाखाओं

का ज्ञान सम्पादन किया जाय। अनन्तर किसी और तरफ़ प्रवृत्ति की जाय।

जिन सिद्धान्तों को लेकर ये बातें कही जा रही हैं वे दुनियवी हैं, संसार से सम्बन्ध रखते हैं, यह हमारे ख़ूब ध्यान में है। यह इस लिए कहा जा रहा है कि चूंकि हम दुनिया के आदमी हैं, दुनिया में रहते हैं, दुनिया के जंजाल में फंसे हुए हैं और ऐसी बातों के साथ हमारा हानि-लाभ है; इस लिए परमार्थ का विचार थोड़ी देर के छोड़ कर

स्वार्थ के मसले

पर भी बहस करनी चाहिये। यह स्थिर हो गया कि मानसिक काम करो या शारीरिक, यह ध्यान अवश्य रक्खो कि उससे तुम्हारी आजीविका का सवाल हल होता है या नहीं। यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि साहित्य, इतिहास, विज्ञान, न्याय, धर्मशास्त्र, अन्य भाषा आदि का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ना लिखना छोड़ बैठो, नहीं, उनका ज्ञान सम्पादन करना जीवन को सुख-शान्तिमय बनाना है, वे एक मनुष्य के

सच्चे अलंकार

हैं, दुनिया से मुंह मोड़ लेने पर चढ़ी अवस्था में वे पारलौकिक आनन्द और अनुपम सन्तोष के हेतु सिद्ध होंगे; किन्तु जहां तक संसार का सम्बन्ध है उनसे अधिक सहायता नहीं मिल सकती वे अकेले जीवन की उपयोगी सामग्री जुटा देने में लड़खड़ाते दीख पड़ेंगे; और उस मनुष्य को मनुष्य कहना नहीं चाहिये जो विद्वान् तो बड़ा भारी हो, पर अपना पेट न भर सकता हो। शास्त्र अनेक हैं, समय कम है और है सो भी विघ्न-संकुल है; इसलिए जो सारभूत हो, जो उपयोगी हो, जिसकी दुनिया में पूछ हो और आवश्यकता हो उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। दिन बदिन "Nore multa sed multum (not many things, but much) अर्थात् बहुत से शास्त्र नहीं बल्कि एक शास्त्र का बहुत सा ज्ञान प्राप्त करने का सिद्धान्त बड़े वेग से सत्य प्रमाणित होता जा रहा है। इसी सिद्धान्त के आश्रय से चाहे छोटा पेशा करने वाला हो चाहे ऊंचा, यदि उसकी प्रतिभा साथ दे तो ऊंचे से ऊंचे स्थान पर पहुंच सकता है, और अपने मण्डल में महान् पुरुष कहला सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से पेट भरने की विद्या पढ़ लेना और उसके द्वारा बड़ा बन जाना बेशक भारत-भूमि में जीवन का महदुद्देश्य माना जाना कठिन है। किन्तु समाज में जैसी लहर उठी है और जिस पाश्चात्य सभ्यता की छाया में नई नसल तैयार हो रही है उसके सामने सांसारिक दृष्टि से इस सिद्धान्त पर प्रकाश डालना कर्तव्य-कर्म हो गया है। क्योंकि ख़ाली अध्यात्म शास्त्र का नाम जपने से पेट की क्षुधा निवारण नहीं होगी और जपनेवालों की आत्मा इतनी बलवान् नहीं रही कि वे वायुभक्षण करके गुज़ारा कर सकें। नोवलिस (Novalis) ने एक जगह कहा है—

"Philosophy will take no bread, but it gives us Heaven; it gives us knowledge of those grand truths which concern us as immortal beings"

यहां यह कहा जा सकता है कि रोटी की चिन्ता करना हमारा काम नहीं है, हमें आश्वासन दिया गया है कि—

"येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरिती कृताः,
मयूराश्चित्रिता येन, स ते वृत्तिं विधास्यति"।

"Take no thought what ye shall eat, or what ye shall drink, or wherewithal ye shall be clothed? Your Heavenly Father knoweth that ye have need of these things. Behold the lilies of the field, they toil not, neither do they spin yet Solomon in all his glory was not arrayed like one of these."

(Matthew VI.)

अवश्य ही यह स्वप्न नहीं है; ईश्वर पर जो कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुम् समर्थ है, भरोसा न करना नास्तिकता है। परन्तु इसका यह अर्थ समझ कर कि भगवान् हमारा प्रबन्ध स्वयं करेगा हाथ पर हाथ रख कर बैठे रहना भी हद दर्जे की मूर्खता है। इस प्रकार के उपदेशों के पात्र बहुत कम हैं और उन पर अमल करने का हृदय रखनेवाले और भी कम हैं। मैथ्यू का उपदेश भी साधारण मनुष्यों को नहीं, उन महात्माओं को दिया गया था जो धर्म-प्रचारार्थ नंगे पांव देशाटन करने का व्रत कर चुके थे। उन्हें त्रिकाल में

सांसारिक टीपटाप

की न तो इच्छा थी और न वे हिंसोद्दता के बन्दों की तरह संसार में मन अटका कर उसकी इच्छाओं को पूर्ण करने के प्रयासी थे। इसी कारण इस उपदेश से उनका बहुत हितसाधन होता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए दुनिया का काम करनेवालों का इस सिद्धान्त से कुछ सरोकार नहीं है; इन्हें तो किसी महात्मा के उसी वाक्य का आश्रय लेना होगा जो उसने उस समय कहा कि वह साहित्य को अपना पेशा बनाये कि—"I will work with my hands, and keep my brain for myself." यूरोप का महा प्रतिभाशाली दार्शनिक स्पिनोज़ा अपनी पेंशन, जायदाद की आमदनी की परवा न करके, खुर्दबीन और दूरबीन के शीशे बना कर अपना पेट भरने योग्य पैसे कमाता था, क्योंकि दर्शन या साहित्य की सहायता से दुनियां की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो सकतीं।

साहित्य ही एक ऐसा पेशा है जिसमें मेहनताना काम की उत्तमता या निकृष्टता के अनुसार नहीं मिलता। यह नहीं है कि मेहनताने का भाव कुछ कम हो, बल्कि कठिनता यह है कि काम की परख का तरीक़ा बड़ा पेंचदार है। काम करते समय पहला उद्देश्य यह है कि काम की परख का तरीक़ा बड़ा पेंचदार है। काम करते समय पहला उद्देश्य यह होना चाहिये कि काम अच्छा किया जाय, उसके दाम उसी के अनुसार मिल जायँगे, इस सिद्धान्त का साहित्य के पेशे के अतिरिक्त प्रायः सर्वत्र पालन होता है। बढ़िया खाती को अधिक वेतन मिलेगा, जैसा वह काम अच्छा करेगा वैसे ही उसकी इच्छाएँ अधिक फलवती होंगी। बढ़िया वकील या डाक्टर की प्रैक्टिस ख़ूब चमक जाती है और गिने दिनों में लक्षाधीश होते दीखते हैं। किन्तु साहित्य के साथ एक दूसरा ही सवाल खड़ा हो जाता है। आजकल के जो नियम हैं, जिनके अनुसार ग्रन्थकर्त्ता या लेखकों को मेहनताना मिलता है, वे ही इस कठिनता के मूल हैं। पृष्ठ और शीट की गिनती पर दाम मिलते हैं, जितने अधिक शब्द उतने ही अधिक पैसे। किन्तु होना चाहिये इससे बिलकुल उलटा। उत्तम सरस काव्य, उत्तम दर्शन, उत्कृष्ट वैज्ञानिक खोज, नवीन ऐतिहासिक गवेषणा, प्रत्येक विद्वत्तापूर्ण लेख या ग्रन्थ जिसमें लेखक की प्रतिभा का विकाश हुआ हो, कार्य की उपादेयता और विषय की स्थिरता प्रकट होती हो, ये ऊँचे और मौलिक विचारों, विवेक, समय और कठिन श्रमसाध्य तपस्या के ही फल हो सकते हैं। इस प्रकार की कृति के शीघ्रता में लिखे जाने से न लिखा जाना ही अच्छा है। अनेक कठिनताओं को पार करके जब इस प्रकार की कृति प्रस्तुत होती है तो यह परिमाण में हलकी और छोटी होती है, और इसमें लिखी हुई बातें यद्यपि

कल्पान्त-स्थायी

हो सकती हैं, किन्तु उनकी महत्ता और गम्भीरता के समझनेवाले प्रत्येक युग में बहुत कम होते हैं। इस कारण इसके सम्पन्न करने में जो असाधारण काम हुआ है उसके पारितोषिक का अनुमान भी नहीं किया जा सकता। धन से उसका बदला नहीं चुकाया जा सकता; हां, कोई समय आ सकता है जब कि वह मस्तिष्क जिससे वे विचार निकले हों श्मशान की मिट्टी में मिल चुका हो तो उसकी क़द्र हो जाय और उससे कोई और ही लाभ उठावें। "कालो ह्ययं निरवधिर्विपुलाच पृथ्वी।" कहीं इत्तफ़ाक़ से ही ऐसा हुआ हो तो हुआ हो कि अपूर्व प्रतिभाशाली ग्रन्थकर्ता का गूढ़ाशय-युक्त ग्रन्थ उसके जीवन में ही आदृत हुआ हो और वह अपनी बोई खेती को लुन सका हो। शेक्सपीयर के ग्रन्थों के संकलित संस्करण की मांग उसके जीवन में कभी नहीं हुई। मिल्टन को उसके "पैराडाइज़ लास्ट" (Paradise Lost) की बिक्री के पांच पाउंड मिले थे। इंग्लिश चर्च के सर्वप्रधान पादरी बिशप बट्लरके उच्च विचारों का सार छोटे आक्टेवो साइज़ की एक पुस्तक में ही समाप्त हो गया है; स्पिनोज़ा के ग्रन्थ उसी साइज़ की तीन जिल्दों में समा गये, यद्यपि उन्होंने तमाम यूरोप के वैज्ञानिक जगत् में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तहलका मचा दिया, फिर भी थोड़े से विद्वानों को छोड़कर जनता की प्रवृत्ति खींचने की उन्हें कुछ सामर्थ्य नहीं हुई। क्योंकि महान् पुरुष अपनी प्रसन्नता के लिए और जगत् का स्थायी उपकार करने के लिए कुछ लिखते हैं; लोग प्रसन्न होंगे, इसके लिए वे उपन्यास लिखने नहीं बैठते। कुछ ऐसे भी प्रतिभाशाली मस्तिष्क हैं, जिनकी विशेषता तुरन्त ही समझ ली गई और तत्क्षण ही उसका बदला चुका दिया गया। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी के राजकवि अलफ्रेड टेनीसन और प्रसिद्ध लेखक टामस कार्लाईल को ले लीजिये। तथापि टेनीसन को भी इस वर्ष बेक़द्री में ही गुज़ारने पड़े थे, जब तक कि उसकी सर्वप्रिय कविताओं का दूसरा संस्करण प्रकाशित न हुआ। कार्लाईल की अद्भुत शक्तियों का अपक्व दशा में ही गर्टे ने स्वागत किया था और पृथ्वी के दोनों गोलार्द्धों में राजनीतिज्ञ और विचारशील पुरुषों ने उसे एक अपूर्व मेधावी पुरुष माना था; तथापि यदि सफलता का अन्दाज़ा रुपये से लगाया जाय, जो उसे उसकी सेवाओं के बदले में मिला हो, तो शायद वह "फ़िसाने आज़ाद" के लेखक के दर्जे से भी नीचे रह जायगा। इस लिए साहित्य की सेवा बड़ी गहन है, टके के पुजारी उसके बड़प्पन को सोच भी नहीं सकते।

इस कथन का तात्पर्य्य यह नहीं है कि साहित्य का पेशा हो ही नहीं सकता। हो सकता है और वह सर्वोच्च पेशा माना जाता है; किन्तु यदि साहित्य-सेवा को ही उदर-पोषण का एक द्वार बना लिया गया, तो वे मस्तिष्क जो संसार में कल्पान्त-स्थायी और सारवान् काम कर जाते वे उपन्यास, नाटक या आख्यायिकाओं पर उतर पड़ेंगे, जिन्हें लोग समझ लेते हैं और जिस परिश्रम के उचित दाम उठ खड़े होते हैं। किन्तु यह

लाभ की वासना

इस बात का आश्वासन नहीं देती कि एक महापुरुष अपनी शक्तियों का एक सन्मार्ग में सदुपयोग करेगा। यदि जीवन में धन कमा कर बड़ा बनने की इच्छा है तो यह हज़ार तरह अच्छा है कि किसी ऐसे पेशे को पसन्द करो जिसका रुपया पैदा करना जायज़ उसूल हो, और जहां काम की उत्तमता के अनुसार ही दाम भी मिलें। यह एक मनुष्य के लिए, उसकी आत्मा के लिए, उसकी चित्तवृत्तियों के लिए तथा उस संसार के लिए जिसमें वह रहता है, कहीं उत्तम और लाभदायक है।

इस कारण प्रत्येक नवयुवक को, जो जीवन-युद्ध में भर्ती होना चाहता है, यह भलीभांति सोच लेना चाहिये कि जिस काम में वह हाथ डालता है उसके परिणाम में क्या है। धन कमा कर दुनिया का ऐश भोगना है तो व्यापार, व्यवहार, उद्योग, धन्धे की शिक्षा प्राप्त करो। देश की धर्म-ग्लानि दूर करने का संकल्प है तो बेशक देववाणी संस्कृत के चरणों में बैठो, धर्मशास्त्र का अध्ययन करो; साहित्य की सेवा करके मनुष्य-जन्म सफल करना है और नश्वर शरीर के बदले में यशःशरीर निर्माण करना है तो आनन्द से कवियों का सा जीवन बिताओ। किन्तु इन दशाओं में उसी प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य सामने रख लो; भूल कर भी दुनिया के ऐशोआराम का विचार चित्त में मत लाओ; सादगी से जीवन बिताना सीखो और सत्य, न्याय एवं कर्तव्य की ओर सदा ध्यान रक्खो। ऐसी स्थिति में मनुष्य जाति के मानसिक कोष में कुछ रत्नों की तुम वृद्धि कर सकोगे और उसके बदले में मनुष्य जाति सम्भवतः तुम्हें जीने योग्य रोटी भी देगी, चाहे उस पर मक्खन की चिकनाई नाममात्र ही की हो। अपने साथ सत्य का व्यवहार करो, दूसरों को वे उपदेश मत दो जिन पर स्वयं आचरण न कर सको, अपने आत्मा के साथ छल मत करो—

To your own selves be true, And it will follow, as the night and day, you cannot then be false to any way.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मताधिकार कमेटी की रिपोर्ट।

मान्टेगू चेम्सफ़ोर्ड-स्कीम के प्रकाशित होने के बाद सरकार ने उसके विषय में जांच पड़ताल करने के लिए दो कमेटियां बनाई थीं। उनमें एक कमेटी का नाम फ़्रेंचाइज़ कमेटी था। इसके सभापति थे लार्ड साउथबरो और उप-सभापति थे सर फ़्रैंक स्लाई। इसके सेक्रेटरी थे मिस्टर टेनेन्टस् और सदस्य थे शाहज़ादा आफ़ताब अहमद ख़ां, मि० हेली, बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, मि० मेलकम हाग, श्रीयुक्त श्रीनिवासी शास्त्री। इस कमेटी का अनुसन्धान्य विषय यह था कि भारत-शासन-सुधार प्रचलित करने के लिए भारत-वासियों को कितना और किस प्रकार अधिकार दिया जा सकता है। जब यह कमेटी नियुक्त हुई थी, तब भारतवासियों ने आपत्ति उठाई थी कि इसमें सर्वसाधारण के प्रतिनिधि एक प्रकार नहीं से हैं। कहा गया था कि आफताब अहमद ख़ां साहब सरकारी कर्मचारी हैं। इसके सिवा जो दो देशी सदस्य बाबू सुरेन्द्रनाथ और पं० श्रीनिवास शास्त्री बच गये, वे दोनों माडरेट पार्टी के हैं। इससे इस कमेटी में जातीय दल का एक भी व्यक्ति नहीं रहा। पर इस कमेटी की रिपोर्ट देखने से हमें कुछ सन्तोषजनक पता चला है कि चाहे लाख हो सुरेन्द्रनाथ और शास्त्री दोनों ग़ैर-सरकारी भारतवासी हैं और यही कारण है कि उन्होंने भारतवासियों के प्रतिनिधि चुनने के अधिकार को यथासम्भव प्रशस्त करने की चेष्टा की थी।

मान्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड स्कीम में कहा गया है कि भारत की व्यवस्थापक सभा तीन भागों में विभक्त रहेगी। एक का नाम होगा—प्रान्तिक व्यवस्थापिका सभा और तीसरी का नाम कौंसिल आफ़ स्टेट होगा। फ्रेंचाइज कमेटी ने अपनी जांच पड़ताल की जो रिपोर्ट प्रकाशित की है, उसमें उसने इन तीनों सभाओं की रचना की जिस प्रकार व्यवस्था करने की सलाह दी है, उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है,—

प्रादेशिक व्यवस्थापिका सभा।

इस समय निर्वाचकों को निर्वाचन के अधिकार पाने में जो बाधाएँ हैं, वे सब ज्यों की त्यों रहेंगी। इसके सिवा जातिगत नई बाधाएँ उत्पन्न की जावेंगी। पर देशी राज्य की प्रजा के लिए ये बाधाएँ लागू न होंगी। कमेटी के सदस्यों का कहना है कि भारत की जैसी सामाजिक अवस्था है, उससे अभी स्त्रियों को वोट देने का अधिकार देना जल्दबाज़ी होगी।

वोट देने का अधिकार वे ही दे सकेंगे, जो वोट देने के अधिकार-प्राप्त स्थान में रहेंगे तथा वोटर को मालगुज़ारी या म्यूनिसिपल टैक्स या आय-कर देने के हिसाब से वह अधिकार भोग करना पड़ेगा। पर सेना के छुट्टी पर गये हुए या पेन्शन लिये हुए सभी कर्मचारियों को वोट देने का अधिकार प्रदान करने का प्रस्ताव किया गया है। ऐसी कोई बात नहीं कि सब जगह समान सम्पत्ति के कारण लोग वोट दे सकेंगे। भिन्न भिन्न भागों में यहां तक कि एक ही प्रदेश के भिन्न भिन्न प्रदेश में वोट देने के भिन्न भिन्न अधिकार दिये जायँगे। पर एक स्थान में एक विशेष समाज के लिए दो प्रकार से वोट देने की व्यवस्था नहीं रक्खी गई है।

भिन्न भिन्न प्रदेशों में वोट देनेवालों की संख्या किस प्रकार होगी, उसका अनुमानिक हिसाब इस प्रकार है,—

मद्रास	५,४२,०००	आदमी
बम्बई	६,५३,०००	„
बङ्गदेश	१२,२८,०००	„
युक्त प्रदेश	१४,८३,५००	„
पञ्जाब	२,३७,०००	„

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार-उड़ीसा	३,७६,०००	"
मध्यप्रदेश	१,५६,५००	"
आसाम	३,००,०००	"

प्रस्ताव किया जाता है कि आजकल प्रादेशिक व्यवस्थापिका सभा के निर्वाचन का ढङ्ग अप्रत्यक्ष है वह प्रत्यक्ष किया जायगा। साधारणतः ज़िला निर्वाचन की एकाई गिना जायगा; किन्तु कुछ प्रदेशों में अधिक जन-संख्या वाला नगर या छोटे छोटे नगरों का समूह एकाई गिना जायगा। एक निर्वाचक स्थान से एक सभ्य चुना जायगा; किन्तु इस विषय पर स्थानीय सरकारों को कुछ विशेष अधिकार दिये गये हैं। कमेटी निर्वाचक के जटिल ढङ्गों का विरोध करती है, उसका यह मत है कि एक निर्वाचक एक से अधिक सदस्य के लिए मत नहीं दे सकता। जहां एक निर्वाचक स्थान एक से अधिक सदस्य चुनता है, वहां निर्वाचक सब सदस्यों के लिए मत दे सकेगा। विशेष निर्वाचक स्थान के लिए मत देने के अतिरिक्त मतदाता सार्वजनिक या विशेष समाज के लिए भी स्वतन्त्र मत दे सकते हैं। सार्वजनिक या या विशेष समाज के निर्वाचकों की औसतन् संख्या भिन्न भिन्न प्रदेशों में इस प्रकार है,—

मद्रास	७२००
बम्बई	८६००
बङ्गाल	१६४००
युक्त प्रदेश	१७७००
पञ्जाब	८६००
बिहार और उड़ीसा	६१००
मध्य प्रदेश	३४००
आसाम	६७००

अलग अलग निर्वाचन-स्थानों के आकार में बड़ा भेद रहेगा। मद्रास में मदुरा, त्रिचनापल्ली और श्रीरङ्गम को मिलाकर जो निर्वाचन-स्थान बनता है उसमें ५०० निर्वाचक मत देंगे और युक्त प्रदेश के एक नगर अलमोड़े में ६६०० रहेंगे।

कमेटी प्रत्येक प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा के लिए निम्नलिखित संख्या में सदस्यों का होना ठीक समझती है।

मद्रास	११८
बम्बई	१११
बङ्गाल	१२५
युक्त प्रदेश	११८
पञ्जाब	८३
बिहार और उड़ीसा	६८
मध्यप्रदेश	७०
आसाम	५३

प्रेसिडेन्सियों तथा युक्तप्रदेश में निर्वाचित सदस्यों की संख्या ७८ से ८० सैकड़े है और शेष चार प्रदेशों में ७३ से ७१ सैकड़े है। सरकारी सदस्यों की संख्या युक्तप्रदेश में १५ सैकड़े, तीन प्रेसीडेन्सियां, बिहार और उड़ीसा में १६ सैकड़े, मध्यप्रदेश में और आसाम में १७ सैकड़े तथा पञ्जाब में १६ सैकड़े रहनी चाहिये। निम्नलिखित समाजों से सदस्य मनोनीत किये जावेंगे। (१) पञ्जाब के अतिरिक्त अन्य प्रदेशों की अछूत जातियां (२) मद्रास तथा बङ्गाल को छोड़ कर जहां निर्वाचन होगा, अन्य प्रदेशों में एङ्गलो-इण्डियन (३) मद्रास को छोड़ कर अन्य प्रदेशों में भारतीय ईसाई, मद्रास में उनके लिए अलग निर्वाचन दल बनाया जायगा। (४) बम्बई, बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा तथा आसाम में मज़दूर लोग (५) मध्य प्रदेश तथा मद्रास में बहिष्कृत स्थान (६) पञ्जाब के सिक्ख (७-८) खानों तथा बागीचों के मालिकों के अतिरिक्त अन्य औद्योगिक कारबार बिहार के आदिम अधिवासी और आ बसे हुए बङ्गाली।

मनोनीत गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या बङ्गाल और युक्तप्रदेश में ५ से, बिहार और उड़ीसा तथा आसाम में ६ तक जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निम्नलिखित संस्थाओं को विशेष निर्वाचन का अधिकार दिया जाना चाहिये (१) आसाम को छोड़कर अन्यत्र सब विश्वविद्यालय (२) ज़मींदार (३) व्यापार और उद्योग-धन्धे।

ज़मीन्दार प्रतिनिधियों की संख्या आसाम में २ से मद्रास में ७ तक रहनी चाहिये। व्यापार और उद्योग-धन्धे वालों के सदस्यों की संख्या पञ्जाब और मध्यप्रदेश में २ से बङ्गाल में १५ तक रहनी चाहिये। व्यापार और उद्योग धन्धे में निम्नलिखित काम करनेवालों के प्रतिनिधि लिये जायँगे (१) मद्रास, बिहार और उड़ीसा तथा आसाम के बागीचों के मालिक (२) बंगाल बिहार, और उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश के स्थानों के मालिक (३) मद्रास, बम्बई, बंगाल और युक्तप्रदेश के यूरोपियन चेम्बर आफ़ कामर्स (४) युक्तप्रदेशों के इन्डियन चेम्बर आफ़ कामर्स (५) तीन प्रेसिडेन्सियों की ट्रेडस एसोसिएशनें (६-७) बम्बई की मिल ओनर्स एसोसिएशन तथा रुई के व्यापारी (८, ९, १० और ११) जूट और चाय के व्यापारी इण्डियन एसोसिएशनें तथा बङ्गाल का इनलैंड वाटर ट्रेन्सपोर्ट बोर्ड।

निम्नलिखित समाजों को विशेष निर्वाचन-अधिकार देने का प्रस्ताव किया गया है—(१) भारतीय ईसाई, जिन्हें मद्रास में तीन सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया है। (२) एँग्लो-इण्डियन जिन्हें मद्रास और बङ्गाल में एक एक सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया है। (३) यूरोपियन, जिन्हें बम्बई और बंगाल में दो दो तथा मद्रास, युक्तप्रदेश और बिहार तथा उड़ीसा में एक एक सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया है। (४) सिक्ख, जिन्हें पञ्जाब में ८ सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया है। मुसलमानों के सम्बन्ध में वर्तमान जातीय निर्वाचन-पद्धति लगी रहनी चाहिये और कांग्रेस-लीग-स्कीम के अनुसार कमेटी मुसलमानों को भारतीय निर्वाचित प्रतिनिधियों में निम्नलिखित हिसाब से स्थान देना चाहती है:—

मद्रास	१५ सैकड़ा
बम्बई	३४ "
बङ्गाल	४० "
युक्तप्रदेश	३० "
पञ्जाब	५० "
बिहार और उड़ीसा	२५ "
मध्यप्रदेश	१५ "

निम्नलिखित समाजों के विशेष सदस्य चुनने के दावे का समर्थन नहीं किया गया है। बङ्गाल और आसाम के माहिष्य, कलकत्ते के मारवाड़ी, बिहार और उड़ीसा में बसे हुए बङ्गाली, आसाम के अहोम, मध्यप्रदेश के महर, मद्रास के उड़िया और बम्बई के पारसी। कमेटी के अधिकांश सभ्यों ने मराठों का दावा भी अस्वीकार किया है। मद्रास के अब्राह्मणों के सम्बन्ध में कमेटी का कहना है कि वह उनका मत लेने तथा उनके विचारों की जांच करने से वञ्चित रक्खी गई है; क्योंकि उनके नेताओं ने गवाही देना अस्वीकार किया। रिपोर्ट के अवशिष्टांश में डा० नायर और दूसरे अब्राह्मण नेताओं के पत्र दिये गये हैं। कमेटी को खेद है, कि उक्त नेताओं के गवाही देने में लिए उपस्थित न होने से आपस में राज़ीनामा करना कठिन हो गया। कमेटी ने अब्राह्मण प्रश्न के कई समाधान सोचे; किन्तु अन्त में वह इस निश्चय में आई कि ब्राह्मणों और अब्राह्मणों में भेद न रक्खा जाय। किन्तु उसकी सम्मति है कि यदि अब्राह्मण चाहें तो इस विषय पर फिर विचार किया जाना चाहिये।

उम्मीदवारों की योग्यता के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन किया जाना चाहिये। इनमें सब से महत्वपूर्ण ये हैं:—(१) देशी रियासतों के निवासी होने के कारण जो अयोग्यता मानी जाती थी वह हटाई जानी चाहिये। (२) सरकारी नौकरी से निकाले जाने या क़ैद भुगतने के कारण जो अयोग्यता मानी जाती थी, वह कम व्यापक की जानी चाहिये। (३) गवर्नर को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अधिकार न रहने देना चाहिये, जिसके अनुसार वह किसी सदस्यता के उम्मीदवार का चुनाव सार्वजनिक हित के विरुद्ध बना सकते थे। (४) बम्बई, पञ्जाब और मध्यप्रदेश में निर्वाचन स्थान के भीतर रहना योग्यता का एक लक्षण माना जाना चाहिये।

भारतीय व्यवस्थापिका सभा।

कमेटी ने सिफ़ारिश की है कि बड़ी व्यवस्थापिका सभा में १२० सदस्य रहें, अर्थात् गवर्नर-जनरल इन कौंसिल को मिलाकर १२१ होने चाहिये। ८० सदस्य निर्वाचित किये जाने चाहिये। उनका विभाग भिन्न भिन्न प्रदेशों में निम्नलिखित हिसाब से किया जाना चाहिये।

मद्रास	१२
बम्बई	१२
बङ्गाल	१३
युक्तप्रदेश	१२
पञ्जाब	९
बिहार और उड़ीसा	९
मध्यप्रदेश	५
आसाम	३
बर्मा	४
दिल्ली	१

इन असली सदस्यों में ग़ैर मुसलमान समाजों के १६ प्रतिनिधि रहेंगे। मुसलमान समाज के १९, सर्वसाधारण सिक्खों का १, ग़ैर मुसलमान ज़मीन्दारों के ५, मुसलमान ज़मीन्दारों के ४, सिक्ख ज़मीन्दारों का एक, यूरोपियन व्यापारियों और बागीचों के मालिकों के ६, भारतीय व्यापारियों के ४ प्रतिनिधि रहेंगे। इनके साथ १४ सदस्य मनोनीत और २६ सदस्य सरकारी रहेंगे। कमेटी का मत है कि ज़मीन्दारों और व्यापारियों को छोड़ और समाजों के प्रतिनिधि प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित नहीं किये जा सकते और वह सिफ़ारिश करती है कि सार्वजनिक प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रादेशिक व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य अपने अपने समाज का विशेष प्रतिनिधि चुना करेंगे।

कौंसिल आफ स्टेट।

यह प्रस्ताव किया गया है कि कौंसिल आफ स्टेट में ५६ सदस्य रहेंगे। इनमें गवर्नर-जनरल शामिल नहीं। २४ सदस्य निर्वाचित किये जाने चाहिये। निर्वाचित सदस्यों का हिसाब भिन्न भिन्न प्रदेशों में निम्नलिखित रहेगा।

सार्वजनिक	११
मुसलमान	७
सिक्ख	१
ज़मीन्दार	२
यूरोपियन चेम्बर आफ कामर्स	२
बर्मा	१

यूरोपियन व्यापारी समाज के दो प्रतिनिधियों के अतिरिक्त निर्वाचित सदस्यों को प्रादेशिक व्यवस्थापिका सभा के ग़ैर-सरकारी सदस्य चुनेंगे। भिन्न भिन्न प्रदेशों से निम्नलिखित हिसाब से सदस्य चुने जाने चाहिये—

मद्रास	३
बम्बई	३
बङ्गाल	३॥
युक्तप्रदेश	३
पञ्जाब	३
बिहार और उड़ीसा	२॥
मध्यप्रदेश	२॥
आसाम	१॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५ मार्च, १९१९ का

भारत सरकार का खरीता ।

सरकार के विचित्र प्रस्ताव ।

रिफ़ार्म स्कीम की हत्या ।

भारत सरकार ने एक बड़ी भारी नीली किताब प्रकाशित की है, जिसमें ३५२ पन्ने हैं । २७२ पृष्ठों में सरकारी कागज़ात हैं जो अब तक प्रकाशित नहीं किये गये थे और ८० पृष्ठों में हर तरह के ग़ैर-सरकारी मतों का संग्रह है । आरम्भ में ५ मार्च को भारत सरकार ने जो खरीता भारत-सचिव के पास भेजा था, वह दिया हुआ है । पृष्ठ ५७ तक इसका फैलाव है, इसके बीस भाग हैं और १२७ पैराग्राफ़। परिशिष्ट में ४ पृष्ठों का एक मिनट बड़े लाटसाहब का है । द्वैध-राज्यपद्धति पर गत जनवरी मास में दिल्ली नगर में एकत्र होकर कई छोटे लाटों ने जो आक्षेप किये थे उनका उत्तर इसमें दिया गया है। इसके बाद आनरेबल सर शङ्करन नायर का २० पृष्ठों में मतभेद-पत्र है जिसने परिशिष्ट के भी ३ पृष्ठ ले लिये हैं । पुस्तक का मुख्य अंश यहां समाप्त समझिये ।

इसके बाद बड़े लाट का छोटे लाटों के प्रति भाषण है । ऊपर लिखा हुआ है, 'कानफीडेनशल' अर्थात् 'गुप्त', पर इसमें गोपनीय बात कुछ भी नहीं है । इसके बाद छोटे लाटों, कमिश्नरों के मत और मतभेद हैं और दिल्ली कान्फरेन्स की रिपोर्ट है । अन्त में बम्बई के गवर्नर सर जार्ज लायड का मत है । आप दिल्ली नहीं गये थे । मत तो बहुत संक्षेप में दिया हुआ है, पर एक चीज़ है । आप लिखते हैं, "रिफार्म के सम्बन्ध में सब से महत्व का प्रश्न समय का है । मेरा यह विश्वास है कि देर करने की अपेक्षा अधूरी स्कीम ही अच्छी क्योंकि विलम्ब का अर्थ है सङ्कट ! मेरा यह भी विश्वास है कि जिन लोगों पर रिफार्म स्कीम कार्यान्वित करने का भार पड़ेगा वे अधूरी स्कीम से भी लोगों की सदिच्छा और विश्वास के सहारे काम बहुत अच्छी तरह से कर सकेंगे, पर जब यह सदिच्छा और विश्वास के सहारे काम बहुत अच्छी तरह से हो सके तो उससे क्या होगा ?"

पाठकों को इस नीली किताब का पूरा प्रदर्शन करने में बहुत समय लगेगा । सबसे महत्व और काम की चीज़ जो है अर्थात् भारत सरकार के खरीते में जो प्रस्ताव हैं, उन्हींको यहां दिये देते हैं—

भारत सरकार के प्रस्ताव ।

(१) ब्रह्मदेश या आसाम के लिए गवर्नर की कोई ज़रूरत नहीं ।

(२) केवल मद्रास, बम्बई और बंगाल में ग़ैर आई० सी० एस० गवर्नर हों ।

(३) मध्यप्रदेश और आसाम को छोड़कर सब प्रान्तों के शासकों के वेतन अभी जो हैं वेही बने रहें ।

(४) तीन प्रेसीडेन्सियों के अतिरिक्त और किसी प्रान्त के गवर्नर को भारत-सचिव के साथ सीधे पत्र-व्यवहार करने का अधिकार न हो ।

(५) गवर्नमेंट में कोई बिना पद के एडीशनल मेम्बर न हों ।

(६) तीनों प्रेसीडेन्सियों की एकज़िक्यूटिव कौंसिलों में एक नहीं बल्कि दो दो यूरोपियन या सरकारी मेम्बर हों ।

(७) एकज़िक्यूटिव कौंसिलर बादशाह की मुहर छाप से नियुक्त किये जायँ और मिनिस्टर गवर्नर द्वारा ।

(८) एकज़िक्यूटिव कौंसिलरों का वेतन बाद को तै किया जाय ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(९) मिनिस्टर अर्थात् मंत्रिवर्ग पहिले से व्यवस्थापिका सभा के सामने उत्तरदायी हो और व्यवस्थापिका सभा के विरुद्ध वोट द्वारा वे निकाले जा सकें, यदि तद्विरुद्ध प्रमाणाभाव हो।

(१०) गवर्नर को यह अधिकार हो कि वह मिनिस्टरों को निकाल सके।

(११) इसका कोई ठीक ठीक कारण नहीं देख पड़ता कि मिनिस्टरों के वेतन का भी वही हिसाब हो जो कौंसिल के मेम्बरों का।

(१२) मिनिस्टरों की संख्या और उनका वेतन भावी एक या अनेक मिनिस्टरों की सलाह से गवर्नर निश्चित करे और मिनिस्टरों का वेतन हस्तान्तरित विषय की मद्द से दिया जाय।

अखिल भारतीय नौकरी।

(१३) अखिल भारतीय नौकरी के लिए आदमियों की भरती भारत-सचिव द्वारा ही हो और उसी ढंग से हो जो वे अपने लिए इख़्तियार कर लें।

(१४) इन नौकरियों के वेतन का नियंत्रण भारत-सचिव द्वारा ही हो और नवीन स्थायी पद निर्माण करने के लिए उनकी मंजूरी आवश्यक हो।

(१५) भत्ते, छुट्टी और दूसरे राज्य में नौकरी-सम्बन्धी नियम भारत-सचिव के ही सिद्धान्तों के अनुसार हों।

(१६) भारत के किसी भी अफ़सर को बिना परिवर्तन अखिल भारतीय नौकरियों का पेन्शन मिला करेगा।

(१७) मिनिस्टरों के मातहत काम करने या न करने के सम्बन्ध में अफ़सरों को कोई अधिकार न हो।

(१८) पब्लिक सर्विस की रक्षा करने का भार गवर्नर पर ही हो; न कि गवर्नर-इन-कौन्सल पर, जैसा कि रिपोर्ट में लिखा है।

(१९) भिन्न भिन्न विभागों के स्थायी प्रधान और सरकार के सेक्रेटरी सीधे गवर्नर से समझ-बूझ सकें।

(२०) किसी अफ़सर की हालत ऐसी हो जाय कि उससे काम न हो सके तो वह भारत सरकार से प्रार्थना करके हिसाब से पेनशन लेकर घर बैठ सकता है भारत सरकार के विरुद्ध भारत-सचिव के पास अपील की जा सकेगी।

(२१) अखिल भारतीय नौकरी का कोई अफ़सर भारत-सचिव की आज्ञा के बिना बरख़ास्त न किया जा सके।

(२२) अखिल भारतीय नौकरियों के लिए हिन्दुस्तानियों की भर्ती भारत-सचिव जो नीति-रीति बना देंगे उसीके अनुसार होगी।

(२३) मिनिस्टरों के मातहत जो अफ़सर काम करेंगे उन्हें उनका हुक्म मानना पड़ेगा और वे उनके हुक्म मानें इसके लिए मिनिस्टरों को सहारा देना होगा।

(२४) जो अफसर सरकार के दोनों काम करते हों वे उसी विभाग के अन्दर समझे जायँगे जिस विभाग से उन्हें वेतन मिलता हो।

प्रान्तिक नौकरियां।

(२५) प्रान्तिक नौकरियों की भर्ती, वेतन और पेनशन आदि के सम्बन्ध में भारत-सरकार की मंज़ूरी लेना आवश्यक होगा।

(२६) जब तक यह क़ानून न बने तब तक प्रान्तिक नौकरियों की सब बातें मय हस्तान्तरित विभाग के गवर्नर-इन-कौंसिल के हाथ में रहें।

(२७) हस्तान्तरित विभागों में अफ़सरों को नियुक्त करने का काम मिनिस्टरों से सलाह लेकर गवर्नर करें।

(२८) इस समय जो अफ़सर हस्तान्तरित होनेवाले विभागों में काम कर रहे हैं वे चाहें तो पेनशन लेकर घर बैठ सकते हैं, प्रार्थनापत्र गवर्नर के पास और अपील भारत-सरकार के पास की जा सकती है, और जहां इनाम या पेनशन का कोई भारी प्रश्न हो वहां भारत-सचिव के पास भी अपील भेजी जा सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२९) मातहत (सबार्डिनेट) नौकरियों के प्राविडेंट फण्ड, पेनशन, सामान्य और विशेष अधिकारों के सम्बन्ध में गवर्नर-इन-कौंसिल को आदेश दिया जायगा, अर्थात् गवर्नर को जैसा बतला दिया जायगा वैसा होगा और इस सम्बंध में नियम प्रस्तावित भारत-सरकार के क़ानून में शामिल किये जा सकेंगे।

(३०) इन नौकरियों के नियमों के सम्बन्ध में तथा बिल में इनकी गुंजाइश कराने के सबंन्ध में भारत-सचिव एक पब्लिक सर्विसेज़ कमीशन नियुक्त करेंगे। इस कमीशन के अधिकार और कर्तव्य भारत-सचिव द्वारा बननेवाली विधिविहित नियमावली से तै पायँगे।

(इस कमीशन की नियुक्ति इसलिए है कि जिसमें नौकरियां धीरे धीरे मिनिस्टर के हाथ में न आ जायँ।)

प्रान्तिक अर्थ-व्यवस्था।

(३१) सरकार के हर आधे भाग को अपनी समझ से आवश्यक ख़र्च चलाने के लिए आमदनी बढ़ाने का एक मर्यादित अधिकार रहे।

(३२) हिसाब की जांच का एक मज़बूत मोहकमा क़ायम करने के लिए एक इंडियन आडिट और एक्सचेकर ऐक्ट पास किया जाय।

(३३) प्रान्तिक कोष से युद्ध या तत्सम संकट के समय विशेष सहायता ग्रहण करने का अधिकार प्रधान सरकार को हो।

(३४) प्रधान सरकार को प्रान्तिक सरकार कितना और क्या दिया करेगी इस संबन्ध में परामर्श देने के लिए अर्थ-सम्बन्धी एक कमेटी बनाई जाय।

(३५) अभी भारत सरकार को प्रान्तिक बचत पर जो अधिकार है उसके स्थान में कुछ सीधे सादे नियम बन जायँ।

(३६) गवर्नर-इन-कौंसिल और मिनिस्टरों के खर्च के लिए आय के साधन अलग अलग कर दिये जायँ।

(३७) रक्षित और हस्तान्तरित विषयों की आमदनी से गवर्नमेंट के हर आधे भाग के लिए अलग २ रक़में बांट दी जायँ।

(३८) गवर्नमेंट के हर आधे भाग से यह कह दिया जायगा कि प्रान्तिक बचत का कितना हिस्सा तुम्हें मिलेगा; इस बचत का बड़ा हिस्सा मिनिस्टरों के हाथ में रहे।

(३९) रक्षित और हस्तान्तरित विषयों के लिए सामान्य व्यय का अलग अलग अनुमान-पत्र बनाया जाय।

(४०) भारत सरकार मिनिस्टरों के लिए आवश्यक आय निश्चित कर दे और यदि सामान्यतः हस्तान्तरित विषयों की आय उतनी न हुई तो कमी रक्षित विषयों की आय से पूरी की जाय, उसी प्रकार रक्षित सरकार की कमी हस्तान्तरित सरकार की आय से कुछ लेकर पूरी की जाय। जिस मद्द की आमदनी दिन दिन बढ़ रही हो उसी मद्द का एक अंश निश्चित कर के उसके द्वारा यह कमी पूरी की जाय।

(४१) रक्षित और हस्तान्तरित सरकारों का सम्बन्ध कुछ निश्चित समय के लिए, ३ या ५ वर्ष के लिए, ठीक किया जाय।

(४२) यह मेल बैठाने का कार्य किसी बाहरी पक्षपातरहित संस्था द्वारा हो अथवा ज़्यादा अच्छा यह होगा कि एक ऐसी संस्था द्वारा यह काम हो जिसकी नियुक्ति गवर्नर करे और जिसमें व्यवस्थापिका सभा के भी प्रतिनिधि हों।

(४३) नवीन व्यवस्था के आरंभ में प्रत्येक प्रांतिक सरकार के पास जो बचत हो वह सरकार के दोनों भागों में बाँट दी जाय, और पहिला बन्दोबस्त यह हो कि दोनों का ख़ज़ाना कुछ काल तक अलग अलग हो, जिस आर्थिक कमेटी के बनाने का प्रस्ताव किया गया है उसके द्वारा यह काम हो।

(४४) कर लगाने और क़र्ज़ा लेने के सम्बन्ध में ज़िम्मेदारी और परिणाम की स्पष्ट व्याख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हुई रहे। हस्तान्तरित सरकार कर्ज़ा ले तो उसके लिए गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक हो।

(४५) प्रत्येक नीम-सरकार को पहिले से यह ख़बर रहे कि प्रान्तिक आमदनी की बचत का कितना हिस्सा उसके हाथ आवेगा।

(४६) एक सामान्य आर्थिक विभाग हो जो व्यय के अनुमान-पत्र तैयार करने में दोनों सरकारों की सहायता करे।

(४७) गवर्नर सब विभागों की राय लेकर नवीन करों के सम्बन्ध में निश्चय करें।

(४८) रक्षित सरकार के कर-सम्बन्धी बिल ग्रैण्ड कमेटी को सौंपे जा सकें।

(४९) बजेट के प्रस्ताव गवर्नर इन-कौंसिल या मिनिस्टरों के लिए बन्धनकारक न हों। पर मिनिस्टरों को यह सोचना पड़ेगा कि इस कारण से उन्हें अपने पद का इस्तीफ़ा दे देना चाहिये या नहीं।

(५०) किसी रक्षित विषय का ख़र्च घटाकर किसी हस्तान्तरित विषय का ख़र्च बढ़ाने के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव न किया जा सके।

(५१) दोनों नीम-सरकारों पर अर्थ-विभाग का नियन्त्रणाधिकार रहे।

(५२) आरम्भ में अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में व्यवस्थापिका सभा को इतना ही अधिकार रहे। वह उसकी जांच करे, उसके सम्बन्ध में सूचनाएँ दे, न कि बिना व्यवस्थापिका सभा की स्वीकृति और अनुमति के कोई व्यय ही स्वीकार या अस्वीकार न हो। व्यवस्थापिका सभा को नया खर्च दिलाने और खर्च का ढङ्ग बतलाने का अधिकार न रहे।

(५३) व्यवस्थापिका सभा सरकारी खर्च की जांच के लिए एक कमेटी नियुक्त करे, उस कमेटी से रिपोर्ट तलब करे और उस पर अपने प्रस्ताव पास करे, पर ये प्रस्ताव हुक्मी न हों।

(५४) हिसाब की पक्की जांच का प्रबन्ध हो।

(५५) हिसाब की जांच पर कौंसिल के जो प्रस्ताव हों वे सूचनाओं का काम करें।

व्यवस्थापन-प्रबन्ध।

(५६) प्रत्येक प्रान्त की ग्रैण्ड कमेटी इस तरह की हो कि प्रान्तिक कौंसिल में जिस हिसाब [illegible]चित, मनोनीत और सरकारी सदस्य [illegible] हिसाब से इस कमेटी में भी रहें।

[illegible]तत विषय के सम्बन्ध में कोई बिल [illegible]उसपर प्रमाण-पत्र देने का अधिकार गवर्नर को रहे।

(५८) गवर्नर के मूल प्रमाण-पत्र पर अथवा बीच के किसी प्रमाण-पत्र पर अथवा प्रमाण-पत्र देने के पूर्व गवर्नर ने यदि भारत सरकार से पूछ लिया हो तो उस पर अपील न चल सके।

(५९) हस्तान्तरित विषय के सम्बन्ध में यदि किसी बिल, बिल के अंश या संशोधक सूचना से प्रदेश की शान्ति, कुशल आदि के तथा विशिष्ट रक्षित विषय के सम्बन्ध में गवर्नर की ज़िम्मेदारी पर चोट आती हो तो गवर्नर उस पर प्रमाणपत्र दे सकें।

(६०) पुरानी व्यवस्थापिका सभा का विसर्जन होते ही नवीन सभा सङ्गठित हो और इसके लिए कोई क़ानून बनाया जाय।

(६१) व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष गवर्नर ही हों।

(६२) वाइस प्रेसीडेंट एक मनोनीत सरकारी सदस्य हों।

(६३) दो प्रकार के नियम हों—(१) मूल, अर्थात् राज्यसङ्गठन पर भिन्न भिन्न दृष्टि रखकर भारतसचिव की कौंसिल जिन्हें बनावे और पार्लमेण्ट से पास करावे; इनका परिवर्तन भी इसी प्रकार से हो; (२) सामान्य नियम अर्थात् काम करने के ढङ्ग के सम्बन्ध में जिन्हें सर-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारें बनावें और जिनको गवर्नर की अनुमति से कौंसिल बदल सके ।

(६४) कौंसिल की भाषा का निश्चय गवर्नर करें ; जिस भाषा में जो सदस्य प्रवीण हो उस भाषा में उसे वक्तृता देने के लिए कहने का अधिकार गवर्नर को रहे ।

(६५) गवर्नर जहां उचित [illegible] प्रस्ताव को पेश ही न होने दें जैसा अभी [illegible]

(६६) सरकारी मेम्बर स्वतन्त्र [illegible] बोल सकें । और गवर्नमेंट के [illegible] रक्षित और हस्तान्तरित दोनों विषयों में उन्हें मत-स्वातन्त्र्य रहे ।

(६७) स्टैण्डिङ्ग कमेटियां रहें, पर केवल शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों के लिए, शासन में दख़ल देने की उनकी चेष्टा रोक दी जाय; गवर्नर की मर्ज़ी पर यह बात हो कि जिस विभाग के साथ वे चाहें, स्टैण्डिङ्ग कमेटियां रख सकें ।

(६८) कौंसिल के अण्डर-सेक्रेटरियों की नियुक्ति सदस्यों और मिनिस्टरों की मर्ज़ी पर हो; कोई भी सदस्य चुना जा सके, पद आनरेरी रहे और जहां तक हो सके इसमें कोई क़ानून न बने । स्थानिक सरकार स्वयम् ही इस बात को सोच लिया करे कि इस नियुक्ति की आवश्यकता है या नहीं और है तो उसे क्या काम दिया जाय ।

गवर्नर और मिनिस्टर ।

(६९) मामूली मामलों का फ़ैसला मिनिस्टर अपने ही अधिकार से कर दिया करें, जो विशेष महत्व की बातें हों उन्हें गवर्नर के सामने वे पेश करें । जिन बातों का निर्णय मिनिस्टर स्वयम् कर दिया करेंगे उनकी सूचना गवर्नर को तुरन्त मिल जानी चाहिये ।

(७०) भिन्न भिन्न विभागों के मुखिया सेक्रेटरी जिन बातों पर गवर्नर का ध्यान दिलाना आवश्यक समझें उन्हें गवर्नर के सामने पेश करें ।

(७१) मिनिस्टरों पर कोई समष्टिगत उत्तरदायित्व न हो ।

(७२) कौंसिल के विरुद्ध वोट के मुक़ाबले यदि मिनिस्टर इस्तीफ़ा न दें तो गवर्नर यदि उचित समझें तो उनसे इस्तीफ़ा दिला सकें ।

(७३) हस्तान्तरित विषयों का बजेट व्यवस्थापिका सभा द्वारा स्वीकृत या पास न हो ।

(७४) गवर्नर और मिनिस्टरों के बीच जब वादविवाद हो तब उसके बारे में वोट न लिये जायँ । गवर्नर मिनिस्टरों को सलाह दें । गवर्नर को यह अधिकार रहे कि मिनिस्टर, मान लीजिये कि, कोई हुक्म जारी करना चाहते हैं तो गवर्नर उससे इन्कार कर सकते हैं, मिनिस्टर की राय में कोई हुक्म जारी कराना ठीक न हो तो गवर्नर उसे जारी करा सकें और मिनिस्टर कुछ कराने को नहीं कह रहे हैं तो गवर्नर उपाय-योजना करा सकें ।

(७५) एक हिदायतनामा प्रकाशित किया जाय उसमें ये सब बातें रहें ।

(७६) हस्तान्तरित विभागों से जो हुक्म जारी हों वे मिनिस्टरों की "सलाह से" नहीं, बल्कि मिनिस्टरों से "समझ बूझ" कर काम करनेवाले गवर्नर के हुक्म के तौर पर हों ।

(७७) जो मिनिस्टर गवर्नर के साथ मिलकर काम करने या इस्तीफ़ा देने से इन्कार करे उसे गवर्नर बरख़ास्त कर सकें ।

(७८) यदि इसपर अन्य सदस्य इस पद को ग्रहण करना स्वीकार न करें तो सभा विसर्जित कर दी जाय ।

(७९) यदि नवीन व्यवस्थापिका सभा भी ऐसा ही विघ्न करे तो गवर्नर हस्तान्तरित विभाग का काम भी अपने हाथ में ले लें और इसकी रिपोर्ट कारणों के साथ भारत सरकार के द्वारा भारत-सचिव के पास भेज दें ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(८०) यदि छः महीने के अन्दर गवर्नर को कोई मिनिस्टर न मिले तो गवर्नर भारत-सचिव से प्रार्थना करें कि मिनिस्टर का काम गवर्नर-इन-कौंसिल के सुपुर्द कर दिया जाय।

(८१) इस बीच में यदि व्यवस्थापिका सभा सरकारी ख़र्च का चिट्ठा मंज़ूर न करे तो उसके पहिले के चिट्ठे की रक़म तक गवर्नर ख़र्च करता चला जाय।

(८२) शासन-सम्बन्धी सन्देहगत बातों का निर्णय गवर्नर करें।

(८३) समस्त शासक-मण्डल का एक साथ बैठकर विचार करना आवश्यक न हो। गवर्नर इस सम्बन्ध में जो उचित समझें, करें। हुक्मनामे से यह स्पष्ट मालूम होना चाहिये कि सरकार के किस अर्धांश से यह हुक्म जारी हुआ है।

(८४) गवर्नर के दबाव से मिनिस्टर कोई काम करे और उस पर कौंसिल उस मिनिस्टर की भर्त्सना करे तो मिनिस्टर को इस्तीफ़ा देने की कोई आवश्यकता नहीं, जहां तक कौंसिल से आगे कोई सहारा मिलने से वह बिलकुल निराश न हो जाय।

(८५) भारत सरकार का प्रबन्धदर्शी आदेश और नियन्त्रण-अधिकार उपयोग के लिए सदा तैयार रहे।

(८६) शासन-सम्बन्धी प्रगति का कोई नवीन कार्य तब तक न किया जाय जब तक सामयिक कमीशन की रिपोर्ट न तैयार हो जाय। ५ वर्ष के अन्त में भारत सरकार द्वारा कोई कार्यवाही [illegible]ो।

[illegible]त सरकार

(८[illegible] [illegible]कार के हिन्दुस्तानी सदस्य सिर्फ [illegible]; कम से कम दो सिविलियन रहें; [illegible] क़ानून दां।

[illegible] रक्षित और हस्तान्तरित विषय न रहें[illegible]

(८९) [illegible]म्ब्ली के सदस्यों का निर्वाचन डाइरेक्ट हो।

(९०) एसेम्ब्ली का प्रेसीडेंट वायसराय द्वारा मनोनीत हो, पर वायसराय जब चाहें एसेम्ब्ली को बुला कर भाषण कर सकें।

(९१) स्टैंडिंग कमेटियां न रहें।

(९२) कोई भण्डार-सेक्रेटरी न रहें।

(९३) यथा प्रस्ताव एक प्रिवी कौंसिल बने।

भारत-सचिव

(९४) भारत-सचिव का वेतन विलायत के ख़ज़ाने से दिया जाय।

(९५) पार्लामेण्ट की एक सिलेक्ट कमेटी बनाने का प्रस्ताव मंज़ूर है। भारत सरकार की भी राय में पार्लामेण्ट की दोनों सभाओं से सदस्य चुन कर यह कमेटी बनाई जानी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साउथबरा कमेटी।

सर शंकरन नायर का मतभेद-पत्र।

भारत सरकार से भिन्न राय।

कार्य-विभाग की रि... भारत सरकार ... है, उस... शङ्करन नायर ... मतभेदपत्र भेजा है :—

१—मैंने अपने मतभेद-पत्र (... १२) में बताया है कि मन्त्री को ... उठानी पड़ती है जब ... अधीन कार्यकर्ताओं के लेने को बाध्य किया जाता है, जो उसके आदेशानुसार काम नहीं कर सकते। ... अधीन कार्यकर्ता मन्त्री के निर्णय को तोड़ने के लिए गवर्नर के पास बेरोकटोक पहुंचे यह आपत्ति भी कर चुका हूं। भारतसरकार से असहमत होकर अब कमेटी प्रस्ताव करती है कि ऐसे नये स्थायी पदों की सृष्टि की जाय जो सर्विस लिस्ट में सम्मिलित न किये जायँ जैसा कि मेरे सहयोगी ने बताया है। इससे मन्त्री भारत-सचिव की स्वीकृति लेकर ऐसे नये पदों की सृष्टि कर सकेगा जिनसे उसके अधीनस्थ विभाग का काम हो सके। मेरे सहयोगियों ने समझा था कि मन्त्री स्वयं ऐसे पद खड़े करेगा, इसीसे उन्होंने सम्मति दी थी कि यह काम सर्विस केडर में शामिल किया जाय। कमेटी यह भी प्रस्ताव करती है कि जहां रक्षित और हस्तान्तरित दोनों विभागों से सम्बन्ध हो, वहां अफ़सर की भर्ती अन्य मिश्रित कार्यों की तरह होनी चाहिये, अर्थात् कार्यकर्त्री कौंसिल और हस्तान्तरित विभाग में मतभेद पड़ने पर निर्णय गवर्नर करें। मैं इस बात को मानता हूं कि ऐसे नये पदों की सृष्टि के लिए अन्त में भारत-सचिव से स्वीकृति लेनी चाहिये, इससे मेरी आपत्ति (पैराग्राफ १३) का पहिला अंश दूर हो जाता है और इससे मैं अपने सहयोगियों के प्रस्तावों की अपेक्षा कमेटी के प्रस्तावों को अच्छा समझता हूं।

२—मंत्री तथा व्यवस्थापिका सभा और मंत्री तथा कार्यकर्त्री सभा के मतभेदों का निपटारा कैसे हो यह भी एक बड़े महत्व का प्रश्न है। इस विषय पर मेरे सहयोगियों ने जो प्रस्ताव किये हैं उनपर मैंने बड़ी आपत्ति की है। यह प्रश्न उस समय कार्यविभाग कमेटी के विचाराधीन था। उसके प्रस्ताव अब उसकी रिपोर्ट के पैरा ६० से ६३ तक में मिलेंगे। सहयोगियों की सम्मति से उसका बड़ा मतभेद है, पर कुछ अंशों में वह मेरी आपत्ति दूर करती है।

३—मेरे सहयोगियों का कहना है कि मतभेद की अवस्था में हस्तान्तरित विभागों का कार्य गवर्नर अपने हाथ में लेलें और उस समय तक करें जब तक मतभेद दूर न हो। इनके सब प्रस्ताव ऐसे ही हैं जिनसे बड़ी गड़बड़ मच सकती है। मन्त्री तथा व्यवस्थापिका सभाओं के मतभेद और दायित्वशून्यता को रोकने के लिए ही हम ऐसा करते हैं, यही कहकर मेरे सहयोगी हस्तान्तरित विभागों का कार्य अपने हाथ में लेना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि व्यवस्थापिका सभाओं का मत गवर्नर के मत से अधिक मान्य हो। वे भारत-सचिव को यह भी अधिकार देना चाहते हैं कि वे हस्तान्तरित विषयों में से चाहे जिस विषय को रक्षित विषयों में सम्मिलित कर दें। मन्त्री तथा कार्यकर्त्री कौन्सिल में मतभेद होने पर जब रक्षित तथा हस्तान्तरित दोनों विभागों का सम्बन्ध हो तो वे चाहते हैं कि गवर्नर सिर्फ़ विभाग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निर्णय करें, अर्थात रक्षित … सुपुर्द किये जायँ। मेरी सम्म… प्रस्ताव सुधारों के विरुद्ध हैं; … कमेटी ने इन्हें स्वीकार नहीं किया है, … वह भारत सरकार की सम्मति से प्रायः अ…मत होती आई है। हस्तान्तरित विषयों से कोई विषय रक्षित विषयों में सम्मिलित कर दिया जाय यह भी कमेटी पसन्द नहीं करती। हस्तान्तरित विभागों के कार्य करने के लिए गवर्नर को सदा मन्त्री रखना होगा अर्थात् कौंसिल का कोई निर्वाचित सदस्य इस कार्य का उत्तरदाता बनाया जाय, पर कौंसिल के साथ इसका कार्य स्वयं न करें, हां, उस हालत में करें जब मंत्री बरखास्त कर दिया गया हो और दूसरा मंत्री नियुक्त न हुआ हो। इस अवस्था में भी वे मंत्री की हैसियत से ही काम करें। यह प्रस्ताव मेरे सहयोगियों के मत से बिलकुल भिन्न है। वे गवर्नर के हाथ में मंत्री का पद तब तक रखना चाहते हैं जब तक व्यवस्थापिका सभा उनके इच्छानुसार काम न करे। कमेटी का कहना है कि गवर्नर सिर्फ विभाग के प्रश्न का ही नहीं बल्कि कार्यकर्त्री कौंसिल तथा मंत्री के पारस्परिक मतभेद का भी निपटारा करें।

यदि कार्यकर्त्री कौंसिल न माने तो गवर्नर उसे स्वीकार करने को बाध्य कर सकते हैं और विशेष आवश्यकता पड़ने पर मंत्री को बरख़ास्त कर काम अपने हाथ में ले सकते हैं, पर उनको मंत्री अवश्य रखना पड़ेगा और इसका प्रबन्ध शीघ्र ही करना पड़ेगा। विशेष समय का काम इस तरह निकल जाता है। हस्तान्तरित विभाग की अवस्था इसी प्रकार की रहेगी।

कमेटी का कहना है कि विशेष समय में अस्थायी रूप से हस्तान्तरित विभाग को हाथ में लेना गवर्नर के लिए आवश्यक है इससे गवर्नर के सम्बन्ध में मन्त्री का कार्यकर्त्री कौन्सिल से उच्च पद रहेगा। यह प्रश्न बड़े महत्व का है, इसीलिए इस विषय पर मैं और कुछ कहना चाहता हूं।

४—…त्री का हस्तान्तरित कार्य गवर्नर के हाथ में … और प्रादेशिक या भारत सरकार के प्र… …-सचिव को यह अधिकार देना … चाहें हस्तान्तरित विषय को फिर र… …ों में सम्मिलित कर दें, मैं ज़रा भी प… …करता, इसका मैं कहां तक प्रतिवाद कर… जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं, सारी … …ीम मिट्टी में मिल जाती है। सुधार-रिपोर्ट का अभिप्राय है कि लोक-निर्वाचित प्रतिनिधि सिविल सर्विस के नियत्रण से किसी अंश में मुक्त हों। भारतवासी इस विषय में पूर्ण रूप से सहमत हैं कि सुशासन के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है और यह इसलिए किया गया है कि सिविल सर्विस वाले इङ्गलैण्ड की जनता तथा पार्लमेंट के आदेशानुसार भारत का शासन नहीं कर सके हैं। अभी कुछ समय तक कितने ही प्रदेशों में गवर्नर सिविलियन ही होंगे और दूसरों में ऐसे होंगे जिन पर सिविलियनों का अधिक प्रभाव रहेगा। इसलिए हस्तान्तरित विभाग को गवर्नर के हाथ में दे देना उपयुक्त नहीं है। इसके सिवा सिविलियनों ने वास्तविक सुधार से खुल्लम-खुल्ला बैर घोषित किया है। इसलिए भारत का भावी शासन-सुधार उनके हाथ में रखना सर्वथा अनुपयुक्त है। सुधार पार्लमेंट की ओर से है, न कि सिविल सर्विसवालों की ओर से। यदि गवर्नमेंट चाहेगी तो यह सुधार कभी फिर वापिस ले लेगी। भावी व्यवस्थापिका सभाओं को भारतवासियों तथा पार्लमेंट के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना पड़ेगा। किन्तु सिविल सर्विस के हाथ में कोई हथियार रखना सुधार की मिट्टी पलीद करना है। ऐसी व्यवस्था ही जो भविष्यत् में इङ्गलैण्ड की जनता की नीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नष्ट कर सके जैसा कि अतीत काल में हुआ है, हानिकर है, क्योंकि मेरे सहयोगियों ने जो स्कीम पेश की है उसका यही अभिप्राय है। यह स्कीम ऐसी है जो पार्लमेंट तथा भारत-वासियों के प्रति अपने कर्तव्य के पालन करने में मंत्री तथा व्यवस्थापिका [illegible] के हाथ पैर जकड़ देती है और [illegible] को नष्ट करती है।

भारत-सचिव का हस्तक्षेप और [illegible] नहीं हो सकता क्योंकि मैं बता [illegible] के इन्होंने अपने को सिविलियनों की कठपुतली बना दिया है। [illegible] कि सिविलियन इस प्रकार [illegible] में ऐसे सुधार की मांग ही न करता। मुझे प्रसन्नता है कि कमेटी ने मेरे सहयोगियों के प्रस्तावों को स्वीकार नहीं किया है।

५—मेरे सहयोगियों ने अर्थ-व्यवस्था या बजट के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव किये हैं वे कार्य-विभाग कमेटी के मन्तव्यों के सर्वथा विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि आर्थिक प्रश्नों के सम्बन्ध में जहां हस्तान्तरित और रक्षित विषय एक साथ उपस्थित हों, अन्तिम निर्णय गवर्नर ही के हाथ में रहे। कर बैठाने के सम्बन्ध में भी मेरे सहयोगियों के प्रस्ताव कमेटी की सम्मति के विरुद्ध हैं।

कमेटी ने निश्चय किया है कि प्रादेशिक कार्यों के लिए जो कर बैठाया जाय वह हस्तान्तरित विषय समझा जाय। यह चाहती है कि कर में से पहिले भारत सरकार को कुछ धन दिया जाय, प्रादेशिक ऋण भरने के लिए रुपये दिये जायँ तथा रक्षित विभाग का व्यय भी पूरा किया जाय। प्रादेशिक राजस्व में से इतना धन देकर जो बचे वह सबका सब मन्त्री के अधीन रहे और कर का बैठाना हस्तान्तरित विषय समझा जाय; यदि कोई मतभेद हो तो उसका निर्णय गवर्नर "मिश्रित विषय" की [illegible] सरकार ने जो खरीता भेजा [illegible] ने विरोध किया है, उस [illegible] के विरुद्ध है, जो इससे [illegible] है।

[illegible] सहयोगियों का कहना है कि अधिकारी तथा अंग्रेज़ों के शासन के सम्बन्ध में कमेटी के जो प्रस्ताव और अन्य मन्तव्य शिथिल हो गये हैं क्योंकि भारत सरकार ने हाल में इनके विरुद्ध निश्चय किया है। यह बात गत ५ मार्च के खरीते में लिखी गई है और इसलिए ऐसे प्रस्तावों पर फिर और कुछ नहीं कहा गया। मेरी समझ में यह पद्धति ठीक नहीं है। लार्ड साउथबरो की कमेटी के सामने कोरे प्रस्ताव उपस्थित थे। उसकी रिपोर्ट पर दृष्टि देते हुए इस खरीते पर फिर विचार करना था। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी रिपोर्ट पीछे की अर्थात् ५ मार्च की और कमेटी की २५ फरवरी की है, पर निर्णय के समय वह कौंसिल के मेम्बरों के सामने नहीं थी। इसलिए हमें अपने प्रस्तावों में सुधार कर उसकी सम्मति पर विचार करना चाहिये। यदि उसकी सम्मति ठीक न हो तो हम उसे त्याग दें, पर बिना विचारे त्याग देना उपयुक्त नहीं है। इसी कारण हमने रिपोर्ट में कहा था कि हम नई प्रादेशिक सरकारों के विषय में वर्णन करेंगे जिनके कार्य दो भागों "रक्षित" तथा "हस्तान्तरित" विषयों में विभक्त हैं। लार्ड साउथबरो की कमेटी की रिपोर्ट पर विचार करने के बाद ऐसा किया जायगा, यह स्पष्ट कह दिया गया था।

मैं पहिले ही कह चुका हूं कि मेरे सहयोगियों ने अर्थ-व्यवस्था के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव किये हैं वे कार्य-विभाग कमेटी की सिफ़ारिश के सदा विरुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त उनकी स्कीम अनुपयुक्त और अग्राह्य मालूम होती है, यदि विषयों के विभाग के सम्बन्ध में हम कमेटी से सहमत हों। इसलिए उनकी स्कीम का कुछ सार देना अत्यन्त आवश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७—मेरे सहयोगियों की स्कीम [illegible] यह है कि रक्षित तथा हस्तान्तरित [illegible] जो आय हो उसमें से प्रदेश के [illegible] विभागों को निश्चित धन दिया जाय [illegible] प्रदेश के राजस्व में से उसके ख़ास ख़र्च के [illegible] जो धन बच जाय वह भी इस आय में जोड़ दिया जाय। यदि प्रदेश के प्रत्येक विभाग के राजस्व से ख़र्च न चले तो इस अवस्था में दूसरे विभागों से भी उसे धन की सहायता दी जाय।

प्रदेश के दो विभागों के फ़एड और बजेट-सम्बन्धी सुधार स्कीम के प्रस्तावों का किसी ने विरोध नहीं किया, ऐसा कहना सरासर ग़लत है। सर दीनशा वाचा तथा उनके ८ सहयोगियों को छोड़कर सभी ने इन प्रस्तावों का प्रतिवाद कर कहा था कि इससे हस्तान्तरित विभाग के कार्य में मंत्रियों पर अन्याय होता है और व्यवस्थापिका सभा का नियन्त्रण नष्ट होता है क्योंकि गवर्नर को सीमा से बाहर अधिकार दिया जाता है। यह प्रस्ताव कि प्रादेशिक आय में से पहिले रक्षित विषयों के व्यय के लिए धन दिया जाय, बड़ा आपत्तिजनक हुआ था, कारण इससे मन्त्री को नया टैक्स बैठाना पड़ता, जब स्वयम् सम्पन्न रक्षित विभाग मंत्री से धन नहीं मांगता। इससे व्यवस्थापिका सभा के सामने मन्त्री की स्थिति बहुत विकट हो जाती है क्योंकि टैक्स वग़ैरह के लिए स्वीकृति उसीसे लेनी पड़ेगी।

८—प्रस्तावित आडिट तथा एक्सचेकर ऐक्ट पर आपत्ति नहीं की जा सकती। आर्थिक सम्बन्ध पर विचार करने के लिए जो कमेटी बैठेगी उसकी नियुक्ति पर भी आपत्ति नहीं की जा सकती। प्रदेशों के बचे हुए धन पर इस समय भारत सरकार का जो अधिकार रहता है वह कुछ सुगम प्रणाली के कर देने से प्रदेशों के ही हाथ में रहेगा। मेरी राय है कि प्रादेशिक सरकार के दोनों शासन-विभागों के लिए एक ही अर्थ-विभाग हो। इसका होना अत्यन्त आवश्यक है और इससे हर प्रकार का लाभ है। [illegible] विभाग व्यय के सब प्रस्तावों की ख़ूब जांच [illegible]ाल करे, पर इस सम्बन्ध की आर्थिक नीति की [illegible]लोचना न करे, यदि करे तो केवल आर्थिक [illegible] से ही, क्योंकि कार्य-विभाग कमेटी ने [illegible]ने का निषेध किया है।

प्र[illegible] प्रान्तिक सरकारों पर साम[illegible]ारक और कर भी लाद सकेगी, गवर्न[illegible] प्रत्येक अर्द्धभाग अपने लिए जो ख़र्च[illegible] समझे उसके लिए वह एक निश्चि[illegible] के अन्दर सरकारी आय करादि लगाकर[illegible], गवर्नमेएट के प्रत्येक अर्द्ध भाग का [illegible]ने के लिए आय के जो भी साधन हों उनका विभाजन हो जाना चाहिये, एक भाग की कमी पूरी करने के लिए दूसरे भाग से रुपया लेने की पद्धति जारी करनी चाहिये इत्यादि, जो प्रस्ताव भारत सरकार के हैं उनसे गवर्नमेएट के विभाग अलग कर बेतरह कस जांयगे, पर इसके साथ व्यवस्थापिका सभा के सामने वे उत्तरदायी होते तो कोई बात नहीं थी, सो यहां नहीं है। इसके विपरीत यहां यह प्रस्ताव किया गया है कि व्यवस्थापिका सभा में जो प्रस्ताव पास होंगे उनका काम केवल गवर्नर-इन-कौन्सिल और मिनिस्टिरों को सूचनाएं देने का होगा, उनको मानना न मानना हाकिमों की मर्ज़ी पर रहेगा। इससे तो कौंसिल में कोई बल ही नहीं रह जाता, जैसी आजकल की कौन्सिलें हैं वैसी ये भी होंगी। शेष प्रस्ताव यह है कि बजट के प्रस्ताव यदि उन मिनिस्टरों के विरुद्ध पास हों तो उन्हें इस्तीफ़ा देना पड़ेगा। रिफ़ार्म स्कीम में बहुत सी बातें ऐसी हैं जिनका विरोध करना चाहिये तथापि लोगों ने उसका जो पेश किया उसका एक प्रधान कारण यह है कि स्कीम में यह बात थी कि दोनों विभागों का बजट एक होगा और व्यवस्थापिका सभा-द्वारा स्वीकृत होने पर उसका अमल हो सकेगा। अब यह हो रहा है कि कौन्सिल-व्यवस्थापन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ-व्यवस्था, शासन आदि सभी बातों में रक्षित विषयों की जहां तक सम्बन्ध है, परामर्श देने वाली एक सभा बन रही है और हस्तान्तरित विषयों में उस [illegible] रिफ़ार्म स्कीम [illegible] अधिकार क्षीण किया जा रहा है। स्कीम [illegible] प्रकार और यहां तक तोड़ने मरोड़ने [illegible] आवश्यकता नहीं है। यदि यह [illegible] रिफ़ार्म स्कीम के अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी [illegible] पर जो इतनी विरोधात्मक टीका हुई [illegible] ठीक है और यह भी मान लें कि स्कीम [illegible] लार काम चलाने में बड़ी रुकावटें [illegible] भी उसकी दो मुख्य बातों को र[illegible] उचित था, एक प्रान्तिक बजट का [illegible] रखना और दूसरा, व्यवस्थापिका सभा का नियन्त्रण होना। इन दो बातों को रखकर और चाहे जितने परिवर्तन किये जा सकते थे। जब अर्थ-विभाग एक है, कौन्सिल की फ़ाइनान्स कमेटी भी एक है और मद् की रक़में तय करने के लिए जब समस्त शासक-मण्डल का एक पूरा अधिवेशन होनेवाला है तो इन दो बातों को रक्खे रहने में कठिनाई क्या है? रिफ़ार्म स्कीम के अर्थ-व्यवस्था सम्बन्धी प्रस्तावों का यह इतना मज़बूत उद्देश्य है कि इससे प्रान्तों की द्वैध-शासन पद्धति में जो बाधाएँ हैं वे कम हो जाती हैं और एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिलरों और मिनिस्टरों को इस बात का मौक़ा मिलता है कि वे अपने प्रान्त के लोगों की भलाई के लिए परस्पर भावनापूर्वक, परस्पर सहानुभूति के साथ काम करें। गवर्नर भी और अच्छी तरह से प्रान्त के प्रधान के नाते अपना काम कर सकेंगे और अपने दोनों भागों में परस्पर मेल बढ़ा सकेंगे। ऐसा होने से रक्षित विषयों के हिस्से में जो रक़में अलग कर दी जायँगी उनमें मिनिस्टरों का भी साथ रहेगा और कौन्सिल इस बात की जानकारी के कारण रक्षित विषयों की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में विशेष सन्देह न करेगी और उन रक़मों को घटाने का प्रयत्न कम हुआ करेगा।

[illegible] परिणाम बड़ा ही अच्छा होगा, [illegible] को बार बार प्रमाण-पत्र देने के उपयोग न करना पड़ेगा जिसके [illegible] से गवर्नर और उनकी एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल एक तरफ़ और मिनिस्टर और लेजिस्लेटिव कौन्सिल दूसरी तरफ़, इस तरह परस्पर संघर्षण हुआ करेगा। प्रत्येक वर्ष की अर्थ-व्यवस्था उस वर्ष की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार की जा सकती है, अर्थ-व्यवस्था ऐसा होना चाहिये कि घटाने बढ़ाने की काफ़ी गुञ्जायश रहे, ऐसी हालत में कोई नवीन कर लगाने का प्रस्ताव किया जायगा तो व्यवस्थापिका सभा को उसे स्वीकार करने में बहुत दिक़्क़त न उठानी पड़ेगी और इस समय हमारे साथियों ने जैसे प्रस्ताव किये हैं उनके रहते हुए कौंसिल से सहारा मिलने की वह आशा नहीं की जा सकती जो उक्त परिस्थिति में की जा सकती है। रिफ़ार्म स्कीम के पक्ष करनेवालों की दृष्टि का ख्याल करें तो यह कहना पड़ता है कि यदि सचमुच कोई सुधार मंजूर है तो व्यवस्थापिका सभा के हाथ में नियंत्रणाधिकार होना ही चाहिये, अन्यथा सुधार कोई चीज़ नहीं है। एक ही बजट हो सकता है और अभी तो होना ही चाहिये। अभी जो प्रस्ताव सामने पेश हैं वे स्वेच्छाचारी और उत्तरदायी शासनों की खिचड़ी हैं, पर उत्तरदायी शासन में जो लाभकारी बातें हैं उनमें से एक भी यहां मौजूद नहीं है। इन प्रस्तावों के अनुसार मिनिस्टरों का रहना ही असंभव है और व्यवस्थापिका सभा तो वही है जो इस समय है।

१०—अब इस बात का विचार करें कि मेरे साथियों ने जो स्कीम पेश की है उसमें कोई ऐसा परिवर्तन किया जा सकता है या नहीं कि बजट एक हो, व्यवस्थापिका सभा को नियंत्रणाधिकार प्राप्त हो और उन आक्षेपों का खण्डन हो जो बजट के एक होने की अवस्था पर किये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं। पिछले साल की बाकी ... आमदनी की वृद्धि के बटवारे ... जो प्रस्ताव है वह स्वीकार किया ... भारत सरकार पर अभी जो कर्ज़ा है ... प्रांतिक सरकार भारत सरकार को कुछ ... दिया करे इसकी भी योजना की जा सकती है और यदि आवश्यक हो तो यह किया जा सकता है कि अकाल या अकाल-फ़ण्ड के लिए प्रान्तिक सरकार को आमदनी में से एक रकम अलग करदें और कार्यविभाग कमेटी के कथनानुसार रक्षित विभाग के लिए भी एक रकम अलग करदें। कमेटी ने स्वयं यह नहीं बतलाया है कि यह रकम कैसे निश्चित की जाय। पिछले वर्ष का हिसाब लें या ३ वर्ष का औसत निकालें। इसके बाद गवर्नमेंट के हर अर्धाङ्ग के लिए एक रकम निश्चित करने के बदले आमदनी पर यह हिसाब बैठाया जाय कि किस अंग को इसका कितना हिस्सा दिया जाना चाहिये। यह हिस्सा हस्तान्तरित विषयों पर निर्भर करेगा इसमें सन्देह नहीं। रक्षित विभाग को जो हिस्सा दिया जायगा उसमें इस बात की गुंजायश रहेगी कि रक्षित विभाग में काम करनेवाले नौकरों की वेतन-वृद्धि की जा सके। युक्त प्रदेश की व्यवस्थापिका सभा के गैर-सरकारी सदस्यों की २३ अगस्त, १६१८ की सभा से यह सूचना आई है कि आमदनी का दसवां हिस्सा रक्षित विभाग को मिलना चाहिये। इसके अतिरिक्त यदि और धन की आवश्यकता पड़े तो व्यवस्थापिका सभा द्वारा उतना धन दिया जा सके।

११—रिफार्म रिपोर्ट में इस आशय का किसी का एक प्रस्ताव है कि एक ज्वाइंट कमेटी नियुक्त की जाय जिसमें सरकारी और गैर-सरकारी दोनों दलों के लोग हों और जो रक्षित और हस्तान्तरित दोनों विषयों का एक साथ विचार करें। कुछ काल तक इससे अच्छा काम हो सकता है. यदि व्यवस्थापिका सभा की स्वीकृति से इसके संगठन में परिवर्तन किया जा सके। रिफार्म रिपोर्ट के सूत्रधारों ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया है। कारण यह ...ताया है कि गवर्नर जो निर्णय कर देंगे वह हिन्दुस्त...यों को अधिक मान्य होगा। यों सभी य... सकते हैं कि यदि पक्षपातरहित कमेटी ... उनका किया निर्णय अधिक सन्तो... कोई स्कीम हो, रिफार्म रिपो... कहना है और जिसे कार्य-वि...ने भी माना है कि व्यवस्थापिका स... प्रस्ताव पास हों उनके अनुसार यथ... मिनिस्टर को काम करना ही पड़ेगा... ज़क्यूटिव कौन्सिल को भी बन प्र...पनी रकम के खर्च के सम्बन्ध में मानना पड़ेगा और गवर्नर को यह अधिकार रहेगा कि वह यदि आवश्यक समझे तो रक्षित विभाग के सम्बन्ध में ही पहिले की सी व्यवस्था करदे—रिफार्म रिपोर्ट का यह कहना हर हालत में मानना ही चाहिये। इस तरह का अधिकार देने में कोई हानि नहीं है यदि रक्षित विभाग को दी जानेवाली रकम प्रस्तावानुसार एक अंशरूप से मर्यादित कर दी जाय।

१२—अब विषय-विभाग के सम्बन्ध में कार्य-विभाग कमेटी ने जो सूचनाएँ की हैं उनके मुकाबिले भिन्न भिन्न स्कीमों और रिफार्म रिपोर्ट की बातों का विचार कर सकते हैं। मैं यह दिखलाना चाहता हूं कि जो स्कीम पेश की गई है वह पृथक् निधि-पद्धति वाली हमारे साथियों की स्कीम से बहुत अच्छी है। मैं यह समझता हूं कि स्कीम से शासनयंत्र मज़े में चलेगा, कौन्सिल में और मिनिस्टरों अथवा रक्षित और हस्तान्तरित विभागों के बीच कोई अनुचित भेद न रहेगा। व्यवस्थापिका सभा को उतना ही अधिकार रहेगा जितना रिफार्म रिपोर्ट स्कीम ने दिया है। हमारे साथियों की स्कीम की तरह इसमें यह बात नहीं है कि कर-सम्बन्धी प्रस्ताव ग्रैंड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमेटी के पास भेजने पड़ें। व्यवस्थापिका सभा से कर-सम्बन्धी प्रश्न को उठा लेना, मैं समझता हूं, एक बड़ा हानिकर आक्षेप है। विषय-विभाग के सम्बन्ध में यह पड़ेगा कि रिफार्म रिपोर्ट स्कीम हमारे ... यों की स्कीम से कहीं अच्छी है।

१३—नीचे जो नकशा ... उससे प्रांतिक विषयों के रक्षित और ... रित विभाग मालूम होंगे। जो बातें छो... हैं वे कुछ महत्व की नहीं हैं।

प्रान्तिक विषयों की ...

(१) आबपाशी और नहर ... और बांध और जलाशय।

(२) ज़मीन की मालगुजारी का प्रबन्ध यथा निम्नलिखित तफ़सील से मालूम होता है।

(१) लगान लगाना और वसूल करना, (२) ज़मीन के कागज़ात रखना, नापी और किसानों के हक़ दर्ज करना (३) ज़मीन जोतने के संबन्ध में क़ानून, ज़मींदार और किसानों का संबन्ध, पोत वसूल करना, (४) कोरट, ऋणग्रस्त और कुर्क जायदादें, (५) भूमि की उन्नति और औद्योगिक ऋण, (६) पड़ती ज़मीन को बसाना और उसका बन्दोबस्त करना, किसीकी ज़मीन किसीके हाथ से निकाल लेने का क़ानून।

(३) अकाल निवारण।

(४) ख़ानगी ज़मीन पर सरकारी अधिकार।

(५) न्यायालय।

(६) एडमिनिस्ट्रेटर-जनरल और सरकारी पंच या ट्रस्टी।

(७) अदालती स्टाम्प।

(८) खानों का काम बढ़ाना।

(९) औद्योगिक बातें यथा—

(१) कारखाने, (२) मज़दूरों के झगड़ों का बन्दोबस्त, (३) बिजली, (४) बायलर, (५) गैस ...त्र (७) मज़दूरों की भलाई यथा ..., औद्योगिक बीमा (सामान्य ...धी तथा अकस्मात दुर्घटना) ... रहने का प्रबन्ध।

(१०) पुलीस (रेलवे पुलीस छोड़ कर)

(११) विविध—(१) बाज़ी लगाने और जुआ खेलने के संबन्ध में नियम, पशुओं के प्रति निर्दयता न होने देने का उपाय, (३) वन्य पशु-पक्षियों की रक्षा, (४) विष-नियमन, (५) मोटर गाड़ियों का नियमन और (६) नाटक और सिनेमा का नियमन।

(१२) समाचार-पत्रों और छापाखानों का नियंत्रण।

(१३) शव-परीक्षा-प्रबन्ध।

(१४) जंगली जातियां।

(१५) यूरोपियन भिखमंगे।

(१६) कैदखाने और सुधारालय।

(१७) कानीहौद।

(१८) लावारिस गड़ा खज़ाना।

(१९) सरकारी छापाखाना।

(२०) भारतीय और प्रान्तिक व्यवस्थापिका सभाओं के लिए मताधिकार और निर्वाचन नियम।

(२१) डाक्टरी और अन्य पेशे के लिए आवश्यक गुणों को निश्चित करने का स्टैंडर्ड ठीक करने का नियमन-कार्य।

(२२) प्रान्तों में काम करनेवाले अखिल भारतीय नौकरियों के नौकरों तथा अन्य प्रांतस्थ पब्लिक नौकरों को अधिकार में रखना।

(२३) नवीन प्रांतिक कर अर्थात् अतिरिक्त प्रांतिक करों की फ़ेहरिस्त में जो कर हों वे पैराग्राफ़ ७५ और जो और किसी मद्द के अन्दर न आये हों। पर देख लीजिये रिपोर्ट का ७६वां पैराग्राफ़।

(२४) अपनी साख पर ही प्रान्त का क़र्ज़ लेना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२५) किसी प्रान्तिक बात [illegible] प्रांत का कोई कानून जारी करने [illegible] ना, दण्ड या कैद की सजा देना।

(२६) कोई ऐसी बात जो अखिल [illegible] विषय के अन्दर की हो और जिसे गवर्नर-ज[illegible] रल-इन-कौंसिल ने प्रान्त के स्थानिक या प्राइवेट विषय पर मानने के लिए कहा हो।

(२७) प्रान्तिक अदालती रिपोर्ट।

हस्तान्तारित विषय।

(१) स्थानिक स्वशासन अर्थात् म्यूनिसिपल कारपोरेशन, नगरसुधारक ट्रस्ट, ज़िला बोर्ड, स्वास्थ्य बोर्ड और अन्य स्थानिक संस्थाएं जो स्थानिक स्वशासन के मतलब से बनाई गई हों।

(२) मेडिकल प्रबन्ध अर्थात् अस्पताल, पशु-चिकित्सालय, पागलखाने और वैद्यक (डाक्टरी) शिक्षा का प्रबन्ध।

(३) सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वच्छता और जन्म-मरण लेखा।

४—शिक्षा।

५—पब्लिक वर्कस्, यथाः—

(१) प्रांतिक इमारतें।

(२) सड़कें पुल और घाट—उन्हें छोड़ कर जिन्हें भारत सरकार ने महत्व का बताया हो।

(३) म्यूनिसिपल अहाते के अन्दर की ट्राम गाड़ियाँ और—

(४) छोटी रेलगाड़ियां।

(६) कृषि यथा अनुसन्धानालय, प्रयोग तथा आदर्श कृषिक्षेत्र। उन्नत उपायों का वर्त्तन, कृषि-शिक्षा का प्रबन्ध, नाशकारी कीड़ों से और रोगों से बचाव और वृक्ष-लताओं के रोग-प्रतिबन्ध।

७—पशुचिकित्सालय अर्थात् पशुओं की तालीम, उनकी उन्नति और रोग रोकने के उपाय।

८—[illegible]ारी संस्थाएं।

६—आ[illegible]ारी।

[illegible]०—भारतीय क़ानून के अनुसार सनदों और दस[illegible] की रजिस्ट्री।

११—[illegible]त्यु और भारतीय व्यवस्थापिका स[illegible]ई जातियों के लिए जो भारती[illegible] अनुसार विवाह की रजि[illegible]

[illegible]त्तर सम्पत्ति तथा धर्मार्थ दान की [illegible]

१३[illegible] अनुसन्धान और शिल्प-शिक्षा के [illegible]ोगिक उन्नति।

१४-[illegible]द्रव्यों तथा अन्य वस्तुओं में मिलावट, [illegible] माल के सम्बन्ध में भारतीय क़ानून।

१५—बटखरे और नाप—स्टैंडर्ड भारतीय क़ानून से ठीक किया जायगा।

१६—जादूघर (कलकत्ते का विक्टोरिया मेमोरियल और इण्डियन म्यूज़ियम छोड़ कर) और चिड़ियाख़ाना।

१७—मत्स्यागार।

१८—बम्बई के जङ्गल।

१६—बन्दरगाह।

२०—देश के अन्दर के जलमार्ग।

१४—आय की रक़मों को विषय-विभाजन की बुनियाद पर अलग अलग करने का भारत सरकार का जो प्रस्ताव है, मैं समझता हूं, वह सिद्धान्तशः आपत्तिजनक है। विषय-विभाजन जिस काम के लिए होता है उस काम से उन विषयों से होनेवाली आमदनी का कोई सम्बन्ध नहीं है। कार्य-विभाग कमेटी से रिफ़ार्म रिपोर्ट में दी हुई कुछ बातों के आधार पर विषय-विभाजन करने के लिए कहा गया था। उन बातों से गवर्नमेंट के किसी रद्दोबदल का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलनेवाली रक़मों का ...
कमेटी की रिपोर्ट से यह ...
के सामने बस वही बातें ...
इसलिए मेरे साथियों ने ...
अर्द्धाङ्ग को उसे सुपुर्द कि...
वाली आमदनी की आय ...
किया है वह अनुचित है ...
के ख़याल से विषय-विभ...
से उन विषयों की आमद...
नहीं है। शायद यही बा...
ने यह सूचना दी है कि ...
'हस्तान्तरित' होना चाहि...
यह ज़रूर सोचा होगा कि ...
साथ साथ उन विषयों ...
भी उसी अर्द्धाङ्ग के ...
उन विषयों की आमदनी ...
जाय इसका अधिकार ह...
इसलिए यदि हम कमेटी ...
सम्बन्धी सूचनाओं को ...
समझता हूं कि हमें यह ...
कि कमेटी ने यह ज़रूर स...
रित विषयों का शासन उतनी आमदनी से न हो सकेगा जितनी उन विषयों से प्राप्त होगी और इसलिए कर (रिपोर्ट के ७५वें पैराग्राफ़ में बतलाये हुए कर लेकर) लगाने का अधिकार केवल हस्तान्तरित विभाग के मंत्री को होना चाहिये—यह रक्षित विषय न होना चाहिये।

१५—ऊपर दिये हुए नक़शों से यह मालूम हो जायगा कि अधिक आमदनीवाले विभाग प्रायः सब 'रक्षित' हैं। एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल या प्रबन्धकारिणी सभा केवल बढ़ती हुई आमदनी से ही फ़ायदा न उठावेगी बल्कि हाकिमी हैसियत से ज़मीन की मालगुज़ारी भी बिना व्यवस्थापिका सभा से पूछे बढ़ा सकेगी। जिन विभागों में सब से अधिक ख़र्च होता है और देश की वास्तविक उन्नति जिनसे हो सकती है

... विषयों की फ़ेहरिस्त में पहिले
...समें तो सन्देह ही क्या है कि
... का प्रबन्ध करनेवाली एक्-
...न्सिल को अपना ख़र्च चलाने
... हस्तान्तरित' विभाग से कभी कुछ
...ा और मिनिस्टर को अपने
...भागों का ख़र्च चलाने के लिए
...न मिलेगी। उसे अपने विषयों
... पूरी आमदनी के अतिरिक्त
...न की सदा ही आवश्यकता
...शासनगत विषय आमदनी के
...तारशील नहीं हैं। आबकारी
...हिन्दुस्तानियों के हाथ में आ
...ने उसकी आमदनी न बढ़ेगी
...ो चाहिये। पर प्रश्न यह है कि
...से 'रक्षित' विषय से भी कुछ
...ह अच्छी तरह से मालूम है
...व कौन्सिल को जितनी आमदनी
...मिल सकनेवाली होगी उसी
...ा ख़र्च भी बँध जायगा। नौकर-
...उसके मातहत है और अनुभव से यह मालूम हो चुका है कि उनकी मांग कभी ख़तम नहीं होती और अंगरेज़ अफ़सरों द्वारा नये नये पदों की पूर्ति करना, उन्हें भत्ता दिलाना और उनके वेतन और पेनशन बढ़वाना आदि बातों से एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल पूरी सहानुभूति रखती हो। यदि एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल पर कोई बाहरी दबाव न रहेगा तो हस्तान्तरित विभाग के मंत्री की चोटी उसके हाथ में रहेगी। इस दृष्टि से विचार कर देखें कि ५ मार्च, १९१९ के खरीते में ६६वां पैराग्राफ़ देखिये जो स्कीम दी गई है उसके विरुद्ध जो आक्षेप किये गये हैं उनसे ये स्कीमें कहांतक बची हैं।

(१६) पहिला आक्षेप यह है कि प्रान्तिक बचत से लेने की रकम चिट्ठे के मुकाबले बढ़ जाने, कर लगाने और शान्तिक झगड़ों के संबन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में गवर्नमेंट के दोनों अर्द्धांगों [...] मर्यादासूचक रेखा खींचनी पड़ेगी, [...] एक हिस्सा ही कायम करने की [...] बाद कर लगाने या कर्जा करने का [...] मनाही होनी चाहिये और कोई उत्तरदायी गव-र्नर इसके लिए इजाज़त भी नहीं देगा यदि रक्षित विभाग के पास रुपया मौजूद रहे और विषय-विभाजन के अनुसार रुपया रहेगा ही। यह रुपया दोनों विभागों की आवश्यकताएं देख कर तदनुसार बंट जाना चाहिये। इसलिए गवर्नर या और कोई बाहरी अधिकारी एक विभाग की आमदनी से दूसरे विभाग के काम के लिए रुपया न ले सके तो कारखाना ही बन्द हो जायगा। रिफ़ार्म रिपोर्ट स्कीम या कार्य-विभाग कमेटी की स्कीम के अनुसार यह बात न होगी क्योंकि इस संबन्ध में निर्णय करने का अधिकार गवर्नर को होगा। मेरी स्कीम में तो तुलनात्मक आय की बात ही नहीं है। गव-र्नर को यदि यह अधिकार दिया जाय तो रिफ़ार्म रिपोर्ट और इसमें अन्तर ही क्या रहा क्योंकि उसमें भी मतभेद की अवस्था में निर्णय करने का अधिकार गवर्नर को दिया गया है। प्रांतिक बचत के संबंध में पूछिये तो मेरे साथियों ने अभी यह नहीं सोचा है कि इसका विभाग कौन करेगा। मैं समझता हूं यह अधिकार गवर्नर को होगा अर्थात् देखने में कम से कम यही आता है कि हम जहां थे वहीं रह गये। इस-के साथ ही यह भी सोचना चाहिये कि भविष्य में विभाजन योग्य प्रांतिक बचत का रहना ही संभव नहीं है क्योंकि प्रधान सरकार के नियमों द्वारा गवर्नमेंट के दोनों अर्द्धाङ्ग या विभाग इतने स्वतंत्र हो जायँगे कि उनके पास जो रकम बच सकनेवाली होगी उसे वे किसी न किसी काम में लगा देंगे या किसी ख़ास काम के लिए अलग कर देंगे। यह भी संभव है कि वे अपनी बचत कर्जा अदा करने में लगा दें और ऐसा करना भी चाहिये।

(१[...]सरा आक्षेप यह है कि गवर्नमेंट के [...] अ[...]को दूसरे अर्द्धांग के काम के लिए [...] इनकार करने का अधिकार न होगा [...]पने मतभेद-पत्र में (खरीते के साथ-वाले म[...]त्र में) यह दिखला दिया है कि मेरे सा[...]को भूल गये हैं कि झगड़े की हा[...]रने का अधिकार गवर्नर को [...]ये और यह भी दिखला दिया है कि [...] रिपोर्ट स्कीम के [...]र काम हो तो [...]य हो नहीं सकता। [...]ी देर के लिए [...] अधिकार को ध्यान से अन्तर्ध्यान करके मे[...]ने जो स्कीम सामने रक्खी है उसमें [...]मिनिस्टर और उनके विभागों को कुछ [...] ही नहीं रहेगा सिवा इसके कि ज़रूरत [...] पर वह दीन होकर एक्ज़िक्यू-टिव की श[...]है। एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल के पास रु[...]ेष्ट रहेगा और उसके काम में हस्तक्षेप[...] वाले शायद ही कभी दख़ल दे सकें। इस[...]ए इस स्कीम से अन्य दो स्कीम के मुकाबले न कुछ काम बनता है न कोई कठि-नाई दूर होती है। मेरे साथियों की स्कीम का यह मतलब है कि कर लगाने का काम केवल एक्ज़िक्यूटिव ही करे, "हस्तान्तरित" विभाग नहीं। मेरी राय तो यह है कि ज़मीन की आम-दनी कर लगाकर या बन्दोबस्त करके किसी प्रकार बढ़ाई न जाय और महत्व के जो हस्ता-न्तरित विभाग हैं उनकी उन्नति और विस्तार के लिए ज़मी[...]का उपयोग हो।

(१८) तीसरा आक्षेप वार्षिक धन-वितरण के समय परस्पर संघर्षण के सम्बन्ध में यहां भी उपस्थित होगा जिसकी सत्ता मिनिस्टर तथा हस्तान्तरित विभाग के हक में बहुत ही बुरी होगी। प्रतिवर्ष एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल से रकमें मांगनी पड़ेंगी। इस स्कीम के अनुसार मिनिस्टर की गति एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल के हाथ में रहेगी और रिफार्म स्कीम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा कार्य-विभाग [illegible] के अनुसार गवर्नर [illegible] का साधक निर्णय [illegible] के अनुसार तो ग[illegible] है, किसीका [illegible]

१९—[illegible] प्रत्येक वि[illegible] जो [illegible] स्कीम [illegible] क्या है [illegible] सब से [illegible] मेरे साथियों की स्कीम [illegible] की आमदनी की स्वाभा[illegible] टिव कौन्सिल सन्तु[illegible] सभा को ख़बर तक [illegible] कालिक बन्दोबस्त [illegible] बढ़ाया करेगी। साधारणतः [illegible] विभाग की आमदनी को [illegible] ज़िक्यूटिव कौन्सिल के पास [illegible] रुपया रहेगा। पर इसमें कोई [illegible] उसपर अंगरेज़ नौ[illegible] आदि के लिए पड़ा करेगा और दबाव के नीचे एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल खुशी से झुका करेगी। इसलिए यह बहुत संभव है कि रैयत जो कंगाल हो चुकी है और भी [illegible] जायगी। हिन्दुस्तान की उन्नति के लिए जिन हस्तान्तरित विभागों की प्रगति आवश्यक है वे सिकुड़ते ही रह जायँगे। आमदनी के सब साधनों का भी वही हाल होगा। यह ऐसा प्रस्ताव है मानो मिनिस्टर और एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल को यह आह्वान किया गया है कि वे जितनी आमदनी बढ़ाते बनें, बढ़ावें, देश के हित का सर्वनाश इससे अधिक और कैसे होगा? इसलिए मैं यह समझता हूं कि मेरे साथियों की स्कीम इस हालत में देश के कल्याण के लिए सर्वनाश करनेवाली होगी और यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है कि देश की स्वाभाविक [illegible] उपयोग समस्त देश को न हो। [illegible] ऐसी नहीं है, मेरी स्कीम ऐसी [illegible] थियों की जो स्कीम है वह उन्हीं- [illegible] ों के विरुद्ध है जो उन्होंने [illegible] समय अपने सामने रक्खे थे, [illegible] कि इस स्कीम से हर विभाग [illegible] जायगा कि वह कहां तक ख़र्च [illegible] लिए उपाय करे—यथा, मिनिस्टर [illegible] यह कभी नहीं हो सकता कि उसके धनोत्पादक विभागों की आमदनी तथा [illegible] चत से उसके विभागों का ख़र्च [illegible] जा सके, इसे दूसरे विभागों का मुंह [illegible] पड़ेगा और नया कर लगाना ही [illegible]।

मैं [illegible] झता हूं कि मेरे साथियों ने जिस [illegible] ये नवीन प्रस्ताव किये हैं वे [illegible] म से सिद्ध हो सकते हैं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है कि हस्तान्तरित और [illegible] के धनागम से दो भिन्न भिन्न [illegible] की जायँ।

ज़मीन की मालगुज़ारी।

२०—हिन्दुस्तान की ग़रीबी का कार[ण] सरकार की मालगुज़ारी और शिल्प-उद्योग [की] नीति है और यह बड़े सन्तोष की बात है [कि] कमेटी ने यह सूचना दी है कि ज़मीन पर 'से[स]' लगाने और ड्यूटी बैठाने के सम्बन्ध में [कर] लगाने का जो कार्य है वह एक प्रान्तिक विष[य] समझा जाना चाहिये (पैराग्राफ़ ७५) और यह भी हस्तान्तरित विषय होना चाहि[ये] (पैराग्राफ़ ७६)। कमेटी ने नज़र की भूल [से] हस्तान्तरित विषयों की सूची में इसका [नाम] नहीं दिया, यह बात दूसरी है। भारत सरकार भी इस बात पर राज़ी है कि प्रान्तिक सरकार भारत सरकार से बिना मंज़ूरी लिये इस प्रकार के कर लगाया करे। कमेटी का यह कहना है कि (पैराग्राफ़ ६६७) लगान लगाने का काम एकज़िक्यूटिव के ही हाथ में रक्खा गया है, इस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए मालगुज़ारी के नियतकालि[illegible] का काम "रक्षित" विषय ही होना[illegible] इसका पूरा अधिकार एक्ज़िक्यू[illegible] के ही हाथ में होना चाहिये। ये दोन[illegible] दूसरे से मेल नहीं खातीं। व्यवस्थापिका [illegible] एक्ज़िक्यूटिव कौन्सिल के लगाये हुए लगान का बिना ख़याल किये सेस या ड्यूटी नहीं बैठा सकती और एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल भी व्यवस्थापिका सभा के लगाये सेस और ड्यूटी का बिना ख़्याल किये लगान नहीं लगा सकती। इनमें अन्योन्याश्रय है, और यदि कमेटी के विचारों की रक्षा करनी है तो यह मिश्र विषय होना चाहिये और यदि एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल और मिनिस्टर में परस्पर मतभेद हो तो गवर्नर जो निर्णय कर दें वही मान्य होना चाहिये। मेरी राय तो यह है कि एक्ज़िक्यूटिव कौंसिल अपने मन से ही मालगुज़ारी बढ़ा न सके। ज़मीन की मालगुज़ारी या पोत लगाने का अधिकार केवल व्यवस्थापिका सभा को ही होना चाहिये। अभी यह हाल है कि स्थायी बन्दोबस्तवाली ज़मींदारियों के बाहर शासक सरकार का यही सिद्धान्त रहा है कि ज़मीन जो है सो बादशाह की अपनी सम्पत्ति है और ज़मींदार पर शासक सरकार जो भी लगान या कर लगाना उचित समझे उसका वह देनदार है। संसार में एक हिन्दुस्तान ही ऐसा देश है, जहां क़ानून, रस्म-रवाज या उपराचढ़ी से मालगुज़ारी या पोत निर्द्धारित नहीं किया जाता। [illegible]तो दिन दिन कङ्गाल हो रहा है [illegible]धान कारण है। इसीने मज़दूरी [illegible] ज़मीन से अलग रक्खा है। इस [illegible] आवश्यक समझता हूं कि कार्य-विभाग [illegible] की जो यह सूचना है कि "बिना कमाये [illegible]ी हुई ज़मीन पर ड्यूटी" लगाने [illegible] प्रकार बनने चाहिये कि जिस[illegible] [illegible] के प्रान्तिक सरका[illegible]कार जहांतक [illegible] हों, व्यापक हों" [illegible]ना स्वीकार करन[illegible]। इससे पैरा[illegible]में [illegible]मीन पर लगान [illegible]ाने के सम्बन्ध[illegible]वा पेश है उसका काम हो जायगा [illegible] अवतरित अंश के पहिले भाग में [illegible] उन्हें उड़ाकर उनके स्थान में "ज़मीन [illegible] करादि" ये शब्द जोड़ देने से और व्यवस[illegible]का सभा द्वारा हो या नियतकालिक ब[illegible]स्त द्वारा हो ज़मीन पर कर लगाने मात्र का [illegible] 'हस्तान्तरित' कर देने से यह काम हो ज[illegible] है। उपायान्तर में मैं इन दो शर्तों का समावे[illegible] करने के लिए अवश्य कहूंगा, (१) दश व[illegible] पहिले डीसेंट्रलाइज़ेशन कमीशन ने जैसा स्[illegible]त किया था उसके अनुसार लगान लगाने के [illegible]सामान्य सिद्धांत प्रांतिक व्यवस्थापन में अ[illegible]ायंगे; और (२) किसी ज़िले में नया बन्दोबस्त [illegible]ने का प्रस्ताव हो तो वह प्रस्ताव एक बिल [illegible]दर्ज किया जायगा और अन्यान्य कर-सम[illegible] बिलों के समान वह बिल भी व्यवस्थ[illegible] सभा [illegible] पास होगा।

[illegible] 111163 [illegible]
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आज़ू है कि इसे ... आबेगोहर से सींचें ॥
आबेहैवाँ न मिले ... बस ख़ूने जिगर से सींचें ॥
हड्डियां रिज़के हुमा ... ख़ाक के मिट्टी में मिलें खाद बनें याद रहें ॥
हम रहें ... इसकी परवा है किसे शाद कि नाशाद रहें ॥
हम उजड़ें ... उजड़े वतन ... हों पर वतन आज़ाद रहे।"

...-टिप्पणियाँ।

... भारतीय कोष

... के हम लोगों का काम नहीं चल सकता। हम ... नेता विदेशों में घूमें, वहां के कर्णधारों से मि... हमारे समाचार पत्र विदेशी भाषाओं में, विदे... में वितरित किये जायँ, हमारी दीन दशा ... को चित्रित करने वाली पुस्तकें विदे... में छापी जायँ, हमारे ऊपर जो नित नई वि... पत्तियां आया करती हैं उनसे रक्षा के लि... भाइयों के मुकदमें की पैरवी के लि... राष्ट्रीय कामों के लिए विशेष धन ... आवश्यकता है। सभी प्रान्तों के नेताओं ... देश में यह कोष स्थापित होना चाहिये। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक भारतवासी ... कोष के लिये कुछ दान करेगा। क्या हम आ... करें कि हमारे नेता और भारतवासी इस प्रस्ता... पर विचार करेंगे?

❁

... फ़ौजी कानून उठ गया कि... अभी फौजी अदालत जारी है।

...संसार की स्थिति भीषण है ... दो मास ...

❁

भारत की दशा बड़ी चिन्ताजनक और शोक ... अपनी हीन दशा के तार ... भेजते हमारे नेता ऊब गये होंगे किन्तु ... को कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला। ... सरकार और ... अनसुनी ... रहे हैं। ऐसी अवस्था में ... हम लोगों के ...

स्वदेशी उपाय

है ... है ... की जनता ... अपना ... करनी। ... कि बिना एक ...

१–कामना, २–चांदी सोना, ३–मोती का पानी, ४–अमृत, ५–रोती हुई आँख ६–हुमा (एक पक्षी जो हड्डियां खाता है) का भोजन; कवि कहता है कि हमारी हड्डियाँ हुमा का भोजन बनकर नष्ट न हो जांय, क्योंकि उस दशा में देश को उनसे कोई लाभ न पहुंचेगा। देश के हित के लिए वह चाहता है कि हड्डियां उसकी मिट्टी में मिलें और ज़मीन की उर्वरा शक्ति को बढ़ावें जिससे अन्न की पैदावार बढ़े। हुमा पक्षी के सम्बन्ध में यह कहावत मशहूर है कि जिसके सर पर आ बैठ जाता है वह सम्राट् हो जाता है। ७–खुश, सन्तुष्ट ८–रंजीदा असंतुष्ट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

गुरुकुल कांगड़ी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

111163

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri